

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा
विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्त्ता

श्री विश्वनाथजी विद्यालङ्कार
भूतपूर्व प्रोफेसर गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

द्वितीयावृत्ति

१०००

सं० २०१० वि०

मूल्य

६)

प्रकाशक:—

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर.

आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर के
लिये सर्वाधिकार सुरक्षित,

मुद्रक—

श्रीरामचन्द्र शिवद्वारे एम० ए०,
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर ।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

प्रथम मण्डल । सू० [१२२]—आचार्य के प्रति शिष्यों का कर्त्तव्य । (२) 'उपासानक्ता' रूप में पति-पत्नी का वर्णन । (३-१०) पिता, आचार्य का शिष्यवत् पुत्रों के प्रति और शिष्यों और पुत्रों का गुरु, आचार्य, माता और पिता जनों के प्रति कर्त्तव्य का वर्णन । (११-१५) महान् परमेश्वर का वर्णन । (१२) दशतय का रहस्य । (१४) हिरण्यकर्ण मणिग्रीव का रहस्य । (१५) 'मशशार' के चार शिशुओं का रहस्य । (पू० १—७)

सू० [१२३]—उपा के दृष्टान्त से नववधू का आदर और उसके तथा गृहपत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पति के कर्त्तव्य । (७) रात्रि दिन के दृष्टान्त से पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (पू० ७—१२)

सू० [१२४]—उपा के दृष्टान्त से युवती कन्या तथा युवा पुरुष को गृहस्थ प्रवेश का उपदेश, और उनके गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का वर्णन । पक्षान्तर में सेना और योगज विशोका का दिग्दर्शन । (पू० १२—१८)

सू० [१२५]—आयु के पूर्व भाग में ब्रह्मचर्य का और अनन्तर गृहस्थ का उपदेश, और उनके कर्त्तव्य । (पू० १८—२१)

सू० [१२६]—वीरों के दृष्टान्तों से जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । (६-७) राजा, राजनीति, राजसत्ता का वर्णन, पक्षान्तर में चेतना,

अध्यात्म शक्तियों का वर्णन । 'भावयज्य' और 'रोमशा' का रहस्य ।
(पृ० २१—२४)

सू० [१२७]—अग्नि के दृष्टान्त से अग्रणी नायक राजा और उसके कर्त्तव्यों का वर्णन । पक्षान्तर में विद्वान् आचार्य शिष्य के कर्त्तव्यों का वर्णन । (८) विरपति का वर्णन । दम्पति विरपति का रहस्य ।
(पृ० २४—३०)

सू० [१२८]—विद्वान्, आचार्य, गुरु, और राजा का वर्णन ।
(३) अग्नि, त्रिष्टुप्, सूर्य, सांड आदि के दृष्टान्तों की योजना, बलवान् सेनापति का वर्णन । विद्वान् पुरोहित, गुरु और यज्ञाग्नि सेनापति का वर्णन । (पृ० ३०—३४)

सू० [१२९]—सभापति, सेनापति, अग्रणी नायक मार्गदर्शी का वर्णन । (४) शूरवीर पुरुष और ऐश्वर्यवान् राजा का कर्त्तव्य । (८) विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । वीर राजा रक्षक का वर्णन । (पृ० ३४—४०)

सू० [१३०]—अभिपिक्त राजा विद्वान्, और सभापति सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ४०—४५)

सू० [१३१]—अग्नि वा त्रिष्टुप् राजा के कर्त्तव्य । सूर्यवत् राजा का वर्णन । (पृ० ४५—४९)

सू० [१३२]—सूर्यवत् विद्वान् गुरु का शिष्यों के प्रति ज्ञानदान, अध्यापन और विनय की शिक्षा, (७) पक्षान्तर में शूर पुरुषों, नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० ४९—५२)

सू० [१३३]—न्यायप्रिय, दण्डकुशल राजा के कर्त्तव्य । राज्य का कष्टकशोचन द्वारा पवित्रीकरण । पक्षान्तर में अध्यात्म में वामनाथों को क्षय करके शान्ति लाभ करने का उपदेश । शत्रुओं और दुष्टों का दमन । वैद-स्थान, बहुर, महाबहुर आदि का रहस्य । (५) पिशाचभृष्टि पिशाचि का रहस्य (पृ० ५३—५५)

सू० [१३४]—शूर पुरुष का प्रयाण, समृद्धि की वृद्धि, तथा सहो-
योग । आचार्य का कर्मों और ज्ञानों का उपदेश । वायु, सूर्य, सारथि,
आदि के दृष्टान्त से गुरु का कर्त्तव्य, (४) उपाओं के दृष्टान्त से शिष्यों
का गुरु की कीर्ति प्रसारित करना, वायु के दृष्टान्त से उनको ऐश्वर्य प्राप्त
करने का उपदेश । (५) राजा के अधीनस्थ अधिकारियों के कर्त्तव्य ।
राजा को दुष्टों के नाश का उपदेश । (६) राजा का सर्वोपर पालन
और ऐश्वर्यभोग का अधिकार । (पृ० ५५-५८)

सू० [१३५]—प्रधान पदवीधर के आदर की विधि, (२)
उसकी वेष भूषा, और कर्त्तव्य, सेनानायक होने योग्य पुरुष । (३)
शतिनी, सहस्रिणी सेनाओं सहित सेनापति को नियुक्ति, राज्यव्यवस्थापक
अध्वर्युजनों का कर्त्तव्य । (४) सेनापति, सभापति आदि का रथों से
गमन, उत्तम ऐश्वर्यों में प्रथमाधिकार । (५) प्रधान पुरुष की राष्ट्र में,
देह में आत्मा के समान स्थिति, देह में वीर्यों के समान राष्ट्र में बलवान्
शासकों की स्थिति । (७) सूर्य, वायु, वृष्टि आदि के दृष्टान्त से शासक
के प्रजापालन के कार्यों का वर्णन । (८) पक्षियों के आश्रय वृक्षवत्
शासक प्रधान पुरुष की स्थिति और राष्ट्र की समृद्धि का वर्णन । (९)
मेघवत् पराक्रमी, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को प्रजापालन का उपदेश ।
(पृ० ५९-६४)

सू० [१३६]—अधीन प्रजाओं का उत्तम प्रधान शासकों के प्रति
पुत्रवत् कर्त्तव्य । शासकों को न्यायोचित व्यवहार का उपदेश । सूर्य-
चन्द्रादिवत् व्यवस्थापकों का कर्त्तव्य । राजाप्रजा का प्रेममय व्यवहार ।
परस्पर पाप से रक्षा करने का कर्त्तव्य । (६) श्रेष्ठ जनों का आदर
सत्कार । (७) समृद्ध होकर उत्तम सुख प्राप्त करने का उपदेश ।
(पृ० ६४-६७)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [१३७]—देह में प्राण-उदानवत् मित्र और वरुण दो अधि-

कारियों और अन्न-औषधिरसवत् सोम नाम विद्वानों के कर्त्तव्य । वैदिक श्लेषमय वाक्यों का स्पष्टीकरण । (३) सोम और गोदोहन के दृष्टान्त से भूमिदोहन । (५० ६७-६९)

सू० [१३८]—पूषा, नाम प्रजापोषक अधिकारी राजा के कर्त्तव्य (४) पूषा के 'अजाध' होने का कारण । [६९-७१]

सू० [१३९]—विद्वान् आचार्य के अधीन वेदाभ्यास करने का उपदेश । (२) मित्र वरुण का सत्यामत्य विवेक, न्याय का कर्त्तव्य ।

३) उत्तम मी पुरुषों के प्रति अन्य जनों के सद्व्यवहार का उपदेश । (४) रथ में दो अश्वों के समान शामनादि कार्य में उत्तम पुरुषों की निदुक्ति । (५) ज्ञानी, कर्मिष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (७) विद्वान् नेता के कर्त्तव्य । (८) व्यापारियों और वीरों का कर्त्तव्य । ९. विद्वानों के कर्त्तव्य । दध्यत् अग्निरा. प्रियमेव, कण्व, अनि, मनु, आदि की व्याख्या । (१०) सूर्य, मेघ दृष्टान्त से विद्या धनादि देने लेने वाले के कर्त्तव्य । (११) ११, ११, ११, वरुकेदे ३३ व, ३३ अधिकारी (७१-७७)

सू० [१४०]—यज्ञाग्निवत् राजा को पोषण करने का उपदेश । (२) द्विजन्मा और त्रिवृत् अग्नि, विद्वान और राजा । (३) बालक के प्रति माता पिता के समान राजा प्रजावर्ग के कर्त्तव्य । (४-५) मुमुक्षु जनों का वर्णन (६) सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से राजा वा नायक का प्रजा के ग्रहण पालनादि का वर्णन । (७-८) राजा प्रजा का पति-पत्नीवत् परम्पर स्नेहवान् होकर रहने का वर्णन । (९) भूमि और राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (१०-११) मेघमथ विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वान् नायक वा राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (१२) नाकावत् सेना का निर्माण, पश्चान्तर में 'पटुता नौ' का रहस्य । (१३) उपाओं के दृष्टान्तों से विद्व । वीर पुण्यों का कर्त्तव्य । (५० ७७-८३)

सू० [१४१]—सत्य प्रकाश में अग्नि और गौत्रों के दृष्टान्त से

विद्वान् और वेदवाणियों का वर्णन । (२) जीवात्मा और मनुष्य की तीन दशाएं (३) असंग आत्मा के ज्ञान करने का उपदेश । (४) वनस्पतिवत् जीवों के जन्म लेने आदि का वर्णन । (५-७) अविनाशी आत्मा का जन्म लेने का रहस्य । (८) उसके बन्धनों के नाश का उपदेश । (९, १०) नायकवत् प्रभु का वर्णन । (१०-१२) वीर नायक और आत्मा का वर्णन । (पृ० ८३-८९)

सू० [१४२]—अग्निवत् नायक के कर्त्तव्य । तनूनपात् का रहस्य । (५) यज्ञाग्निवत् उपासना कर्म, यज्ञकर्त्ता जनो के समान उपासक का वर्णन । द्वारो के समान प्रजाओं और सेनाओं का वर्णन । (७) रात दिन के समान माता पिता का वर्णन । (८) दैव्य होता, विद्वानों का कर्त्तव्य । (९) भारती, इळा, सरस्वती, और होत्रा का वर्णन । (१०) त्वष्टा, शिल्पी, (१२) वनस्पतिवत् राजा का वर्णन । (१२) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (१३) विद्वानों के आदर का उपदेश । (पृ० ८९-९३)

सू० [१४३]—विद्यार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य । (३) अग्नि सूर्यवत् आचार्य की स्थिति, (४) सर्वपापनाशक अग्नि प्रभु की स्तुति । (५) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य । (६-७) तपस्वी विद्यार्थी का कर्त्तव्य । (८) विद्वान् को अप्रमादी रहने का उपदेश । (पृ० ९३-९६)

सू० [१४४]—अग्नि-व्रत का वर्णन । विद्यार्थी के आचार्य शुश्रूषा व्रत का वर्णन । आचार्य शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन । (३) माता, पिता, आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक । (४) माता पिता का बालक के प्रति कर्त्तव्य । (५) प्रजाओं का रक्षक के प्रति व्यवहार और रक्षक का कर्त्तव्य । (६) अग्निवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । (७) मेघवत् राजा का कर्त्तव्य । (पृ० ९६-९९)

सू० [१४५]—आदर्श विद्वान् का वर्णन । (२) जिज्ञासु का

कर्त्तव्य । (३) गिण्य का स्वरूप । (४) गिण्य के कर्त्तव्य । (५) विद्यार्थी के कर्त्तव्य । (पृ० ९९-१०१)

सू० [१४६]—(१) पुत्रवत् गिण्य का कर्त्तव्य, विद्यार्थी का लक्षण । त्रिमूर्धा सप्तरश्मि का रहस्य । पक्षान्तर में परमेश्वर, त्रिमूर्धा सप्तरश्मि, अग्नि का वर्णन । (२) सूर्यादिवत् जगत्-धारक प्रभु । (३) सूर्य दृष्टि के समान स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य । (४) विद्वानों का प्रभु-वर्णन । (५) दर्शनीय शिष्य (पृ० १०१-१०४)

सू० [१४७]—अग्निवत् आचार्य का वर्णन । (२) उपदेश करने का प्रकार । (३) प्रभु का वर्णन । (पृ० १०४-१०६)

सू० [१४८]—मातृगिष्ठा शिष्य का वर्णन । गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य । (४) आचार्य-वर्णन (५) विद्यार्थी का बल । (पृ० १०६-१०८)

सू० [१४९]—तेजस्वी स्वामी के कर्त्तव्य । (३) उसका शासन । त्रिजन्मा विद्वान् का वर्णन । (पृ० १०८-११०)

सू० [१५०]—प्रभु के प्रति शरणयाचना । अह्लादक प्रभु की शरण । (पृ० ११०-१११)

सू० [१५१] उत्तम शासक के कर्त्तव्य, (३) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, [४] पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन । (५) पति पत्नी का परम्पर वर्णन । (६) परम्पर सभ्य व्यवहार और मधुर वचन बोलने का उपदेश (७) उत्तम विद्वानों के सम्मंग की आज्ञा । (८) वनैश्वर्य, बुद्धि, मान्यतादि प्राप्ति का उपदेश । (पृ० १११-११५)

सू० [१५२]—सुसभ्य बनकर स्त्री पुरुषों को रहने का उपदेश । (२) सभ्यों के लक्षण । (३) वेदान्यास, ज्ञान प्राप्ति का उपदेश, पति पत्नी के प्रति उत्तम उपदेश । (४) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी रहने का उपदेश । 'अवनीशु अवा' का रहस्य । अन्यात्म में—आत्मा का वर्णन ।

(६) माताओं और गौओं के समान, आचार्य का शिष्य को पालन करना और शिष्य को पुत्रवत् भिक्षा का उपदेश । (७) गृहस्थों का भिक्षा देने का सद्भाव । मित्र वरुण का स्पर्ष्टीकरण । (पृ० ९१५-९१८)

सू० [१५३]—मेघ सूर्यवत् मित्र वरुण अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठजन का कर्त्तव्य । (२) विद्वान् का सद्-गृहस्थों के प्रति उपदेश करने का कर्त्तव्य । (३) विदुषी स्त्री और आचार्य का कर्त्तव्य । (४) पतिपत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ९१८-९२०)

सू० [१५४]—विष्णु परमेश्वर का वर्णन । विष्णु के तीन विक्रमणों का रहस्य । (३) अद्वितीय परमेश्वर जगत् कर्त्ता । (४) विष्णु के तीन पद । उसके प्रियपद की आकांक्षा, (५) उत्तम स्वास्थ्यजनक गृहों की इच्छा । (पृ० ९२०-९२२)

सू० [१५५]—पालक राजा के प्रति प्रजाजनों के कर्त्तव्य । सूर्य वायुवत् राजा का अपने राष्ट्र और शक्ति की रक्षा का उपदेश । (३) वृष्टि से अन्न, प्रजाओं की उत्पत्ति । (४) सूर्यवत् प्रबल पुरुष और ब्रह्मचारी के अपूर्व वीर्य-बल का वर्णन । (पृ० ९२२-९२५)

सू० [१५६]—उपदेष्टा विद्वान् के कर्त्तव्य और परमेश्वर का वर्णन, इनका सूर्यवत् कर्त्तव्य । (पृ० ९२५-९२७)

सू० [१५७]—स्त्री पुरुषों के गृहस्थसम्बन्धी कर्त्तव्य । (पृ० ९२७-९३०)

सू० [१५८]—उत्तम गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । मामतेय दीर्घतमा का रहस्य । (पृ० ९३०-९३२)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [१५९]—सूर्य और पृथिवीकृत दृष्टान्त से माता पिता, गुरु-जनों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पुत्रों के कर्त्तव्य । ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन कर्त्तव्य । (पृ० ९३२-९३४)

कर्त्तव्य । (३) शिष्य का स्वरूप । (४) शिष्य के कर्त्तव्य । (५) विद्यार्थी के कर्त्तव्य । (पृ० ९९-१०१)

सू० [१४६]—(१) पुत्रवत् शिष्य का कर्त्तव्य, विद्यार्थी का लक्षण । त्रिमूर्धा सप्तरश्मि का रहस्य । पक्षान्तर में परमेश्वर, त्रिमूर्धा सप्तरश्मि, अग्नि का वर्णन । (२) सूर्यादिवत् जगत्-धारक प्रभु । (३) सूर्य पृथिवी के समान स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य । (४) विद्वानों का प्रभु-दर्शन । (५) दर्शनीय शिष्य (पृ० १०१-१०४)

सू० [१४७]—अग्निवत् आचार्य का वर्णन । (२) उपदेश करने का प्रकार । (३) प्रभु का वर्णन । (पृ० १०४-१०६)

सू० [१४८]—मातरिश्वा शिष्य का वर्णन । गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य । (४) आचार्य-वर्णन (५) विद्यार्थी का बल । (पृ० १०६-१०८)

सू० [१४९]—तेजस्वी स्वामी के कर्त्तव्य । (३) उसका शासन । द्विजन्मा विद्वान् का वर्णन । (पृ० १०८-११०)

सू० [१५०]—प्रभु के प्रति शरणयाचना । अह्लादक प्रभु की शरण । (पृ० ११०-१११)

सू० [१५१] उत्तम शासक के कर्त्तव्य, (३) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, [४] पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन । (५) पति पत्नी का परस्पर वरण । (६) परस्पर सभ्य व्यवहार और मधुर वचन बोलने का उपदेश (७) उत्तम विद्वानों के सत्संग की आज्ञा । (९) धनैश्वर्य, बुद्धि, सामर्थ्यादि प्राप्ति का उपदेश । (पृ० १११-११५)

सू० [१५२]—सुसभ्य बनकर स्त्री पुरुषों को रहने का उपदेश । (२) सभ्यों के लक्षण । (३) वेदाभ्यास, ज्ञान प्राप्ति का उपदेश, पति पत्नी के प्रति उत्तम उपदेश । (५) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी रहने का उपदेश । 'अनभीष्टु अर्वा' का रहस्य । अध्यात्म में—आत्मा का वर्णन ।

(६) माताओं और गौओं के समान, आचार्य का शिष्य को पालन करना और शिष्य को पुत्रवत् भिक्षा का उपदेश । (७) गृहस्थों का भिक्षा देने का सञ्ज्ञाव । मित्र वरुण का स्पर्ष्टीकरण । (पृ० ९१५-९१८)

सू० [१५३]—मेघ सूर्यवत् मित्र वरुण अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठजन का कर्त्तव्य । (२) विद्वान् का सद्-गृहस्थों के प्रति उपदेश करने का कर्त्तव्य । (३) विदुषी स्त्री और आचार्य का कर्त्तव्य । (४) पतिपत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ९१८-९२०)

सू० [१५४]—विष्णु परमेश्वर का वर्णन । विष्णु के तीन विक्रमणों का रहस्य । (३) अद्वितीय परमेश्वर जगत् कर्त्ता । (४) विष्णु के तीन पद । उसके प्रियपद की आकांक्षा, (५) उत्तम स्वास्थ्यजनक गृहों की इच्छा । (पृ० ९२०-९२२)

सू० [१५५]—पालक राजा के प्रति प्रजाजनों के कर्त्तव्य । सूर्य वायुवत् राजा का अपने राष्ट्र और शक्ति की रक्षा का उपदेश । (३) वृष्टि से अन्न, प्रजाओं की उत्पत्ति । (४) सूर्यवत् प्रबल पुरुष और मल्लचारी के अपूर्व वीर्य-बल का वर्णन । (पृ० ९२२-९२५)

सू० [१५६]—उपदेष्टा विद्वान् के कर्त्तव्य और परमेश्वर का वर्णन, इनका सूर्यवत् कर्त्तव्य । (पृ० ९२५-९२७)

सू० [१५७]—स्त्री पुरुषों के गृहस्थसम्बन्धी कर्त्तव्य । (पृ० ९२७-९३०)

सू० [१५८]—उत्तम गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । मामतेय दीर्घतमा का रहस्य । (पृ० ९३०-९३२)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [१५९]—सूर्य और पृथिवीकृत दृष्टान्त से माता पिता, गुरु-जनों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पुत्रों के कर्त्तव्य । ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन कर्त्तव्य । (पृ० ९३२-९३४)

सू० [१६०]—सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से पति-पत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन, (३) उत्तम पुत्र के लक्षण और कर्त्तव्य । (पृ० १३४-१३६)

सू० [१६१]—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन । सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज का स्पष्टीकरण । (२) उत्तम दूत के उत्तम फल, ऋतुओं के एक चमस को चार करने का रहस्य । (३) नाना रथ तथा यन्त्र कलादि के चालक अग्नि के दृष्टान्त से दूत के राष्ट्र-भूमि के प्रति कर्त्तव्यों का वर्णन । (४) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का शासकों का कर्त्तव्य । (५) दुष्टों के दमन का उपाय (६) सूर्य, राजा सेनापति आदि के दृष्टान्त से विद्वानों को उत्तम उपदेश । (७) धनुर्धर पुरुषों और शिल्पियों के कर्त्तव्य । (९) विद्वानों का नाना विद्याओं के प्रचार का कार्य । (१०-१४) विद्वानों, राष्ट्रवासियों को लाभप्रद उपदेश । (पृ० १३६-१४२)

सू० [१६२]—श्रेष्ठ जनो के प्रति आदर का उपदेश । वाजी देव जात सप्ती आदि का रहस्य । (२) अभिषिक्त राजा और प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य, विश्वरूप अज का रहस्य । (३) सेनापति के योग्य पुरुष, अश्व-मेघ के अश्व के आगे छाग आदि लाने का रहस्य । (४) अश्ववत् राष्ट्र-पति के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य । अध्यात्म में अश्व, परमेश्वर का वर्णन । (५) राष्ट्ररूप यज्ञ का वर्णन, अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप, (६) राष्ट्रपति के सहयोगियों का कर्त्तव्य । (७) अश्ववत् राष्ट्रपति, ब्रह्मचारी, और गृहस्थ पति का वर्णन । आत्मा का वर्णन (८) अश्व के बन्धनों के समान राष्ट्रपति की मर्यादाएं । (९) राष्ट्र के ऐश्वर्य के प्रबन्ध को विद्वानों के अधीन रखने का उपदेश । (१०) वध किये अश्व के मांसादि की नाना कल्पना आदि अयुक्त अर्थों का खण्डन । शरीर की व्यवस्थावत् राष्ट्र की सुव्यवस्था । अश्वमेघ के अश्व के मांस पकाने आदि का खण्डन । (११) त्याग और तप के सफल का उपभोग राष्ट्र की भावी प्रजा को मिले (१२) तपस्वी, दृढ़ राष्ट्रपति की परिपक्व अन्न से तुलना ।

‘मांसमिक्षा’ का सत्यार्थ । (१३) भूमि के स्थल, जल आदि का निरिक्षण, पक्षान्तर में आत्मा और शरीर का वैज्ञानिक और दार्शनिक रहस्य । मांस-पचनी उखा और पात्रो का सत्य रहस्य । (१४) राष्ट्र की अश्व से तुलना । उनके सब कार्यों पर विद्वानों की अध्यक्षता । (१५) राष्ट्रशासक बल और सैन्य का कर्त्तव्य । अश्वसैन्य और राष्ट्रपति की अश्व से तुलना । (१७) अश्ववत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (१८) अश्व-देह की राष्ट्र-देह से तुलना (१९) अश्व, काल, संवत्सर और प्रजापति राजा की तुलना (२०) राजा के कर्त्तव्य । (२१) ज्ञानी विद्वान् और राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२२) विद्वान् और राजा के प्रति राष्ट्र का कर्त्तव्य । अश्वमेध के इस सूक्त का सर्वतोमुखी रहस्य । (पृ० १४२—१५१)

सू० [१६३]—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से शिष्य की उत्पत्ति, और विद्वान् होने पर उसकी सफलता । आचार्य का शिष्य के प्रति कर्त्तव्य । यम से दिये अश्व को त्रित का जोड़ना और इन्द्र का उस पर बैठने और गन्धर्व का लगाम पकड़ने का सत्यार्थ । (३) अश्व की उपमा से ऋक्षचारी का वर्णन, शिष्य की पुत्र से तुलना । (४) तीन बन्धन (५) आत्म-शुद्ध्यर्थ व्रतों का आचरण (६-७) शिष्य का कर्त्तव्य अध्यात्म में भक्त का उपास्य-आत्मदर्शन । (८) विद्वान् तेजस्वी के शासन में सब सम्पदाएं । (९) आचार्य, सर्वोच्च पद । (१०) जिज्ञासु शिष्यों का कर्त्तव्य (११) वीर, बलवान् राजा और राजा को तेजस्वी होने का उपदेश । (१२) सर्वोपास्य प्रभु । (१३) उत्तम पुरुष का मां वाप के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १५३—१५७)

सू० [१६४]—सप्त प्राण आत्मा का वर्णन परमेश्वर का वर्णन । (२) आत्मा, सूर्य, परमात्मा संवत्सरात्मक चक्र का वर्णन, एक त्रिनाभि अनर्ब चक्र का रहस्य । (३) सप्त चक्र रथवत् आत्माधिष्ठित देह और परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन । (४) हड्डी वाले देह में वेहड्डी के आत्मा का रहस्य । (५) देह में प्राणों और आत्मा में यज्ञों का

विस्तार । वत्स में तन्तु वितान और वयन का रहस्य । (६) सर्वाधार परमेश्वर विषयक प्रश्न । (७) ब्रह्मज्ञानी से आत्मविषयक प्रश्न । गिर से क्षीर दोहने वाली गौओ का रहस्य । (८) माता पिता या दम्पतिवत् परमेश्वर प्रकृति का वर्णन । गर्भरसा वीभत्सु माता का रहस्य । (९) उत्पत्ति कार्यों में परमात्मशक्ति को देखना । (१०) तीन माता तीन पिताओं के पालक प्रभु का वर्णन । (११) द्वादशार, द्वादशाकृति और षडर सप्तचक्र का वर्णन । (१३) पञ्चार चक्र, आत्मा । (१४) दशाश्व रथवत् सर्वाधार आत्मा । (१५) सात साकंज और ६ ऋषियो का वर्णन । (१६) परमेश्वरी शक्तियों का वर्णन । (१७) सवत्सा गौवत् उषा सूर्य, और परमेश्वर, शक्ति का वर्णन । (१८) परात्पर प्रभु के विरल ज्ञाता । (१९) समीप के लोको का विवेक । (२) विश्व में विद्यमान जीव ब्रह्म का दो पक्षियोवत् वर्णन । (२१) रश्मिवत् ज्ञानी-जनों का ज्ञानप्रकाश करना । आत्मा के रश्मि इन्द्रियो का वर्णन । (२२) संसार वृक्ष पर मधुभोजी सुपर्ण । (२३) विद्वानो की अमृत पद प्राप्ति । छन्दस्त्रयी ईश्वर स्तुति । (२४) चारों वेदों की उत्पत्ति । (२५) महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर । (२६) वेद वाणी का गौ के समान ज्ञान-दोहन । आचार्य का सवितावत् ज्ञानवर्षण । (२७-२८) परमेश्वर का माता एवं गौवत्, ज्ञानरसदान, और मातृवत् प्राणिमात्र से प्रेम । (२९) विद्युत् मेघवत् ईश्वर का वेदोपदेश प्रकाश । (३०) देहों में आत्मवत् लोकों में प्रभु की स्थिति । (३१) परमेश्वर और जीव का साक्षात्कार । (३२) अगम्य आत्मा । (३३) जीव और विश्व की उत्पत्ति का रहस्य । (३४-३५) पृथिवी के परम अन्त भुवन की नाभि, महान् आत्मा के विश्वोत्पादक सामर्थ्य और परमाश्रय विषयक प्रश्न और उत्तर । (३६) सूर्यवत् प्रभु का शासन । (३७) जीव की ज्ञानप्राप्ति । (३८) कर्मों से जीव का उच्च नीच योनि में जन्म लेना । (३९) सूर्य में किरणोवत् परब्रह्म के ज्ञानियों की स्थिति । (४०) गौ

समान परमेश्वरी शक्ति का वर्णन । (४१) विद्युत्त्वत् वैदिक और लौकिक वाणी का वर्णन । (४२) विद्युत्त्वत् जीवनाधरे प्रभुशक्ति । (४३) शकमय धूम, नीहारिका तथा परमेश्वर का वर्णन । (४४) विद्युत् वायु 'सूर्य के कार्य और विश्व की सृष्टि, पालन और संहारकारी प्रभुशक्ति के कार्यों का वर्णन । (४५) चतुष्पदा वाणी का वर्णन । वाणी के चार रूप । (४६) परम प्रभु के इन्द्र, मित्र, वरुणादि नाना नामों की व्यवस्था । (४७) किरणोंवत् विद्वानों को प्रभुपद-प्राप्ति । (४८) महायन्त्रवत् अध्यात्म शक्तियों का वर्णन । (४९) सर्वसुखद सरस्वती नाम परमेश्वर का वर्णन । (५०) विद्वानों की यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना । (५१) वृष्टि जलवत् जीव की उच्च नीच गति का वर्णन । (५२) सर्वाधार सहस्वान् मेघवत् प्रभु । (पृ० १५७—१८५)

सू० [१६५]—गुरु के आश्रय छात्रों का ब्रह्मचर्यवास और गुरु सेवा । (२) गुरु की और देह में प्राणों पर आत्मा की स्थिति । (३) अद्वितीय शक्ति के विषय में प्रश्न । (४) प्रभु के वा गुरु के प्रति शान्ति-उपदेश । (५) वीरोंवत् मुमुक्षुओं का वर्णन । (६-७) विद्युत्त्वत् प्रबल नायक । (८) राजा के राष्ट्र में उत्तम कार्य । (९) सर्वोपरि अनुपम प्रभु । (१०) अद्वितीय शासक । (११) वीरों का नायक से सम्बन्ध । (१२) विद्वानों, वीरों का राष्ट्र में, देह में प्राणवत् कर्त्तव्य । (१३) उनका योग्य परस्पर आदर । (१४-१५) परस्पर ज्ञानदान और बल प्राप्ति । (पृ० १८५-१९१)

चतुर्थोऽध्याय

सू० [१६६]—शिष्यों का गुरु के अधीन ज्ञानों का लाभ । (२) गृहस्थों के अन्नोपभोगवत् तेजस्वी मुमुक्षुओं की ब्रह्मरति, रद्द विद्वानों का सर्वोपकार । (४) वीरों का प्रयाण । (५) वायु के समान ही वीरों का शत्रुच्छेदन । (६) प्रजाओं का रक्षण । (७) प्रशसनीय वीरों के लक्षण । (८) उनके कर्त्तव्य । (९) स्पृद्धावान् सशस्त्र वीरों का

वर्णन । (१०) पक्षियोंवत् सुसज्जित वीरों का वर्णन । (११-१४) सूर्य के अधीन वायुणवत् सेनापति के अधीन वीरों और गुरु के अधीन शिष्यों का व्रतपालन । (पृ० १९१-१९७)

सू० [१६७]—रक्षक प्रभु की शरण सहस्रों ऐश्वर्यवान् हैं । (२) विद्वानों, धनवानों की राष्ट्र में उत्तम कामना । (३) पत्नीवत् वाणी से सुशोभित विद्वानों का आदर । (४) वीर युवाओं को वायु के दृष्टान्त से नवपत्नी के ग्रहण और रक्षा का उपदेश । (५) सूर्य दीप्तिवत् पुरुष को प्राप्त होने वाली स्त्री के उत्तम लक्षण । (६) यज्ञ में वेद वाणी के गानवत् पुरुष को उत्तम गाथागान का उपदेश । (७) नव गृहस्थों को सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ निर्वाह का उपदेश । (८) विद्वानों, उत्तम शासकों के कर्त्तव्य । (९, १०) बलवृद्धि का कर्त्तव्य । (पृ० १९७-२०२)

सू० [१६८]—(१-४) एक साथ काम करने का उपदेश । विद्वानों को ज्ञानोपदेश करने का कर्त्तव्य । पत्नीवत् उनकी संगिनीशक्ति का वर्णन । वीरों का शासन कार्य । (५) सशस्त्रास्त्र वीरों का वीरकर्म । (६) परमेश्वर का सर्वोपरि बल । (७) वीरों की प्रबल शक्ति के लक्षण । (९) विद्युतों का यज्ञ से सम्बन्ध । (१०) वीर नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० २०२-२०७)

सू० [१६९]—महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का वर्णन । (२) उत्तम दानशीलता । (३) प्रभु की अद्वितीय शासन-व्यवस्था । (४) यज्ञदक्षिणावत् प्रभु का समृद्धिदान । (५) मेघवत् प्रभु की उदारता । (६) सेनापति का वर्णन । (७) परिव्राजकों के वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० २०७-२१०)

सू० [१७०]—मन की अस्थिरता, और भविष्य का अज्ञान । (२) भविष्य के लिये स्वामी, सेनापति को बलवान् होने का कर्त्तव्य ।

(३) पोषक नायक का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) यज्ञ का उपदेश । (५) सबके पालक प्रभु, वसुपति आचार्य का कर्त्तव्य । (पृ० २१०-२१२)

सू० [१७१]—गुरु का शिष्यो के प्रति उपदेश । विद्वानों के कर्त्तव्य । (४) शस्त्र धारण करना आवश्यक, उसका उचित प्रयोजन । (५) विद्वानो के ज्ञानविस्तार का कर्त्तव्य । प्रजा को राजा बलवान् बनावे । (६) प्रजा का पालन करे । (पृ० २१२-२१५)

सू० [१७२]—विद्वानो वीरों के कर्त्तव्य । देह में प्राणों की स्थिति । (३) अत्याचारी राजा से रक्षा करने की प्रार्थना । पक्षान्तर में देहमय तृणस्कन्द का वर्णन । (पृ० २१५-२१६)

सू० [१७३]—प्रातः किरणों के प्रकाश के साथ वेदगान का उपदेश । (२) सिंहवत् वीर का शत्रु के प्रति आक्रमण और प्रजा का भरण पोषण । (३) सूर्यवत् भूमि का शासन । (४) वीरों का सशस्त्र होकर शत्रुनाश का कर्त्तव्य । (५) सेनापति का सूर्यवत् पराक्रम । आत्मा, सत्त्वा, मघवा (६) अद्वितीय होकर प्रजापालन । (७) प्रजा का सहोद्योग । (८) परस्पर प्रसन्नता । (९) स्वामी और सेवक का परस्पर व्यवहार । (१०) न्यायशील राजा के नीचे प्रजा का प्रेमसहित होकर रहना । (११) यज्ञ, परस्पर संगति राष्ट्र को समृद्ध करती है, कुटिलता सदा हानिकारक है । (१२) नायक का संकटों से बचाने का कर्त्तव्य । (१३) उत्तम आज्ञापक का कर्त्तव्य । (पृ० २१६-२२२)

सू० [१७४]—(१-८) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । सेनापति के कर्त्तव्य । दुष्टों का दमन । (९) शत्रुनाश, सेनासञ्चालन । (१०) सैन्य बल की वृद्धि । (पृ० २२२-२२५)

सू० [१७५]—पात्रस्थ ओषधि रसवत् उत्तम पालक के कर्त्तव्य । (२) वह अधिक बलशाली हो । (२) शूरवीरवत् सेनासञ्चालक

दुष्टों का नाशक हो । (४) योग्य धुरन्धर के लक्षण । (पृ० २२५—२२७)

सू० [१७६]—आत्मप्राप्ति । अद्वितीय प्रभु की स्तुति करने का उपदेश । द्रोही के विनाश की प्रार्थना । उसके धननाश की प्रार्थना । ऐश्वर्यवृद्धि की याचना । (पृ० २२८—२२९)

सू० [१७७]—बलवान् नायको का आह्वान, शासक के कर्त्तव्य । (पृ० २२९—२३२)

सू० [१७८]—ईश्वर, आचार्य, राजा से ज्ञान, समृद्धि प्राप्त की प्रार्थना । राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य (पृ० २३२—२३४)

सू० [१७९]—गृहस्थ पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य । (पृ० २३४—२३६)

सू० [१८०]—गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश । (पृ० २३६—२४०)

सू० [१८१]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० २४०—२४४)

सू० [१८२]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । राष्ट्र के दो उत्तम पदाधिकारियों के कर्त्तव्य । (पृ० २४४—२४८)

सू० [१८३]—विद्वान् स्त्री पुरुषों को उपदेश । त्रिवन्धुर त्रिचक्र रथ की व्याख्या । (पृ० २४८—२५०)

पचमोऽध्याय

सू० [१८४]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० २५१—२५३)

सू० [१८५]—माता पिता के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० २५३—२५७)

सू० [१८६]—सर्वव्यापक प्रभु । (२) उत्तम विद्वान् अधिकारियों के कर्त्तव्य । (पृ० २५८—२६२)

सू० [१८७]—अन्नवत् पालक प्रभु की उपासना । (पृ० २६२—२६५)

सू० [१८८]—तेजस्वी प्रभु । देह में आत्मावत् राष्ट्र में राजा । तेजस्वी नायक । तेजस्वी राजा । उत्तम प्रजा । (६) दिन रात्रिवत् राज प्रजा वर्ग । (७) उन दोनों का परस्पर यज्ञ । (८) भारती आदि

तीन सभाएं । (९) सूर्यवत् राजा का शिल्पकारों के प्रति कर्त्तव्य ।
विद्वान् की शोभा । (पृ० २६५—२६९)

सू० [१८९]—मार्गदर्शी प्रभु । विद्वान् का कर्त्तव्य । तेजस्वी
राजा का कर्त्तव्य । (पृ० २६९—२७१)

सू० [१९०]—विद्वान् के कर्त्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का
वर्णन । बृहस्पति, सभापति, ब्रह्मा विद्वान्, आदि का वर्णन ।
(पृ० २७१—२७५)

सू० [१९१]—विपैले जीवों का वर्णन । विपनाशक ओषधियां ।
विप पर उपचार । विप वैद्य के कर्त्तव्य । विप चिकित्सा (पृ० २७५-२८१)

॥ इति प्रथमं मण्डलम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

सू० [१]—अग्नि के दृष्टान्त से राजा, और पक्षान्तर में प्रभु का
वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० २८२—२८९)

सू० [२]—प्रधान नायक का आदर । राजा के कर्त्तव्य पक्षान्तर
में परमेश्वर का वर्णन । (पृ० २८९—२९५)

सू० [३]—अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का वर्णन । मेघ के दृष्टान्त
से प्रजापति पुरुष को उपदेश । (पृ० २९५—३०१)

सू० [४]—विद्वान् आचार्य और राजा का वर्णन । उनके कर्त्तव्य ।
(पृ० ३०१—३०५)

सू० [५]—ज्ञानप्रद पिता । यज्ञ में सात ऋत्विजों में पोता के
समान सात प्राणों में मन वा आत्मा की स्थिति । (४) उत्तम शासक
प्रभु, प्रतपाल विद्वान् की उत्पत्ति । (५) प्रजा के ऐश्वर्य का स्वामी
राजा । स्वयंवरा कन्या के स्वयंवरण से पति की उत्पत्ति । (७-८-९)
यज्ञ का उपदेश । (पृ० ३०५—३०८)

सू० [६]—अग्नि में समिधा-प्रदीप्तिवत् गुरु से शिष्य को ज्ञान

प्राप्ति । (२) अग्नि से यन्त्रसञ्चालन । (३) विद्युत् अग्नि की परि-
चर्या । (४) गुरु शिष्य के कर्त्तव्य । विद्वान् के कर्त्तव्य । विद्वान् दूत
का कर्त्तव्य । (पृ० ३०८—३११)

सू० [७]—विद्वान् तेजस्वी, राजा का कर्त्तव्य । (पृ० ३११—३१२)

सू० [८]—सूर्यवत् उत्तम नायक के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ०
३१२—३१४)

सू० [९]—यज्ञाश्विन् उत्तमाधिकारी सभापति और सेनापति
के कर्त्तव्य । (पृ० ३१४—३१६)

सू० [१०]—यज्ञाश्विन् राजा का पवित्र पद और उसके कर्त्तव्य
(२) शिष्य गुरु के कार्य । (३) अश्विन् राजा का वर्णन । (पृ०
३१७—३१९)

सू० [११]—ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति का वर्णन । (पृ० ३१९—३२६)

सू० [१२]—बलवान् परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३२६—३३२)

सू० [१३]—मातृवत् राजा, सभा और राजा का वर्णन । गृह-
पत्नीवत् प्रजा का कर्त्तव्य । गृहपतिवत् राजा के कर्त्तव्य । (६—१३)
परमेश्वर उत्तम शासक । (पृ० ३३२—३३७)

सू० [१४]—शासकों का प्रजापोषण का कर्त्तव्य । (३) उत्तम
शासन । (४) शत्रुदमन, प्रजाजनों और राजपुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ०
३३७—३४१)

सू० [१५]—परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३४१—३४५)

सू० [१६]—प्रभुवत् प्रबल व्यक्ति का प्रमुख नायक करने का
उपदेश । परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३४५—३४८)

सू० [१७] परमेश्वरोपासना का उपदेश । परमेश्वर का स्वरूप
वर्णन । (पृ० ३४८—३५१)

सू० [१८]—जीवात्मा का वर्णन । परमेश्वर वर्णन । (७-८)
विद्वान् और वीर का वर्णन । (पृ० ३५२—३५५)

सू० [१९]—ईश्वरोपासना का उपदेश । जिज्ञासु का कर्त्तव्य ।
(पृ० ३५५—३५८)

सू० [२०]—सूर्यवत् नायक और परमेश्वर का वर्णन । (पृ०
३५८—३६२)

सू० [२१]—उपासना, (७-९) जीव का वर्णन । (पृ०
३६२—३६४)

सू० [२२]—परमेश्वरोपासना । (पृ० ३६४—३६६)

सू० [२३]—ईश्वरस्तुति, प्रार्थना । राजा का वर्णन । (पृ०
३६६—३७३)

सू० [२४]—बृहस्पति विद्वान् । परमेश्वर और उत्तम राजा ।
(पृ० ३७३—३७९)

सू० [२५]—गुरु, ज्ञानी और राजा का वर्णन । (पृ० ३७९—३८१)

सू० [२६]—विद्वान्, और वीर, तथा प्रभु का वर्णन । (पृ०
३८१—३८३)

सू० [२७]—राष्ट्र के नाना शासक जनों के कर्त्तव्य । (७)
राजसभा, न्यायसभा, जनसभा और सभापति का वर्णन । उनके कर्त्तव्य ।
(पृ० ३८३—३८९)

सू० [२८]—सूर्यवत् विद्वान् और परमेश्वर से ज्ञान वा जगत् का
प्रकाश । विद्वान् और प्रभु की शरण रहने का उपदेश । प्रभु से रक्षादि
की प्रार्थना । (पृ० ३८९—३९३)

सू० [२९]—व्रतधारी विद्वानों के कर्त्तव्य । (पृ० ३९३—३९५)

सू० [३०]—प्राणियों के लिये सृष्टिरचना । भूमि सूर्य के दृष्टान्त
से राजा को उपदेश । (४) वायु, सूर्य, विद्युत् के दृष्टान्त से सेनापति
के कर्त्तव्य । (८) सेना का कर्त्तव्य । (पृ० ३९५—३९९)

सू० [३१]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ३९९—४०२)

सू० [३२]—सूर्य पृथिवीवत् माता पिता के कर्त्तव्य । (२) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं । (४) राका, सिनीवाली, गुड्गू, सरस्वती नाम उत्तम महिलाओं का वर्णन । (पृ० ४०२-४०५)

सू० [३३]—दुष्ट-दमनकारी, पितावत् पालक राजा सेनापति और और विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ४०५-४१०)

सू० [३४]—मरुत नाम वीरो और विद्वानों का वर्णन । (पृ० ४१०-४१८)

सू० [३५]—अन्नार्थी के समान ज्ञानार्थी को उपदेश । अपांनपात् का वर्णन । (२) अपांनपात् परमेश्वर का वर्णन । उसकी उपासना । पक्षान्तर में स्त्रियों का अनुरूपे पति को वरण करने का वर्णन । उत्तम स्त्रियों के स्वयंवर का प्रकार । स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ४१८-४२५)

सू० [३६]—राष्ट्र के शासकों के कर्त्तव्य । (पृ० ४२५-४२८)

अष्टमोऽध्याय

सू० [३७]—विद्वान् द्रविणोदस् वनस्पति नाम से राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य । (पृ० ४२८-४३१)

सू०—[३८]—सविता नाम तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । (६) विजिगीषुवत् समावर्त्तन करके लौटते स्नातक का वर्णन । (९) परमेश्वर की उपासना का उपदेश । (पृ० ४३१-४३५)

सू० [३९]—विद्वानां वीरों और उत्तम स्त्री पुरुषों एवं वर वधू के कर्त्तव्य । (पृ० ४३६-४३९)

सू० [४०]—सोम पूषा, माता पिता के कर्त्तव्य । (पृ० ४३९-४४३)

सू० [४१]—उत्तम पुरुषों, नाना अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (१६-१७) उत्तम स्त्रियों का वर्णन । और विद्वानों के कर्त्तव्य । (पृ० ४४३)

सू० [४२-४३]—शक्तिशाली और ज्ञानी पुरुष का और पक्षान्तर

में प्रभु का वर्णन । शकुनि, द्रयेन, शकुन्त, आदि का रहस्य । इति द्वितीयं मण्डलम् । (पृ० ४४९—४५२)

अथ तृतीयं मण्डलम्

सू० [१]—गुरु और शिष्यो के कर्त्तव्य । राष्ट्र, तेजस्वी राजा का वर्णन । (पृ० ४५३—४६२)

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२) राष्ट्रपति का पूज्य पद । (३) विद्वान् गुरु का वरण (५) अग्निवत् नायक का स्थापन उसके कर्त्तव्य । (पृ० ४६२—४६९)

सू० [३]—अग्निवत् प्रधान पद पर स्थित विद्वान्, नायक पुरुष के कर्त्तव्य । (पृ० ४६९—४७४)

सू० [४]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य (४) राजा प्रजाजनों और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वीरो का कर्त्तव्य (पृ० ४७४—४७९)

सू० [५]—अग्नि के दृष्टान्त से समर्थ योग्य विद्वान् अधिकारी के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । अग्रणी नायक का वर्णन । (७) जीव के पुनर्जन्म की व्यवस्था । अरणियो से अग्निवत् माता पिता से जीव सर्ग । (पृ० ४८०—४८६)

सू० [६]—प्रधान पुरुष का आदर करने का उपदेश । उससे ज्ञानग्रहण । माता पिता का कर्त्तव्य । विद्वानों का कर्त्तव्य । (पृ० ४८६—४९०)

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः ।

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[२२]

॥ अश्विनः कक्षावानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ७,
१३ भुरिक पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५
विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्च सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञ रुद्राय मीळहुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

भा०—हे क्रोधरहित या ज्ञान की तीव्र भावना वाले शिष्यो ! तुम्हारे
दुःखो को दूर करने वाले और तुम पर सुखो की वर्षा करने वाले गुरु के
प्रति, उनकी पालना करने वाले अन्न आदि को तथा उचित सत्कार को
अद्धापूर्वक भेट रूप में लाया करो । आकाश और पृथिवी के बीच सबको
प्राण देने वाले सूर्य की ओर जल वृष्टि धारक वायुओं के समान वीर
शिष्यो के साथ विद्यमान ज्ञान के देने वाले आचार्य के गुणों का मैं वर्णन
करता हूँ ।

पत्नीव पूर्वहति वावृधध्या उपासनात्ता पुरुधा विदाने ।
स्तुरीर्नात्कं व्युत्तं वसाना सूर्यस्य श्रिया सदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥

भा०—दिन की न्याईं ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित पुरुष हो, तथा रात्रि की न्याईं सद्गुणों के तारामण्डल से विभूषित स्त्री हो। ये दोनों नाना विद्याओं के जानने वाले हो। स्त्री सती पत्नी के समान पूर्व स्वीकृत पति की निरन्तर वृद्धि के लिये यत्न करे। कवच को थोड़ा के समान वह विशेष रूप से धुने गये वस्त्र को पहनती हुई, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की लक्ष्मी होकर और सुवर्ण के आभूषणों से सुन्दर दीखने वाली होकर सुलोचना हो।

ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।

शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥

भा०—गृह-वस्त्रादि से आदर करने हारा, उद्यमी, और आपस पुरुषों के हितार्थ मेघ के समान ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाला ऐश्वर्यवान् पिता, तथा अपने समीप वसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय, सबको अन्न तथा ज्ञान प्रदान करने वाला, और आपस शिष्यों के हितार्थ ज्ञानजलों का वर्षण करने वाला गुरु ये दोनों हमें हर्षित करें। हे विद्युत् और पर्वत के समान सर्वोपकारक पिता और गुरु ! आप दोनों हम अधीनस्थ ब्रह्मचारियों और सन्तानों को तीक्ष्ण बुद्धि, तपस्या और अभ्यास से शिक्षित करें। और हमें मन्त्र विद्वान् और दानशील पुरुष भी ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करें।

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौ शिजो हुवध्यै ।

प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

भा०—सुख-रस के सदा पान करने वाले पुत्र या शिष्य का निर्माण करने वाले मातापिता अथवा गुरु और गुरुपत्नी, जोकि ज्ञानसे जगत् को उज्ज्वल करने के लिये भोजन ग्रहण करते और जल-पान करते हैं, आप उन दोनों का, मैं तेजस्वी आप का पुत्र या गुरु का शिष्य होकर अत्यन्त अधिक आदर करता हूँ। और वार २ सहायतार्थ आप को पुकारता हूँ।

आप सब अपने प्राणों, ज्ञानों और आचारादि कर्तव्यों को न नष्ट होने देने वाले पुत्र या शिष्य को उत्तम रीति से सुशिक्षित करो ।

आ वो रुव्रयुमौशिजो हुवध्वै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।

प्र व. पूष्णे द्रावन् आ श्रच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—दुःख के नाश करने के लिये जिस प्रकार वेदवाणी उत्तम उपदेश प्रदान करती है, उसी प्रकार मैं विद्याप्रेमी गुरु तथा माता पिता का पुत्र एवं शिष्य होकर, सबको ज्ञान देने तथा सबके दुःख नाश करने के लिये, ज्ञानमय परमेश्वर के श्रेष्ठ धन स्वरूप वेदज्ञान का, तथा आप लोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का, पुष्टि और वृद्धि करने वाले और आगे योग्य पात्रों में विद्या-दान देनेवाले विद्यार्थी को अच्छी प्रकार प्रवचन करूँ । इति प्रथमो वर्गः ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदेने विश्वतः सीम् ।

श्रोतुं नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

भा.—हे मित्र और सर्वश्रेष्ठ माता पिता या गुरु और गुरुपत्नी आदि जनो । आप दोनों मेरे इन स्वीकार करने योग्य वचनों का श्रवण करो, तथा गृह में माता-पिता और गुरुगृह में गुरुपत्नी तथा गुरु आप सब मेरे वचनों का श्रवण करो । हमारे वचनों को उत्तम श्रवणशील पुरुष और कान देकर सुनने वाली माता तथा गुरुपत्नी सुने । वहने वाला जलप्रवाह जिस प्रकार जलों से उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार आप हमारे हृदय-क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिये ।

स्तुपे सा वा वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पृजे ।

श्रुतरधे प्रियरधे दधानाः सुधः पुष्टिं निरुन्धानासौ अगमन् ॥ ७ ॥

भा०—हे पापों से निवारक तथा स्नेहवान् दोनों प्रकार के सज्जनो । मैं आप दोनों की स्तुति करता हूँ । क्योंकि मैकड़ा गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाली सैकड़ों ज्ञानवाणियों का प्रभु करने योग्य ज्ञानरहस्यों

के निमित्त यमनियमो का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियो में, तुम दोनों का दानही श्रेष्ठ दान है । जिस प्रकार लोग गमन करने वाले रथ में पोषणकारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उसकी रक्षा करने हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता गुरु आदि प्रिय शिष्यो को कुमार्गों से रोकते हुए अथवा अपनी इन्द्रियो को विषय-विलासों से रोकते हुए और जितेन्द्रिय होकर, प्राप्तव्य तथा गुरुरूपदेश से श्रवण करने योग्य तथा रमणीय, और अतिप्रिय रस-स्वरूप आत्मा में पोषण सामर्थ्य को धारण करते हुए शीघ्र ही गमन करते हैं, आगे बढ़ते हैं ।

अस्य स्तुपे महिमघस्य राघुः सचा सनेस नहुषः सुवीराः ।

जनो यः पुत्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

भा०—मैं पुत्र या शिष्य श्रेष्ठविधि से कमाई हुई पिता की धन सम्पत्ति या गुरु की विद्या सम्पत्ति की प्रशंसा करता हूँ, जिस सम्पत्ति को हम उत्तम वीर पुरुष स्वयं लेकर अन्यों के प्रति दान करें । जो स्वामी बलवन्तो को ज्ञान और अन्नरूप सम्पत्ति का देने वाला है, और मुझ पुत्र या शिष्य के हित के लिये मुझे सन्मार्ग पर चलाने वाला है, मैं उस इन्द्रियो के स्वामी और शरीर-रथ के स्वामी की प्रशंसा करता हूँ ।

जनो यो मित्रावरुणावभिधृगुपो न वा सुनोत्यदण्यधुक् ।

स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदी होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥

भा०—हे स्नेह करने वाले तथा श्रेष्ठ माता पिता या गुरुपत्नी और गुरु । आप दोनों से जो कोई द्रोह करता है, और जो सीधे द्रोह न करके, टेढ़े तरीके से द्रोह करके आप दोनों के सम्बन्ध की सत्कारादि क्रियाओं को अच्छी प्रकार नहीं अनुष्ठान करता, वह आप से आप हृदय में पीडा कुंश आदि कष्ट को प्राप्त होता है । और जो सत्कार वाणियो द्वारा आप का सत्कार करता है वह सत्य मार्ग पर चलने वाला सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करता है ।

स ब्राधंतो नहुषो दंसुजुतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।

विसृष्टरातिर्याति बालहस्तुवा विश्वास्तु पृत्तु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—वह बड़े २ मनुष्यों में भी महान् हो जाता है, जो कि अपनी इन्द्रियों का दमन कर उन द्वारा प्रेरित होता है, जो अत्यन्त बलशाली है, और नरो में जिसके उद्यम का यश फैला हुआ है, जो संसार में विद्या आदि का दान करता है, और जो उत्तम कर्मों के करने वाला होकर विचरता है, तथा जो असुर भावों के साथ युद्धों में सदा विजयी, शूर साबित होता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

अथ गमन्ता नहुषो हवँ सुरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।

नभोजुवो यन्निर्वस्य राघः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्या और ऐश्वर्य से प्रकाशमान ! तथा हे सबको आनन्द देने और स्वयं आनन्दित होने वाले स्तुत्य जनो ! आप लोग, सबके प्रेरक तथा नित्य और सबको एक सूत्र में बांधनेहारे परम पुरुष के उत्तम वचन और स्तुति को श्रवण करो, और सुन कर उस मार्ग पर चलो । क्योंकि आकाश में प्रेरणा देने वाले, पूर्ण रक्षणसामर्थ्य वाले परमेश्वर की आराधना या उस द्वारा दिया गया ऐश्वर्य, महान् सामर्थ्य से रमणसाधन रूप देव को धारण करने वाले आत्मा के उत्तम प्रशासन के लिये होता है ।

एत शर्धं घाम यस्य सुरेरित्यवोचन्द्रशतयस्य नंशे ।

शुम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वार्जम् ॥ १२ ॥

भा०—सबके प्रेरक और दशों दिशाओं में व्यापक जिस परमेश्वर के नाशक तथा धारक सामर्थ्य का विद्वान् जन वर्णन किया करते हैं वह समस्त बसने वाले जीवों और बसने योग्य लोकों का विस्तार करने वाला है । हे विद्वान् पुरुषो ! जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप सब लोग नाना ऐश्वर्यों को भोगते हो, उन ऐश्वर्यों का

उत्तम प्रकार से सत्र का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों में दान किया करो ।

मन्दामहे दशतयस्य धासोर्द्विर्यत्पञ्च विभ्रतो यन्त्यन्ना ।

किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरूप ऋञ्जते नृन् ॥ १३ ॥

भा०—हम साधक लोग, दशों दिशाओं से युक्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं । जिसके आश्रय पर वे दसों दिशावासी प्रजाजन अन्तों को धारण करते हुए उद्देष्ट्य को प्राप्त होते हैं । ये सूर्य आदि लोक भी या बड़े ० राजा महाराजा भी क्या स्वयं सामर्थ्यवान् हैं ? ये क्या ईश्वर हैं ? अर्थात् उस परमेश्वर की तुलना में ये सब तुच्छ हैं । वह परमेश्वर ही वेगवान्, मन, अग्नि आदि पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक है, वही समस्त बागडोर चलाने वाला है, वही परमेश्वर आकाश मार्ग से जाने वाले समस्त नक्षत्रादि लोको को और समस्त नायको या पुरुषों को चलाता और वश करता है । [२] अध्यात्म में यह आत्मा दशविध प्राणगण का धारक होने से 'धासि' है । जिसके आश्रय पर ये दसों प्राण अन्तों को भोगते रहते हैं । वह आत्मा अश्व अर्थात् इन्द्रिय और रश्मि अर्थात् ज्ञान तन्तुओं का प्रेरक है । ये प्राणगण तो क्षुद्र शक्ति वाले हैं । वह इन गतिशील नायक प्राणों को भी वश करता है ।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्तो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

श्रूयो गिरः सद्यः आ जुग्मुपीरोस्त्राश्चाकन्तुभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

भा०—समस्त विनयशील योद्धाजन तथा विद्वान् पुरुष मिलकर हमारे में से कान में सुवर्ण के कुण्डल पहने और गले में मणियों की माला पहने उत्तम नायक पुरुष का, उसे अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि के योग्य जल प्रदान कर उसकी सेवा करें । और हमारे हित के लिये हमारे अपने और परायों के बीच में उत्तम विद्वान् पुरुष उसको चाहे । वह सत्रका स्वामी पुरुष शीघ्र ही ज्ञान करने योग्य

वाणियो, समस्त भाषाओं और वेदवाणियो को और दुधार गौओं को प्राप्त करें ।

चत्वारो मा मशशरि॑स्य शिश्व॒स्त्रयो राज्ञ॑ आय॒वसस्य॑ जि॒ष्णोः ।
रथे॑ वा मित्रावरुणा दीर्घा॑प्साःस्यू॒मगम॑स्तिःसूरो नाद्यौ॑त् ॥१५॥३॥

भा०—दुष्टों को नाश करने और विजय करने वाले राजा के चारों घर्ण और चारों आश्रम, या सेना के चारों अंग, और सर्वत्र विद्यमान अज्ञादि सामग्री के स्वामी पुरुष के अध्यक्षजन, भृत्यजन और प्रजाजन ये तीनों, इस प्रकार ये सब शिशु या बालक के समान पालन करने एवं शासन करने योग्य हैं । वे सब मुक्त प्रजाजन को प्राप्त हों । हे सर्वस्नेही और सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग । आप दोनों का रथ के समान ही राष्ट्र विशाल रूप होकर, तथा सुखकारी किरणों वाले सूर्य के समान सुखकारी शासन प्रबन्ध के युक्त होकर प्रकाशित हो । [२] देह का राजा आत्मा बाधक कारणों पर विजय करने से 'जिष्णु' है । अज्ञादि का स्वामी होने से 'आयवस' है । अज्ञान नाशक होने से 'मशशरि' है । ४ × ३ = ७ प्राण उसके शिशु हैं । मित्रवरुण, प्राण और अपान हैं । शरीर रथ है । इति तृतीयो वर्गः ।

[१२३]

दीर्घतमसः पुत्रः कक्षोषानृपिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७, ९, २०, १३, विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् पक्तिः ॥ त्रयोदशर्वचकम् ॥

पृथू॑ रथो दक्षिणाया अयोज्यै॑न दे॒वासो॑ अमृता॑सो अस्थुः ।

कृष्णादुद॑स्याट्य॒र्चिर्विहा॑याश्चि॒कित्सन्ती॑ मानु॒षाय॑ क्षया॑य ॥ १ ॥

भा०—यज्ञ में दाये भाग में विराजने वाली वधू का विशाल रथ जोड़ा जावे । और उसमें कभी नाश न होने वाले दीप्तियुक्त रत्न लगाये जायें । गृह की स्वामिनी नव वधू वियोग से शोकानुर होते हुए पितृगृह

से अपने पति सम्यन्धी गृहों के प्राप्त होने के लिये विशेष आदर युक्त होकर उस रथ पर चढ़े ।

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनाद्वोधि जयन्ती वाजं वृहती सनुत्री ।

उच्चा व्यस्यद्युवतिः पुनर्भूरोपा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

भा० — प्रभात वेला के समान उत्तम कमनीय गुणों से युक्त कन्या समस्त परिवार से पूर्व जागे । वह ऐश्वर्य को विजय करने वाली सेना के समान सबके चित्तों पर विजय प्राप्त करती हुई, बड़ी गुणवती, यथायोग्य भोजन, मान, आदर का विभाग करने वाली युवती, उत्कृष्ट गुणों को प्रकाशित करे । वह उषा के समान पुनः २ प्रतिदिन सदा नये प्रसन्न रूप में प्रकट होती हुई अपने पूर्व विद्यमान, विद्यावृद्ध और वयोवृद्धों के आदर सत्कार के कार्य को सबसे मुख्य होकर प्राप्त हो ।

यदृद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

भा० — हे उत्तम कुलवंश से उत्पन्न होने वाली ! प्रभात वेला के समान कमनीय गुणों से युक्त कन्ये । तू आज के समान सदा ही उत्तम पुरुषों के लिये सेवन करने योग्य अन्न आदि का विशेष रूप से विभाग किया कर । इस गृहाश्रम के क्षेत्र में हममें से गृह का स्वामी दानशील पुरुष ही पुत्रों को उत्पादन करने वाला तेरा पति हो । ऐसा ही वह पाप कर्मों से रहित हम जिज्ञासुजनों को सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी होने के लिये उपदेश करे ।

गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अघि नामा दधाना ।

सिपासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्धजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा० — प्रकाश से फैलने वाली, प्रभात वेला जिस प्रकार प्रतिदिन नव स्वरूप धारण करती हुई प्रति गृह में प्राप्त होती है उसी प्रकार कभी भी न ताड़ने और न व्यथा पाने योग्य, अतिकोमल स्वभाव की

नववधू प्रतिदिन अपने विनयशील स्वभाव को अधिकाधिक धारण करती हुई प्रत्येक गृह को भली प्रकार आदर से प्राप्त होती, और वह उपा के समान ही अपने गुणों का प्रकाश करती हुई, समस्त ऐश्वर्यों को सेवन करती हुई, सदा वसने हारे गृहस्थ में प्रवेश करने हारे विद्वान् नवयुवकों में से सबसे श्रेष्ठ युवक को ही प्राप्त हो ।

भर्गस्य स्वप्ता वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।

पुश्वा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥४॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! तू सूर्य की बहिन प्रभात वेला के समान ही साक्षात् गृहलक्ष्मी है । उपा जिस प्रकार अन्धकार के वारण करने वाले सूर्य की भगिनी है, उसी प्रकार हे कन्ये ! तू भी श्रेष्ठ भ्राता की भगिनी है । हे शुभ वाणी बोलनेहारी ! तू सर्वश्रेष्ठ होकर उत्तम गुणों का बखान कर, या स्वयं उत्तम स्तुति को प्राप्त कर । और जो पाप का पोषण करने वाला है उसका तिरस्कार कर । और उसको हम लोग अति बलवती सेना से और रथबल से विजय करें । इति चतुर्थो वर्गः ।

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्ध्रिरुदग्रयः शुशुचानासो अस्थुः ।

स्पार्हा वसूनि तमसापगूळहाविष्कृतवन्त्युषसो विभातीः ॥६॥

भा०—प्रातः वेलाएं जिस प्रकार अंधकार से छुपे नाना ऐश्वर्यों को और विशेष रूप से चमकने वाली दीप्तियों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार उत्तम स्त्रियां अन्धकार में छिपे नाना अभिलाषा करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को प्रकट करें । और विशेष दीप्तियों का प्रकाश करें । उत्तम वाणियां उठें । वेदवाणियां उच्च स्वर से पढ़ी जावें । पुर अर्थात् देह, गृह आदि को धारण करने वाली युवतियां उन्नति को प्राप्त हों । और शुद्ध स्वच्छकारक यज्ञानि प्रज्वलित हो ।

अणान्यदेत्यभ्यन्यदेति विपुरुषे अहनी सं चरेते ।

परितितोस्तमो अन्या गुहाकुरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥

भा०—दिन और रात्रि दोनों तम और प्रकाश से विपरीत रूप के होकर भी एक साथ गति करते हैं। इन दोनों में से एक हटता है तो दूसरा सन्मुख आजाता है। समीप २ निवास करते हुए दोनों में से एक रात्रि अन्तरिक्ष में अन्धकार को फैलाती है तो दूसरी उपा अति दीप्तियुक्त रथ अर्थात् तीव्र प्रकाशवान् सूर्य से प्रकाशित होती है। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी भिन्न २ स्वभाव के एक साथ ही सासारिक सुख का भोग करें। उनमें एक परे होवे तो दूसरा सामने आवे अर्थात् यदि एक व्यक्ति उत्तम कार्य करता २ थककर विश्राम करे तो उसका स्थान दूसरा ले। साथ ही निवास करने के लिये उन दोनों में से एक स्त्री बुद्धि में यदि अन्धकार के समान खेद, शोक आदि प्रकट करे तो दूसरा प्रभात के समान प्रकाश वाला होकर अति दीप्तियुक्त तथा रमण करने योग्य स्वरूप से प्रकाशित हो और खेद आदि अन्धकार को दूर करे।

सृष्टशीरद्य सृष्टशीरिदु श्वो दीर्वं सचन्ते वरुणस्य धाम ।

अनवद्यास्त्रिशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥

भा०—प्रभात वेलाए जिस प्रकार आज समान रूप से दीखती है उसी प्रकार कल अर्थात् भविष्य में भी दीखती है। उसी प्रकार उत्तम सुन्दर स्त्रियें भी जिस प्रकार आज गुणों से युक्त अपने पतियों के अनुरूप हों उसी प्रकार भविष्य में भी सदा तदनुरूप बनी रहें। वे निन्दनीय आचारों से रहित होकर वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के चिरकालतक निवास करने योग्य गृह को प्राप्त हो। जिस प्रकार उपाणं सूर्योदय के स्थान से आगे ३०। ३० योजन दूर तक दीखती है और अकेले २ प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय पर रहती है उसी प्रकार स्त्रिया भी कम से कम ३०। ३० योजन अर्थात् १२० कोश दूर तक नित्य कर्त्ता को प्राप्त हो। वे समीप २ विवाहित न हों।

जानृत्यहः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।

ऋतस्य योपा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥

भा०—दो कुलो को मिलाने हारी स्त्री अपने कुल में अतिप्रसिद्ध आदि वशकर्त्ता का गोत्रनाम उच्चारण करती हुई, स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई कान्तिमति कृष्ण अर्थात् हीनकर्म करने वाले कुल से भी चाहे उत्पन्न हुई हो, वह भी शास्त्रादि से निश्चित, उत्तम शोभाजनक कार्य का आचरण करती हुई, सत्य व्यवहार या वेद, या सत्याचरण युक्त पुरुष के गृह आदि का नाश नहीं करे, प्रत्युत उसको उत्तम रीति से बसावे ।

कुन्यैव तन्वाः शशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।

संस्मर्यमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षसि कृणुषे विभार्ती ॥१०॥५॥

भा०—कन्या जिस प्रकार अपने शरीर से अपना स्वरूप प्रकट करती हुई अपने साथ संयुक्त प्रिय पति को प्राप्त होती है, उसी प्रकार हे तेजस्विनि उपा । तू भी अपने विस्तृत प्रभामय स्वरूप से प्रकट होती हुई अपने से तुल्यतः सूर्य को प्राप्त होती है । और जिस प्रकार जवान स्त्री भली प्रकार मुस्कराती हुई विशेष गुणों से प्रकाशित होती हुई अपने पति के समक्ष अपने दाहुमूल आदि अंगों को प्रकट करती है उसी प्रकार हे उपा । तू भी मानो प्रकाश किरणों से मुसकाती हुई प्रकाशों से प्रकाशित होती होई सबके समक्ष नाना रूपों को प्रकट करती है । इति पञ्चमो वर्गः ।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेय योषाविस्तन्वै कृणुषे दृशे कम् ।

भद्रा त्वमुपो वितुरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उपसौ नशन्त ॥११॥

भा०—उपा जिस प्रकार प्रभामय देह को प्रकट करती है, दूर तक अन्धकार को दूर करती है, उसी प्रकार हे प्रभातवेला के समान कमनीये । नवयुवति । दोनों कुलो को मिलाने हारी तू उत्तम रीति से सुशिक्षित होकर, माता द्वारा अच्छी प्रकार ज्ञान, अनुलेप, अलंकार उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जाकर, दिखाने के लिये अपने शरीर को प्रकट कर । तू मंगल आचार वाली होकर खूब अपने उत्तम

गुणों को प्रकट कर । अन्य कमनीय कन्याएँ भी तेरी उस रूपादि गोभा को प्राप्त न हो । अर्थात् तू सबसे अधिक सुगोभित हो ।

अश्व॑व॒ती॒र्गो॒म॒ती॒र्वि॒श्व॒वा॒रा॒ यत॑माना र॒श्मि॒भिः॒ सूर्य॑स्य ।

परा॑ च॒ यन्ति॒ पुन॒रा च॑ यन्ति भ॒द्रा नाम॑ वह॑माना उ॒पासः॑ ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार उपासुं सूर्य की किरणों से यत्नशील होती हुई, सूर्य और किरणों से युक्त होकर, तथा विश्व को व्यापने वाली होकर, सुन्दर रूप धारण करती हुई, चली जाती है और फिर आजाती है, उसी प्रकार कमनीय नववधुएँ भी रथ में लगे अश्वों और गौ आदि पशुममृद्धि से सम्पन्न होकर, समस्त संकटों को दूर करने हारी, सूर्य के चढते ही गृहोद्योग करती हुई, सुन्दर स्वभाव, विनय और उत्तम नाम, ख्याति धारण करती हुई, कल्याण आचरण वाली होकर पतियों के संग दूर देश में भी जावें और पुनः अपने पिता के घर लौट आवें ।

ऋ॒तस्य॑ र॒श्मि॒मनु॑यच्छ॒माना॑ भ॒द्रम्भ॑द्रं क॒तुम॑स्मासु॒ धेहि॑ ।

उपो॑ नो अ॒द्य सु॒हवा॑ व्यु॒च्छास्मा॑सु रा॒यो म॒घव॑त्सु च स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभातवेला के समान कान्तिमति ! जिस प्रकार प्रभातवेला सूर्य के किरण के अनुकूल प्रकाश करती हुई, हममें अतिकल्याणजनक, ज्ञान, कर्म, बल धारण कराती है, उसी प्रकार सत्य ज्ञानमय वेद के ज्ञानप्रकाश के अनुसार उद्योग करती हुई तू हममें अति सुख और कल्याण-जनक यज्ञ आदि कर्म, धर्माचरण को धारण करा । तू आज और आज के समान सदा उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त होकर हमारे बीच अज्ञानों का नाश कर । और हम नाना ऐश्वर्यवानों को और भी विविध ऐश्वर्य प्राप्त हों । इति षष्ठो वर्गः ॥

[१२४]

कक्षो॒वान्द्वै॒र्वत॑मस ऋषिः ॥ उपो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ११ त्रिष्टुप् । १२ विराट् त्रिष्टुप् । १, १३ भुरिक् पक्तिः ।

५ पक्ति । ८ विराट् पक्तिश्च ॥ द्वादशार्चं सूक्तम् ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्तसूर्य उर्विया ज्योतिरश्नेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्र चतुष्पटित्यै ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्धकार दूर करती हुई उषा सूर्यरूप अग्नि के आश्रय पर बहुत अधिक प्रकाश को प्राप्त करती है और उदय को प्राप्त होता हुआ सूर्य भी विशाल उषा के साथ परम तेज को प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि के प्रदीप्त होने पर पति की कामना करने वाली कन्या अपने गुणों का प्रकाश करती हुई बड़ी भारी शोभा का आश्रय ले । इसी प्रकार उदित होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष कान्तिमती स्त्री का आश्रय ले । इस गृहस्थाश्रम में सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक परमेश्वर शीघ्र हमें इष्ट प्रयोजन के लिये दोषाये, चौपाये, भृत्यादि और पशु धन प्रदान करे ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रभातवेला परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि कर्मों का लोप न करती हुई, मनुष्य सम्बन्धी वर्षों की उत्तम रीति से मान करती हुई, अभी तक आई उषाओं के सदृश और आगे आने वाली उषाओं की मुख्य होकर विशेष रूप से प्रकाशित होती है, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त वधू परमेश्वर, आचार्य, माता, पिता, पति आदि मान्य पुरुषों, या उपासना, सेवा, शुश्रूषा आदि नित्य धर्मों तथा उनके उपदेश किये कर्मों का कभी भी लोप न करती हुई, और मनुष्य जाति के भित्त २ युगों, कालों, समयों का निर्माण करती हुई, पूर्व आई उत्तम स्त्रियों के बीच उपमा देने योग्य होकर, और भविष्य में आने वाली वधुओं में सबसे श्रेष्ठ होकर विविध गुणों से प्रकाशित हो ।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्दशि ज्योतिर्वसाना ससना पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य की कन्या के समान उषा जिस प्रकार

प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह सबके समक्ष वा पूर्व दिशा में प्रकाश को धारण करती हुई सूर्य के मार्ग पर गमन करती है, और उत्तम ज्ञानवती विदुषी के समान अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती, उसी प्रकार यह ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की कन्या एकत्र हुए जनसमूह के समक्ष उज्ज्वल वस्त्र-आभूषणों को धारण करती हुई, प्रत्यक्ष देखी जावे, उसे सब कोई देखें। वह सत्यज्ञानमय वेद के उपदिष्ट मार्ग का उत्तम रीति से अनुमान करे। और उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करती हुई गुरुजनों के आदेशों को और उपदेश मान्य पुरुषों का नाश न करे, उनको कष्ट न दे, और उनके दिये सदुपदेशों का लोप न करे।

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरक्त प्रियाणि।

अज्ञसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुपीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—उपा के समान शोभावती नव वधू समीप देखी जावे। जिस प्रकार शुन्ध्यु नाम का जलचर, वतक, हंस आदि अपने वक्षस्थल को उन्नत कर चलते हैं उसी प्रकार कन्या भी उन्नत वक्षस्थल वाली अर्थात् पूर्ण युवती हो। और स्तुतिशील विद्वान् जिस प्रकार उत्तम प्रिय वचनों का प्रकाश करता है उसी प्रकार वधू भी हृदय को प्रिय लगाने वाले गुणों और वचनों का प्रकाश करे। जिस प्रकार उपा सोते हुए प्राणियों को जगा देती है उसी प्रकार नववधू भी गृह में विराजे और सोते हुए अज्ञान दशा में विद्यमान बालकों को मानृगुरु होकर जगाती हुई, ज्ञानवान् करती हुई, अभी तक हाई कुलवधुओं के बीच में सबसे अधिक निन्य धर्मों का पालन करती हुई बार ० वर आवे, जावे।

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।

व्यु प्रथते वितुरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—व्यापनशील अन्तरिक्ष के पूर्व के आधे भाग में उपा जिस प्रकार सूर्य की किरणों को प्रकट करती हुई ज्ञान और प्रकाश पैदा करती है,

और पालक भूमि और सूर्य दोनों के बीच में स्थित होकर दोनों को अपने प्रकाश से पूरती हुई श्रेष्ठ स्वरूप को विशेष रूप से प्रकट करती है, उसी प्रकार नववधू भी उत्तम ज्ञान और कर्म करने में कुशल लोकसमूह के आगे उत्तम पद में विराजती हुई, उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होकर, वेद वाणियों के ज्ञान को अच्छी प्रकार प्रकट करे, तदनुकूल आचरण करे। और वह माता पिता दोनों के समीप रहती हुई, दोनों को प्रिया-चरण से प्रसन्न करती हुई, अति श्रेष्ठ गुण को विशेष रूप से विस्तृत करे। इति सप्तमो वर्गः।

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजासिं न परि वृणक्ति जामिम् ।

अरेपसा तन्वाः शाशदाना नाभादीषतु न सहो विभाती ॥६॥

भा०—यह उपा जिस प्रकार अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर जगत् के प्रत्यक्ष कराने के लिये न बन्धुतारहित पृथिवी आदि लोक का परित्याग करती है, और न सूर्यादिवन्धु का ही परित्याग करती है, प्रत्युत मलरहित, स्वच्छ प्रकाश से चमकती हुई स्वल्प पदार्थ से भी दूर नहीं होती, इसी प्रकार विविध गुणों से प्रकाशित होने वाली नववधू भी ऐसी ही है। वह सन्तानों से बटी हुई अपने गुणों को दर्शाने के लिये न अपने बन्धुजनों से भिन्न को त्यागती और न अपने बन्धुजनों को ही त्यागती है अर्थात् वह सबके प्रति समान भाव से अपने गुणों का प्रकाश करे। यह पाप और मल से रहित शरीर से अति सुन्दर रूपवती होती हुई न छोटे बालक से ही पृथक् हो और न बड़े तेजस्वी व्यक्ति से पृथक् हो, अर्थात् छोटे बड़े सबको प्रिय लगती रहे।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।

जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्त्रेव नि रिणीतु अप्सः ॥७॥

भा०—नव वधू अपने प्रिय पुरुष पति को ऐसे प्राप्त हो मानो उसके अतिरिक्त दूसरा उसका भरण पोषण करने वाला कोई नहीं है। रथारोही

विजिगीषु वीर जिस प्रकार धनैश्वर्य को विजय द्वारा लाभ करने के लिये उद्यत होता है उसी प्रकार वह नववधू भी गृहस्थ के ऐश्वर्यों के लाभ के लिये पति गृह की ओर प्रयाण करने के लिये रथ पर आरूढ़ हो । वह अपने पति के लिये कामना करती हुई, सुन्दर वस्त्र आच्छादन पहनती हुई, सन्तान कामना वाली स्त्री के समान निःसंकोच होकर जावे । हंसती, मुसकराती हुई, प्रसन्न वदन होकर अपने रूप को अच्छी प्रकार प्रकट करे ।
स्वसा स्वस्त्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिवक्ष्येव ।

व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याज्ज्यङ्क्ते समनुगा इव त्राः ॥ ८ ॥

भा०—उपा जिस प्रकार सूर्य की किरणों द्वारा अन्धकार दूर करती हुई अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करती है, और रात्रि जिस प्रकार अपनी बड़ी वहिन उपा के लिये अपना स्थान आदर से प्रदान करती है, और अपने मान का खयाल न करती हुई परे हट जाती है, इसी प्रकार नव वधू तेजस्वी पति के उत्तम गुणों से प्रकट होती हुई अपने सुन्दर रूप को प्रकट करे । और वहिन बड़ी वहिन के लिये स्थान रिक्त करे, आदर से उसे अपना स्थान दे । उसके हित के लिये अपने इष्ट को मानो त्यागती हुई आप स्वयं दूर हट जाय । और स्वयंवर के लिये सभास्थल में आने वाली वरवर्णिनी कन्याओं के समान अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करे ।

आसां पूर्वासामहंसु स्वसृणामपरा पूर्वाभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रतनवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उपासः ॥ ९ ॥

भा०—छोटी वहिन अपने से पूर्व की बड़ी वहिन के पीछे २ उसका अनुकरण करती हुई चले । निश्चय से वे सब वहिनें सदा नये उत्तम रूप वाली होकर, उत्तम दिनों वाली उपाओं के समान पूर्व शिष्टों के आचरण वाले और ऐश्वर्यवान् सौभाग्य को प्रकट करें ।

प्र बोधयोपः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पृणयः ससन्तु ।

रेवदुच्छ मघवद्भयो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूर्यते जारयन्ती ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवति प्रभातवेले ! पालन करने वाले प्राणियों को जगा और जो न जागने वाले व्यवहार कुशल पुरुष सोते हो उनको भी जगा । हे सत्य व्यवहार से युक्त प्रातःवेले ! तू सब प्राणियों की आयुओं को प्रति दिन क्षीण करती हुई ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हित के लिये अपने ऐश्वर्ययुक्त रूप को प्रकट कर । और स्तुतिशील उपासक के लिये भी अपने ऐश्वर्यमय रूप को प्रकट कर । हे वधू ! इसी प्रकार जो व्यवहार युक्त पुरुष सोते हैं उन अपने पालक भ्राता, पति आदि पुरुषों को तू जगा । अर्थात् आप उनसे पूर्व उठ कर जगा । हे शुभ व्यवहार और उत्तम वाणी वाली ! हे सौभाग्यवति ! ऐश्वर्यवान् सम्बन्धियों और उत्तम चेदोपदेष्टा पुरुष के आदर के लिये आपकी ऐश्वर्यवृद्धि करने वाला सुखकारी रूप और गुण प्रकट कर । इति अष्टमो वर्गः ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्तादुङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।

वि नूनमुच्छादसति प्रकृतुर्गृहह्वमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार यह उपा आगे २ बढ़ती है, और उज्ज्वल रश्मियों के समूह को अपने आगे जोड़ती है, निश्चय से विविध दिशाओं में अपना रूप प्रकट करती और अन्धकार को दूर करती है, और ज्ञानप्रद होकर उत्तम रूप से प्रकट होती है, तब यज्ञाग्नि और सूर्य घर २ उपस्थित होता है, उसी प्रकार यह योवन युक्त स्त्री बड़ी हो, और अरुण रंग के वेलों वा अश्वों के समूह को आगे रथ के जोड़े, वह निश्चय से अपने उत्तम गुणों का प्रकाश करे । और विशेष ज्ञानयुक्त होकर प्रकट हो, और यज्ञाग्नि स्त्री के साथ ही गृह में स्थापित हो ।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपत्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।

अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि द्राशुपे मर्त्याय ॥ १२ ॥

भा०—हे उप ।। तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर जिस प्रकार पक्षिगण अपने निवास के घोंसले से उड़ जाते हैं, और जो अज्ञाति को २ हि.

प्राप्त करने वाले ऋषि आदि जन हैं वे भी अपने २ घर से बाहर चले जाते हैं, हे उप. ! साथ रहने वाले दानशील सूर्य को तू बहुत उत्तम ऐश्वर्य धारण कराती है, उसी प्रकार हे कमनीयगुणों से युक्त नववधू ! तेरे विशेष रूप से गृह में बस जाने पर जो अन्न आदि पालन सामर्थ्यों को धारण करते हैं वे प्रातःवेला में घोंसलों से उड़ते पक्षियों के समान उन्नत पद को प्राप्त हो । और हे विदुषि कन्ये ! अपने साथ एक गृह में रहने वाले अन्न-वस्त्र तथा मान आदर एवं सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने पुरुष को तू भी बहुत अधिक, प्रचुर, भोग्य ऐश्वर्य, सुख प्राप्त करा ।

अस्तोऽद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुपासः ।

युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३॥६॥

भा०—हे स्तुतिकारी मन्त्र समूह को पढ़ने हारी विदुषि स्त्रियो ! आप मन से पति की कामना करती हुई स्तुति उपासना किया करो । और मेरे महान् धन और ब्रह्मवर्चस् बल और ज्ञान में आप वृद्धि को प्राप्त होवो और मुझे बढ़ाओ । हे उत्तम गुणों वाली एवं प्रिय कामना युक्त देवियो ! आप लोगों की रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य और प्राप्ति में हम लोग सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त और सैकड़ों बलों से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करें ।

उपा विषयक सूक्त में पक्षान्तर में 'उप' धातु दाहार्थक और पीडार्थक होने में राजा की सेना का और अध्यात्म में अज्ञानदाहक होने से समाधि में प्रकट होने वाले प्रकाश के उदय काल का भी वर्णन है । इति नवमो वर्ग ।

[१२५]

कक्षावान्देवतमम ऋषि ॥ दम्पती देवते दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३, ७

त्रिष्टुप् । ०, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ५ जगती ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्त्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।

तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायरूपोपैरा सचते सुवीरः ॥ १ ॥

भा०—प्रभात काल में जागने वाले प्रभातवेला में ही उत्तम रमण

करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ को धारण करे । अर्थात् जीवन के प्रारम्भ भाग कोमार दशा में ही गुरु के समीप आकर मनुष्य २५ वर्ष तक न्यून से न्यून जीवन में रमण करने योग्य बल वीर्य, और ज्ञान को धारण करे । ज्ञानवान् होकर उसको ग्रहण करके निपेक द्वारा धारण करावे उससे ही वह उत्तम वीर्यवान् पुरुष सन्तति को बढ़ाता हुआ, और उसी ऐश्वर्य सुख सौभाग्य की वृद्धि और पुष्टि से दीर्घ जीवन को बढ़ाता हुआ, सन्तति और दीर्घ जीवन के आश्रय पर स्थायी होकर रहने में समर्थ होता है ।

सुगुरसत्सुहिरुण्यः स्वर्ध्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।

यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेत् पदिमुत्तिष्ठनाति ॥२॥

भा०—हे अपने जीवन के प्रभात काल से अपने गुरु के समीप आने वाले । जो समस्त ज्ञानों का दाता आचार्य ऐश्वर्य के सहित तुझे अपने समीप आते को प्राप्त करके ज्ञान की अभिलाषा से प्राप्त हुए तुझको मूर्ज की दनी मेखला से उत्तम उद्देश्य के लिये नियम में बांधता है, वही आचार्य उस तुझ शिष्य को बड़ा बल, ज्ञान और दीर्घायु धारण कराता है । उसी से तू उत्तम ज्ञानवान् देवान् उत्तम बलवान् इन्द्रियों से युक्त उत्तम पित्तकारी

—> त्वे विवर्ति ।

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यद्यमां च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुर्णि च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥४॥

भा०—सुख देने वाली दुधार गौएं यज्ञ करने वाले और यज्ञ करने में उत्सुक गृहस्थीजन को प्राप्त होती हैं जैसे कि नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं । वे गौएं जो कि दूधरूपी यशस्वी अन्न वाली हैं, और जिनमें दूध रूप में घी की धाराएं बहती हैं, पालन पोषण करने वाले तथा पूर्ण करने वाले गृहस्थी को प्राप्त होती हैं ।

नाकस्य पृष्ठे अर्घि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति सह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिबते सदा ॥५॥

भा०—जो पुरुष अन्यो को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह सबको आश्रय देने हारा होने से आश्रय किया जाता है । वह जहां जरा भी दुःख और क्लेश नहीं ऐसे परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर विराजता है । वह ही निश्चय से विद्वानों और दानशील और व्यवहारकुशल पुरुषों के ऊपर और उनके बीच आदर से जाता है । उसके लिये आप पुरुष और आप प्रजाजन महानदों या जलधाराओं के समान अन्न, जल, ज्ञान और तेज प्रदान करते हैं और उसके लिये यह भूमि समस्त अन्न ऐश्वर्य आदि देने में समर्थ होकर सदा समृद्ध करती है । शबर स्वामी के कथनानुसार सांसारिक सुखसामग्री भी स्वर्ग शब्द से कहे जाते हैं ।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६॥

भा०—जो लोग धर्म से उपाजित धन ऐश्वर्य विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान प्राप्त करने की साधना करते हैं उनके लिये ही समस्त प्रकार के नाना विध सुखजनक पदार्थ हैं । उक्त प्रकार के धन और ज्ञान और आत्मशक्ति सम्पादन करने वालों के लिये ही

आकाश में सूर्यों के समान इस भूमि में तेजस्वी पुरुष उनकी सेवा के लिये होते हैं। उस प्रकार के ऐश्वर्यदान देने और बल और प्रज्ञा के सम्पादन करने वाले पुरुष ही मोक्षानन्द, पुत्रादि सन्तति तथा अन्न जल की समृद्धि का भी भोग करते हैं। और उक्त प्रकार के दाता या ज्ञान बल के स्वामी लोग ही दीर्घ जीवन को उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं।
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।

अन्यन्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७॥१०॥

भा०—विद्वान्, उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम मर्यादाओं का पालन करने हारे तथा भरणपोषण करने वाले धार्मिक गृहस्थ, दुःख या दुरवस्था प्राप्त कराने वाले पापाचरण को न करें। और वे जार के समान दूसरों की स्त्री आदि पर लम्पटता आदि कुकर्म न करें। उनमें से कोई एक पुरुष राजा बनकर उनकी सब तरफ से रक्षा करने हारा हो। परन्तु पालन पोषण न करने वाले को शोक दुःख और पीड़ाएं सब तरफ से प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[१२६]

॥ १०६ ॥ १—५ वज्रोवान्। ६ भावयन्त्य। ७ रोमशा वृक्षवादिनी चर्षिः।
विद्रासो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्।
६, ७ अनुष्टुप्। सप्तर्च सूक्तम् ॥

अमन्दान्स्तोसान्प्र भरे मनीषा सिन्धुवधिं क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत स्रवान्तूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

भा०—जो सत्सार का राजा वेदज्ञानोपदेश को श्रवण कराने की इच्छा करता हुआ, मुझको सहस्रो ऐश्वर्य प्रदान करता है, उस सिन्धु के समान अतिगम्भीर आत्मा के ऊपर अधिकार करके रहने वाले, तथा पुत्रोत्पादन में समर्थ परमेश्वर की बहुत स्तुतियों को मैं अच्छी प्रकार धारण करूं।

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्चान्प्रयतान्सद्य आदम् ।
शतं कृत्तीवाँ असुरस्य गोनाँ दिवि श्रवोऽजमा ततान् ॥ २ ॥

भा०—मैं बगल में यज्ञोपवीत धारण कर, शिष्यों को प्राणदान करने वाले आचार्य की सैकड़ों वाणियों को प्राप्त करूं । और ज्ञानप्रकाश में कभी नाश को प्राप्त न होने वाली ख्याति को विस्तृत करूं । मैं समृद्ध राजा के योग्य सैकड़ों मोहरों को और सैकड़ों खूब सधे हुए घोड़ों को भी शीघ्र ही प्राप्त करूं ।

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता ब्रधूमन्तो दश रथाँसो अस्थुः ।
पृष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सन्तकृत्तीवाँ अभिपित्वे अहाम् ॥ ३ ॥

भा०—सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले आचार्य से दी गईं, शरीर को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त दस रमणीय इन्द्रियां मुझे प्राप्त हो और उसके पश्चात् मुझे इन्द्रियों की हितकारी साठ हजार छोटी २ शारीरिक शक्तियां प्राप्त भी हो । और उनको दिनों के प्राप्त होने पर यथा समय उत्तम जितेन्द्रिय विद्याकुशल पुरुष सदा प्राप्त करे और उसका भोग करे ।

चत्वारिंशदशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।

मृदुच्युतः कृशनावतो अत्यान्कृत्तीवन्त उदमृक्षन्त पञ्चा ॥ ४ ॥

भा०—दशों रमण साधनों अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी आत्मा दशरथ है । प्रत्येक इन्द्रिय से अन्तःकरण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों का पृथक् २ भोग होने से ४० अश्व हैं वे ही सहस्रों सुखों के अग्रगामी होते हैं । उद्यमी विद्वान् जन ही, जो कि हर्ष वर्णन करने वाले तथा आत्म-चेतना वाले हैं वे इन इन्द्रियरूप अश्वों को उत्तम रीति से वश करें ।

पूर्वामनु प्रयतिमाददे वृत्तीन्युक्ता अष्टावरिधाँयसो गाः ।

सवन्धवो ये विश्या इव वा अनस्वन्तुः श्रव ऐषन्त पञ्चाः ॥ ५ ॥

भा०—हे उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, परस्पर प्रेम और विद्या-सम्बन्ध, और योनिसम्बन्धों से बंधे हुए ज्ञानवान् पुरुषों ! आप लोग ज्ञानवान् और साधन सम्पन्न तथा उत्तम प्राण तथा शकट के स्वामी होकर, वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को तथा वश को प्राप्त करने की इच्छा करो । मैं अध्यक्ष पुरुष आप में से उपयुक्त तीन मुख्य पुरुषों को, और आठ प्रमुख सभासदों को ऐश्वर्यवान् स्वामी के धारण पोषण करने, उसे बलवान् बनाये रखने में समर्थ या विपक्ष के शत्रु को धाम लेने वाले जानकर, राष्ट्र के संचालक रूप में, शकट में लगे बैलों के समान प्रमुख उत्तम पुरुषों और आप लोगों के सर्वोत्कृष्ट उत्तम प्रयत्नों को भी अपने अनुकूल करके धारण करता हूँ । यह शरीर जीवन से युक्त 'अनत्' है । उसको धारण करने वाले गति चेतना युक्त प्राण 'पञ्च' है । वे एकत्र सुबद्ध होने से 'सुबन्धु' हैं । आत्मरूप स्वामी को धारण करने वाले होने से वे 'अरि-धायत्' हैं । इस देह में गति उत्पन्न करने में इसमें लगे बैलों के समान होने से वे 'गो' हैं । सात शीर्षण्य प्राण आठवीं वाक् इनको और आत्मा, बुद्धि, मन इन तीन को, और इनके उत्तम व्यापार या चेष्टा सामर्थ्यों को इस देह के भीतर आकर धारण करता, वश करता हूँ ।

आगधिता परिगधिता या कशीकेत्र जङ्गहे ।

ददाति महं यादुरी यागूनां भोज्या श्रुता ॥ ६ ॥

भा०—जो नीति या राजतन्त्र राष्ट्र को वश करने के कार्य में ताड़ना देने वाली चाबुक के समान सब प्रकार स्वीकार की जाने योग्य, और सब ओर से सुरक्षित होती है वह प्रयत्नशील भृत्यादि के बीच में सबसे अधिक दत्त करने वाली होकर सुदृढ़ मैक्टी भोग्य, ऐश्वर्य और रक्षा करने के सामर्थ्य प्रदान करती है । (२) 'चेतना' देह पर शासन करने में दिक्कत होती होने में कर्मीका है । शरीर में सर्वत्र वश करने में 'आगधिता', और सर्वत्र निश्चित होने में 'परिगधिता' है । वह यत्नशील प्राणी में नदने

अधिक यत्नशील होने से 'यादुरी' है । वह मैकड़ों शक्तियों और भोग्य सुखों को देती है ।

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥११॥१८॥

भा०—हे राजन् ! मुझ राजसभा में सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों पर समीप ० बैठ कर अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर, और मेरे कार्यों को स्वल्प या राष्ट्र के लिये हानिकारक, तुच्छ मत समझ । पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत प्रदेशों में रहने वाली भेड़ जिस प्रकार रोम अर्थात् काट लेने योग्य उन रूप लोमों से अच्छादित होने से रोमशा है, उसी प्रकार मैं राजसभा भी पृथिवी को धारण पोषण करने वाली समस्त नीतियों की रक्षा करने वाली होकर, काटने और उखाड़ फेंकने योग्य शत्रुओं का अन्त कर देने वाली, और सर्वस्व हूं । (०) ब्रह्मविद्या के पक्ष में—हे योगिन् ! मुमुक्षो ! तू अति सूक्ष्मता से विचार कर । मुझ ब्रह्मविद्या के छोटे से छोटे हृदयाकाश में उत्पन्न अनुभवों को स्वल्प मत जान । वाणी को धारण करने वाली समस्त चेतना शक्तियों की मैं पालन करने वाली, सर्व भूतात्मस्वरूप होकर लोम २ में व्यापक, अथवा सब दुखों का अन्त कर देने वाली हूं । 'लोमशा' लूयन्ते इति लोमानि तानि स्यति इति लोमशा । रत्नशब्दे छान्दसे । इत्येकादशो वर्गः ॥ इत्यष्टादशोऽनुवाकः ॥

[१२७]

परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ८, ९ अष्टि । ४, ७, ११

मुरिगष्टि । ५, ६ अत्यष्टिः । १० मुरिगति शक्ती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सुनुं सहसो ज्ञातवैदसं विप्रं न ज्ञातवैदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

वृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिप्राजुह्वानस्यसर्पिपः ॥ १ ॥

भा०—मैं सबको सुख, अधिकार और बल देने हारे, सबको अ
और भूति देने वाले, सबको चसाने वाले, शत्रुबल को पराजय करने में सम
प्रेरक, ऐश्वर्य और विद्या में प्रसिद्ध, मेधावी पुरुष को नायक रूप
जानूँ। जो दानशील वीर पुरुषों को प्राप्त होने वाले सामर्थ्य और स
उत्कृष्ट शक्ति द्वारा आह्वान किये गये सैन्यबल के कारण चमकती हुई ज्वा
से चमकता है।

यजिष्ठ त्व। यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां

विष्ट मन्मभिर्विप्रैभिः शुक्र मन्मभिः।

परिजमानमिष्टु द्यां होतारं चर्षणीनाम्।

शोचिष्केशं चर्षणं यमिमा विशुः प्रावन्तु जुतये विशः ॥ ३ ॥

भा०—हे मेधाविन् ! हे शुद्ध आत्मा वाले वा शीघ्रता से कार्य सम्पा
करने हारे ! विचारशील विद्वान् पुरुषों और ज्ञान विज्ञानों सहित, स
अधिव पूजनीय, प्राणवान् एवं ज्ञानी पुरुषों में सबसे बड़े तुझको
प्राप्त हो ! सूर्य के समान चारों ओर प्रकाश से और तेज से व्याप
दीर्घदर्शी विद्वानों को अधिकार ऐश्वर्य देने वाले, ज्वालाओं के समान वे
का धारण करने वाले, सुखों के वर्षक जिस पुरुष को ये सब राज्य
प्रविष्ट होकर रहने वाली प्रजाएं, उसे प्रसन्न करने और स्वयं प्रसन्न
के लिये प्राप्त होती है।

स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्त

परशुर्न द्रुहन्तरः। वीलु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्सि

निष्पहमाणो यमते नायते धन्वामहा नायते ॥ ३ ॥

भा०—वह विविध दीप्ति और तेज से युक्त पराक्रम से खूब चम
रहे। और जिस प्रकार कुहाड़ा वृक्षों को खूब अच्छी प्रकार काट गि
है उसी प्रकार वह भी दोही जनों को मारने वाला हो। और जिसका
वीर्य, बल, पराक्रम सग्राम में शत्रुसेना को नाश करता है और वह
विजय करने हारा होकर सैन्य बल को नियम में रखता है, और

नहीं भागता । वह धनुष से शत्रु वशकारी के समान आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है ।

दृळहा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दृष्ट्य-
चसऽग्नये द्वाष्ट्यवसे । प्र यः पुरुणि गाहते तज्जदनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

भा०—जैसे विद्वान् पुरुष को लोग आदरपूर्वक अन्न, वस्त्र, धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार उस नायक को दृढ, बलवान् सैन्य, स्थायी, धनैश्वर्य प्रजापुं अपनी रक्षा के लिये प्रदान करें । जिस प्रकार अग्नि को अति तीव्रता से प्रज्वलित होने वाली अरणियो या काष्ठो सहित प्रकाश प्राप्त करने के लिये हवि आदि प्रदान करता है उसी प्रकार प्रजाजन अग्रणी नायक की वृद्धि के लिये अति तेजस्विनी शत्रुओ के नाशकारी मेनाओ सहित दृढ ऐश्वर्य अपनी रक्षा के लिये प्रदान करे । जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से वनो को जला कर लुंज पुञ्ज कर देता है उसी प्रकार जो अपने तेज से शत्रु सेना को काट गिराता है, और जो बहुत से सैन्यों को खूब आलोडित कर देता, और जिस प्रकार जाठर अग्नि खाये हुए अन्नां को अपनी शक्ति से पचा डालता, या अग्नि जिस प्रकार अपने पर धरे अन्न आदि खाद्य पदार्थों को ताप से उबाल देता और खाने योग्य बना देता है उसी प्रकार जो अपने ओज से स्थिर शत्रु सैन्यों को अपना भोग्य बना लेता है, प्रजाजन उसको कर आदि दें ।

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शितरो दिवातराद-
प्रायुपे दिवातरात् । आदस्यायुर्ग्रभणवद्वल्लि शर्म न सूनवे ।

भुक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्रयो व्यन्तो अजराः ॥५॥१२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार रात्रि में उत्तम दिन की अपेक्षा भी उत्तम रीति से देखने योग्य और अन्यों को अपने प्रकाश में दिग्गानेहारा है उसी प्रकार जो परमात्मा शक्तिशाली भक्त जन के लिये दिन के प्रकाश

मे भी अधिक अच्छी प्रकार दर्शनीय, उज्ज्वल और स्पष्ट मार्गदर्शी है, इस महान् संसार के नेचने हारे उस प्रभु का हम ध्यान पूर्वक रमण करने योग्य अभ्यन्तर चित्त भूमियों में धारण करे और ध्यान करे। उसके उत्तम रीति से ध्यान करने के अनन्तर उसका प्राप्त होना और ग्रहण करना होता है। और वह पुनः के लिये पिता के घर के समान ही दृढ़ आश्रम हो जाता है। स्वयं किसी की भक्ति न करने हारे भजन करने योग्य उस परम रक्षक प्रभु को प्राप्त होते हुए, उस अजन्मा परमेश्वर में रमण करने हारे, उसमें अपने आपको समर्पण करने हारे ज्ञानी पुरुष, उसकी कामना करते हुए जरा आदि से रहित अमृतरूप हो जाते हैं। इति द्वादशोवर्गः।

स हि शर्धो न मारुतं तु विष्णुश्चिरप्रस्र्वती पूर्वरास्विप्रतिरार्तिना-
स्विप्रतिः। आदद्धव्यान्यादृदिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा। अर्धस्मास्य
हर्षतो हर्षीवतो विश्वे जुषन्तु पन्थां तरः शभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

भा०—वह राजा वायु के प्रबल वेग के समान बड़ा भारी शब्द करने वाला होता है, उत्तम वर्ण युक्त, धन धान्य पैदा करने वाली समृद्ध भूमियों में सबकी अभिलाषा पूरी करने योग्य और शत्रुओं की पीडाकारी सेनाओं में प्रबल गर्जन या आज्ञाकारी होता हुआ प्रजाओं को उनका मन चाहा सुखैश्वर्य प्राप्त करा देने वाला अर्धि-कल्पद्रुम हो। और अग्नि जिस प्रकार यज्ञ का मुख्य आश्रय होता है और यज्ञोपासन में दिये सब चरु पदार्थों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह नायक सुव्यवस्थित राष्ट्र वा सैन्यदल का मुख्य ध्वजा के समान सबसे उच्च और आदरणीय होकर मान आदर में दिये गये उत्तम अन्न और आद्य ऐश्वर्यों को सब प्रकार से स्वीकार करता है। हर्ष उत्पन्न करने वाले इस नायक के मार्ग को शुभ उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सब कोई प्रेम से ग्रहण करें। लोग अपने कल्याण के लिये इसके दर्शाए मार्ग में प्रेम करें।

द्विता यदौ कीस्तासौ अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो

सृज्यन्तो दाशा भृगवः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धृतिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

भा०—पाप संकल्पो को भून डालने वाले पुरुष यज्ञ में चरु आदि देने के लिये जिस प्रकार इस भौतिकाग्नि को मथने हुए कीर्तन करते हुए नमस्कार करते हुए उपासना करते हैं, उसी प्रकार विद्यादि के उपदेश, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष इस महान् राष्ट्रपति को बार २ मथते अर्थात् उसके उत्तम से उत्तम गुणों की परीक्षा लेते हुए, दोनों राजा और प्रजा के हित के लिये, समस्त राज्याधिकार दान करने के लिये, उसका आदर सत्कार करते हुए जब प्रार्थना करते हैं तब जो शुद्ध, निष्कपट और इन समस्त प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो वही अग्रणी होकर वस्त्रे राष्ट्रों, प्रजाओं और ऐश्वर्यों का स्वामी हो । वही सबको प्रिय लगाने वाले गोपनीय खजानों को स्वयं बुद्धिमान् होकर सबको विभक्त करे ।

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं
भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे । अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्य स्यात् ।
अमी च विश्वे अमृतास्तु आ वयो हव्यो देवष्वा वयः ॥ ८ ॥

भा०—समस्त राज्य का शासन के भीतर प्रविष्ट प्रजाओं के पालक तेरी हम उपासना करते हैं, तुझे अपना पालक स्वीकार करते हैं । जिस प्रकार सब आश्रय और सब सन्तानें अन्नादि भोजन को प्राप्त करने के लिये स्त्री-पुरुष रूप गृहस्थ, या मां बाप, या गृहपति के पास आते हैं उसी प्रकार हम समस्त प्रजाजन ऐश्वर्यों के भोगने और अपनी रक्षा के लिये सब प्रजाओं के लिये समान निष्पक्षपात रूप से रहने वाले, समस्त प्रजाओं के दमन करने वाले, दण्डव्यवस्था के पालक पुरुष को प्राप्त होते हैं । और हम ऐश्वर्यों के भोग और न्यायपूर्वक रक्षा के लिये सत्य वाणी को धारण करने वाले, मनुष्यों के बीच अतिथि के समान पूजनीय तुझको हम प्राप्त होते हैं । सन्ततिजन जिस प्रकार पिता के समीप अन्नादि पदार्थों

को प्राप्त करने के लिये उपस्थित होते हैं उसी प्रकार जिस सर्व पालक के समीप, उसकी गोद और उपासना में स्थित ये सब अमर, मुक्त आत्मा, भोक्ता विद्वान् जन उत्तम ज्ञानो और मोक्ष सुखो को प्राप्त करने के लिये उपासना करते हैं । और विद्वान् दिव्य पुरुषो में सभी ज्ञानी पुरुष उसी की उपासना करते हैं ।

त्वमग्रे सहस्रा सहस्रतमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये । शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युष्मिन्तम उत क्रतुः ।
अथ स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवान्नो नाजर ॥ ६ ॥

भा०—हे नायक राजन् ! तू सबको पराजित करने वाले बल से सबसे बट कर पराजित करने वाला, और विद्वानों के हितार्थ सबसे अधिक बलवान् है । हे राजन् ! तू परम धनवत् सुखदाता है । तेरा दमन या शासन शत्रुओ का सबसे अधिक शोषण करने वाला और सबसे अधिक यशस्वी, और क्रियासामर्थ्यवान् हो । हे जीर्णता या नाश को प्राप्त न होने हारे राजन् ! अति शीघ्र कार्यकारी सेवकजन दूत आदि तेरी सेवा करें ।
अ वो महे सहस्रा सहस्रत उपर्वुधे पशुषे नाग्रये स्तोमो बभू-
त्वग्रये । प्रति यदो हविष्मान्विश्वासु दासु जोगुवे । अग्रे रेभो
न जरत ऋपूणां जूर्णिहोतं ऋपूणाम् ॥ ६० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो । आप लोगो का मन्त्रसमूह उत्तम गुणो को प्रकाशित करता हुआ, महान् सामर्थ्य वाले, बल से बलवान्, आलस्य रहित, प्राणियो के परिपोषक और व्यवस्थापक, समस्त भूमियो और चित्त भूमियो में प्राप्त होने वाले परमेश्वर के लिये होवे । और विद्वान् पुरुष जिस प्रकार बड़े ज्ञानवान् पुरुषो के समक्ष विद्या का प्रकाश करता है, उसी प्रकार स्तुतिवर्त्ता विद्वान् उपासक जिज्ञासु विद्यार्थीजनों को परमात्मा नन्दन्या ज्ञानोपदेश करे ।

स नो नेदिष्टं ददृशान् आ भुराग्ने देवेभिः सचनः सुचेतुना ।
महो रायः सुचेतुना । महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महिरतोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शर्वसा ॥ ११ ॥ १३ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् नायक ! वह तू हमारे अति समीप सबका साक्षी होकर, उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो सहित, विद्वान् तथा विजयशील पुरुषो सहित हमें अन्नादि समृद्धि से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे बलवानो मैं सबसे अधिक बलवान् ! तू अच्छी प्रकार से ज्ञान करने के लिये और इस प्रजा का पालन करने के लिये हमें उत्तम बल वीर्य प्रदान कर । हे ऐश्वर्यवान् ! तू बल से उग्र और शत्रुओं का मथन करने वाला होकर स्तुतिकर्ता, उपासक विद्वान् पुरुषो को बड़ा उत्तम बल प्रदान कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१२८]

॥ २८ ॥ १—= परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—निचृदत्यष्टिः ॥
३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ५, ७ निचृदष्टिः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥
अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रत-
मग्निः स्वमनु व्रतम् । विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि पददिल्लस्पदे परिवीत इल्लस्पदे ॥ १ ॥

भा०—यह मननशील, विद्याओं का योग्यपात्रो में दान देने वाला आचार्य, विद्या आदि दान करने में सबसे उत्तम दाता होकर, विद्या की इच्छा करने वाले जिज्ञासुजनों के व्रतों के अनुकूल अपने कर्त्तव्यों का यथावत् पालन करे । वह विद्वान् पुरुष समस्त श्रवण योग्य उपदेशों का जानने हारा, विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेना चाहता है । वह धन सम्पन्न पुरुष के समान यश की कामना करता है । सदा विघ्न, पीडा आदि रहित होकर वह ज्ञान प्रदान करने में कुशल पुरुष स्तुतियोग्य वेदवाणी के ज्ञान कार्य के योग्य पद पर विराजे और उसके समक्ष ज्ञान ग्रहण करने हारा विद्यार्थी अच्छी प्रकार सावधान, सुरक्षित, एवं सब

प्रकार उत्तम वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि धारण कर, गुरु द्वारा उपनीत होकर वेदवाणी के ज्ञान करने के लिये नियमपूर्वक एव विनय से समीप विराजे ।
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यूतस्य पथा नमसा हविष्मता देव-
ताता हविष्मता । स न ऊर्जमुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावर्तो देवं भाः परावर्तः ॥ २ ॥

भा०—हम उस अध्यापन वा ज्ञानदान करने वाले विद्वान् पुरुष को सत्यव्यवहार के मार्ग से, शुभ गुणों को प्राप्त करने वा विद्या के उत्सुक शिष्य जनों के हितार्थ, भेट पुरस्कार सहित विनय द्वारा उत्साहित करें । जिस विद्यादाता पुरुष को, दूर २ देश से आया और आचार्य की गोद में बढने वाला शिष्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रकाशित करता है, वह हमारे बल वीर्यों के धारण कर लेने पर अपने इस सामर्थ्य से कभी क्षीण नहीं होता, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढता है ।

एवेन सद्यः पर्यातु पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिकददधद्रेतः
कनिकदत् । शतं चक्षारो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वशिः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् अपनी व्यापक होने वाली क्रिया से पृथ्वी के ऊपर विद्यमान पदार्थों को अति शीघ्र व्याप लेता है उसी प्रकार राजा भी अपने गमन साधन रथादि से समस्त पार्थिव लोक को प्राप्त करे । और जिस प्रकार बार २ गर्जने वाला मेघ जल को भूमियों पर बरसाता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा पर सुखों का वर्षण करने वाला एव सर्वश्रेष्ठ, एव वृष अर्थात् धर्म मार्ग से चमकने वाला होकर, शत्रुओं को बार २ ललवारता हुआ, बार २ सेना आदि को आज्ञाएँ प्रदान करता हुआ, राष्ट्र में ऐश्वर्य और बल वीर्य को धारण करावे । और जिस प्रकार जलप्रद मेघ घटे वेग से जाने वाला होकर वनों में सैकड़ों पदार्थों को दिखाता हुआ, मैदों में, उच्च प्रदेशों में और दूर के गिरिशिखिरो पर अपना आश्रय

रखता है उसी प्रकार राजा विजिगीषु होकर, सेवने योग्य ऐश्वर्यों में शीघ्र ही उनको ग्रहण करने वाला होकर, अपने अध्यक्षों द्वारा सैकड़ों कार्यों का विचार करे । और वह उच्चावच कालों में दूरस्थ पर्वतों में अग्नि के समान अपना आश्रय गढ़, दुर्ग आदि स्थापित करे ।

स सुक्रतुः पुराहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्य ध्वरस्य चेतति । कत्वा यज्ञस्य चेतति कत्वा वेधा ईपूयते विश्वा ज्ञातानि पस्पशे । यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निवधा अजायत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ का पुरोहित उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाला होकर, निर्विघ्न समाप्त होने वाले यज्ञ को जानता और अन्यो को जनाता है, और यज्ञकर्म द्वारा यज्ञ का ज्ञापन कराता है, उसी प्रकार उत्तम धर्माचरण कृत्यों का करने वाला, प्रत्येक घर में सबका नायक राजा प्रत्येक दमन या शासन कार्य में, अविनाशी राष्ट्रसंघ का ज्ञान रखे, और अपने उत्तम ज्ञान से उपास्य परमेश्वर का भी ज्ञान करे । वह बुद्धिमान् अपने ज्ञान सामर्थ्य से वाण के समान आचरण करे अर्थात् अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े । वह समस्त उत्पन्न पदार्थों को देखे और सुव्यवस्थित करे । क्योंकि जिस प्रकार अग्नि घृत द्वारा विशेष कान्ति को धारण करता है उसी प्रकार राजा भी अतिथि के समान प्रतिष्ठित होता, और तेज और प्रराक्रम से लक्ष्मी का भाजन हो जाता है और राष्ट्र आदि कार्यों का निर्वाहक बन जाता है ।

कत्वा यदस्य तविपीषु पृञ्चतेऽग्नरवेण मरुतां न भोज्येऽपिराय न भोज्या । स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।

स नस्त्रासते दुरितादभिहुतः शंसादघादभिहुतः ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—इस नायक की मेनाओं में अग्रणी पुरुष की आज्ञा से लोग परस्पर मिल कर गठित हो जाते हैं, और वायु के समान तीव्र आक्रामक वीरजनों के जो भोगयोग्य ऐश्वर्य है वे सब वशवर्ती राजा को ही प्राप्त

हों । वह अग्रणी पुरुष राष्ट्र में बसे प्रजाजनो के बल के सहित शत्रुओ के नाशकारी बल को प्राप्त करता है । वह हमें अति कुटिल पापाचार और पापमय कुटिल शिक्षा से पालन करता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

विश्वो विहाया अरतिर्वमुर्दधे हस्ते दाक्षिणे तरणिर्न शिश्रथ-
च्छ्रुदस्यया न शिश्रथत् । विश्वस्मा इदिपुद्ध्यते देवत्रा हव्य-
भोहिषे । विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृगवत्यग्निर्द्वारा व्यृणवनि ॥६॥

भा०—(१) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—समस्त विद्याओ में प्रविष्ट गुरु गुणों से महान्, अति अधिक मतिमान्, स्वयं अपने अधीन समस्त शिष्यों को बसाने हारा होकर, दायें हाथ में रखे आमलक के समान प्रत्यक्ष रूप से समस्त ज्ञानैश्वर्य को धारण करे । वह उस विद्या-रूप धन को सूर्य के समान प्रदान करे । वह केवल उसे यश या धन की लज्जिलता से प्रदान न करे । बाणों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले तर्जनी के समान समस्त कामनाओं को अपने भीतर अन्तर्मुख कर लेने वाले विद्वानों के बीच उत्तम प्रदान करने योग्य ज्ञानोपदेश और आचार को सब ओर से सगृहीत करके प्रदान करे । अग्नि या सूर्य या दीपक या मशाल के समान मार्ग दिखाने वाला विद्वान् पुरुष सभी उत्तम सदाचारी, सत्त्वर्म करने वाले पुण्याचरणशील जिज्ञानु को वरण करने योग्य ज्ञानैश्वर्य प्रदान करे । और ज्ञान के समस्त द्वारों को विशेष रूप से खोल दे । (२) इसी प्रकार राजा सर्वहितकारी होने से 'विश्व' है । वह समस्त ऐश्वर्य को अपने हाथ में रखे । वह सब इच्छुक याचकों को दान करे । प्रजा के लिये ऐश्वर्य प्राप्त करने के सब द्वार खोल दे ।

स मानुषे षृजते शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्वपतिः
प्रियो यज्ञेषु विश्वपतिः । स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि
पत्यते । स नखासते बरुणस्य धूर्तर्महो देवस्य धर्मेः ॥ ७ ॥

भा०—यह विद्वान् पुरुष, मुख्य नायक और राजा मनुष्यों वा प्रजाओं
३ हि.

के मार्ग में अति शान्तिदायक और हितकारी रूप में स्थापित किया जाय । वह विद्वान् और नायक पुरुष एक दूसरे से मिल कर करने योग्य कार्यों तथा संग्रामों में सबसे उत्कृष्ट पद के योग्य हो । वह सब उत्तम कर्मों में प्रजाओं का पालक, सबका प्रिय राजा हो । वह प्रधान पुरुष अधीन प्रजाजनों के अच्छी प्रकार बनाये गये ग्रहण करने वा दान देने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों और स्तुति वचनों को प्राप्त हो । वह नायक विद्वान् सब दुःखों के नाश करने वाले सेनापति आदि के बल से और बड़े भारी विजिगीषु पुरुष के हिसाकारी सैन्य बल से भी हमारी रक्षा करने में समर्थ हो ।

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्टमरतिं न्यैरिरे हव्यवाहं न्यैरिरे । विश्वायुं विश्वेवैदसं होतारं यजतं कविम् ।

देवासो रणवमवसे वसुयवो गुभी रणं वसुयवः ॥ ८ ॥ १५ ॥

भा०—विद्वान् जन ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले, ज्ञानवान् और नायक, ऐश्वर्यों के धारण करने वाले, प्रिय, सबसे अधिक ज्ञान देने वाले, अल्पज्ञों को चेताने वाले, मतिमान्, ऐश्वर्यवान्, उत्तम अन्न आदि पदार्थों को धारण करने वाले पुरुष का आदर करते हैं । उसको आदर से प्राप्त होते हैं । धनाभिलाषी पुरुष जिस प्रकार वाणियों या स्तुतियों से रमण करने हारे धनाढ्य की स्तुति करते हैं, और ज्ञान की कामना करने हारे २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने की इच्छा करने वाले उत्तम विद्योपदेशक पुरुष को वेदवाणियां सहित प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष समस्त ज्ञानभण्डार को प्राप्त होने वाले, एवं समस्त मनुष्यों के स्वामी, समस्त ऐश्वर्य और ज्ञानों के स्वामी, ज्ञानेश्वर्य के दाता, पूजनीय, क्रान्तदर्शी पुरुष को अपनी रक्षा के लिये नियमानुवृत्त प्राप्त हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१२६]

परुच्छेप ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, २ निचृदत्यष्टिः । ३ विराडत्यष्टिः ।

४ अष्टिः । ६, ११ भुरिगाष्टिः । १० निचृदष्टिः । ५ भुरिगतिशकरी । ७ स्व-
राडतिशकरी । ८, ९ स्वराट् शकरी । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रान-
वद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

भा — हे शत्रुनाशक राजन् ! आप रमण करने योग्य राष्ट्र और
रथादि के बने सैन्य को, राष्ट्र यज्ञ के लिये, खूब बलवान् करके सन्मार्ग
पर ले जाने में समर्थ है । अतः हे दोष रहित ! अनिन्दनीय । हे सबके
प्रेरणा करने वाले नायक ! तू उसको आगे ले चल, उसको उन्नति मार्ग
पर चला । अध्वों को वश करने में समर्थ सारथी जिस प्रकार वेगवान्
अश्व को अपने प्रयोजन में लगा लेता है उसी प्रकार तू भी सबको वश
करने में समर्थ होकर अति शीघ्र ही उस बलवान्, वेगवान् सैन्य और
ऐश्वर्यवान् राष्ट्र तथा ज्ञानवान् विद्वज्जन सबको इष्ट सुखमय प्रयोजन के
लाभ के लिये नियुक्त कर । हे सब कार्यों को शीघ्रता से करने वाले ! तू
विद्वान् मेधावी पुरुषों की वाणी के समान ही हम प्रज्ञावान् पुरुषों के बीच
वाणी का प्रयोग कर ।

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्वृत्तार्य इन्द्र भरहूतये नृ-
भिरसि प्रतूर्तये नृभिः । यः शूरैः स्वः सन्निता यो विप्रैर्वर्जिं
तरुता । तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

भा० — हे सेना और सभा के स्वामिन् ! जो तू कई सेनाओं, संग्रामों,
और प्रजाओं के बीच में उत्तम नेता पुरुषों के सहित शत्रुओं को संग्राम में
ललवारने के लिये समर्थ होता है, वह तू हमारे प्रजाजनों के वचन और
न्याय-व्यवहार ध्वनि कर । क्योंकि जो पुरुष शूरवीर पुरुषों के साथ
मिलकर प्रजाओं को सुख प्रदान करने में समर्थ होता है, और जो विद्वान्
पुरुषों के द्वारा ज्ञान और ऐश्वर्य और अन्न प्रदान करने या युद्ध पार करने

में समर्थ होता है, उस ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष को अधिकारवान् पुरुष भी सत्संग योग्य और आश्रितजनों के सेचन और संवर्धन करने वाला जानकार, अतिवेगवान् बलवान् अश्व के समान आश्रय करते हैं, उसे समस्त शासको का भी शासक बना देते हैं ।

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररहं शूरा मर्त्यं
परिवृणक्ति मर्त्यम् । इन्द्रोत तुभ्यं तद्विवे तद्रुद्राय स्वयंशसे ।
सित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः समृत्तीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते । हे शूरवीर । तू निश्चय से दर्शनीय है । जिस प्रकार सूर्य, किरणों से खिचे जल से समस्त पृथिवी को आच्छादन करने वाले वातावरण को पूर्ण कर देता है और वर्षणशील मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है उसी प्रकार हे सेनापते । तू भी देह की त्वचा के समान राज्य की रक्षा करने वाले, सुखों के वर्षक रक्षक पुरुषों को ऐश्वर्य से सँचता है, उनका परित्राण करता है । सूर्य जिस प्रकार व्यापनशील मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् । तू अपने पर आ चढ़ने वाले, फैले हुए, या हिसक मनुष्य को दूर कर । और मैं प्रजा सुख की कामना करने वाले, शत्रुओं को मलाने वाले, एवं सदुपयोग देने वाले, सब के स्नेही, और प्रजा को मरण से बचाने वाले, सर्व श्रेष्ठ, सब कष्टों के वारक, उत्तम सुख देने वाले, अपने ही पराक्रम से यश ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले तेरे लिये मैं नाना प्रकार के प्रसिद्धिजनक वचन कहता हूँ ।
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वजिषु
प्रासहं युजम् । अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् । नहि
त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोपि य विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो । हम लोग सबके मित्र, दीर्घायु, उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजय करने वाले, सबके सहायक, सग्रामों और ऐश्वर्य, ज्ञान, बल के कार्यों में अति सहनशील, ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष

को हमारे अपने और आप सब लोगों के इष्ट सुख लाभ के लिये हम प्राप्त करना चाहते हैं । हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू कई संग्रामों में हमारी रक्षा के लिये विशाल धन की रक्षा कर ।

नि षू नृमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्रा-
भिरुग्रोतिभिः । तेषि णो यथा पुराणेनाः शूर मन्यसे । विश्वानि
पुरोरपं परि वहिरासा वहिर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष ! अति अधिक तेज वाली लकड़ियों से युक्त अग्नि भी जिस प्रकार शान्त हो जाता है इसी प्रकार हे शूरवीर पुरुष ! तू अति भयंकर और अतितेज से युक्त, और वेग से आगे बढ़ने वाली रक्षा-कारिणी सेनाओं से युक्त होकर भी ज्ञानोपदेश विद्वान् पुरुष की बहुत अधिक बढ़ी बुद्धि या ज्ञान के आगे झुक, उसका आदर कर । पूर्वकाल के समान ही तू स्वयं अपराध और पाप से रहित रहकर हमें सन्मार्ग पर चला । तू सब कुछ जानता है । तू अग्नि के समान समस्त कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाला होकर मनुष्यों के सब दुःखों को दूरकर, और सुख द्वारा आज्ञा और उपदेश द्वारा पालन कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र तद्वोचेय भव्यायेन्द्रो हव्यो न य इष्वान्मन्म रेजति रक्षोहा
मन्म रेजति । स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

भा०—चन्द्रमा के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले, प्रेम से आर्द्र हृदय वाले उस शिष्य को मैं विद्वान् पुरुष उत्तम २ ज्ञान का उपदेश करूँ । जो स्वीकार करने योग्य शिष्य बन कर इच्छा वाला होकर ज्ञान को प्राप्त होता है, और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाले वीर पुरुष के समान बाधक कारणों का नाश करता हुआ, मनन करने योग्य ज्ञान और मन्त्रार्चन वगैरे को प्राप्त करता है, वह अपने आप ज्ञान साधनों से हमारे निन्दनीय आपार विचारों को दूर भगा दे और विपरीत मिथ्याज्ञान

को दूर करे । पापाचार की शिक्षा देने वाला पुरुष क्षुद्र जन के समान नीचे जा गिरे ।

वृ॒ने॒सु तद्धोत्र॑या चि॒तन्त्यो॑ वृ॒ने॒म र॒यि र॒यि॒वः सु॒वीर्यै॑ र॒णं सन्त॑
सु॒वीर्य॑म् । दुर्म॑न्मा॒न सु॒मन्तु॑भिरे॒मि॒षा पृ॑चीमहि । आ स॒त्या-
भि॒रिन्द्रं॑ द्यु॒म्नहृ॑तिभि॒र्यज॑त्रं द्यु॒म्नहृ॑तिभिः ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग ज्ञान उत्पन्न करने वाली वाणी द्वारा उस ज्ञान योग्य ब्रह्मपद को प्राप्त करें और उसका अन्यों को उपदेश करें । हे ऐश्वर्यवान् ! हम ऐश्वर्य के समान सुखप्रद उत्तम वीर्यवान् पुरुष को भी प्राप्त करें । उत्तम मननशील पुरुषों द्वारा उपदेश प्राप्त करके हम विपरीत ज्ञान के नाशक परमेश्वर या आत्मा के रूप को प्रबल इच्छा या प्रेरणा द्वारा प्राप्त करें । दानशील या सत्संग करने योग्य उत्तम पुरुष को जिस प्रकार यशसूचक स्तुतियों द्वारा पहुँचते हैं उसी प्रकार हम उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को सत्य और उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ लें, उसको अपने हृदय में योग द्वारा ध्यान कर तन्मय हो जावें । (२) इसी प्रकार वीर्यवान् धनैश्वर्यवान् दुष्टों के हिसक, सत्संग योग्य राजा और आचार्य को भा उत्तम ज्ञान ज्ञानवानो, यश अन्नवर्चक क्रियाओं और स्तुतियों सहित मिलें, उससे अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बढ़ावें ।

प्र॒प्रा वो अ॒स्मे स्वय॑शोभि॒रु॒ती प॑रि॒वर्ग इन्द्रो॑ दुर्म॑तीनां दरी॒म-
न्दुर्म॑तीनाम् । स्व॒यं सा रि॑प॒य॒ध्ये या न॑ उ॒पे॒वे भ॒वैः । ह॒ते॒मसु॑न्न
व॑क्षति क्षि॒प्ता जू॒र्णिर्न॑ व॑क्षति ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और मित्र वर्गों । शत्रुविनाशक सेनापति अपने यशकारी पराक्रम के कामों में तुम्हारी और हमारी दोनों की रक्षा के लिये और दुष्ट मतवाले पुरुषों के विनाश करने के लिये, और दुष्टाचार वाले दुर्दमनीय मनुष्यों के तोड़ फोड़ने के लिये अच्छी प्रकार समर्थ हो ।

जो ज्वर या जरा के समान जीवन का नाश कर देने वाली सेना, प्रजाजनो को खा जाने वाले शत्रुपुरुषों ने हमारा विनाश कर देने के लिये भेजी जावे वह अपने आप विनाश को प्राप्त हो। वह परास्त होकर हम तक न पहुँचे और लौट कर अपने देश भी न पहुँचे।

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पृथाँ अनेहसा पुरो याह्य-
रक्षन्ता। सचस्व नः पराक्र आ सचस्वास्तमीक आ।

याहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! तू बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर, पाप और हिंसा से रहित तथा दुष्ट पुरुषों से रहित, निर्भय, निर्विघ्न मार्ग से हमारे नगरो को आया जाया कर। दूर देश में भी तू हमें प्राप्त हो, और दूर देश से भी तू आकर सब प्रकार गन्त, दम्पदान औपधिदान और सत्संगों द्वारा हमारी रक्षा कर। और उत्तम इच्छाओं, कामनाओं, आज्ञाओं और प्रेरणाओं से हमारी रक्षा कर।

त्वं न इन्द्र राया तरूपस्रोत्रं चित्वा महिमा सज्जदवसे महे मित्रं
नावसे। ओजिष्ठ वातरविता रथं कं चिदमर्थं। अन्यमस्म-
द्रिरिपेः कं चिदद्विवो रिरिद्वन्तं चिदद्विवः ॥ १० ॥

भा०—हे ऐश्वर्येवन् ! तू सकटों से पार करने और शत्रुओं का नाश करने वाले ऐश्वर्य से हमारी रक्षा कर। बलवान् सर्वस्नेही, और मृत्यु से रक्षा करने वाले तुझको महा रक्षा के लिये सामर्थ्य प्राप्त हो। हे सबसे अधिक ओजस्विन् ! हे सबके पालक, हे सबके रक्षक। हे आसाधारण पुरुष ! तू अति सुखकारी वेगवान् रथ, बल एवं रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कर। हे उत्तम पर्वतों की भूमि के स्वामिन् ! हम पर हिंसा का प्रयोग करने हुए शत्रु का भी विनाश कर, उसको दण्ड दे।

याहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधौवयाता सद्रमिर्दुर्मतीनां देवः सन्दु-
र्मतीनाम्। हुन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः। अघ्रा-
दि त्वा जनिता जीर्जनद्वसो रक्षोहणै त्वा जीर्जनद्वसो ॥ ११ ॥ १७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् । हे उत्तम स्तुति योग्य । तू देव हमें दुःखजनक पाप से बचा । तू सदा ही दुष्ट मति वाले पुरुषों और उनकी दुष्ट कामनाओं को नीचे गिरा देने वाला है । तू विघ्नकारी पापाचारी पुरुष का मारने वाला ढण्ड देने वाला है । तू मेरे जैसे आत्मवान् सच्चरित्र विद्वान् पुरुष का त्राण करने वाला हो । हे सबको अपने आश्रय पर बसाने वाले ! उत्पादक परमेश्वर ने तुझको उत्पन्न किया है और तुझको दुष्ट पुरुषों का नाश करने और ढण्ड देने हारा पैदा किया और बनाया है ।

[१३०]

॥ १३० ॥ १—१० परुच्छेय ऋषि ॥ इन्द्रो देवता छन्दः १, ५ भुरिगष्टिः ॥

२, ३, ६, ६ स्वराडष्टिः । ४, ८, अष्टिः । ७ निचृद-

त्याष्टि । १० विगट त्रिष्टुप् ॥

एन्द्रं याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं
राजैव सत्पतिः । हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—बलवान् पुरुषों का पालक नायक जिस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले सग्राम के नाना साधनों को प्राप्त होता है, और जैसे राजा सत्य धर्मों का पालक होकर राज सभा में प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे विद्वान् । तू हमें दूर देशों में भी प्रेमवश इस वायु के समान हमें प्राप्त हो । तू सत्यधर्मों का पालक होकर ज्ञानों को और निवास योग्य स्थान को प्राप्त कर । हम लोग परस्पर के सगठन द्वारा उत्तम प्रयत्न में युक्त होकर ऐश्वर्य या धन के विभाग के लिये पुत्र जिस प्रकार अपने दानशील और पूजनीय तुझको स्वीकार करते, तेरी शरण आते हैं ।

पित्रा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवृत न वंसग-
स्तातृपाणो न वंसगः । मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।

आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! शिलाखण्डो से कूट पीस कर निकाले गये गान्तिदायक औषधिरस को जिस प्रकार पिपासित पुरुष पान करता है और जिस प्रकार अन्तरिक्षगत मेघ द्वारा सींचे गये जल से पूर्ण जलाशय में प्यासा बैल आकर जल पान करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी विद्वानो से उपदेश किये गये उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले ज्ञानोपदेश को अमृत के समान पान कर । यह सब ऐश्वर्य तेरे हर्ष और वृत्ति करने के लिये है, तेरी कामना की पूर्ति के लिये और तेरे लिये नाना प्रकार के ऐश्वर्य सुखों और प्रजाओं की वृद्धि के लिये, और तेरे प्रजा पालन, धारण पोषण के लिये है । सूर्य को जिस प्रकार समस्त दिन आश्रय करते हैं और जिस प्रकार समस्त दिशाएं और प्रकाश की किरणें सूर्य को धारण करती हैं और उसी के आश्रय रखती हैं उसी प्रकार समस्त दिशावासी प्रजाजन और समस्त अपराहत और आगे बढ़ने वाले सैन्य गण तुझे धारण करें ।
अविन्ददिवो निहितं गुहा निधि वेने गर्भं परिवीतमश्मन्यन्तु
हन्तरश्मनि । वृजं वृज्री गवामिव सिषासुन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

भा०—पर्वतो में खूब सुरक्षित पक्षिणी के गर्भ अण्डे को जिस प्रकार पक्षी खोज लेता है, उसी प्रकार अग्नि और सूर्य के समान अति तेजस्वी पुरुष अनन्त शलाख अर्थात् शत्रुसेना के बीच छिपे हुए ग्रहण करने योग्य अंश को और इस पृथिवी की गुफा में छिपे खजाने खोज ले और गौओं के समूह को जिस प्रकार दण्डवान् गोपाल अपने वश करता है उसी प्रकार भूत तेजस्वी पुरुष भी वज्र अर्थात् समस्त शलाखबल से सम्पन्न होकर भूमियों के समूह या गमन करने योग्य मुख्य मार्गों को अपने अधीन करने की इच्छा करे । जिस प्रकार गृहपति ढके हुए गृह के द्वारों को खोलता है उसी प्रकार राजा सब ओर से सुरक्षित तथा शत्रुओं को दूर से ही धारण कर देने वाली प्रेरणा करने योग्य सेनाओं को खोले, उनको शत्रु पर जा दृढ़ करने की आज्ञा दे ।

दाहृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षत्रेव त्रिगममसनाय स श्यद-
हिहत्याय सं श्यत् । सं विव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्ट्रेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य तीक्ष्ण प्रकाश को अन्धकार के नाश करने और मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये चारों ओर फेंकता है, और जिस प्रकार मेघ या विद्युत् को और प्रहारकारी हिमकण को बरसाता है उसी प्रकार शत्रुनाशक सेनापति और राजा अपनी वृद्धि करता हुआ, शत्रुओं का नाश करता हुआ बाहुओं में तीक्ष्ण और बहुत दूर तक जाने वाले शस्त्रादि हथियार को शत्रु पर चलाने के लिये और अभिमुख बड़े चले आते हुए शत्रु को मारने के लिये खूब तीक्ष्ण करे और मैन्थ को खूब उत्तेजित करे । हे शत्रुओं के नाश करने हारे ! काटने वाला जिस प्रकार वन में उत्पन्न बड़े वृक्षों को कुल्हाड़े से काट गिराता है उसी प्रकार तू पराक्रम शक्तिमान् मैन्थ चल और दृढ़ सामर्थ्य से युक्त होकर सेनासमूह से युक्त शत्रुओं को सर्वथा काट डाल ।

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सतुवे ऽच्छा समुद्रमसृजा रथो इव वाज-
यतो रथो इव । इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनुरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बहा देता है उसी प्रकार हे सेनापते ! तू भी गमन करने और आक्रमण करने के लिये रमण करने के साधनों वा वेग से चलने वाले रथों और संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को तैयार कर । रक्षा करने वाली सेनाएं या संस्थाएं एकत्र होकर अक्षय और सबके लिये समान रूप से उपभोग करने योग्य द्रव्यमय कोश को धारण करें । अथवा वे शत्रु से न नाश होने वाले सबके प्रति निष्पक्ष अभिलषित पूज्य नायक को प्रधान पद पर नियुक्त करें । वे सेनाएं तथा संस्थाएं समस्त ऐश्वर्य का दोहन करने वाली

दुधार गौओं के समान मननशील प्रजाजन के हित के लिये और सब प्रकार के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाली हो ।

इमां त वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिपुः
सुमनाय त्वामतक्षिपुः । शुम्भन्तो जेन्थं यथा वाजेषु विप्र
वाजिनम् । अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ६

भा०—उत्तम कारीगर जिस प्रकार वेग से चलने वाले रथ को तैयार करता है, इसी प्रकार है विविध ऐश्वर्यों से प्रजाओं को पूर्ण करने वाले राजन् । सुकर्मा, मनीषी और ज्ञान का लाभ करने वाले और शिष्य जन तुल्य राजा की उत्साह वृद्धि के लिये इस वाणी को प्रकट करते हैं । हे राजन् ! सुख के प्राप्त करने के लिये तुल्य राजा को प्रजाजन अति तेजस्वी बनाते हैं । संग्रामों के अवसरों में नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त करने और बल को बढ़ाने के लिये वीर पुरुष संग्राम शुरू तुल्य नायक को, लड़ाऊ, वेगवान् अश्व के समान सुगोमित और प्रशसित करते हुए आगे बढ़ते हैं ।

भिनत्पुरो नवृतिमिन्द्र पुरवे दिवोदासाय महि द्वाशुवे नृतो
वज्रेण द्वाशुवे नृतो । अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभ-
रत् । महो धनानि दयमान् ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

भा०—हे सेनापते ! रक्षणसामर्थ्य तेज और अभिमत ऐश्वर्य के देने वाले और प्रजाओं के पालन में समर्थ राजा की वृद्धि के लिये तू ९० अर्थात् अनेक शत्रुपुरो को तोड़ । हे युद्ध में अपने कर चरणादि के कौशल दर्शाने वाले । तू बड़े दानशील जन की वृद्धि के लिये और अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को उत्तम वाणी एवं दुग्धादि उत्तम खाद्य पदार्थ और भूमि आदि के देने वाले पुरुष के उपकार के लिये, प्रजा के शान्ति और कल्याण के नाश करने वाले और शस्त्रधारी पुरुष को स्वयं प्रचण्ड भयंकर होवर पर्वत के समान उच्चपद राजसिंहासन से नीचे गिरा दे । और

तू पराक्रम से समस्त संग्रामों का या संग्रामकारी शत्रु सैन्यो का विनाश कर ।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूर्तिराजिषु
स्वर्मोळहेष्वाजिषु । मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।

दक्षन्न विश्वं तत्प्राणमोपतिन्यर्शसा नमोपति ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति समस्त संग्रामो और हर्ष के अवसरो मे सबके शरण योग्य, विद्या आदि गुणो मे श्रेष्ठ, अन्यो को धन और अन्न आदि देने और राजा को कर देने वाले प्रजाजन की अच्छी प्रकार रक्षा करे । वह अनेक प्रकार के सेना आदि रक्षा के साधनो से सम्पन्न होकर सुख और ऐश्वर्यो से राष्ट्र को सींच कर बढ़ाने वाले संग्रामो मे दानशील श्रेष्ठ प्रजाजन की रक्षा करे । मनुष्य मात्र के हित के लिये व्यवस्था के न पालन करने वाले उच्छृंखल दुष्ट पुरुषो का शासन करे । और उनके मुख आदि को काला करके, अपमानित करके दण्ड दे । और प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूखे काष्ठ को अग्नि के समान जला दे । और मारते हुए शत्रुगण को भी सर्वथा भस्म ही कर दे ।
सूरश्चक्रं प्र बृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुपायती-
शान आ मुपायति । उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुपेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने बड़े भारी बल से और तेज से प्रकट होकर ग्रहचक्र को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है, उसी प्रकार सबको धम मे चलाने वाला तेजस्वी राजा अपने बल पराक्रम और प्रभाव से समस्त राष्ट्रचक्र को अच्छी प्रकार धारण करे । तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार समीप प्राप्त देश मे अन्धकार को खण्ड २ करता है उसी प्रकार राजा राजकीय लाल पोषाक पहन कर समीप प्राप्त होने पर सबकी वाणी को हर ले अर्थात् उसके सामने आतंक मे किसी को कुछ कहने का साहस न

रहे । वह सबका शक्तिशाली शासक होकर प्रजाजन से कर आदि ऐश्वर्य ले । हे क्रान्तप्रज्ञ ! कान्तिमान् सूर्य जिस प्रकार दूर आकाश से प्रकाश करने के लिये दूर २ के लोको में पहुँचता है उसी प्रकार सब प्रजाओं को चारने वाला पुरुष भी प्रजाओं की रक्षा करने के लिये दूर दूर के देशों तक जावे । और अति वेग से जाने वाला अन्धकारनाशक प्रकाश जिस प्रकार समस्त सुखों को देता और सभी दिनों वैसा ही क्षिप्रकारी और अन्धकार का नाशक बना रहता है उसी प्रकार अतिक्षिप्रकारी और शत्रुनाशक और धनो का शीघ्र विभाग करने हारा राजा भी विचारशील पुरुषों के समान सुखकारी ऐश्वर्यों को विभक्त करे, और सब दिनों ही वैसा ही क्षिप्रकारी, शत्रुनाशक और धनैश्वर्य का विभाजक बना रहे ।

स त्वा नव्यैभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः प्रायुभिः पाहि शुग्मैः ।

द्विषोऽसेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥१६॥

भा०—हे धाराएं वर्षाने वाले मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने वाले राजन् ! हे शत्रुओं के पुरो, गटो नगर के परकोटों को तोड़ने हारे । वह तू नये नये, उत्तम से उत्तम, अति प्रसशनीय एव गुरुओं द्वारा उपदेश करने योग्य सुख साधनों और रक्षा करने के उपायों से हम प्रजाजनों की रक्षा कर । जिस प्रकार दिनों अर्थात् अपने प्रकाश से सूर्य वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! तू भी ज्ञानप्रकाश और मनुष्यों की अभिलाषायोग्य समस्त दानहारयोग्य, दिव्य पदार्थों के देने वाले विज्ञानवान् गुरुजनो से उपदेश लिया जाकर, शिक्षित होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो ।

[१३१]

५ रक्षेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः । ४ विराडत्यष्टिः ।

३, ५, ६, ७ सुरिगष्टिः ॥ तप्तर्चं सूक्तम् ।

इन्द्राय हि पारसुरो अनेमन्तेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभि-

द्युम्नसा॑ना वरी॑मभिः । इन्द्रं॑ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वासो॑ दधिरे
पुरः । इन्द्रा॑य विश्वा॒ सर्व॑नानि॒ मानु॑षा रा॒तानि॑ सन्तु मानु॑षा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार यह नक्षत्रमण्डलमय आकाश और अपने प्रबल शक्तियों से सब पदार्थों को उथल पुथल कर देने वाला महान् वायुमय अन्तरिक्ष या विद्युत् चरण करने योग्य किरणों से प्रकाश प्राप्त करने के लिये अन्धकार के नाशक और जलों और मेघों के भेदक सूर्य के समक्ष झुकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वानों और पुरुषों में राजसभा और शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला बलवान् मैन्यसमूह उपायों से यश और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा के समक्ष आदर में झुके । जिस प्रकार समस्त किरणगण सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार समान रूप से प्रीति और सेवा करने वाले विजयशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पुरुष भी उसको अपने आगे नायक के समान धारण करें । समस्त मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य उसी ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के निमित्त दिये जावें । और वे सब पुनः सर्व मनुष्यों के हितकारी हों ।

विश्वे॑षु हि त्वा॒ सर्व॑नेषु तुञ्जते॑ स॒मानमेकं॑ वृ॒धम॑रायवः पृथक्
स्वः स॒नि॒प्यवः॑ पृथक् । तं त्वा॒ नाव॑ं च प॒र्षणि॑ शू॒पस्य॑ धुरि
धी॑महि । इन्द्रं॑ न य॒ज्ञेऽश्रि॑तयन्त॒ आयवः॑ स्तोमे॑भिरिन्द्र॒सायवः॑ ॥२॥

भा०—हे राजन् । तुझको एकमात्र बलवान् एवं सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानते हुए, या स्वयं महावृषभ के समान क्रोध में प्रतिस्पर्द्धाशील वीर पुत्प पृथक् पृथक् सुखमय राज्य को स्वयं भोगने की कामना से युक्त होकर भी समस्त ऐश्वर्यों और शामन कार्यों पर भी एक समान निष्पक्षपात तुझको ही प्रतिपालन करते हैं, तेरी ही आज्ञा और अनुमति की ही प्रतीक्षा करते हैं । नदी में पार पहुँचा देने वाली नाव के समान उस तुझको ही बल के धारण करने के प्रमुख पद पर सग्राम सागर में पार करने वाले एवं पालन योग्य अन्नादि के दाता रूप में धारण करें । ज्ञान और

पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले ज्ञानोपाजक पुरुष दान योग्य द्रव्यों से जिस प्रकार आचार्य को सन्तुष्ट करते हैं उसी प्रकार पुरुषार्थी लोग राजा को भी दान योग्य ऐश्वर्यों से और स्तुति योग्य वचनों तथा सेना समूहों से अपने में धारण करें।

वि त्वा ततस्ते मिथुना अ॒वस्य॑वो ब्रजस्य॑ सा॒ता गव्य॑स्य निः-
सृजः॑ स॒क्षन्त॑ इन्द्र निःसृजः॑ । यद् ग॒व्यन्ता॑ द्वा जना॑ स्व॒र्यन्ता॑
समूह॑सि । आ॒विष्करि॑कृ॒द्रूप॑सं स॒च । भुव॑ं वज्रमिन्द्र स॒चाभुव॑म ॥ ३॥

भा०—हे ऐश्वर्यावन् राजन् ! रक्षा चाहने वाले स्त्री पुरुषों के जोड़े सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते हुए तुझे प्राप्त होकर विविध दुःखों को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे सब प्रकार अपना आत्मोत्सर्ग करने एरे, सब कुछ सहने वाले होकर गौओं के हितकारी बाड़े के समान आश्रयप्रद लोकों को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के लाभ के लिये तुझको प्राप्त होकर विशेष रूप से यत्न करते हैं। हे ऐश्वर्यावन् ! तू जब गौ आदि पशुओं की समृद्धि की कामना करने वाले, सुख को प्राप्त होने वाले, दो जनों, अर्थात् स्त्रीपुरुष गृहदम्पति को भली प्रकार सुख सामग्री प्राप्त कराता उनको एकत्र रखता और उनको उत्तम ज्ञान प्रदान करता है तभी सहयोग से उत्पन्न होने वाले सुखों के दर्पण करने वाले बलवान् पुरुषों के बने सैन्य और साथ होने वाले शस्त्रास्त्र बल वीर्य, पराक्रम को भी प्रकट करता है।

विदुषे॑ अस्य॒ वीर्य॑स्य पू॒रवः॑ पुरो॒ यदिन्द्र॑ शार॑दी॒रवा॑तिरः
सास॑दानो अ॒वातिरः॑ । शास॑स्तमिन्द्र म॒र्त्यमय॑ज्युं शव॑सस्पते ।
स॒हीम॑मु॒ष्णा पृ॒थिवी॑मि॒मा अपो॑ मन्द॒सान इ॒मा अ॒पः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! तेरा पालन और तेरे राष्ट्र बल को पूर्ण करने वाले प्रजाजनों तेरे हस्त प्रत्यक्ष दीखने वाले वीर्य, बल पराक्रम को जानें, जब तू सब शत्रुओं को पराजय धरता हुआ उनकी शरत् के समय अर्थात् युद्ध

यात्रा काल के उपयोगी नगरियों को नीचे गिरा देता है । हे बल के स्वामिन् ! तू उस २ नाना प्रकार के सन्धि द्वारा तुझसे न आ मिलने वाले तथा तुझे कर न देने वाले पुरुष को अच्छी प्रकार शासित और दण्डित कर । हे राजन् ! तू इन आस प्रजाजनों को प्रसन्न करता हुआ और स्वयं भी प्रसन्न होता हुआ, विशाल पृथिवी और जलो को तथा पृथिवी-निवासी प्रजाजनों और प्राणिवर्गों को अपने वश कर ।

आदि॑त्ते॒ अस्य॑ वी॒र्यस्य॑ च॒र्किर॒न्मदै॑षु वृ॒पन्नु॒शिजो॑ यदावि॑थ
सखी॒यतो॑ यदावि॑थ । च॒कर्थं॑ क॒ारमे॑भ्यः पृ॒तना॑सु प्रव॑न्तवे ।
ते अ॒न्याम॑न्यां नृ॒द्यं स॒निष्ण॑त श्रव॒स्यन्तः॑ स॒निष्ण॑त ॥ ५ ॥

भा०—हे सब सुखों के और ऐश्वर्यों के वर्णन करने वाले राजन् ! तू जो अपने यश, धर्म, अर्थ की कामना करने वाले पुरुषों की रक्षा करता है और जो तू मित्र के समान वर्त्ताव करने वाले सहायक जनों की रक्षा करता है, तभी वे हर्षों और उत्सवों के अवसरो में तेरे इस बल पराक्रम की वृद्धि करते हैं । तू संग्रामों में इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिये उनके कार्य विभाग नियत कर । वे पृथक् ० अपनी समृद्धि को भोग करें और अन्न, यश और ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए दान भी करें ।

उ॒तो नो॑ अ॒स्या उ॒पसो॑ जु॒पेत॒ ह्य॒र्कस्य॑ वो॒धि ह॒विषो॑ ह॒वीम॑भिः
स्व॑र्पा॒ता ह॒वीम॑भिः । य॒दिन्द्र॑ ह॒न्तवे॑ मृ॒धो वृ॒षा वज्रि॑श्चि॒कै-
त॑सि । आ मे॑ अ॒स्य वे॒धसो॑ न॒वीय॑सो म॒न्म श्रु॑धि न॒वीय॑सः ॥ ६ ॥

भा०—राजा इस उस उपाकाल के और सूर्य के ग्रहण करने योग्य व्रत और आचरण का सेवन करे । और हमें ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और कर्मों द्वारा, सुख ऐश्वर्य का प्राप्त करने के लिये, जानवान्, प्रबुद्ध तथा जागृत और सचेत कर । हे शस्त्र बल के धारण करने वाले राजन् ! जिसमें तू प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने में समर्थ होकर, संग्रामकारी शत्रु सेनाओं के दण्ड देने और मारने के लिये खूब अच्छी प्रकार उपाय करे

हस्तलिये त मुक्ष इत्त कार्यविधान करने में कुशल नवीन २ विद्याओं को
ज्ञान करने वाले विद्वान् पुरुष के मनन करने योग्य ज्ञान का श्रवण कर ।
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात् मर्त्यं वज्रैण
शू मर्त्यम् । जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

भा०—हे शरवीर राजन् । सेनापते ! हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! तू
बल पराक्रम तथा ऐश्वर्य में बढता हुआ, और हमें हृदय से चाहता हुआ,
नष्टभाव दर्शाने वाले मारने योग्य उस मनुष्य को शस्त्र बल से मार, जो
हम पर पाप या घात करना चाहता है । हे लोकविख्यात ! तू उत्तम यशस्वी
प्रजाओं के वधों को उत्तम रूप से श्रवण करने द्वारा होकर श्रवण कर ।
मार्ग में आये विघ्न के नमान समस्त प्रकार की दुर्बुद्धि और सब प्रकार के
दृष्टिदृष्टि वाले जन दूर हों । इति विशो वर्गः ॥

[१३२]

परच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ विराडत्यष्टिः ।

२ भुरिगनिशकरी । ४ निचृदष्टिः ॥ षड्च सूक्तम् ॥

त्वया वय मघवन्पूर्व्यै धत्त इन्द्र त्वोताः सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुप्यतः । नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्युक्ते वि चयेमा भरे कृतं वाज्रयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे परमैश्वर्यवन् ! हम लोग तेरी सहायता से और तेरे से
सुरक्षित राखर नेना हृदि करके युद्ध करने के इच्छुक शत्रुओं को, पूर्वज
दुरासो द्वारा सम्पादित धनैश्वर्य की रक्षा के लिए पराजित करें । हमसे
हिंसा दाद धर उपभोग करने के इच्छुक जनो को साथ मिलाकर अच्छी
प्रकार न्यायपूर्ण विभाग धरके उनका भेदन करें । इस दिन अति समीप
आये हुए मित्र्य यो गुरु के समान तू तेरा राज्याभिषेक करने द्वारा अधीन
प्रजाजन के हित के लिए अप्यक्ष होकर आज्ञा और उपदेश दार । परम्पर

संगठन से सुसम्पन्न और सबको भरण पोषण करने वाले राष्ट्र में हम अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करते हुए, अपने किये उत्तम कार्य और परिश्रम का फल विविध उपायों से सञ्चित करें ।

स्वर्ज्जे भरे आप्रस्य वक्मन्युर्वुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य
स्वस्मिन्नञ्जसि । अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्णशीर्णोऽपवाच्यः ।
अस्मत्ता ते सधयक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिए अन्धकार का नाश करता है, और प्रत्येक शिर अर्थात् मुख द्वारा स्तुति योग्य होता है, उसी प्रकार ज्ञानोपदेश करने के लिये अज्ञान नाशक आचार्य अज्ञान का नाश करता तथा ज्ञान का उपदेश करता है और वह प्रत्येक शिर से, समीप बैठकर अनुकरण द्वारा बांचने योग्य होता है अर्थात् गुरु उपदेश करता और प्रत्येक विद्यार्थी उसके ज्ञान वाणी का तदनुसार स्वयं अभ्यास करता और अपने अन्य शिष्यों को भी प्रवचन द्वारा बढ़ाता है । इस लिये हे विद्वान् पुरुषो । आप लोग ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिए, अपने प्रकाशमान ज्ञान में साधना करने वाले तथा पूर्ण ज्ञानी और अन्यो को ज्ञान से पूर्ण करने वाले विद्वान् पुरुष के, आत्मा का पोषण करने वाले प्रवचन उपदेश में रह कर, उषाकाल और जीवन के प्रभात अर्थात् बाल्यकाल में प्रबुद्ध हो, ज्ञान सम्पादन कर, अपना अज्ञान नाश करें ।

तत्तु प्रयः प्रतथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यक्षे वारमकृण्वत क्षय-
मृतस्य वारसि क्षयम् । वि तद्वोचैरघं द्वितान्तः पश्यन्ति
रश्मिभिः । स घा विदे अन्विन्द्रो गुवेपणो बन्धुत्तिन्द्रयो गुवे-
पणः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य का जिस प्रकार दूर तक जाने वाला तेज अति देदी-
प्यमान और सनातन से चला आ रहा है, उसी प्रकार हे प्रभो । तेरा
वेदमय वचन अति प्राचीन काल से विद्यमान और अति प्रकाशमान कान्ति-

युक्त अभिव्यक्त हो । उपासना और सत्संग के योग्य जिस तुझ प्रभु में भक्त-
जन वरण करने योग्य आश्रय लाभ करते हैं वह तू स्वयं सत्य ज्ञान का आश्रय
स्थान, और सब दुःखों का वारण करने हारा है । हे भगवन् ! आप उस
परम ज्ञान का विशेष रूप से उपदेश करें । और हे प्रभो ! विद्वान् जन
ज्ञानरसिमया या प्राणों के निग्रह द्वारा अपने भीतर ध्यान योग से इह और
और पर, अह और म्व, जीव और ब्रह्म दोनों को पृथक् २ साक्षात् कर
लेते हैं । वही परमात्मा ज्ञानवान् पुरुष को ज्ञानोपदेश के लिए, तुझ बन्धु
के अधीन रहने वाले भक्तों के हितार्थ उनके अनुकूल होकर ज्ञान वाणियों
को प्रदान करने हारा होता है ।

नू हत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरपि व्रजमिन्द्र
शिक्षन्नपि व्रजम् । ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि
च । सुन्वद्गर्धो रन्ध्रया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे आचार्य ! शिक्षा देता हुआ तू देह में स्थित प्राणों के
समान चैतन्यवृद्धि वाले शिष्यों के प्रति ज्ञान करने योग्य तत्व को खोल ।
इस प्रकार नवीन रीति और पूर्व प्रचलित रीति में भी जो प्रवचन करने
योग्य है वह भी स्पष्ट करके बतला । इन हम शिष्य जनों के हित के लिए
तू सबके प्रति समान भाव से रहने वाले उपदेश से सर्वोत्कृष्ट एवं आदर
करने योग्य है, तू हमें दण्डित कर, ताड़ना दे । तू ज्ञान का सम्पादन
करने वालों के हित के लिये हो । जिस किसी को भी मत ब्रह्मचर्य, सत्य-
भाषण, विनय आदि से रहित पाओ उसको और क्रोध दिखाने वाले
अविनयी, मत रहित शिष्य को दण्डित कर ।

सं यज्जनान् कर्तुभिः शूरैर्हृत्तयुद्धने हिते तरुषन्त भवस्यवः
प्रयत्नन्त भवस्यवः । तस्मा आयुः प्रजावृद्धिद्वार्धे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्रोऽप्येदिधिषन्त पीतयो देवा अर्चन्ता न धीतर्यः ॥ ५ ॥

भा०—अति शीघ्रता से ज्ञानैश्वर्य देने वाला आचार्य जो ज्ञानों द्वारा मनुष्यों को अच्छी प्रकार मार्ग दिखाता है उसे सन्तति में युक्त दीर्घजीवन प्राप्त हो । वेदमय उपदेश को श्रवण करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु लोग परम हितकारी धन के समान सुगोप्य आत्मा के बल पर दुःखों से तर जाते हैं, और उत्तम रीति में अन्यो को भी ज्ञान प्रदान करते हैं । वे लोग बाधा उपस्थित हो जाने पर उसके बल पराक्रम के कारण ही उसकी पूजा, आदर करते हैं । जिस प्रकार दान लेने वाले पुरुष दान देने वालों के सन्मुख रहते उसी प्रकार अध्ययन करने वाले शिष्य जन अविद्यानाशक गुरु के अधीन रह कर प्रवचन योग्य गुरुपदेश को सन्मुख बैठ कर धारण करें ।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं
वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद्ग्रहनं यद्विनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दूर्मा दर्पोष्ट विश्वतः ॥६॥२१॥

भा०—हे सूर्य के समान शत्रुओं के नाश करने हारे । हे पर्वत के समान अचल । जो हम पर सेना लेकर आक्रमण करे, सबसे आगे जाकर युद्ध करने वाले होकर आप दोनों वज्र में उस उसको मारो, टूट दो । यदि वह शत्रु वन में या संकट में चला जाय और भाग जाय तो दूर चले गये शत्रु को भी पकड़ने की इच्छा करो । हे शरवीर । हमारे शत्रुओं को सब तरफ से वेधता हुआ तू सब प्रकार से सब तरफ से छिन्न भिन्न कर डाल । (०) ज्ञानैश्वर्यवान होने से आचार्य इन्द्र है, और पालन करने में 'पर्वत' है । वे पूर्व अवस्था अर्थात् बाल्यकाल में बालक को ताटने में 'पुरोयुध' है । जो दुर्भाव हम पर आक्रमण करें उनको वे दोनों टूट दें, जो कोई छात्र कठिनाई में पड़ जाय तो दूर तक भटक गये को, आचार्य प्रेम में उभार लेवे । इत्येकविंशो वर्ग ॥

[१३३]

यस्यैव ऋषिः इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचदनुष्टुप् ।
४ स्वराजनुष्टुप् । ५ आर्षी गायत्री । ६ स्वराद् वाष्पी जगती । ७ विराडष्टिः ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।

अभिव्लग्य यत्र हुता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळहा अशेरन् ॥१॥

भा०—जल से जिस प्रकार दोनों तट स्वच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार
नृत्य व्यवहार, न्याय से मित्र और शत्रु दोनों पक्षों को पवित्र कर । मैं
राजद्रोहकारी भूमियों को जला डालूँ । जहाँ शत्रु लोग आक्रमण करके
मारे जावें उन गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही वे मारे गये लोग
भूमि पर सोवें । अध्यात्म में—मैं ज्ञान से इस लोक और परलोक दोनों
को पवित्र कर । मैं आत्मा की विरोधी द्रोहकारणी विक्षेपप्रवृत्तियों या
वान्मनाओं को सूखी लताओं के समान जला दूँ । वे काम क्रोधादि शत्रुगण
जरा पहुँच कर विनष्ट हो जाते हैं उस गुहास्थित ब्रह्म को प्राप्त होकर
शान्त हो जावें ।

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।

लिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

भा०—हे वज्रधर । जिस प्रकार लपेट लेने वाले पैर से पहलवान्
अपने शत्रु को लपेट कर नीचे गिराता और सिरों को कुचल डालता है,
उसी प्रकार तू शत्रुओं को पकड़ कर पीड़ा देने वाली शत्रुमेनाओं के शिर-
भागों अधोमुख प्रमुख नायकों, और मुख्य बलवान् दलों को लपेट लेने
वाले हाथों के पैर या गद्दे के समान उसमें भी वही बड़ी शक्ति से चारों
तरफ से घेर लेने वाले अपने सेनाबल से चारों ओर से घेर कर उसको
शाट छिद्र निरुद्ध कर ।

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।

त्रैलुस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार पीडादायी व्यक्तियों को विल के समान बने कैदखाने में डाल दिया जाता है उसी प्रकार इन पीडादायक सेनाओं के प्रबल बल को कष्टदायी बड़े भारी गढ़ों में युक्त ऊँचे नीचे खड्डों में भरे स्थान में डाल कर उसका नाश कर ।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।

तत्सु ते मनायांत त्वत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

भा०—हे मेनापते ! तू जिन सेनाओं के तीन-पचासों को अर्थात् तीन तीन कतारों की पचास २ की सेनाओं को भी सब तरफ से पैतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुखा मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से काट गिरावे, या मार भगावे, वही तेरा उत्तम मन-सकल्प हो, वह ही तेरा उत्तम आदर योग्य विचार रहे ।

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।

सर्वे रक्षो नि वर्हय ॥ ५ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! पीले वर्ण के प्रकाश से भुन जाने वाले, पीडा को देने वाले, देह के अवयव २ व्याप्त, या रक्त को चूसने वाले रोगकारी कारण को सूर्य के प्रखर ताप में जैसे नष्ट किया जाता है, उसी प्रकार पीतवर्ण के तंजम्बी पुरुषों द्वारा पीडित होने वाले, पीडादायी, खण्ड २ होने वाले शत्रुसैन्य को अच्छी प्रकार नष्ट कर डाल । और समस्त बाधक कारणों और शत्रु बल को नष्ट कर ।

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषा
अद्रिवो घृणान् भीषा अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रे-
भिरीयमे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्त्वभिस्त्रिस्तैः शूर
सत्त्वभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् सेनापते । तू बड़े भारी शत्रुदल को नीचे गिरा कर छित्त भित्त कर । हे न दीर्ण होने वाले शस्त्रबल से युक्त ! विद्युत् के भय से जिस प्रकार पृथिवी के समान आकाश भी चमक उठता है, उसी प्रकार मानो चमकने वाले अति तेजस्वी तेरे भय से पृथिवी की सामान्य प्रजा के समान तेजस्वी राजजन भी चमकें, कापें, वा भयभीत हों । तू भयकर हिंसाकारी शूरवीर पुरुषों और हिंसाकारी शस्त्रों से सब राजगण में सबसे अधिक बलशाली जाना जावे । और अपने शूर पुरुषों का न नाश करता हुआ, हे शूरवीर । हे शत्रुओं द्वारा न मुकाबला किये जाने वाले ! तू नीनन्ताते अर्थात् इक्षीस बलशाली शरीरगत मूल तत्वों से युक्त आत्मा के समान होकर मुख्य भोक्ता जाना जावे ।

वृनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजुत्यव द्विषो देवानामव द्विषः । सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयि ददात्याभुवं ॥७॥२२॥१६॥

भा०—निश्चय से अभिषेक करने वाला प्रजाजन ही निवास योग्य आश्रय प्राप्त करता है । और अभिषेक करता हुआ प्रजाजन उत्तम पुरुषों, विद्वानों और विजयशील पुरुषों के अप्रीतिकर द्वेषी शत्रुओं को भी विनाश करने में समर्थ होता है । अभिषेक करने द्वारा ही अधिक पुरुषों से सुरक्षित न रह कर भी बलवान् होकर सहस्रों ऐश्वर्य सुखों को प्राप्त करता है । अभिषेक करने वाले प्रजागण को ही वह ऐश्वर्यवान् राजा सर्वत्र सुख उत्पादन करने वाले ऐश्वर्य का प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले एकोनविंशोऽनुवाक समाप्तः ॥

[१३४]

१-६ परचोष ऋषिः ॥ वायुदेवता ॥ छन्दः—१, ३, निचृदत्यष्टिः ।

२, ४ विराट्छन्दः । ५ अष्टिः । ५ विराट्छन्दः ॥ षट्च सूक्तम् ॥

आ त्वा जुषो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्तिवृह पूर्वपीतये सो-

मस्य पूर्वपीतये । ऊर्ध्वा ते अनु सुनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

भा०—उत्तम मार्ग में ले जाने हारे, संसार के विलासों को त्यागने वाले नि.स्वार्थ विद्वान् अपने पूर्व के विद्वानों और पुरुषों के ज्ञान ऐश्वर्य आदि का पान करने के लिये तुझको हे वायु के समान राष्ट्र के प्राण रूप राजन् ! ज्ञान, परमपद, और प्रीति प्राप्त करावें । हे राजन् ! उत्तम सत्य वेदवाणी मन को ज्ञान प्रदान करती हुई तेरे कार्य के अनुकूल रहे । हे शूरवीर ! तू पूजनीय उत्तम ज्ञान के देने वाले गुरु आचार्य के लिये और यज्ञ के दान और युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के नाश करने के लिये अश्वों से जुते रथ तथा असंख्य रथ सेना से प्रयाण किया कर ।

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायुविन्दवोऽस्मत्क्राणसुः सुकृता अभि-
द्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः । यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त
ऊतयः । सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ई धियः ॥२॥

भा०—हे ज्ञानवान् राजन् ! सुख की कामना करने वाले हममें से जो क्रियाशील तथा सदाचारवान्, तथा चन्द्र के समान सबके आल्हादकर और सोम रसों के समान राष्ट्र के पोषक, गौओं और बैलों में ऐश्वर्य अन्न आदि उत्पन्न करते हुए, अति तेजस्वी, और व्यवहारज होकर तुझे प्रमन्न करें, और जो पुन्यार्थी लोग ज्ञान और बल प्राप्त करने के लिये उद्योग करते हैं वे सदा एक साथ सहयोगी होकर एक ही रथ में लगे अश्वों के समान एक कार्य में लग कर, आत्मसमर्पण करने वाले शिष्य जिज्ञासु को नाना ज्ञानयुक्त प्रजाओं और कर्मों का सब प्रकार से उपदेश करते हैं ।

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वो-
ळह्वे वहिष्ठा धुरि वोळह्वे । प्र वोधया पुरन्धि जार आ ससु-
तीमिव । प्र चक्षय रोदसी वासयोपसुः श्रवसे वासयोपसुः ॥३॥

भा०—शिष्यो को ज्ञानमार्ग में परिचालन करने वाला विद्वान्, वृद्धिशील एवं किरणों के समान तेजस्वी, तथा अजीर्ण शिष्यो को, सत्सार के कार्यभार को उठाने में समर्थ होने के लिये, ज्ञान शक्ति के धारण करने के कार्य में, धुरा में बैलों के समान अपने वश करता हुआ सन्मार्ग में नियुक्त करता है। हे विद्वान् ! तू विद्या के उपदेश करने में कुशल हो पर, शिष्य की सोती हुई उद्धि और देहरूप पुर को धारण करने वाली शक्ति को अच्छी प्रकार जगा, उसे प्रबुद्ध कर, उसे ज्ञानवती बना। और उने पृथ्वी और आकाश अर्थात् समस्त जगत् के ज्ञान का उत्तम रीति से उपदेश कर। ज्ञानोपदेश श्रवण कराने के लिये तू उन जिज्ञासु शिष्यो को अपने अधीन बसा। गृहस्थ की कामना करने हारे, उन युवको को गृहस्थ में और विद्याभिलाषी पुरुषों को अपने पास ही बसा।

तुभ्यमुपासुः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु
चित्रा नव्येषु रश्मिषु । तुभ्यं धेनुः सर्वदुष्टा विश्वा वसूनि
दाहते । अजनयो मरुतो वृक्षणाभ्यो दिव आ वृक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अति दीप्त प्रभात वेलाए जिस प्रकार किरणों के आधार पर दूर २ देश में पहुँच कर जगत् के सुखकारी आच्छादक प्रकाशों को फैलाती है उसी प्रकार हे विद्वान् ! तेजस्वी एव तेरे अधीन बसने वाले छात्रगण इन्द्रियो को दमन करने वाले साधनों और नये से नये स्तुत्य ज्ञानमय प्रकाशों और कार्यों के आधार पर, दूर २ के देश में भी तेरे अति व्यापणकारी यज्ञ पटों को विस्तृत करें। और गौ और उसके समान धारण करने वाली यह पृथ्वी समस्त रसों का दोहन करने वाली काम-दुष्टा होकर समस्त प्रकार के ऐश्वर्य का प्रदान करे। जिस प्रकार वेग से गमन करने वाले वायुगण आकाश या पृथ्वी के पार्श्वों में नाना मेघों और जलवृष्टियों को लाते हैं उसी प्रकार व्यापारी जन भी नदियों द्वारा और शक्ति और अकारा के सब पार्श्वों में ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

तुभ्यं शुक्रासुः शुचयस्तुरण्यत्रो मदेपुत्रा इषणन्त भुर्वण्यपा-
मिपन्त भुर्वणि । त्वां त्सारी दसमानो भगमद्वे तक्त्रवीर्ये ।
त्वं विश्वस्मान्द्रुवनात्पासि धर्मणासुर्यान्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

भा०— हे बलवान् राजन् ! वीर्यवान्, शुद्ध आचारण वाले, अति
श्रीघ्नता से कार्य सम्पादन करने में कुशल, उग्र पुरुष, हर्ष अवसरो में
और प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य में लगे । वे तुझे ही चाहें और तुझे
ही सदा प्रेरणा करते रहें । हे राजन् ! छद्मगति में चलने वाला कुटिला-
चारी पुरुष भी शत्रुओं का नाश करता हुआ, तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष की
प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम काम के निमित्त स्तुति करता
है । तू सब प्रकार के उत्पन्न हुए सांसारिक भय से रक्षा करता है । और
तू ही व्रमे में अर्थात् अपने धारण सामर्थ्य में अमुर अर्थात् दुष्ट पुरुषों के
व्यवहार में प्रजा की रक्षा करने में समर्थ है ।

त्वं नो वायवेष्णामपूर्व्यः सोमानीं प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानीं
पीतिमर्हसि । उनो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् । विश्वा
इत्ते घेनवो दुह आशिरं घृतं दुहृत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०— हे बलवान् राजन् ! पूर्व पुरुषों द्वारा किये कर्मों में भी
विलक्षण कर्म करने हारा अथवा जिसके पूर्व कोई अन्य न हुआ हो ऐसे
अद्वितीय पद के योग्य होकर तू इन ऐश्वर्यों और पदाधिकारों का ओषधि
रसों के समान पान अर्थात् उपभोग करने में समर्थ है तू ही अभिषिक्त
राजपदाधिकारियों में से सब से उत्तम रहकर ऐश्वर्य भोग करने का
अधिकारी है । तू विविध ग्राह्य पदार्थों में सम्पन्न और सब दोगों से रहित
प्रजाओं का भी पालन करने में समर्थ है । गौण जिस प्रकार सेवन करने
योग्य घा आदि पदार्थ प्रदान करता है उसी प्रकार समस्त प्रजाएँ तेरे
लिये सेवन करने योग्य और आश्रय करने योग्य समस्त ऐश्वर्य को प्रदान
करें । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३५]

परच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृदत्यष्टिः । २, ४ विराडत्यष्टिः ।

५, ९ मुरिगष्टिः । ६, ८ निचृदष्टिः । ७ षष्टिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स्तीर्णं वृहिरूपं नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता । नियुत्वते श्रुतिः
नीभिर्नियुत्वते । तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे । प्र ते
सुतानो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् जिस प्रकार पूज्य और आदरणीय पुरुष के लिये
जामन बिछाया जाता है उसी प्रकार तेरे लिये यह वृद्धियुक्त सिंहासन
फैला हुआ है । त उसको प्राप्त करने के लिये हजारों अश्वसैन्यो और सौ
सौ के दन्तों वाली सेनाओं सहित हमें प्राप्त हो । असुर्य पुरुषों के स्वामी
और नियुक्त सेनाओं के स्वामी तथा व्यवहारकुशल तुझ विजिगीषु के लिये
सब विजयेच्छुव जन सब से प्रथम प्रधान पद के उपभोग के लिये सब
नियम व्यवस्था करते हैं । और वे मधुर, अन्नो से युक्त और उत्पादित
ऐश्वर्य से युक्त तेरे ही हर्ष और सुख के निमित्त सदा कार्य सम्पादन
करने के लिये स्थापित हों, और स्थिर, अविचलित निर्भय होकर रहे ।
तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पृहा वसानः परि कोश-
मर्षति शुक्रा वसानो अर्पति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु
ह्यते । वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

भा०—हे सेनापते । यह शस्त्रों से, न दीर्ण होने वाले कवचों से,
और मणियों और आदर करने योग्य विद्वानों से पवित्र या दीक्षित हुआ
हुआ विद्वान् पुरुष, चाहने योग्य वस्त्रों को धारण करता हुआ और वस्त्रों
और आभूषणों को धारण करता हुआ खड्ग धारण करता है । हे सेनापते ।
तोग्य गुणों से युक्त पुरुष साधारण मनुष्यों और विद्वान् और
विजयी पुरुषों से बीच तेरी सेवा करने वाला कहा जाता है । हे बलवन्
सेनापते । तू अपने अधीन नियुक्त सेनाओं को सन्मार्ग पर ले चल, तू

हमारा स्वामी, हमें सदा समृद्ध रूप में चाहने वाला होकर सब गणों का भोग करता हुआ हमें प्राप्त हो ।

आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये । तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा । अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥

भा०—हे वायु के समान बलवान् राजन । तू राज्य को प्राप्त करने उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों का उपभोग करने के लिये, नाश न होने वाले हमारे राष्ट्र को, बलवान् अश्व और मैकड़ों दस्तों में बनी और हजारों वीर पुरुषों से बनी नाना सेनाओं सहित प्राप्त हो । तेरा ऋतु अनुकूल सेवन करने योग्य अश्व है, जो सूर्य में विद्यमान किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है । और हे बलवान् शासक । अविनाश्य राष्ट्र के सञ्चालक मुख्य पुरुषों सहित राष्ट्र के कार्य भार को धारण करते हुए शुद्ध आचारवान् पुरुष राष्ट्र का भली प्रकार नियन्त्रण करें ।

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये । पिवतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् । वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे बलवान् मेनापते । हे ऐश्वर्यवान् । उत्तम पुष्टिकारक भोज्य अन्न को और उत्तम ऐश्वर्यों को भोगने, और उनके पालन और प्राप्त करने के लिये, उत्तम अश्वों से युक्त रथ तुम दोनों को वहन करें, दूर २ देशों तक ले जावे । आप दोनों मधुर अन्न का उपभोग करें । आप दोनों के लिये निश्चय से सबसे पूर्व पान करने योग्य पदार्थ भी स्थित हैं । आप दोनों सबका सुर्वा करने वाले सुवर्ण आदि ऐश्वर्य सहित और सब कार्यों को भली प्रकार साधने वाले उपाय नामग्री सहित आँवें, धनैश्वर्य सहित हमें प्राप्त हो ।

आ वां धियो ववृत्युरध्वरो उपेममिन्दुं मर्मजन्त वाजिनमाशु-
मत्यु न वाजिनम् । तेषां पिवतमस्मयू आ नो गन्तसिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान जगत् और राष्ट्र को करादान और ऐश्वर्यदान द्वारा पालने वाले । जो विद्वान् पुरुष आप दोनों के ज्ञानों और कर्त्तव्य कर्मों का नित्य प्रति अभ्यास करते हैं, और प्रजापालक राज्यों की व्यवस्था करते हैं, और ज्ञानवान्, शीघ्र कार्य करने में कुशल, चन्द्र के समान आल्हादक इस राज्य को वेगवान् अश्व के समान सदा शोधन करते, उसको त्रुटियों रहित करते रहते हैं, उन नायकों के ऐश्वर्य का आप दोनों हर्ष के लिये उपभोग करो । हमारे इस राज्य में रक्षण करने के निमित्त आप दोनों आवे । आप दोनों अन्न और ऐश्वर्य के देने, पालने और सग्रामों में शत्रु का नाश करने वाले होकर हमें प्राप्त होवें । इति पतुर्विंशो वर्गः ॥

हमे वां सामा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो
शक्रा अयंसत । एत वासुभ्यस्सुक्षत तिरः पवित्रमाशर्वः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार औषधि रस नाना रसों में डाले जाकर, शरीर को नाश न होने देने वाले प्राणों से धारण किये जाकर, विशुद्ध वीर्य रूप से प्रियाजनक होकर शरीर को व्यवस्थित करते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! और वायु ! अर्थात् राजन् और सेनापते । आप दोनों के सहायतार्थ ही ये प्रजाओं की नन्मार्ग में चलाने में समर्थ शक्तिशाली पुरुष प्रजाओं में सदैव सन्मुख अभिप्रेत किये जावें । और वे राष्ट्रयज्ञ को नाश होने से दूर करने वाले प्रदत्त नायकों और विद्वान् पुरुषों द्वारा प्रजा का धारण और पोषण करते हुए, कार्यकुशल और शुद्ध धर्माचरण वाले होकर, राष्ट्र का प्रदग्ध करते रहें । जिस प्रकार वेग से फैलने वाले औषधि रस तिरछे लगे

दशापवित्र नामक छनने पर गति करते हैं और उसमें लगे भेड़ के बालों को पार कर जाते हैं उसी प्रकार ये तीव्र वेग से जाने हारें पुरुष भी अति उत्तम पवित्र, राष्ट्र और प्रजाजन को पवित्र करने वाले आदेश को लक्ष्य करके चलें । और वे सब राजा और मेनापति तुम दोनों को हृदय में चाहते हुए, सौम्य स्वभाव के अनुगामी शासक होकर, कभी समाप्त न होने वाले अर्थात् अनेक, उच्छेदन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को भी पार कर जाने में समर्थ हों ।

अति वायो ससता याहि शश्वतो यत्र प्राचा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । वि सूनृता ददृशे रीर्यते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

भा०—हे वायु के समान प्राणप्रद विद्वन् । और राजन् । तू सोने वाले आलसी पुरुषों से आगे बढ़ । और तू सनातन या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से आगे बढ़ । जहा उपदेश विद्वान् पुरुष उपदेश करता हो तुम दोनों बहा जाया करो । और फिर अपने २ गृह आया करो । हे वायु के समान बलवन् पुरुष ! तू और ऐश्वर्यावान् तुम दोनों अपनी पूरी शक्ति और नियुक्त मेना से प्रजाओं का न नाश होने देने वाले प्रजापालन के प्रत्येक कार्य को प्राप्त होते हो तो राष्ट्र में जल घी दूध खाद्य पदार्थ और उत्तम तेज और विज्ञान का प्रकाश सर्वत्र सुना जाता और पाया जाता है, और शुभ मत्स्यमय वाणी और अन्न सम्पत्ति विविध प्रकार से दिग्वार्द देती है ।

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुति यमश्चत्थमुपतिष्ठन्त जायवोस्मे ते सन्तु जायवः । साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वायु उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

भा०—मधुर फल के देने वाले अश्वत्थ अर्थात् पीपल को जिस प्रकार फल खाने की इच्छा से पक्षिगण प्राप्त होते और उसका भाग्य लेते

हैं और जिस प्रकार अपत्य की कामना करने वाले स्त्री पुरुष अश्वत्थ या पीपल का औषधि रूप से सेवन करते हैं, उसी प्रकार हे राजन और सेनापते ! विजयशील पुरुष, शत्रुदल को कंपा देने वाले सामर्थ्य को धारण करने वाले आश्रय वृक्ष के समान दृढ़ एवं अश्वसैन्य के बल पर संग्राम में स्थित होने वाले जिस नायक का आश्रय लेते हैं, आप दोनों इस राष्ट्र में अवश्य ही उस नायक को धारण करो । और वे हमारे वीर पुरुष संग्राम में विजयी होंगे । राज्य में गौएँ एक साथ ही बियावें । अर्थात् दूध भी एक साथ बहुत अधिक मात्रा में हो । जौ आदि अन्न भी एक ही साथ पके । हे विद्वन् ! तेरी गौएँ क्षीण न हों और दुधार गौएँ चोर आदि द्वारा चुराई जाकर नष्ट न हों । [अथर्ववेद में शमी पर स्थित पीपल को पुत्रोत्पादक कहा है । “शमीमश्वत्थ आरुदस्तत्रपुंसवनं कृतम् ॥” यहाँ मधु के साथ अश्वत्थ के सेवन से पुत्र प्राप्ति होती है । पीपल, पट, और टाक तीनों की पुनर्गी का सेवन समान रूप से पुत्रजनक है] ।

इमे ये ते सु वायो धाहो जसोऽन्तर्नदी ते एतयन्त्युक्ष्णो महे-
प्राघन्त उक्ष्णः । धन्वन्विद्ये अनाश्वो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—वायु के समान बलवान् सेनापते ! जो ये बाहु के पराक्रम से पुष्क होकर, अति समृद्ध प्रजा के बीच सेवन करने वाले मेष के समान दानशील और वृषभों के समान बलवान् हैं, वे उत्तम पति होने योग्य हैं । जिस प्रकार मेष जलमयस्थान और रेगिस्तान दोनों पर स्थित होकर वर्षा करते हैं उसी प्रकार जो वीर बड़े बलशाली होकर बढ़ते हुए, जल स्थल और अन्तरिक्ष में स्थिर होकर शत्रुओं पर शर वर्षण करने में समर्थ होते हैं, वे ही समृद्धि के अवसर और संग्राम में धनुष के कार्य में विजय शील होते हैं । और वे बाणी में भी स्थान नहीं पाते अर्थात् उबकर बल पराक्रम भी अदर्शनीय होता है । और वे सूर्य की विरणों के समान बड़ी

कठिनता से वश में आने वाले हाथों के बल में दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ हों । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३६]

॥ १३६ ॥ १—७ परुच्छेय ऋषिः ॥ १—५ मित्रावरुणौ । ६—७ मन्त्रोक्ताः देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः । निचृदष्टिः । ४ भुरिगष्टिः । ७ मिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ्यद्भ्यां स्वादिष्टं मृळ्यद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उप-
स्तुता अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग चिरायु वाले माता और पिता को सबसे अधिक आदर और अन्न अच्छी प्रकार प्रदान करो । और प्रजा को सुखी करने वाले राजा और सेनाध्यक्ष को भी अति स्वादयुक्त और धन और ज्ञान अच्छी प्रकार प्रदान करो । सभा और सेना के अध्यक्ष वे दोनों सम्राट् होकर घृत के समान पृष्टिकारक सारवान् पदार्थ को प्राप्त करने वाले, और 'घृत' अर्थात् तेजोमय ज्ञान के देने वाले, या घृत अर्थात् जल द्वारा अभिषेक करने योग्य है । और वे दोनों प्रत्येक यज्ञ में, प्रत्येक सन्मग के अवसर पर स्तुति आदर करने योग्य है । और उन दोनों का बल वीर्य किसी भी शत्रु द्वारा वर्षण करने या हारने वाला न हो । और उनकी विजयकामना दानशील और तेजस्वीपन भी किसी प्रकार किसी में धर्षण या तिरस्कार प्राप्त होने योग्य न हो । अन्त्यात्म में प्राण और अपान दोनों को उत्तम स्वादयुक्त अन्न से पुष्ट करो । वे देह के सम्राट् हैं । तेज धारण कराने वाले हैं । प्रत्येक देह उनकी स्थिति है । उनके बल और तेज को कोई रोगादि धर्षण नहीं कर सके ।

अदर्शिं गातुरुरवे वरीयसी पन्थां ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिः
अक्षुर्भगस्य रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य

च । अथा दधाते बृहदुक्थ्यं । वयं उपस्तुत्यै बृहद्वयः ॥ २ ॥

भा०—सहान् पराक्रमशाली पुरुष के लिये ही यह वरण करने योग्य बड़ी भारी भूमि देख पड़ती है । सूर्य की किरणों से किस प्रकार चक्षु युक्त होता और शक्तिशाली हो जाता है और सत्य ज्ञान का मार्ग भी सूर्य की किरणों से प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार ऐश्वर्यावान् परमेश्वर की ज्ञानमय किरणों से भीतरी नेत्रयुक्त होते और सत्यज्ञान का मार्ग भी उपलब्ध हो जाता है । सबके स्नेही, नियम से बांधने वाले न्यायकारी, और सर्वश्रेष्ठ और दुःखों और दुष्टों के वारण करने वाले पुरुष का आसन अन्तरिक्ष के समान ऊँचा और सूर्य के समान तेजोयुक्त हो । मित्र और वरुण अर्थात् न्यायाधीश राजा दोनों ही बड़े भारी बल को धारण करें, और बड़े स्तुति योग्य, दीर्घ आयु और ज्ञान को भी धारण करें ।

ज्योतिष्मतीमदिति धारयत्क्षितिं सर्व्वतीमा सचेते दिवेदिवे
जागृवांसां दिवेदिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुन-
स्पती । मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

भा०—अदिति अर्थात् आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र, जिस प्रकार पृथ्वी को धारण करने वाले, प्रकाश और ताप से युक्त, ज्योतिर्मय और नक्षत्रों से युक्त अखण्ड आकाश को प्रतिदिन सदा जागृत रहते हुए नियम पूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मित्र अर्थात् सर्वस्नेही सभाधीश, और वरुण अर्थात् दुष्टों का वारक सेनापति दोनों प्रतिदिन सावधान रह कर, सुखजनक ऐश्वर्यों से युक्त ज्योतिर्युक्त रत्नों को धारण करने वाली, निपात करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी को अच्छी प्रकार धारण करें । वे दोनों दान देने योग्य ऐश्वर्य और दानशील जनों के पालक, अदिति अर्थात् अखण्ड पृथ्वीराज्य के स्वामी, न्यायप्रकाश, ऐश्वर्य और तेज से युक्त राज्य को प्राप्त हो । उनके अधीन दुष्ट पुरुषों को नियमन करने से समर्थ न्यायाधीश दुष्टों को पीला देने वाले पुरुषों का

स्वामी होकर समस्त राष्ट्रवासी जनो को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला हो ।
अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्वद्यपानेष्वाभंगो देवो
देवेष्वाभंगः । तं द्वासी जुषेरत् विश्वे अद्य सजोयसः । तथा
राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओं के रक्षाकार्यों में सब प्रकार में सेवा करने वाला,
और दानशील पुरुषों में सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर सबका प्रेरक राजा,
मित्रों और सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के लिये अत्यन्त शान्तिकारक हो । विद्वान् और
वीर पुरुष सब समान प्रीति से युक्त होकर उससे प्रेम करें । हम जिम्
न्याय और श्रेष्ठ कार्य को चाहते हैं तेजस्वी प्रमुख पुरुष वैसा करें । और
जो हम चाहते हैं वह वे दोनों सत्य न्यायशील प्रमुख पुरुष करें ।

यो मित्राय वरुणाय विधुज्जनोऽनुवाणं तं परिपातो अहसो
दाश्वांसं मर्तमहसः । तमर्थमाभि रक्षन्त्यृज्यन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूयति व्रतं स्तोमैराभूयति व्रतम् ॥ ५ ॥

भा०—जो पुरुष स्नेहवान् मित्र और दुःखों के वारक श्रेष्ठ पुरुष के
हित के लिये नाना कर्मों का अनुष्ठान करे वे दोनों अजातशत्रु तथा दानशील
उस पुरुष का पाप से रक्षा करें । और सत्याचार के अनुसार अति विन-
यशील होकर रहने वाले उसको न्यायशील पुरुष भी पापाचार और
वधादि क्लेश से सब प्रकार से बचावे । जो उक्त दोनों मित्र और वरुण
अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठ पुरुषों के कर्तव्य को स्तुत्य वचनों द्वारा सर्वत्र
वर्णन करता है, और अनुष्ठान करने योग्य धर्माचरण को स्तुति योग्य
उपायों से भली प्रकार आचरण करता है, उसको भी न्यायशील पुरुष,
पापमार्ग और वधादि दुःखों से सुरक्षित करे ।

नमो दिवे बृहते रादसाभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुपे
समृळीकार्य मीळ्हुपे । इन्द्रमग्निमुप स्तुहि वृक्षमर्थमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

भा०—मैं बड़े भारी तथा सूर्य के समान तेजस्वी, आकाश और पृथ्वी के समान पालक माता पिता, स्नेहवान् मित्र, और वरुण, करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष, सुखों के वर्णन करने वाले, मेघ के समान सबको उत्तम सुख देने वाले उपकारी जनो के प्रति आदर सत्कार के वचन कहूँ। हे मनुष्य ! तू ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान्, दीप्ति युक्त, न्यायकारी, ऐश्वर्यवान्, परम पुरुष की स्तुति कर। हम चिरकाल तक दीर्घजीवन भोगते हुये उत्तम सन्तान सहित रहें। और प्रेरक गुरु आदि की रक्षा में सदा विद्यमान रहें।

कृती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः।

अग्निमित्रो वरुणः शर्मयंसुन् तद्दश्याम मघवानो वयं च ॥७।२६।१॥

भा०—हम लोग दानशील पुरुषों की रक्षा से ऐश्वर्यवान् होकर, अपने आप को व्यवहार कुशल वैश्यवर्गों सहित यश और ऐश्वर्य से समृद्ध हुआ जानें। अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी, प्राण के समान जीवन-प्रद, जल के समान दुःखवारक पुरुष हमें सुख शान्ति प्रदान करें। और हम भी ऐश्वर्यवान् होकर उस सुख सम्पदा का भोग करें। इति पङ्क्तिश्चो वर्गः।

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[१३७]

पञ्चदशेऽध्यायः। मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द—१ निचृच्छवरी। २ विराट्शक्वरी।

३ भुरिगतिशक्वरी ॥ वृच सुक्तम् ॥

सुपुमा यातुमद्रिभिर्गोधीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविरपृशास्मन्ना गन्तुमुप नः। इमे वा मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र और हे वरुण ! शरीर में प्राण और उदार के समान राष्ट्र में प्रजा के साथ स्नेह करने और उनके दुःखों के निवारण करने हारे दो प्रकार के अधिकारी पुरुषों ! आप दोनों आइये । ये सोम आदि औषधियों के उत्तम २ अन्नरस मेघों द्वारा सिक्त और पापाणों से कुटे पिसे गौ के दुग्ध में परिपाक किये हुए होकर जिस प्रकार हर्ष और तृप्ति को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ये अभिषेक करने योग्य नवाधिकारी पुरुष राष्ट्रभूमि के ऊपर स्थापित होकर अति हर्षप्रद और गर्व से शत्रु पर प्रयाण करने में समर्थ हैं । हम इनका अभिषेक करते हैं । आप दोनों आकाशस्थ देदीप्यमान सूर्य चन्द्र के समान उत्तम ज्ञान और शुद्ध व्यवहार में और उच्च पद में स्थित होकर प्रजा का अनुरंजन करने वाले, और हम प्रजा-जनों का पालन करने वाले होकर हमें प्राप्त होवें । ये सौम्य जन आप दोनों की 'गो' अर्थात् वाणी में आश्रित होकर आप दोनों के ही अधीन रहे । ये पृथ्वी के कार्य में स्थित होकर शुद्ध व्यवहार वाले, शीघ्र कार्य करने वाले और सदाचारी हों ।

इम आ यातुमिन्द्रवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः । उत वामुपसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः । सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेही और सूर्य के समान तेजस्विन् । हे सर्वश्रेष्ठ और दुःख वारक रात्रि के समान शान्तिदायक माता पिता । ये सौम्य शिष्यगण ज्ञान जल और भक्तिभाव से आर्द्रचित्त, पुत्रों के समान पालित, शिक्षित और विद्यादि में स्नातक होकर गृहस्थ धारण के कार्य में आश्रय करने योग्य हो गये हैं । ये युवक विद्वान्गण सूर्य के समान तेजस्वी आचार्य के नियमों से नियन्त्रित और शिक्षित होकर प्रभात वेला के समान जीवन के पूर्व भाग में ज्ञान प्राप्त हो जाने पर तुम माता पिताओं के पालन करने के लिये हों । ये पुत्र स्नेहवान् बन्धुजन, श्रेष्ठ गुरुजन, ज्ञानमय परमेश्वर, और यज्ञ के पालन करने के लिये हों, और उत्तम आचरण वाले हों ।

तां वा धेनुं न वासुरीमंशुं दुहन्त्यद्विभिः सोमं दुहन्त्यद्विभिः ।
अस्मभ्रा गन्तुमुप नोर्वाञ्छा सोमपीतये । अयं वा मित्रावरुणा
नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

भा०—दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय को जिस प्रकार
गृहस्थ लोग उसके अगो को पीडित न करने वाले हाथों से दोहते हैं, उसी
प्रकार विद्वान् पुरुष सबको अपने भीतर बसाने वाली भोग्य वसुंधरा
को न दीर्ण होने वाले शासनों और शासकों द्वारा दोहते हैं । स्नेहवान्
माता पिता । और कष्टवारक गुरुजनो । आप लोग हमारी रक्षा करते हुए
हमारे ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये आइये । जिस प्रकार सिद्ध
प्रकार सोमरस पान करने के लिये होता है उसी प्रकार पदाभिपिक्त युवक
सौम्य स्वभाव वाला होकर आप दोनों के पालन के लिये नायक और
उत्तम पुरुषों द्वारा योग्य पद पर अभिपिक्त किया जाय । इति प्रथमो वर्गः ॥

[१३८]

परत्तोप ऋषि ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः । २ विराडत्यष्टिः

४ मुरिगष्टिः ॥ चतुर्श्च सूक्तम् ॥

प्रप्रं पूष्णस्तुविज्ञातस्य शस्यते महित्वमस्य त्वसो न तन्दते
स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुमनयन्नमहन्त्यूर्ति मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मुखो देव आयुयुवे मुखः ॥ १ ॥

भा०—बहुत प्रजाओं और लोकों में प्रसिद्ध, सर्वपोषक प्रभु की
महिमा का अर्घी प्रकार वर्णन किया जाता है । बलशाली इसकी स्तुति
को कोई नाश नहीं कर पाता, और उसकी सत्ता को भी कोई मिटा नहीं
सकता । मैं अतिसमीप स्थित रक्षक और सुख शान्ति के एक मात्र
उत्पादक प्रभु की, सुख की कामना करता हुआ, सदा स्तुति करूँ । जो
दानशील, प्रवारास्वरूप, सबकी कामना करने योग्य प्रभु समस्त संसार

के मनो को अपने भीतर मिलाये रखता है, वह ही पूजनीय है। वह ही सर्वोपास्य, ऐश्वर्यवान्, सुखमय होकर सबको अपने में जोड़े रखता है। (२) इसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह बहुतों में प्रसिद्ध बलवान् विद्यावान् हो, उसके यश का नाश न हो। सबका निरन्तर पालक, सुखकारी हो, सबका मन अपनी ओर खींचने वाला हो।

प्र हि त्वां पूषन्नजिरं न यामन्ति स्तोमेभिः कृणव ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः । हुवे यत्त्वां मयोभुवै देवं सुख्याय मर्त्यैः । अस्माकमाङ्गुयान्द्युस्मिन्स्कृधि वाजेषु द्युस्मिन्स्कृधि ॥ २ ॥

भा०—वेग से गमन करने के निमित्त जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व को लिया जाता है उसी प्रकार हे सर्वपोषक राजन् ! युद्ध में प्रयाण के लिये शत्रुओं को उल्हाड फेंकने और उन पर बाण आदि अस्त्रों के फेंकने में समर्थ तुझको, स्तुति करने योग्य, सेनासमूहों सहित, अधिकारवान् करता हूँ। जिससे तू संग्रामों को जा सके। ऊंट जिस प्रकार बड़े २ रेगिस्तानों को पार करा देता है उसी प्रकार तू भी हिंसाकारी शत्रुओं और मेनाओं और संग्रामों को पार कर। जिस तुझको मैं साधारण मनुष्य शान्तिजनक, दानशील और विजिगीषु जान कर, मित्रता के लिये स्वीकार करता हूँ, वह तू हमारे विद्वान् पुरुषों को तेजस्वी बना। और संग्रामों को विजय करने और अन्न और ज्ञानों को उपलब्ध करने में भी हमारे विद्वानों को ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी बना। यस्य ते पूषन्सुख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुजिर इति क्रत्वा बुभुजिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुते राय ईमहे । अहेलमान उन्शंसु मरी भव वाजैवाजे मरी भव ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके पोषक स्वामिन। जिस आपके मित्र भाव में रहते हुए विद्वान् जन, आपके रक्षा कर्म में सदा पालित होते, और इस संसार का ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य में भोग करते हैं, उस तुझको प्राप्त होकर

हम लोग भी उस नयी से नयी ऐश्वर्य की लक्षो की संपदा को तुझसे मांगते हैं । हे अति स्तुति योग्य । तू हमारा अनादर और हम पर क्रोध न करता हुआ ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी हो, और प्रत्येक संग्राम में शत्रु पर प्रयाण करने वाला हो ।

अस्या ऊ पु रा उपे सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व
धवस्यतामजाश्व । ओ पु त्वा ववृतीमहि स्तोमैभिर्दस्म सा-
धुभिः । नहि त्वा पूरन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्रुवे ॥४॥२॥

भा.—हे बकरियों और अश्वों के स्वामिन् ! अथवा हे वेगवान् अश्वों वाले । तू इस पृथ्वी के राज्य प्राप्त करने के लिये, हमारा तिरस्कार न करता हुआ, धन, अन्न, यश और ज्ञान की इच्छा करने वालों को इष्ट फल दान करता हुआ, हमारे सदा समीप रहे । हे दर्शनीय । हे शत्रुओं के नाशकारिन् । हम लोग तुझको ही उत्तम २ स्तुति वचनों से प्राप्त करें । हे सर्वपोषक । मैं तेरा कभी तिरस्कार न करूँ । हे सब प्रकार से प्रकाशमान् । मैं तेरे मित्रभाव को कभी लुप्त न होने दूँ । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१३६]

परच्छेप ऋषिः ॥ देवता—१ विश्वे देवाः । २ मित्रावरुणौ । ३—५ अश्विनौ ।
६ इन्द्र । ७ अग्निः । ८ मरुतः । ९ इन्द्राग्नी । १० बृहस्पतिः । ११ विश्वे
देवाः ॥ छन्दः—१, १० निचृदष्टि । २, ३ विरदष्टिः । ४ अष्टिः । ५ स्वराट-
पतिः । ६, ९ भुरिगायष्टिः । ७ अत्यष्टिः । ८ निचृदष्टिः । ११ भुरिक्
पतिः ॥ एकादशान्नं नृत्तम् ॥

अस्तु धांपद् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छ्रधौ दिव्यं
वृणमिह इन्द्रपायू वृणमिहे । यद्धं क्राणा विवस्वति नाभा
इन्द्राणि नव्यंसी । अथ प्र गृ नु उपे यन्तु धीतयो देवाँ
अररा न धीतयः ॥ ६ ॥

भा०—वेद का श्रवण हो। मैं अपने आगे कर्म और प्रज्ञा वा धारण क्रिया के सहित ज्ञानवान् वा ज्ञानमार्ग में आगे ले चलने वाले आचार्य को आदर्श रूप में स्थापित करूं। तदनन्तर मैं उसके दिव्य ज्ञान और बल को धारण करूं। हम सब शिष्यगण उस ज्ञानमय तेजस्वी पुरुष को आचार्यरूप में वरण करें। हम लोग इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान्, तथा वायु के समान प्राणपट इन दोनों को भी स्वीकार करें। जिस प्रकार नाभी या केन्द्र में अरे लगे रहते हैं, और सूर्य में जिस प्रकार किरणें रहती हैं उसी प्रकार वसु आदि ब्रह्मचारी को अपने अधीन बसाने वाले गुरु में, समस्त कार्यों का प्रतिपादन करने वाली अतिस्तुत्य वाणी अच्छी प्रकार बंधती है और अंगुलिया जिस प्रकार पकड़ने योग्य पदार्थ को पकड़ लेती हैं, और जिस प्रकार स्तुतियां स्तुत्य उपास्य देव को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हम विद्याभिलाषी शिष्य जनों को उत्तम वेद वाणियां, प्रज्ञाएं और कर्म भी उत्तम रूप से सुग्व देती हुई प्राप्त हों।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद्ध्यौ ददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना । युवोरित्याधि सद्यस्वर्पश्याम हिरण्ययम् । घीभिश्च न मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥२॥

भा०—हे स्नेहवान और दुःखनिवारक जनो ! आप लोग सत्य से असत्य को अपने ज्ञानबल से पृथक् करके सर्वोपरि न्याय वितरण किया करो। और हम भी आप दोनों के न्यायभवनों में, ज्ञानवान् आत्मा के अपने मननशील चित्त से, और उत्तम प्रज्ञाओं, और मन में, और अपनी इन्द्रियां में और राष्ट्रपति के अपने अध्यक्षों द्वारा, प्रज्ञा के हितकारी और रमणीय व्यवहार को ही सदा अच्छी प्रकार देखा करें, और सत्य से असत्य का विवेक किया करें।

युवां स्तोमैभिर्देवयन्तो अश्विना श्रावयन्त इव दलोकमायवौ युवां हव्याभ्या यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा । प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्ययं रथे दक्षा हिरण्यये ॥३॥

भा०—हे राष्ट्र का भोग करने वाले तथा विद्याओ में व्यापक उत्तम स्त्री पुरुषो ! स्तुतियों से तुम देवों को चाहते हुए, सम्मुख आने वाले विद्वान् पुरुष, वेदवाणी का श्रवण कराते वा उपदेश करते हुए, मानो तुम दोनों को ग्रहण करने योग्य ज्ञान प्राप्त कराते है । और वे पवित्र करने हारे तुम दोनों के सुन्दर रथ पर जल मधु आदि का वर्णन करते हैं । हे दर्शनीय एवं दुःखों के नाश करने वाले ! हे समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामियो ! सब प्रकार की लक्ष्मियां और अन्न आदि सम्पत्ति तुम दोनों की ही सर्वोपरि रहे ।

अचोते दस्त्रा व्युनाकमृणवथो युजते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मान्नो दिविष्टिषु । अर्घिं वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्त्रा हिरण्यये पथेय यन्तावनुशासता रजोअस्रा शासता रजः ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों और दुष्टों का नाश करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों, दुःख रहित गृहस्थ या ऐश्वर्य को विविध उपायों से प्राप्त करो । आकाशमार्ग में विहार करने के अवसरों में जिस प्रकार कभी नीचे न गिरने हारे सावधानों से उड़ने हारे उड़के वायु रथों की योजना करते है, उसी प्रकार राष्ट्र और धर्म को पतित न होने देने वाले, तथा रथों के निर्माता पुरुषों को कामना योग्य व्यवहारों के प्राप्तिमार्गों में निरुक्त करो और आप दोनों सन्मार्ग से जाते हुए और लोक समूह का धर्मानुबल शासन करते हुए, शीघ्र ही राजस भोगमय ऐश्वर्य का शासन करते हुए, समृद्ध राज्य को प्राप्त करो । और तुम दोनों के सुबद्ध, लोह सुवर्ण आदि से भरे रथ पर हम भी विराजें ।

राचोभिर्न शचविसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।

मा वां रातिरप दसुत्कदा चनास्माद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर बसाने हारे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों दिन और रात हमें उत्तम कर्मों और बुद्धियों

से उत्तम विद्या और ऐश्वर्य का दान करो । आप दोनों का दिया हुआ उत्तम दान कभी नाश को प्राप्त न हो । और कभी हमारी तरफ से भी देने योग्य दातव्य पदार्थ नाश को प्राप्त न हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

च॒व॒न्निन्द्र॑ च॒प॒पाणा॑सु इन्द्र॑व इमे सु॒ता अ॒द्रि॒पु॒ताम॑ उ॒द्भि॒द॒स्तु॒भ्य॑
सु॒तास॑ उ॒द्भि॒दः । ते त्वा॑ म॒न्द्रन्तु॑ द्रा॒वने॑ स॒हे चि॒त्राय॑ रा॒धसे॑ ।
श्री॒भिर्गि॑र्वा॒हः स्तव॑मान आ ग॒हि सु॒सृ॒ळी॒को न॒ आ ग॒हि ॥ ६ ॥

भा०—हे मेघ के समान प्रजाओं पर सुगो का वर्षण करने हारे, हे वीर्यवान् ! हे ऐश्वर्यवान् ! पर्वतों पर उत्पन्न हुए वृक्ष लतादि जिस प्रकार वरसते मेघ से जलपान करने हारे होकर रमवान् होने हैं, और वे भूमि भेद कर उत्पन्न होते और नाना फलों को उत्पन्न करने वाले होते और सबको आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार पर्वत के समान अचल नायकों से सञ्चालित रस पान करने वाले बलवान् नायक की रक्षा करने चन्द्र के समान अह्मादजनक, राजा के पुत्रों के समान पालित, नाना पदों पर अभिषिक्त और शत्रुओं को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले हों । वे दान देने योग्य, बड़े भारी, अद्भुत धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये तुझे हर्षित और उत्साहित करें । हे आज्ञा देने योग्य श्रेष्ठ वाणियों को अपने हाथ में रखने हारे राजन् । तू वाणियों से सबको उपदेश करता हुआ उत्तम सुत्पप्रद होता हुआ आ और हमें प्राप्त हो ।

ओ प॒रि॑ अ॒ग्ने शृ॒णु॒हि त्वमी॑च्छिता॒ दे॒वेभ्यो॑ ब्र॒व॒सि य॒क्षिये॑भ्यो
रा॒ज॒भ्यो य॒क्षिये॑भ्यः । यद्ध॒ त्याम॑द्भि॒रोभ्यो॑ धे॒नुं दे॒वा अ॒द॒त्तन॑ ।
वि तां दु॒हे अ॒र्य॒मा क॒र्त॒री स॒र्वा ए॒य तां वे॒द मे स॒न्ना ॥ ७ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! तू स्तुति योग्य और प्रार्थित होकर हमारे कथनों को अच्छी प्रकार सुना कर । तू यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपामना में लगे दानशील पुरुषों और बड़े २ यज्ञों के करने में समर्थ तेजस्वी राजाओं के हित के लिये भी उपदेश किया कर । और जिस गोरम वाली गौ के

समान ज्ञान आनन्दरस देनेवाली वाणी को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन तपस्वी पुरुषों को करें, न्यायशील राजा सबके साथ ही कर्त्ता अर्थात् स्वामी के लिये नाना प्रकार से उसका दोहन करे । वह अग्रणी राजा मुझ राष्ट्रजन के हित के लिये वेदवाणी को सबके साथ मिलकर प्राप्त करे और जाने ।
 मो पु वो अस्मदभि तानि पौर्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत
 जारिपुरस्मत्पुरोत जारिपुः । यद्वश्चित्र युगेयुगे नव्यं घोषा-
 दमर्त्यम् । अस्मास्तु तन्मरुतो यच्च दुष्टं दिधृता यच्च दुष्टम् ॥८॥

भा०—हे वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले वीर पुरुषो ! और देशदेशान्तर में जाने वाले व्यापारियो । और ज्ञानेच्छु आलस्य रहित विद्यावान् पुरुषो । वे नाना प्रकार के आप लोगों के सदा से चले आये पौरुष के कर्म और बल, सामर्थ्य और पुरुषोचित कर्त्तव्य हम से कभी दूर न हों । तुम लोगों के सदा काल से चले आये ऐश्वर्य और यश नष्ट न हों । तुम लोगों के नगर और देहादि भी नष्ट न हों । जो आप लोगों का युग युग में कभी नाश न होने वाला नया से नया, संग्रह करने योग्य, वेदवाणी से उत्पन्न होने वाला धन है वह भी हम में स्थापित करो । जो आप का अपार बल है उसे और जो भी दुखों की नाशकारी सामर्थ्य है उसको भी हम में धारण कराओ ।

दृध्यद् ए मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनु-
 दिदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभ-
 यः तेषां पदेन मद्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

भा०—मत धारण करनेवाले को प्राप्त होने वाला, पूर्ण विद्वान्, तेज-
 स्वी ज्ञानी, यज्ञो का प्रिय, मेधावी, तीनों तापो से रहित, और मनन शी-
 ल, वे सभी प्रकार के विद्वान् मेरे मातृजन्म और विद्याजन्म को जानें ।
 देवी पूर्व विद्वान् धनुमद्वृद्ध जन मुझे भी मननशील रूप में प्राप्त करें ।
 उन पूर्वोक्त विद्वानों का विद्वानों और देवगत इन्द्रियों पर वश हो । और

उनमें ही हमारे भी सम्बन्ध हों । और उनके बड़े भारी ज्ञान और प्राप्त करने योग्य प्रतिष्ठापद से और वेदवाणी के उपदेश से मैं सब प्रकार विनीत और शिक्षित होऊँ । मैं वाणी के उपदेश से परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य दोनों के आगे सदा विनयशील होकर रहूँ ।

होता यक्षद्वनिर्नो वन्त वायं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरु-
वारैभिरुक्षभिः । जुगृम्भा दूर आदिशुं श्लोकमद्रेरधुत्मना । अर्वा-
रयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरुसन्मानि सुक्रतुः ॥१०॥

भा०—दाता जिस प्रकार धन को प्रदान करता और धनाभिलाषी उस श्रेष्ठ धन को ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानो, ऐश्वर्यों और अधिकारों को योग्य पुरुषों को देने द्वारा पुरुष वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान ऐश्वर्य और पदाधिकार हमें प्रदान करे, और वन अर्थात् उत्तम विद्यावान् और उत्तम अभिलाषी पुरुष उस वरण करने योग्य पद को ग्रहण करें । वेदवाणी और बृहती भूमी अर्थात् महान् राष्ट्र का पालक, तेजस्वी और मेधावी राजा, बहुत से प्रजाजनो से वरण किये जाने वाले, सहस्रम्मत से चुने गये, कार्यभार को अपने कंधों पर उठा कर राज्यकार्यों के चलाने वाले धुरन्धर पुरुषों और मेघों के समान सुखों के वर्षक पुरुषों द्वारा श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करे । मेघ के दूर से ही सुनने योग्य शब्द को जिस प्रकार हम लोग दूर से ही सुन लेते हैं उसी प्रकार अचल राजा के दूर से ही सुनाई देने वाली आज्ञा और घोषणा को ग्रहण करें । वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष उत्तम कर्मकुशल और उत्तम प्रज्ञावान् होकर, अपने आत्म सामर्थ्य से 'अररि' अर्थात् न देने वाले को दमन करने के साधनों को धारण करे । और वही उत्तम पुरुष बहुत से आश्रयगृहों, भवनों और पदाधिकारों को भी अपने सामर्थ्य से धारण करे ।

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।

अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यक्षभिर्मं जुषध्वम् १।४।२०

भा०—हे विद्वान् जनो । सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त आप लोग जो ग्यारह हो, पृथिवी पर अध्यक्ष रूप से शासन करने के निमित्त भी ग्यारह होकर रहो, और बड़े भारी सामर्थ्य से जलों में निवास करने शारे होकर सासुद्रिक व्यापार और नैना विभाग के लिये भी ११ होकर रहते हो, वे आप लोग इस सुसंगत राष्ट्र और सर्वेश्वर्यप्रद प्रजापति राजा की प्रेम से सेवा करो । अध्यात्म में—दश प्राण और जीवात्मा, दश इन्द्रियां और मन, दश दिशा और सूर्य सब ११, ११ हैं । इति चतुर्थोऽर्ग ॥ इति विंशोऽनुवाक ॥

[१४०]

विंशतिः सोमस्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २ ५, ८ जगती ।

३, ७, ११ विराट्जगती । ६, ८, ९ निचृजगती च । ६ भुरिक् ऋषिः ।

१०, १२ निचृक् ऋषिः पङ्क्तिः ॥ अयोदशैव सफन ॥

वेदिपदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभरा योनिमृग्ये ।

चरैरणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरिथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार वेदी में विराजने वाले, सुन्दर प्रकाशवान्, उत्तम कान्ति युक्त अग्नि को प्रदीप्त करने और बढ़ाने के लिये पोषक काष्ठ और चर प्रदान किया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् प्रजाजन । तू सब पदार्थों का लान कराने वाली भूमि पर राजा रूप में विराजने वाले, तदर्थ प्रिय लगने वाले तेज को धारण करने वाले, उत्तम कान्तिमान् नायक पुरुष के पालन पोषण और वृद्धि के लिये प्राणों के धारक अन्नादि भोज्य पदार्थ को अच्छी प्रकार उपस्थित करो । सूर्य के समान अन्धकार और शोक दूर करने वाले, शुद्ध उद्ध घर्ण के, सुवर्ण चांदी आदि से बने रथ वाले, शुद्ध आपार परिव्र के पुरुष को वस्त्र के समान मान और आदर से भी आच्छादित करो ।

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार दो अरणियों से उत्पन्न होने के कारण 'द्विजन्मा' है । वह तीनों रूपों से वर्तमान खाने योग्य अन्न को प्राप्त कराता है । अग्नि रूप से पक्वान्न को देता है, विद्युत् रूप से जल को और सूर्य रूप से फलादि को प्रदान करता है । वह इस खाने योग्य अन्न को ही एक वर्ष में फिर २ बढ़ा लेता है । वह अन्न सूर्य से भिन्न जाठर अग्नि के मुख से और भिन्न रूप से भौतिक काष्ठान्नि की ज्वाला से भी खाया जाता है । इस कारण वह जलों का वर्णन करने वाला सूर्य ही समस्त प्राणियों के सताप का वारण करने वाला होकर जलयुक्त मेघों को उत्पन्न करता है । उसी प्रकार यह अग्रणी पुरुष भी माता पिता और गुरु शिक्षा दोनों से उत्पन्न होकर द्विज होकर, तीन ऋणों सहित त्रिसूत्र से युक्त होकर रहता है । वह वर्ष में खाने योग्य इस अन्न को बार २ प्राप्त करे और बढ़ावे । और खाये हुए अन्न के समान फिर अपने राष्ट्र के बल की वृद्धि करे । वह दूसरे के मुख से, और दूसरे की जिह्वा अर्थात् वाणी से युद्ध आदि में विजयी होकर, बलवान् राज्य प्रबन्धक होकर, फिर दूसरे जनों से ही शत्रुओं को वारण करने में सक्षम होकर, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के स्वामियों को भी साफ करदे, उनको परास्त करे ।

कृष्णपुनौ वेविजे अस्य सृष्टिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्व ध्वसयन्तं तृपुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार माता और पिता दोनों बच्चे को लक्ष्य करके उसके प्रति सदा आकर्षण या मन विचाव या प्रेम से पूर्ण रहते हैं, और वे उसके सदा साथ रहा करते हैं, और वे दोनों पिता के यज्ञ, हर्ष, कुल, गोत्र को बढ़ाने वाले, आगे जीभ निकालने वाले, गिरते पटते, शीघ्र ही फिमल जाने वाले, सदा सहाय योग्य, रक्षण करने योग्य बालक को लक्ष्य करके

खूब प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजा वर्ग भी एकत्र ही निवास करते हुए, शत्रु दल को गिरा देने और प्रजा के आकर्षण करने के गुणों में व्याप्त होकर भय से कांपते, और दोनों बालक को मां बाप के समान राजा को ही प्राप्त होते और उसकी वृद्धि करते हैं। पिता के बढ़ाने वाले बालक के समान ही उसको भी मुख्य उत्तम वाणी से युक्त शत्रु को नाश करने वाला, शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पद से उखाड़ देने वाला, सखा या सघ्न शक्ति का आश्रय राष्ट्ररक्षक जानकर आश्रय लेते हैं।

मुमुक्षोः मनवे मानवस्य ते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।

असमना अजिरासो रघुज्यो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४॥

भा०—समस्त मानव जगत् को अपनाने वाले ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये, अपने को संसार बंधन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष ही उपयुक्त होते हैं, वे ही उस परमेश्वर की उपासना में लगा करते हैं। वे तीव्र वेग से उपासना के मार्ग पर चलते हैं, भूमि में हल चलाने वाले पुरुषों के समान तपस्या द्वारा अपने कर्मबंधनों को अन्त कर देते हैं, अन्यो से असाधारण चित्त और ज्ञान वाले होते हैं, निरन्तर प्रयत्नशील और साधक धारणों और विक्षेपक मलों को उखाड़ फेंकने में यत्नशील होते हैं, तीव्र वेग वाले तथा सन्मार्गों में वेग से जाने वाले, इस मार्ग पर शीघ्र गति से चलते हैं।

आदरय ते धृतरथन्तो वृथेरते कृष्णमभवं महि वर्षः करिंक्रतः ।

यत्सो मदीमवन्ति प्राभि मर्मैशदभिश्च सन्स्तुनयन्नेति नानन्दत् ॥५॥

भा०—उसके पश्चात् जो मुमुक्षु जन, पापमय मलिन कर्माशय या मिथ्याज्ञान या विनाश करते और दृढ़ भारी अव्यक्त धरने योग्य आत्म-स्वरूप को साक्षात् कर लेते हैं, वे इस परमेश्वर को अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि जो पुरुष सर्वतोभावेन, उस महान् सर्वरक्षक को प्राप्त हो जाता है, पर आधात्मन या हृदय की शक्ति को प्राप्त हुआ, और

मेघ के समान उत्साह से गर्जता हुआ, और सिंह के समान नाद करता हुआ, अति उत्साहवान्, निर्भय होकर परम पद को प्राप्त होता है।
इति पञ्चमो वर्गः ॥

भूपुत्र योऽधि बभूवु नमन्ते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।

श्रोज्जायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥

भा०—जो प्रधान अग्रणी पुरुष प्रभु होकर राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजाओं के बीच में अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ और सामर्थ्यवान् होता हुआ अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, और यज्ञ द्वारा बनी धर्म दाराओं में मन्त्रोच्चारण करते हुए पति के समान राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को गर्जना करता हुआ प्राप्त होता और जो पराक्रमी होकर विस्तृत भूमियों, प्रजाओं सेनाओं को सुशोभित करता है, वह भयकर बड़े दुर्दान्त साड के समान अति भयंकर, तथा शत्रुओं के वश में न आकर शत्रुओं का नाश करने वाले शस्त्रास्त्रों और सैन्यों का बराबर सञ्चालन करे ।

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति ज्ञानन्नेव जानतीर्नित्य आशये ।

पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्षः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

भा०—वह अग्रणी अपने राज्य को भली प्रकार विस्तृत करने वाला और विविध उपायों से विस्तृत करता हुआ भूमि को ग्रहण करे और ज्ञानवान् होकर निरन्तर विदुषी प्रजाओं में सन्तुष्ट करे । वे ज्ञानममृद्ध विदुषी प्रजाएं असाधारण देव अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी राजा के तेजस्वी रूप को प्राप्त होती और बार २ बढ़ती हैं । पालन करने वाले माता पिता के अभिलाषा योग्य और भिन्न २ रूप वाले के पुत्र को जिस प्रकार विदुषी स्त्रियां प्राप्त करतीं और पुनः सन्तान की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार वे प्रजाएं भी पालन करने वाले राजा और राजवर्ग के हित के लिये परस्पर मिलकर विशेष स्वरूप को प्रकट करती हैं ।

तमश्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वस्तिस्थुर्ममृषीः प्रायत्रे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥

भा०—अग्रगण्य उत्तम लुकेशी स्त्रियां जिस प्रकार पति को प्राप्त करते ही उनके विरह में मरती हुई भी, पुनः आते हुए पति के लिये उठकर खड़ी हो जाती हैं, और विद्या को प्राप्त करने हारा पुरुष जिस प्रकार उन स्त्रियों की जीर्ण दशा या जीवन नाश को दूर करता हुआ उनको प्राप्त होता है, और उन्हें जीवन पुनः देता है, उनको पुनः हर्षित, प्रशुद्धित कर देता है, उसी प्रकार आगे बढ़ने वाली श्रेष्ठ प्रजाएं, क्लेशों में पंसी हुई उस उत्तम अग्रगण्य नायक को निश्चय ही भली प्रकार प्राप्त करती हैं । और वे मरती हुई भी आते हुए राजा के आदर और वृद्धि के लिये चार २ उठ खड़ी होती, उनका आदर करती हैं । पुरुष सिंहनाद करता हुआ या प्रजा को शिक्षा देता हुआ उन प्रजाओं की जरा को दूर करता हुआ उनको प्राप्त हो । उत्तम प्राण और न नाश हुए जीवन और जीवित प्राणियों से समृद्धि करता हुआ उनको प्राप्त हो ।

प्रथीवासं परि मातृ रिहन्नाहं तुविग्रेभिः सत्त्वभिर्याति वि ज्ञयः ।
पयो दधत्पृष्ठते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनरिह ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार बालक माता की गोद में उसके वंश को अपने मुख में पावता हुआ, वेगवान् होकर अति शब्द युक्त सात्विक विविध ध्येयों से गमन करता है, और वह पदार्थों का आस्वाद लेता हुआ चरण से पटने वाले घटे घाटक की अवस्था को धारण कर लेता और बड़ा हो जाता है, दुहिमती माता उसके पीछे रहती हुई उसके साथ रहा करती है, उसी प्रकार अग्रणी राजा भी उसका मान आदर करने वाली शशिनी माता के वंश के समान पालन पोषण करने योग्य ऐश्वर्य का आस्वाद करता हुआ, राज्य पर आक्रमण करने में वेगवान् और विजय-शील होकर, पटुत से उपदेश करने वाले दीर्घवान् दृढवान् वीर और विह्वान्

पुरुषों सहित विविध देशों पर प्रयाण करे, उनका विजय करे। वह सब कालों में पृथ्वी के ऐश्वर्य का भोग करता हुआ ज्ञानवान् पुरुष के उपकार के लिये ही अपना पूर्ण जीवन धारण करे। उसके अनुकूल वेग से जाने वाली और सदा उसके अनुकूल चलने वाली, अथवा वार्त्तावृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा अनुकूल संघ बना कर रहे।

अस्माकमग्रे सघवत्सु दीदृष्ट्यथ श्वसीवान्वृषभो दमूनाः।

अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वभैव युत्सु परिजभुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे तेजस्विन् नायक ! तू हमारे ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न और निष्पाप पुरुषों के बीच में प्रकाशित हो। जितेन्द्रिय होकर प्रजा के और शत्रुओं के दमन करने में भी दन चित्त होकर, बालकों से युक्त उत्तम प्रजाओं को प्रकाशित कर। और सग्रामों में शत्रुओं को पुनः दूर करता हुआ कवच के समान प्रजाओं की रक्षा कर। इति पद्यो वर्गः ॥

इदमग्रे सुधितं दुधित्वादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।

यत्ते शुक्रं तन्वोःरोचते शुचि तेनारमभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! दुःस्व मे प्राप्त किये और कष्ट मे सुरक्षित प्रिय धन से भी बढ़कर जो यह सुख से धारण करने योग्य हमारा मन है वह तुझे प्रिय हो। और जो तेरे राष्ट्र शरीर का शुद्ध तथा पवित्र तेज चमकता है, उससे तू हमें रमण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करा।

रथाय नवमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पृथ्वीं रास्यग्रे।

अस्माकं वीरा उत नो मघोनो जनाश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् पुण्य रमण करने और वेग से जाने के लिये और गृह तक पहुँचने के लिये, स्थिर चापुओं वाली और दृढ़ पैर या लंगर वाली नाव को तैयार करता है उसी प्रकार हे अग्रणी राजन् ! रमण करने के लिये और हमारे गृह बसा कर रहने के लिये हमें तू नित्य शत्रुओं

से बचाने वाली, पेरोँ चलने वाली, शत्रुओं को दूर हटा देने वाली सेना को प्रदान कर । जो हमारे वीर पुरुषों को और राष्ट्रवासी हमारे धनसम्पन्न जनों को भी सकटों से पार करे । और सुखदायी हो । अध्यात्म में—पद्धती नौ यह देइ है । आत्मा के रमण करने और बन्धन में रखने दोनों प्रयोजनों के लिये है । वह हमें प्राणों को और आत्मा को भी भवसागर से पार उतारती और सुख प्राप्त कराती है ।

अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्था द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वर्गृताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहिपं वरमरुयो वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् । तू हमें उत्तम उपदेश ही प्रदान किया कर । आकाश और पृथिवी, समुद्र और नदियाँ, ये सब अपने ही बलों से प्रेरित होकर जिस प्रकार भूमि और इन्द्रियो के हितकारी और यवादि के योग्य क्षेत्र को प्राप्त होकर, वृष्टि और उत्तम अन्न को प्रदान करती हैं, और अरुण कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार अभिलाषा करने और सब को प्रेरने वाले वरणीय प्रकाश को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के समान एक दूसरे के उपकारक राजा और प्रजा, समुद्र के समान गम्भीर और प्रजा को परस्पर बांध लेने में समर्थ महापुरुष, अपने सहयोगी बन्धु बान्धवों से उद्यमशील होकर, गौओं के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेद पाणी से प्राप्त ज्ञान को और यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र को प्राप्त होते हुए, चिरकाल तक बहुत दिनों तक प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरक वरण करने योग्य उत्तम पद अधिकार को प्राप्त करें । और उपाओं के समान कामनीय गुणों से युक्त नव युवतियाँ अभिलाषानुकूल वरण करने योग्य प्रिय पुरुष को प्राप्त करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१४१]

दीर्घतमा ऋषि ॥ ऋग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६, ११ जगती । ४, ७, ८, १० निचृज्जगती । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ९ शुरिक त्रिष्टुप् । १३ शुरिक पति । १५ स्वराट् पतिः ॥ त्रयोदशर्च सूक्तम् ॥

वळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहस्रो यतो जनि ।
यदीमुष हरेते साधते मतिऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥

भा०—प्रकाशमान अग्नि का पदार्थों को परिपक्व करने का ताप पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला होता है । वही तेज शरीर की रक्षा पोषण और वृद्धि के लिये भी धारण करने योग्य है यह बात इस प्रकार से सर्वथा सत्य है । अग्नि का तेज जिस बल या शक्ति से उत्पन्न हुआ करता है इसी कारण से वह शरीर में भी बल को उत्पन्न करता है । मनन करने वाली बुद्धि भी इसको ही सब प्रकार से आश्रय करती है, और उसकी ही सावना है अर्थात् वह भी तेज से ही उत्पन्न होकर भीतरी तेज को उत्पन्न करती है । दूध वाली गौएं जिस प्रकार अपने बत्स को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी समान रूप से प्रवाहित होती हुई उस महान् अग्नि को तेज रूप मूल कारण तक ले जाती हैं । उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष का दुष्टों को संताप देने वाला तेज भी बल से ही उत्पन्न होता है । और उसका वह दर्शनीय तेज सचमुच एक बल है । बुद्धि भी उसको स्वीकार करती और उसको प्रमाणित और अधिक बलशाली बनाती है । एक समान मार्ग से जाने वाली ज्ञान की वाणियां भी उसी तक हमें पहुंचाती हैं ।

पृचो वपुः पितृमान्निन्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिंवासु मातृपु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दाहसे दशप्रमर्ति जनयन्त योषणाः ॥ २ ॥

भा०—जीवात्मा की तीन दशाएं— [१] इसका सेचन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में मूल कारण है उसको उत्तम अन्न खाने वाला पुन्य सदा धारण करता है । और जो उसका स्वरूप सातों प्राणों या शिरोगत सातों इन्द्रियों में कल्याणयुक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है वह इसका द्वितीय स्वरूप है । और जो वीर्यमेका पुरुष के पुत्र कामना को पूर्ण करने के

लिये स्त्रियां जिस दत्तों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक को जनती हैं वह उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है । (२) इसी प्रकार अज्ञादि पालन के साधनों वाला पिता इस पुरुष के पोषणीय देह को दाल्यकाल में पुष्ट करता है । दूसरा कौमार काल का देह है जिस को सातों सुखकारी पदार्थों को धारण करने वाली माताओं के बीच में पाला जाता है । और फिर यौवन में इस सेवन-समर्थ श्रेष्ठ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है, कामना पूर्ति के लिए जिस दश धर्म रुक्षणों से सम्पन्न युवा पुरुष को प्राप्त कर स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करती हैं ।
नियेर्दो धुभान्महिषस्य वर्षस ईशानासुः शर्वसा क्रन्तं सूरयः ।
चट्ठीमनु प्रदिवो मध्वं आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३॥

भा०—इस जीव को अधिक सामर्थ्यवान् विद्वान् लोग, बड़े रूप-पान् देह के बन्धन से निर्मुक्त करते हैं । और मधुर रस के प्राप्त करने के निमित्त हृदय के भीतर विराजमान जिस सनातन आत्मा को प्राण वायु, अग्नि को पवन के समान, प्रज्वलित करता है, उसका साक्षात् कर ज्ञान करते ।

प्र यन्पितुः परमान्नीयते पर्या पृच्छुधो वीरुधो दंसु रोहति ।

उभा यदस्य जुनुष यदिन्वत् आदिद्यविष्टो अभवद् घृणा शुचिः ॥४॥

भा०—वह जीव आत्मा वैसा है ? जो जीव सर्वोत्कृष्ट अन्न के सार से प्रपट होता है, और जो अज्ञादि के द्वारा पुष्ट होने वाले गृहों में वृद्धि को प्राप्त होता है, और दोनों ही पुरुष जब इस जीव के जन्म के लिये यत्न करते हैं, तभी वह बलवान् तेजोमय शुद्ध कान्तिमान् आत्मा प्रकट होता है ।
आदिन्मातृराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा रुष्टसनाजुष्टो नि नव्यसीप्ववरासु धावते ॥५॥२॥

भा०—आत्मा का ही वर्णन है । वह जीव माताओं के गर्भ में प्रथम प्रविष्ट होता है, अनन्तर उनके बीच में वह किसी प्रकार भी पीडित न

होता हुआ बहुत अच्छी प्रकार शुद्ध रक्त से सिक्त होकर विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह जीवात्मा सनातन काल से चला आया, और पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त करता रहा, उसी प्रकार अब के काल में विद्यमान नये काल को अर्थात् अब की माताओं में भी नियमपूर्वक जन्म को प्राप्त होता है, अर्थात् जीवोत्पत्ति-क्रम अनादि काल से एक समान ही है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पृथ्व्यां स ऋजते ।
देवान्यत्कृत्वा मज्मना पुरुषु नो मर्त्तेशं स विश्वधा वेति धार्यसे ॥ ६ ॥

भा०—जीवात्मा का ही पुनः वर्णन है। जब संपर्क करते हुए कामना की प्रपणाओं में ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को साधते हैं, तब ही लोग भोक्ता जीव को पुत्र रूप से प्राप्त करते हैं। वह जीव बहुतों द्वारा वर्णित होता है, और ज्ञान और बल से प्राणों को, और स्तुति योग्य उत्तम मरण शील देह को धारण पोषण करने के लिये प्राप्त होता है।
वि यदस्याद्यज्ञतो घातचोदितो ह्यारो न वक्त्रा जिरणा अना-
कृतः । तस्य पतमन्दक्षुपः कृष्णजहसः शुचिजन्मनो रज्ज आ
व्यध्वनः ॥ ७ ॥

भा०—जीव की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं—जब वह प्रसव योग्य हो जाता है तब वह प्राण वेग से प्रेरित होकर, कुटिल मार्ग से आता हुआ, अति पीडित होकर, वक्ता पुष्प जिस प्रकार मौन को छोड़ देता है उसी प्रकार वह भी जेग को छोड़ देता है। माता को पीडा और मंताप देने वाले, खिचाव तनाव के मार्ग में स्थित, शुद्ध जन्म वाले उस जीवात्मा के मार्ग में रविर या राजसू भाव भी आता है।

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो यामङ्गेभिररूपेभिरीयते । आदस्य
ते कृष्णासो दक्षि सूर्यः शूरम्येव त्वेयथादीपते वयः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ वा विमान रज्जुओं और कीलादि के बंधनों से

सैयार किया जाकर आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी निपेक आदि संस्कारों द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर इस पृथ्वी पर आता, ज्ञानमय प्रभु और आचार्य से विवेक दीप्ति को प्राप्त होकर कर चरण आदि अवयवों और योग के साधनाङ्ग प्राणायाम आदि से इस तेजोमय परमेश्वर को प्राप्त होता है। बाद में शूरवीर के समान अति बलवान् इस जीव के वे उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, दुःखों के काटने वाले, हंस पक्षियों के समान विशुद्ध ज्ञानी पुरुष, अपने ज्ञान प्रकाश से इसे प्राप्त होते और तब वृ पापादि बन्धनों को दग्ध कर देता है।

त्वया ह्यग्रे वरुणो धृतवतो मित्रः शशद्रे अर्यमा सुदानवः ।

यत्समिन् प्रतुना विश्वथा विभुरान्न नेमिः परिभूरजायेथाः ॥१॥

भा०—व्यापक परमेश्वर का वर्णन। हे अग्रणी ! तेरे ही बल से सब पापों को धारण करने वाला सर्वश्रेष्ठ सूर्य, और प्राण के समान प्रिय चन्द्र, और उत्तम सुखों के देने वाले दिन रात, और गमनेशील प्राणों के नियामक वायु, ये सब गतियुक्त होकर कार्य करते हैं, जो सब प्रकार अरों पर पक्रधारा के समान अपने महान् क्रियासामर्थ्य, शक्ति और ज्ञानसामर्थ्य से समस्त जनों और प्राणों पर सर्वशक्तिमान् स्वामी होते हैं।

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वेसि ।

त्वा नु नव्यं सहस्रो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१॥

भा०—हे नायक ! तू स्तुतिशील तथा सवन या अभिषेक करने वाले प्रजाजन को दान देने के लिये उत्तम पुरुषों के हितकारी उत्तम पदों को प्राप्त कर। हे युवक ! हे उत्साहवन् ! हे भूमिरत्न के स्वामिन् ! तुझ परमेश्वर में ऐश्वर्य के समान सेवनीय, एवं बल के कारण स्तुति योग्य शक्त जानें। (२) आत्मा के पक्ष में—यह परमात्मा ज्ञान साधना का

वाले या स्तुतिकर्ता उपासक को सुखरूप से प्राप्त होता है; उसी स्तुत्य का हम ध्यान करें।

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूतसुं भगुं दक्षं न पृचासि घर्णसिम् ।
रश्मीरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमूत आ च सु-
क्रतुः ॥ ११ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य के समान, उत्तम पुरु-
षार्थ, धर्म, अर्थ, काम को और इन्द्रियों और मन को दमन करने वाले
विद्यादि के धारण करने वाले, सेवन करने योग्य ऐश्वर्ययुक्त अपने स्वरूप
को प्रकट करता है। सूर्य जिस प्रकार किरणों को और सारथि जिस
प्रकार अश्व की वागों को वश में करता है उसी प्रकार इहलोक और
परलोक दोनों जन्मों को तू नियम में रखता है। तू विद्वानों के और प्राणों
के बीच स्तुत्य रूप को प्राप्त करता है। सत्य व्यवहार के निमित्त तू
शोभन कर्म करने वाला और उत्तम ज्ञानवान् है।

उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।

स नो नेपन्नेपनमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अचछु ॥ १२ ॥

भा०—आत्मा का वर्णन है। वह हमारा उत्तम रीति से चमकने
वाला प्रकाशस्वरूप आत्मा, कर्मफल भोक्ता जीव, सब विद्याओं और
ज्ञानों को ग्रहण करने वाला, और आल्हादक चन्द्र के समान प्रकाश-
स्वरूप, अति हर्षकर और उत्तम सुना जाता है। वह अमर, ज्ञानवान्
आत्मा हमें नायक प्राणों द्वारा देह में बसने योग्य और उनके द्वारा देह
में बसने हारा होकर, सुख प्राप्त करने योग्य उत्तम पद तक ले जावे
और उसका साक्षात् करे।

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरकैः साम्राज्याय प्रतुरं दधानः । श्रमी
च ये मधवानो वयं च मिहुं न सूर्यो अति निष्टन्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

भा०—देह के अंगों में व्यापक जीव, उत्तम कर्मों का अनुयाय

करने वाले और राम की साधना वाले, और अर्चनाशील तेजस्वी पुरुषों से नित्य स्तुति किया जाता है। वह सन्नाट परम प्रभु के अद्वितीय पद के लाभ के लिये, भवसागर को पार करने वाले ज्ञानानुष्ठान को धारण करता है। और जो ये ऐश्वर्यवान् हैं वे और हम सब, नित्य स्तुति कर उसको प्रसिद्ध करें, उसके गुणों को प्रकट करें। इति नवमो वर्गः।

[१४२]

दीर्घन्मा ऋषिः ॥ देवता—१, २, ३, ४ अग्नि । ५ बर्हिः । ६ देव्यो दारः । ७ उपासानका । ८ दैव्यौ होतारौ । ९ सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रश्च ॥ छन्द.—१, २, ५, ६, ८, ९ निष्टुष्टुप् । ४ स्वरानुष्टुप् । ३, ७, १०, ११, १२ अनुष्टुप् । १३ भुरिगुणिक् ॥ त्रयोदशचं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्तुचे ।

तन्तुं तनुष्व पुर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् । जिस प्रकार अग्नि प्रकाश देने वाले किरणों को स्वयं और अन्यो को भी प्रदान करता है, और सुक् नाम पृताधार पात्र को धामने वाले और सोम वाले यजमान के हितार्थ यज्ञ का सम्पादन करता है, उसी प्रकार हे अग्नी पुरुष । तू भी खूब रिषा आदि शुभ गुणों से प्रकाशित और तेजस्वी होकर उत्तम गुणों को धारण कर और विद्वान् पुरुषों को प्राप्त हो । और आज संयत वीर्य वाले, शिष्यो और पुत्रों को उत्पन्न कर उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले, ज्ञान और धन सौपने वाले वृद्ध पिता के लिये पूर्व पुरुषों से प्राप्त प्रजातन्तु और शिष्यतन्तु को विस्तृत कर ।

पुतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।

पुष्टं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषे ॥ २ ॥

भा०—देह को न गिरने देने से जाठर अग्नि 'तनूनपात्' है । वह

जिस प्रकार स्तुतिशील हविदाता पुरुष के घृत और घीहि आदि अन्न से युक्त यज्ञ को सम्पादित करता है, उसी प्रकार हे प्रजा के शरीरों और विस्तृत राष्ट्र को न गिरने देने वाले राजेन् । तू कष्टों को पार करने वाले, अपने को तेरे प्रति समर्पण कर देने वाले मेरे जैसे मेधावी जन के, जल से पूर्ण और अन्न से समृद्ध राष्ट्र यज्ञ को संचालित कर ।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।

नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यक्षियः ॥ ३ ॥

भा०—पुरुषों से स्तुति करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष शुद्ध आचारवान्, अग्नि के समान अन्यों को पवित्राचारी बनाने हारा, आश्चर्यजनक, दानशील, अन्य दानशील पुरुषों के बीच में स्वयं सबसे श्रेष्ठ दानशील, सुसंगत राज्य को, मयुर अन्न, मयुर वचन तथा मयुर जल से तीनों प्रकार से सेचन करे ।

ईक्षितो अग्न आ बहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।

इयं हि त्वा मनिर्ममाच्छो सुजिह्व वृच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम मयुर वाणी वाले विद्वन् । तू स्तुति किया जाकर इस लोक और इस जन्म में प्रीति कारक, आश्चर्यकर ऐश्वर्य को धारण कर और प्राप्त कर । तुझे मेरी यह उत्तम बुद्धि भेली प्रकार उपदेश की जावे ।

स्तृणानासो यतस्तुचो बहिर्यज्ञे स्ववृगे ।

वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सुप्रथः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में सुक् आदि पात्रों को उठाए हुए यज्ञकर्त्ता लोग कुश विछाते हुए 'इन्द्र' अर्थात् परमेश्वर के व्यापक सुख को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको शत्रुजन नष्ट न कर सकें ऐसे राष्ट्र में लोगों को नियम में रखने में समर्थ उत्तम शासक जन, बड़े भारी राष्ट्र को आच्छादित करते हुए, शत्रुहन्ता राजा के लिये विद्वानों विजयेच्छुक वीर-

पुरुषों ने खूब परिपूर्ण, खूब विस्तृत, सुखकारक भवन या दुर्ग आदि बनाते हैं ।

वि श्रयन्तासृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।

पायकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसृश्रतः ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—घरों में बड़े २ द्वार विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिये विविध प्रकार से खड़े किये जाय । वे द्वारों वाले गृह सत्याचरण के बढ़ाने वाले हों, द्वार पवित्र रखे जाय, सब द्वारा सृष्टि के योग्य हों, और विलक्षण हों । इति दशमो वर्गः ॥

अ भन्दमाने उपात्तके नम्रोपासा सुपेशसा ।

यत्नी ऋतस्य मातरा लीदतां बर्हिषा सुमत् ॥ ७ ॥

भा०—रात और दिन जिस प्रकार सबको सुख देने वाले और उत्तम रूप वाले हैं, उसी प्रकार कल्याणकारक, रात्रि और उषा के समान एक दूसरे के अति समीप रहते हुए, सुन्दर रूप और अंगों वाले, सत्य ज्ञान के जानने वाले माता पिता बड़े पूज्य होकर सदा हमारे समीप आवें, और उत्तम हर्षदायक आसन पर आकर विराजें ।

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।

यस नो यज्ञतामिमं सिधमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

भा०—अति हर्ष उत्पन्न करने वाली वाणी वाले, निरन्तर उद्यमशील, ज्ञान के दान और ग्रहण करने वाले, विद्वानों में प्रसिद्ध और उत्तम गुणों से धारण करने वाले, दरदरी विद्वान् हमारे इस सब कार्यों के साधक, वाग्व्याजों से प्रदान करने वाले श्रेष्ठकर्म को सुसगत करें ।

शुचिर्देव्यपिता होत्रा मरुत्सु भारती ।

इता सरस्वती मही बर्हिः लीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

भा०—जो पितामहों में प्रसन्न, शुद्ध, शिष्य परम्परा से प्रसन्न करने योग्य दिव्यमयी वाणी है, और जो धीर प्रजाजनों में प्रजापालक राजाओं

की वाणी है, और जो ईश्वरोपासना योग्य, और प्रशस्त ज्ञान वाली बड़ी भारी उत्तम वेद वाणी है, वे सब श्रेष्ठ कर्म तथा उपासनादि के योग्य हैं। वे सब वृद्धिशील पुरुष और विद्यार्थी जन में विराजें। अथवा होना ऋग्वेद, भारती यजुर्वेद, इला सामवेद, सरस्वती अथर्ववेद।

तन्नस्तुरी॑प॒मद्भु॑तं पु॒रुवारै॑ पु॒रु॒त्मना॑ ।

त्वष्ट्रा॑ पोषा॑य वि॒ष्य॑तु रा॒ये नाभा॑ नो अ॒स्मयुः॑ ॥ १० ॥

भा०—हमारा प्रिय शिल्पी हमें पुष्ट करने के लिये और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमारे केन्द्र में आकर विराजे। वह हमें अति शीघ्र रक्षा वाले, आश्चर्यकारी, बहुत अधिक और पर्याप्त साधन से और स्वयं अपने सामर्थ्य से प्रभूत ऐश्वर्य प्राप्त करावे।

अ॒व॒सृ॒जन्नु॒प॒ त्मना॑ दे॒वान्य॑क्षि वनस्पते ।

अ॒ग्नि॒र्ह॒व्या सु॑पू॒दति॑ दे॒वो दे॒वेपु॑ मे॒घिरः॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे वनस्पति अर्थात् महावृक्ष के समान अपनी छाया में अपने आश्रितों को शरण देने हारे। तू अपने सामर्थ्य से विद्या और धन के अभिलाषी उत्तम विद्वान् पुरुषों को अपने समीप बुला कर उन्हें ऐश्वर्य प्रदान कर। ज्ञानवान्, दानशील और बुद्धिमान् पुरुष विद्वान् पुरुषों में देने योग्य धन आदि पदार्थ सदा दिया ही करता है।

पु॒ष॒एव॑ते॒ म॒रु॒त्व॑ते वि॒श्वदे॑वाय वा॒यवे॑ ।

स्वाहा॑ गाय॒त्रवे॑प॒से ह॒व्यमिन्द्रा॑य क॒र्त॒न ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग पोषण करने वाले, विद्वानों, वैद्यप्रजा और वीरसैनिकों के स्वामी, विजिगीषुओं के स्वामी, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले, ज्ञान करने वाले के रक्षकरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले और प्रभु के लिये, उत्तम सत्य आचरण और मन्कार द्वारा, उत्तम वचन सत्कार और अन्नादि, पदार्थ उपस्थित करो।

स्वाहाकृतान्या गृह्युप हव्यानि वीतये ।

इन्द्रा गृहि श्रुधी हव्रं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्यावन् आचार्य ! आप उत्तम वाणी और आदर द्वारा सुत्तन्पादित अन्न आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये आओ । आओ ओर उत्तम वचन श्रवण करो । लोग यज्ञ में और परस्पर सत्संग ओर उत्तम कर्म के अवसर पर तुम्हें बुलाते, और तुम्हें ज्ञानश्रवण करने की प्रार्थना करते हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१४३]

दीर्घतना ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृज्जगती । २, ३, ४,

विषाट्जगती । ४, ६ जगती च । ८ निचृत् विष्टुप् ॥ अष्टर्च सूक्तम् ॥

प्र नय्यसी नव्यसी धीतिमन्नये वाचो मति सहसः सुनवे भरे । अपां नपाधो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसी-
ददृत्विर्यः ॥ १ ॥

भा०—जो आप पुरुषों के बीच कर्माचरण में पतित नहीं होता और जो गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिए बसने वाले छात्रों के सहित गुरु की सेवा शुध्दया से प्रसन्न करने वाला, ज्ञान का स्वीकार करने हारा, सत्य ज्ञान को धारण करने वाले गुरुओं के अधीन रहने वाला होकर विनय से पृथिवी पर विराजता है, ऐसे अंग २ में विनय से झुकने वाले वाणी और दत्त के सम्पादन करने वाले शिष्य के लिये मैं आचार्य बल सम्पादन करने वाली और नये से नया ज्ञान सम्पादन करने वाली तथा धारण पोषण करने वाली अध्ययनक्रिया और ज्ञान का अच्छी प्रकार उपदेश करूँ ।
स जायमानः परमे व्योमयाविरगिरभवन्मातुरिष्वने । अस्य
क्रान्ता समिधानस्य मृज्मन्ता प्र तावा शोचिः पृथिवी अरोच-
यत् ॥ २ ॥

भा०—वह ज्ञानवान् विनयशील विद्यार्थी सावित्री-माता के पद पर चलने वाले, माता के समान अपने गर्भ में बालक को लेने हारे आचार्य की यशोवृद्धि और हर्ष के लिये, सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रक्षा करने वाले एवं विशेष रूप से पालने योग्य 'ओ३म्' अर्थात् परब्रह्म की शरण में और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान में उत्पन्न होता हुआ अपने उत्तम गुणों से प्रकट हो। तेज से चमकने हारे इसकी उत्तम प्रज्ञा से और कर्म सामर्थ्य से और बल से उसका तेज और प्रभाव, आकाश और पृथिवी प्रकाशित कर दे।
 अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दर्शः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
 भात्वक्षसो अत्यकुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम कान्तिमान् सूर्य की किरणें कभी नाश को प्राप्त नहीं होती, और जिस प्रकार तेज से बलशाली सूर्य के कभी नष्ट न होने वाले किरण सदा वेग वा प्रवाहों के समान बढ़ने वाले होते हैं, वे अन्धकारमय रात्रि वेलों को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं, उसी प्रकार उत्तम रीति से सब पदार्थों को ज्ञानदृष्टि से देखने वाले, उत्तम रूप या शुभ शोभा से युक्त, उत्तम कान्तिमान्, इस आचार्य और विद्वान् के ज्ञानप्रकाश कभी नाश को प्राप्त नहीं होते, और अवर्णनीय रूप से उत्तम होते हैं। दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अविनाशी, तथा वेग से बहने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञानप्रवाह, कभी न सोते हुए अज्ञान रात्रि को पार कर प्रकाशित होते हैं।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नामा पृथिव्या भुवनस्य सृजमना।
 अग्निं तं गीर्मिहिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥

भा०—ज्ञानों और ऐश्वर्यों के जिम स्वामी को, पाप और कर्म बन्धनों को भून देने वाले तपस्वी लोग, पृथिवी और समस्त जगत्तर संसार के मध्य में, केन्द्र में, सबको बल से सञ्चालित करने वाला मुख्य-

बल रूप जानते और बतलाते हैं, हे पुरुष ! उस सर्वप्रकाश परमेश्वर की वाणियों से स्तुति कर । जो कि अकेला अपने घर में स्वामी और शरीर में आत्मा के समान, वैसे हुए इस महान् ब्रह्माण्ड के दमन करने में सर्वश्रेष्ठ राजा के समान विराजता है ।

न यो वराय मरुतामिव स्वन्नः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशानिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरन्ति भवति योधो न शत्रून्स वना
न्यृञ्जने ॥ ५ ॥

भा०—वेग वाले वायुओं का शब्द जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, और सेनापति के आज्ञावचन से प्रेरित होकर छूट निकली सेना जिस प्रकार रोकी नहीं जा सकती, और जिस प्रकार मेघ से निकली विषुन् रोकें नहीं रुक सकती, उसी प्रकार जो अग्रणी रोका नहीं जा सकता, योद्धा पुरुष जिस प्रकार शत्रुओं का तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है और जिस प्रकार अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से जगलों को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पुरुष अपने तीक्ष्ण तपः साधनों से सेवने योग्य विलासों का नाश करे और, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्त शत्रुओं को अपने वश करे ।

पुविर्नो अग्निरुचयस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
छोदः पुवित्तुहुज्यात्स्रातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया
गृणे ॥ ६ ॥

भा०—विनीत विपार्थी हमारे बहुत से उत्तम बचनों या आज्ञावचनों का पाठ्य और प्राप्त करने का इच्छुक हो । वह गुरुओं के अधीन रहकर अन्य सहाय्यार्थी मल्लकारी गण के साथ अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करे । वह आप्तार्थ द्वारा नित्य प्रेरित होकर ज्ञान और कर्म का आचार-शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिये, बहुत अधिक दाधक कारणों

का नाश करे । तब उस शुद्ध पवित्र स्वरूप वाले शोभन मुख शिष्य को आचार्य इस प्रज्ञा और कर्म से उपदेश करे ।

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्पदमग्नि मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेपु दीद्यच्छुक्रवर्णमुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

भा०—अच्छी प्रकार तेज वा वीर्यरक्षा के द्वारा तेजस्वी होता हुआ शिष्य, घी को प्राप्त होकर चमकने वाले अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाशक, और सत्य ज्ञान और वेदज्ञान के धुरन्धर आचार्य को, मित्र या सुहृद् के समान प्राप्त करे । वह शिष्य, ज्ञान और तपस्याओं से प्रकाशित होता हुआ बाधक कारणों और पीडाओं से आक्रान्त न होकर, ज्ञानप्राप्ति के अवसरों में और शास्त्रों में चमके । आचार्य हमें विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त वेदवाणी को उद्योगपूर्वक प्राप्त कराए ।

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शुग्मैः ।
अदृग्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥ १२॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाश ! प्रमाद से रहित, कल्याणकारी, शान्ति प्राप्त कराने वाले, रक्षक और पावन कराने वाले, दूसरों से न मारे जाने वाले, होम गर्व आदि से रहित, आंख न झंपकने वाले, सदा सावधान, कर्तव्य पर सदा दृष्टि रखने वाले विद्वान् पुरुषों सहित तू स्वयं भी कभी प्रमाद न करता हुआ हमारी प्रजाओं की सब प्रवृत्तियों से रक्षा कर ।

[१४४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्द—१, ३, ४, ५, ७ निचृज्जगती । २ जगती । ६ मुरिकृपक्तिः ॥ मत्तर्चं मत्तम् ॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्वी दधानः शुचिपेशमं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निसते ॥९॥

भा०—अग्नि-व्रताचरण का स्वरूप । जिस प्रकार अग्नि अपनी शुद्ध रुवाला को ऊपर धारण करता है उसी प्रकार शिष्य शुद्ध प्रज्ञा, शुद्ध कर्म-

वरण को सर्वोपरि मुख्य रखता हुआ इस शिक्षक आचार्य के निर्धारित नियम तथा परमेश्वर के निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। तब व्रत पालन रूप ब्रह्मचर्य के बाद क्या करे ? जो कान्तिमती कन्या इसके सर्वोत्तम तेज आदि गुणों को प्रेम से ग्रहण करती है उस यज्ञ की दक्षिण दिशा में स्थित होकर पति को वरण करने वाली उस स्वयंवरा को स्वयं भी वहिनी वाजू स्थित कन्या द्वारा वरण किया जाकर प्राप्त हो।

अभीमृतस्य द्रोहना अनूपत योनौ देवस्य सद्ने परीवृताः ।

अपामुपस्थे विभृतो यदावसुदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

भा०—जब विद्वान् पुरुष शिष्य होकर, आप्तपुरुषों के समीप उन द्वारा शिष्य रूप में धारण किया जाकर, निवास करे, तब वह अन्न और जलों के समान ही उन आत्मज्ञानरसों का भी पान करे, जिनसे वह ज्ञान-वान् हो, और सब प्रकार से ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले ज्ञानप्रद आचार्य के गृह और विद्याभवन में विद्यावान् आप्त पुरुष भी पित्रुपी माताओं के समान ही प्रेम से उसको सब प्रकार से उपदेश करे।

युयूपत सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।

आही भगो न हव्यः समस्मदा वोळहुर्न रश्मिन्तिसमर्थस्तु सारि ॥ ३ ॥

भा०—माता पिता और आचार्य के कर्तव्यों का विवेक। जब समान दल वाले स्त्री पुरुष या माता पिता या पति पत्नी परस्पर एक दूसरे के लिये समान कामना योग्य पदार्थ को परस्पर मिलाना चाहते हैं, उसका ही परिणाम यह शरीर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार रथ को दोने वाले अश्व वे रासों को अपने नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार हमारा पूज्य आचार्य भी शानों का प्रदान करने द्वारा, उस उत्पन्न बालक को, सब दागधोरो को अपने वश करके, सब उपायों से अपने हाथ में ले।

यमी द्वा सर्वयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलिता युवाजनि पुरु चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४॥

भा०—जिस बालक को दोनों समान रूप से परिपक्व बल वीर्य वाले, मित्र या सखाभूत, एक ही गृह में रहते हुए स्त्री पुरुष, पति पत्नी एक समान पुत्रोत्पादक गर्भाशय में स्थित इसकी नाना प्रकार से परिचर्या करते हैं, उसको पालते पोषते हैं, तब वह दिन और रात पाला जाकर बहुत से मनुष्योचित जीवन के वर्षों को व्यतीत करता हुआ, जरारहित युवा हो जाता है ।

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश विशो देव मतींस अन्ये हवामहे ।
धनोरधि प्रवतु ग्रा स ऋणवत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

भा०—उस सूर्य के समान प्रतापी पुरुष को दसों दिशा निवासिनी प्रजाएं और हम शत्रुसंहारकारी युवा पुरुष, विद्यार्थिजन जिस प्रकार गुरु को ज्ञान प्राप्ति के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रजा रक्षण के लिये बुलाते हैं । और जिस प्रकार धनुष के ऊपर दूर तक जाने वाले बाणों को रखता और शत्रु को लक्ष्य करके चढाई करने वालों से नये २ प्रदेशों को प्राप्त करता और उनको अपने अधीन रख लेता है, इसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष उत्तम ब्रह्मपद को लक्ष्य करके जाने वाले मुमुक्षुओं के साथ मिलकर नये २ ज्ञानों को प्राप्त करे । और धनुष के बल पर बाणों के समान, दूर के देशों को भी प्राप्त करे ।

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव तमना ।
एनीं त एते वृहती अभिथ्रिया हिरण्यग्री वक्वरी वर्हिराशाते ॥६॥

भा०—हे विद्वन् । तू अपने ही सामर्थ्य से ध्रुव के और पृथ्वी के ऐश्वर्य का, पशुपालक के समान राजा हो । ये दोनों शुभ्रवर्ण के बड़े भारी, राजलक्ष्मी से युक्त, हित और रमणीय स्वरूप वाले, स्तुति करने वाले राजा और प्रजावर्ग तेरे से महान् राष्ट्र की आशा करते हैं ।

अग्ने जुःस्य प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुकृतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो ररावः संहृष्टौ पितुर्मो इव
क्षयः ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रसशनीय । हे जलप्रद मेघ के समान सबको अन्नादि
वृत्ति देने हारे । हे मेघस्थ जन्म से उत्पन्न विष्णु के समान सत्यज्ञान
दारा प्रसिद्ध । हे शोभन कर्म और प्रज्ञा वाले विद्वन् । तू उस वेदोपदेश
का मेवन कर और उने पुन २ चाह । तू सब प्रकार से प्रत्येक पुरुष से
सत्कार करने योग्य है । तू दर्शनीय और यथार्थ तत्त्वज्ञान में रमण करने
वाला, और मन्द्रक् ज्ञान दृष्टि के हो जाने पर अन्यो को भी उपदेश
करने वाला होकर, अन्न से भरपूर भवन के समान सुख में निवास करने
और आश्रय करने योग्य है ।

[१४५]

दीर्घतना ऋषे. ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, विराट्जगती । २, निचृज्जगती

च । ३, ४ भुरिक त्रि दुप् ॥ पञ्चर्चं तृक्तम् ॥

तं पृच्छता स जंगामा स वेद स चिकित्वा ईयते सा न्वीयते ।
तरिमन्सन्ति प्रशिप्रस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मि-
णरपतिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरषो । वह विद्वान् परम पद तक पहुँचा है, वह
ही उस परम पद को जानता और प्राप्त करता है । वह ही विशेष ज्ञान-
वान् होकर ध्येय परम पद तक जाता है । वही अन्यो द्वारा अनुसरण
और अनुकरण करने योग्य है । उसके ही आश्रय पर उत्तम शासन और
उत्तम ही आश्रय पर यज्ञ दान आदि उत्तम कर्म और सत्संग, मैत्रीभाव
और हँस हँस आदि निर्भर है । यह समस्त ज्ञान, अन्न और वेग का और
बल का स्वामी है, और वही दलवान् पुरषो का भी स्वामी है ।

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वनेव धीरो मनसा यद-
ग्रभीत् । न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य कृत्वा सचते
अप्रदपितः ॥ २ ॥

भा०—जिस बात को सब कोई लोग नहीं पूछा करते, विद्वान् जन ही उस विशेष प्रष्टव्य तत्त्व को विद्वान् के समीप जाकर पूछता है, जिसको कि वह बुद्धिमान् ध्यानयोगी पुरुष अपने मनन सामर्थ्य में अपने आप से भी ग्रहण करता है । इसका प्रथम वचन अर्थात् उपदेश भी सन्देह योग्य नहीं होता, और इसका प्रश्न के उपरान्त दिया उत्तररूप वचन भी सन्देह योग्य होता । मोह और गर्व आदि से रहित विनीत पुरुष ही इस विद्वान् के ज्ञान और सामर्थ्य से लाभ उठाता है ।

तमिदं च्छन्ति जुह्वस्तमर्वती विश्वान्येकः शृण्वद्वचोसि मे ।
पुरुप्रपस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥

भा०—शिष्य का स्वरूप । उसको ही ग्रहण करने योग्य वेदवाणिया प्राप्त होती हैं । विद्वानों की ज्ञानवाणिया भी उसको ही प्राप्त होती हैं । वह ही अकेला मुझ आचार्य के सब वचनों को सुने । वह बहुत सी आज्ञाओं का पालक, कार्य करने में अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, विद्यादान की साधना करने द्वारा, शृष्टिरहित व्रत का पालक, उत्तम प्रशमनीय एवं मा की गोद में बालक के समान स्वच्छ हृदय में आचार्य की विद्यामय गोद में कार्यारम्भ करने वाला होकर उत्तम रीति में ज्ञान ग्रहण करे ।
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यः ज्ञातस्तत्सारं युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नाद्ये मुदे यदी गच्छन्त्युशतीरपिष्ठिनम् ॥ ४ ॥

भा०—शिष्य के कर्तव्य । जो आचार्य का सम्मंग करता है और उसके समीप ही उपस्थित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता है, वह शीघ्र ही आचार्य रूप माता में उत्पन्न होकर अन्य सहाय्यायियों सहित या योग करने योग्य उत्तम गुणों में शनैः आगे बढ़ता है ।

कामना वाली नियां जिस प्रकार अपने पति के पास जाती हैं उसी प्रकार विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन जब उस पूज्य शान्त परिपक्व ज्ञान वाले पूज्य स्थान पर स्थित आचार्य को प्राप्त हो, तब वे हृदय का आनन्द प्राप्त करने, और हर्ष या सन्तोष प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के प्रश्न करें और तत्त्व पर विचार करें ।

स इ मृगा अप्यो वनगुरुरप त्वच्युपमस्यां नि धायि । व्यवन-
वीद्वयुता मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्धाँ ऋतुचिद्धि सत्यः ॥ ३ ॥ १४ ॥

भा०—विद्यार्थी के कर्तव्य । जलामिलापी हरिण जिस प्रकार जंगल में भटकता और जल खोजता है उसी प्रकार वह विद्यार्थी भी विद्यातत्त्वों के खोजने हारा, ज्ञान और कर्मों के उपदेश का अभिलाषी, वन में आचार्यों और वनस्थ तपस्वियों के आश्रमों में जाता हुआ गुरु के समीप प्राप्त होने वाली मृगछाला या वृक्षत्वक् या ब्रह्मचारी के योग्य वत्कल पतनाकर रखा जाता है । वह ही सत्यज्ञान का निरन्तर संग्रह करता हुआ, विद्वान् अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान्, सत्य आचरणशील, सत्यवक्ता, सज्जनों का हितैषी और उनमें श्रेष्ठ, पूज्य होकर, मरण धर्मा अन्य मनुष्यों को नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करे ।

[१४६]

दापयता ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्द १, २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् ।

४ निचय त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

त्रिमूर्धानं सुतरश्मि गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।

निप्रस्तमरयु चरतो ध्रुवस्य विष्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१॥

भा०—हे बिद्वन् ! माता पिता के समीप विराजमान पुत्र जिस प्रकार माता पिता गुरु तीनों के मस्तकों के ज्ञानानुभवों से युक्त होता है इस लिये 'त्रिमूर्धा' है, अथवा माता पिता गुरु तीनों को अति आदर से अपने शिर भागे रखने वाला होने से यह 'त्रिमूर्धा' है, उसके समान ही

यह सूर्य भी तीनों लोको के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है, सूर्य में सात प्रकार की रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन् ! तू ऐसे न्यूनतारहित ज्ञानी पुरुष की स्तुति कर। सर्वत्र विचरण करते हुए धैर्यवान्, इसके सब प्रकार के कार्य और ज्ञान प्रकाश देने वाले एव सबको रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे विद्वन् ! तू ऐसे न्यूनतारहित अस्वप्नव्रती विनीत बालक को उपदेश कर। वह माता पिता के समीप बैठा हुआ तीनों का अपने शिर से आदर करता हो। विद्या से पूर्ण करने वाला, सातों ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण हो। इस स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की समस्त कामनाएं और व्यवहार रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता, पिता, गुरु तीनों में ऊपर होने से त्रिमूर्धा है। सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने में अनून है। व्यापक होने से विचरणशील, कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। वही विश्व का पालक होने से पप्रिवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उ॒क्ता म॒ह्यं अ॒भि व॑व॒क्ष ए॒ने अ॒जर॑स्त॒स्थावि॒त ऊ॑ति॒र्ऋ॒ष्वः ।

उ॒र्व्याः प॒दो नि द॑धा॒ति सा॒नौ गि॑हन्त्यू॒यो अ॒रुपा॑स्यो॒ अ॒स्य ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बड़ा, जलवर्षक सूर्य आकाश, पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर अविनाशी होकर विराजता है, और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर अपने किरणों को टालता है, और हमके प्रकाशमान किरण जलमय प्रदेशों को स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको गुत्था देते हैं, उसी प्रकार बड़ा भारी मुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला परमेश्वर इन पृथिवी और आकाश दोनों को सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ महान् व्यापक

अविनाशी होकर विराजता है। वह महती प्रकृति के समग्र ऐश्वर्य में भी अपनी पूर्व की गति शक्तियों को स्थापित करता है। और उनके स्तन के समान आनन्दरस से भरे उत्तम रूप का रोप रहित, एवं अहिंसक सौम्य-जन ही आस्वाद लेते हैं।

समानं वृत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।

अनुपवृज्या अध्वतो मिमाने विश्वान्केतुँ अधि सहो दधाने ॥३॥

भा०—पृथ्वी सूर्य के समान स्त्री पुरुष के कर्तव्य। गौ जिस प्रकार बछड़े के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता बालक का दूध धार अन्न से पोषण करने वाले, एक सतान को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए, सब प्रकार से विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों उत्तम शोभायुक्त कर्मों और दृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे, कभी परित्याग न करने योग्य उत्तम मार्गों पर चलते हुए, और सब प्रकार के ज्ञानों और बड़े २ कार्यों को भी अपने में धारण करते हुए रहे।

धीरांसः पदं क्वयोर नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।

सिपासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नृन् ॥४॥

भा०—ध्यान और धारणशील दीर्घदर्शी विद्वान्, हृदय से भक्ति द्वारा बहुत लोगों को संकटों से बचाते हुए, समुद्र के समान अथाह आनन्द-सागर प्रभु को प्राप्त होते हुए उसको भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उस अविनाशी प्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी वही तक पहुँचाते हैं। इनके हित के लिये वह सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु प्रत्यक्ष होता है।

द्विष्टेण्य परि षाष्टासु जेन्य ईळेन्यो सहो अभौय जीवसे ।

पुरुषा यदभष्टसूर्येभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५॥६५॥

भा०—शिष्य विद्याभ्यास करने के उपरान्त समस्त दिशाओं में

यह सूर्य भी तीनों लोको के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है, सूर्य में सात प्रकार की रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन् ! तू ऐसे न्यूनतारहित ज्ञानी पुरुष की स्तुति कर। सर्वत्र विचरण करते हुए धैर्यवान्, इसके सब प्रकार के कार्य और ज्ञान प्रकाश देने वाले एव सबको रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे विद्वन् ! तू ऐसे न्यूनतारहित अखण्डव्रती विनीत बालक को उपदेश कर। वह माता पिता के समीप बैठा हुआ तीनों का अपने शिर से आदर करता हो। विद्या से पूर्ण करने वाला, सातों ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण हो। इस स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की समस्त कामनाएं और व्यवहार रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता, पिता, गुरु तीनों से ऊपर होने से त्रिमूर्धा है। सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने से अनून है। व्यापक होने से विचरणशील, कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। वही विश्व का पालक होने से पप्रिवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उ॒क्ता म॒ह्यं अ॒भि व॑व॒क्ष ए॒ने अ॒जर॑स्त॒स्थावि॒न ऊ॑ति॒र्ऋ॒ष्वः ।

उ॒र्व्या॑ प॒दो नि द॑धा॒ति सा॒नौ रि॑हन्त्यू॒र्ध्वो अ॒रु॒पासो॑ अस्य ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बड़ा, जलवर्षक सूर्य आकाश, पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर अविनाशी होकर विराजता है, और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर अपने किरणों को डालता है, और इसके प्रकाशमान किरण जलमय प्रदेशों को स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको सुखा देते हैं, उसी प्रकार बड़ा भारी सुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला परमेश्वर इन पृथिवी और आकाश दोनों को सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ महान् व्यापक

अविनाशी होकर विराजता है। वह महती प्रकृति के समग्र ऐश्वर्य में भी अपनी पूर्व की गति शक्तियों को स्थापित करता है। और उनके स्तन के समान आनन्दरस से भरे उत्तम रूप का रोप रहित, एवं अहिंसक सौम्य-जन ही आत्माद लेते हैं।

समानं वृत्तसमभि सुञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।

अनुपवृज्या अध्वतो मिमाने विश्वान्केतुँ अधि महो दधाने ॥३॥

भा०—पृथ्वी सूर्य के समान स्त्री पुरुष के कर्तव्य। गौ जिस प्रकार घट्टे के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता बालक का दूध पार अन्न से पोषण करने वाले, एक सन्तान को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए, सब प्रकार से विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों उत्तम शोभायुक्त कर्मों और हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे, कभी परित्याग न करने योग्य उत्तम मार्गों पर चलते हुए, और सब प्रकार के ज्ञानों और बड़े २ कार्यों को भी अपने में धारण करते हुए रहे।

धीरांसः पदं क्वयों नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।

सिपासन्तः पर्यपश्यन्तु सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नृन् ॥४॥

भा०—ध्यान और धारणशील दीर्घदर्शी विद्वान्, हृदय से भक्ति द्वारा बहुत लोगों को सकल से दचाते हुए, ससुद्र के समान अधाह आनन्द-सागर प्रभु को प्राप्त होने हुए उसको भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उन अविनाशी प्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी दत्त तक पहुँचाते हैं। इनके हित के लिये वह सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु प्रत्यक्ष होता है।

दृष्टक्षेत्र्यः परि वाष्टासु जेन्य ईळेन्यो महो अभौय जीवसे ।

शुश्रा पदमहत्सुरहैभ्यो गर्भेभ्यो सुधवा विश्वदर्शतः ॥५॥१५॥

भा०—क्षेत्र्य विष्णुभास करने के उपरान्त समस्त दिशाओं में

सब लोगो के देखने के योग्य होता है । वह सर्वत्र विजयी, स्तुति और सत्कार के योग्य छोटे और बड़े सबको जीवन देने वाला हो । वह ऐश्वर्यवान् और सब प्रकार से और सबके लिये दर्शनीय होकर, बहुतो का त्राण करने हारा, इन गर्भों में उत्पन्न छोटे २ बच्चों का उत्पादक हो जाता है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४७]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचत् त्रिष्टुप् ।

२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्च सक्तम् ॥

कृथा ते अग्ने शुचयन्त आयोदिदाशुर्वाजेभिराशुपाणाः ।

उभे यत्तुके तनये दधाना ऋतस्य सामनूणयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् विद्वन् । जो पुरुष तुझे उत्तम रीति से प्राप्त होकर, दानशील होते, और आत्मा को शुद्ध पवित्र बनाना चाहते हैं, और जो तेरे ज्ञान आदि गुणों को निरन्तर या अति स्वल्पकाल में ही ग्रहण कर लेते हैं, वे विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन और विद्वान् पुरुष दोनों ही, विद्या को स्वयं धारण करते हुए भी वेदज्ञान का अपने शिष्यों को अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त पुत्र और शिष्यादि में किस प्रकार से उपदेश करें ।

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।

प्रीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते त्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

भा०—उपदेश करने का प्रकार बतलाते हैं । [शिष्य] हे प्रौढ़ विद्यासम्पन्न ! हे अपने आपको उत्तम रीति से वश करने वाली दमन शक्ति से सम्पन्न ! आप मुझको इस प्रशस्त, उत्तम रीति से धारण करने योग्य उपदेश का ज्ञान कराओ । [आचार्य] हे शिष्य ! तू मुझसे ज्ञान प्राप्त कर । इस प्रकार परस्पर प्रार्थना और आदेश के बाद एक तो ज्ञान का रस के समान पान करता है, दूसरा गुरु उपदेश करता है । [शिष्य]

हे ज्ञानवन् । मैं तेरी स्तुति करने वाला, तेरे शरीर को अभिवादन करता हूँ, चरणों में नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करे ।

ये प्रायश्चो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

रुरक्ष तान्सुकृतो विश्ववेद्या दिप्सन्तु इन्द्रियवो नाहं देभुः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर । जो तेरे अधीन ज्ञानव्रत का पालन करने वाले, स्वयं सब पदार्थों को भली प्रकार देखते हुए अन्धे को दुरे मार्ग से बचा देते हैं, उसी प्रकार ममता वाले ज्ञानरहित पुरुष को दुष्ट आचरण से बचावें । समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी आचार्य उत्तम आचरण करने वाले उन सब शिष्यों की रक्षा करे, जिससे कि नाशकारी बान, प्रोध, पाप युक्त कर्म और हीन पुरुष आदि भी उन पर आघात नहीं कर सकें ।

यो नो अग्ने अररिवा अघायुररातीवा मर्चयति दृयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्व दुरुक्षैः ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् गुरो ! जो पुरुष किसी को कुछ नहीं देता, और दूसरे पर पापाचरण और आघात आदि का ही प्रयोग करने की चेष्टा करता है, वह अदानशील होकर ही भीतर कुछ और बाहर कुछ इस प्रकार के दो रूपों से लोगों को ठगता है । परन्तु जो हमारे बीच मननशील और विचारवान् पुरुष है वह हमारा द्वार २ उपदेष्टा हो । और उस गुरु के सुप्रदायी कठोर वचनों से भी शिष्यजन अपने २ शरीर और आत्मा को उसके अनुकूल आचरण करके शुद्ध पवित्र करें ।

इत प्रा य. सहरय प्रविष्टान्मूर्तो मर्ते मर्चयति दृयेन ।

मर्ते पाहि स्तवमान स्तुवन्तु मग्ने माविर्नो दुरिनाय धायीः ५।६६

भा०—और जो तू उत्तम विद्यावान् होकर, एक पुरुष दूसरे पुरुष को, भीतर और बाहर या भीतर से हित और उपर से बहुत दोनों प्रकार

के वचनों से प्रेरित करता है, वह तू हे पाप वासनाओं पर विजय करने वाले और हे सहनशील ! हे सदा सत्योपदेश करने वाले ! स्तुति करने वाले शिष्य का रक्षा कर । तू हमें दुष्टाचरण करने के लिए कभी धारण मत कर अर्थात् अपने अधीन रखकर दुरा काम मत करने दे । इति षोडशो वर्गः ॥

[१४८]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २ पङ्क्ति । ५ स्वराट् पङ्क्तिः ।

३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा हानारं विश्वाप्सुं विश्वदेज्यम् ।

नि यं दधुर्मनुष्यासु विजु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावंम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि में वायु प्रविष्ट हो जाता है, और उसको समग्र रूपों से युक्त, सब दिव्य पदार्थों में विद्यमान जानकर विद्वान् पुरुष मथ कर उत्पन्न करता है, और देह में विशेष कान्ति से युक्त जिस अग्नि को मानव प्रजाओं में, यज्ञों में, सुरक्षित रूप से स्थापित करते हैं, उसी प्रकार जिस आचार्य को प्राप्त होकर माता की गोद में बालक के समान नव शिष्य प्रविष्ट होकर, उसका आश्रय लेकर, ज्ञान के देने वाले, समस्त नाना रूप पदार्थों के जानने वाले, सब ज्ञानेच्छुक विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य को प्राप्त होकर, दूध में से मक्खन के समान ज्ञान-रूप सार को मथकर शिष्य प्राप्त करे, जिसको उत्तम ज्ञान रूप बीज के वपन करने और अज्ञान के नाश करने के लिये विशेष कान्ति और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त, आश्रयकारी पुरुष को विद्वान् जब मनन पूर्वक कर्म करने वाली प्रजाओं या अन्तःप्रविष्ट शिष्यरूप प्रजाओं में सूर्य के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशक रूप से गुरु पद पर स्थापित करें ।

दद्वानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरुथं मम तस्य चाकन् ।

जुपन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

है उसी प्रकार इस आचार्य के दिखाये प्रकाश के पीछे २ वायु के समान सदागति, आलस्यरहित, सावधान, ज्ञानवान् शिष्यगण भी अनुगमन करे। और जिस प्रकार बाण के फँकने वाले धनुर्धारी के फँके हुए तीव्र बाण के पीछे २ वायु वेग से जाता है उसी प्रकार ज्ञान देने वाले गुरु की दुरी आदतो को बाहर निकालने वाली ताडना के अनुसार ही विद्यार्थी सब दिन चला करे।

न यं रिपवो न रिषण्यत्रो गर्भे सन्तै रेपणा रेपयन्ति ।

अन्या अपश्य य दभन्नमिख्या नित्यास ई प्रेतारो अरक्षन् ॥५॥१७

ना०—विद्यार्थी का बल। जिस प्रकार काष्ठादि के गर्भ में लगे बलि को बड़े आंधी के झंकोरे भी नहीं नष्ट कर सकते, उसी प्रकार तद्वित्री के गर्भ में विद्यमान जिस ब्रह्मचारी को काम, क्रोध, लोभ आदि अक्षन्, और न ही तदक्षरिणी आत्मा की स्तुतियां विनष्ट करेंगे।
जिस प्रकार बलि को जन्मे, न देखने वाले बहो नष्ट कर सकते, उसी व देखने वाले जिन्दगी जन्म चारों ओर उत्तरे जन्मे २ उ हस्तो न्यः ।

भा०—हे मनुष्यो ! वरण करने योग्य विज्ञान देने वाले पुरुष को कभी पीडित नहीं किया करते । और मुक्ष विद्वान् के मनन करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को अगों में विनय से झुकने वाला विनीत शिष्य ही लेने की इच्छा करे । अति समीप प्राप्त शिष्य के प्रति उपदेश करने योग्य वाणी को धारण करने वाले इस क्रियाशील पुरुष के समस्त कर्मों को प्रेम से ग्रहण करो ।

नित्ये चिन्नु यं सद्ने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।

प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वांसो न रुध्वो रारहाणाः ॥ ३ ॥

भा०—रथ में लगे उत्तम अश्व रासों द्वारा सुसंयत होकर जिस प्रकार रथ में स्थित पुरुष को प्राप्त करने योग्य देश में ले जाते हैं उसी प्रकार विद्या का दान और आदान करने में कुशल पुरुष जिस शिष्य को स्थिर आश्रय पर स्थापित करके उसको शिष्य रूप से ग्रहण करते हैं, और उत्तम वाणियों उत्तम शासन क्रियाओं द्वारा धारण करते हैं, ऐसे शिष्य को विद्वान् लोग अपने अधीन ग्रहण करते हुए, ज्ञान का प्रदान करते हुए, दृष्ट विद्यामार्ग में अच्छी प्रकार आगे ही आगे ले जावें ।

पुरुणि दृश्मा नि रिणाति जग्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।

गादस्य वातो अन्नु वाति शोचिरस्तूर्न शर्यामसनामनु ह्यन् ॥ ४ ॥

भा०—आचार्य का वर्णन करते हैं । जिस प्रकार जला कर नाश कर डालने वाला अग्नि अपने ज्वालाओं से बहुत से वनों को नाश कर देता है और उसी प्रकार आचार्य भी अज्ञानों और दुखों का नाशकारी होकर तादना आदि उपायों से बहुत से दुरे व्यसनों को सर्वथा दूर कर देता है । और जिस प्रकार अग्नि विशेष कान्तिमान् होकर जंगल में तब तरह प्रकाश करता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी विशेष ज्ञानतामस्य से युक्त होकर शिष्यों के प्रदान करने योग्य ज्ञान में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो । और जिस प्रकार अग्नि की ज्वाला के अनुकूल वायु बहा करता

वह आस पुरुषों के एकत्र होकर बैठने के समा भवन में सबको अधिकार देने और सबको स्वीकारने वाला, और सबको संगत करने और सबको भृति आदि देने हारा में सबमें मुख्य होकर विराजे ।

श्रयं स हाता या द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्मै सतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—यह वही सबके ज्ञानैश्वर्य का देने और लेने वाला विद्वान् पुरुष है, जो माता पिता के द्वारा प्राप्त प्रथम जन्म के अनन्तर आचार्य और विद्या द्वारा व्रताचरण और और विद्याययन करके द्विजन्मा होकर, समस्त श्रवण करने योग्य श्रेष्ठ २ ऐश्वर्यों और ज्ञानों को वारण करता है । उत्तम पुत्रवान् पिता जिस प्रकार अपने पुत्र को सर्वत्र दे देता है उसी प्रकार वह विद्वान् उत्तम पुत्र के समान शिष्य से युक्त होकर, स्वयं मरणधर्मा होने से अपने विद्यावन को इस विद्यार्थी को सौंप दे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१५०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्यन्द् — १, ३ सुरिगायत्री ।

२ निचूदुष्णिक् ॥ तृच सूक्तम् ॥

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।

तोदस्येव शरण आ सहस्य ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! दानशील और ऐश्वर्यवान् स्वामी होकर मैं आज्ञाकारी बड़े अध्यक्ष के गृह में नित्य भृत्य के समान होकर, तेरी ही शरण में होकर तुझसे बहुत कुछ प्रार्थना करू ।

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदरुषः ।

कदा चन प्रजिगतो अदेवयो. ॥ २ ॥

भा०—जो न विद्या का दान दे सके और और न धन का दान दे

सके वे दोनों दान न देने के कारण 'अदेव' है, उन दोनों में से जो धन-
वान् होकर भी उस धन के भोग और दान में समर्थ नहीं है, उसकी मैं
कभी विशेष स्तुति नहीं करता ।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो ब्राधन्तमो द्विवि ।

प्रप्रेते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १६ ॥

भा०—आकाश में जिस प्रकार चन्द्रमा सबको आह्लादित करने
वाला, निम्न वृद्धि को प्राप्त होने वाला होता है, उसी प्रकार हे विद्वन् !
वह उत्तम पुरुष भी जो कि महान् है और सब कामनाओं के पूर्ण करने
में सदा वृत्तिशील है सबको आह्लादकारक होता है । हे अग्रणी नायक !
ऐसे भोजन करने और ज्ञान ऐश्वर्य दान देने वाले तेरे अधीन रह कर हम
उत्तम २ पद को प्राप्त होंगे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१५१]

दीवन्ता अपि ॥ निष्ठापरुषो देवत ॥ छन्द—भुरिक विष्टुप् । २, ३, ४,
५ पिताह जगती । ६, ७ जगती । ८, ९ नचृज्जगती च ॥ नवर्च सुवम् ।

भिप्र न यं शिभ्या गोपु गव्यवः स्वाध्या विदथे अप्सु जीर्जनम् ।
अरे जता रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं अनुपामवः ॥ १ ॥

भा०—गो अर्थात् वेदवाणी के उत्तम ज्ञाता और भूमि के बड़े २
स्वामी तथा उत्तम राति से प्रजा के पालन-पोषण करने में समर्थ लोग,
गवादि पशुओं और नृभियों से बसी प्रजाओं के निमित्त प्रजा के निर
के समान स्नेहा रूप जिस नायक को प्रजाओं के बीच और सन्तान और
ज्ञानदान के निमित्त मुख्य रूप से स्थापित करते हैं, उसके पालनस्तान्ध्व्य
और वत् परात्म से जोर उसकी आज्ञा से, एक दूसरे की मर्यादाओं को
रोकने में समर्थ राजा प्रजावर्ग दोनों कापें । ऐसे सर्वप्रिय, सबको समर्पित
करने वाले, एवं दानशील पुरुष को समस्त जनों के पालक रूप से
अतिदित करें ।

यद्ध त्वद्धा॑ पुरु॒मीळ्ह॑स्य॒ सोमि॒तः प्र मि॒त्रासो॒ न दधि॑रे स्वा॒भुवः॑ ।
अध॒ क्रतुं॑ वि॒दतं॑ गा॒तुमर्च॑त उ॒त श्रु॑तं वृष॒णा प॒स्त्या॑वतः ॥ २ ॥

भा०—हे एक दूसरे के प्रति सुखों के वर्णन करने और दुष्टों की शक्तियों को रोकने वाले मित्र और वरुण । अर्थात् दिन राति के समान सदा साथ रहने वाले स्त्री पुरुषो । जब तुम दोनों के हितकारी, मेव के समान बहुत सी प्रजाओं को ज्ञान और धनादि जलों से सींचने वाले, ज्ञानैश्वर्यवान्, अपने २ व्यापार करने में कुशल राजपुरुष, मित्रों के समान रक्षक होकर राज्यकार्य को अच्छी प्रकार धारण करें, आप दोनों तब गृहों के स्वामी उस पूज्य विद्वान् पुरुष की वाणी या आज्ञा का ज्ञान प्राप्त करो और नित्य श्रवण करो ।

आ वा॑ भूष॒न्क्षित॑यो जन्म॒ रोद॑स्योः प्र॒वाच्यं॑ वृष॒णा दक्ष॑से
म॒हे । यदी॑भू॒ताय॑ भर॒थो यद्वै॑ते प्र होत्र॑या शि॒म्या वी॑थो
अध्व॒रम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्या, सुख, ज्ञान और वीर्य के सेचन और संवर्धन करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो । पृथिवी निवासी प्रजाजन बड़ी भारी आत्मबल की वृद्धि के लिये ही तुम दोनों के अच्छी प्रकार गुरु-उपदेश प्राप्त करने योग्य विद्याजन्म को अलंकृत करते हैं अर्थात् गुरु के अधीन शिक्षा का प्रवन्व करते हैं । जिससे आप दोनों सब प्रकार से सत्यज्ञान के प्राप्त करने के लिये अपने आप को पुष्ट करो, और जिससे उत्तम ज्ञानवान् गुरु के प्रियाचरण करने के लिये उसके अधीन वेदवाणी और वैदिक कर्मानुष्ठान द्वारा अहिंसा आदि वर्मों से युक्त ब्रह्मचर्य आदि व्रत का उत्तम रीति से पालन करो ।

प्र सा॑ क्षि॒तिर॑सु॒र या म॑हि॒ प्रिय॑ ऋ॒ता॒वाना॑वृ॒तमा॑ वी॒षयो॑
बृ॒हत् । यु॒वं दि॒वो बृ॒हतो॑ दक्ष॒माभु॑वं गां न धुर्यु॑प॒ युञ्जा॑थे श्र॒पः ॥ ५ ॥

भा०—पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन । हे प्राणों में रमण करने वाले स्त्री पुरुषों ! जो बहुत अधिक प्रिय सुख देने और पति को तृप्त करने वाली होती है वह ही निवास योग्य भूमि के समान गृह बसा कर रहने योग्य उत्तम स्त्री होती है । हे परस्पर सत्य व्यवहार को धारण करने वाले ! तुम दोनों सत्य व्यवहार को उत्तम जान कर उसका भाषण करो, और उसी सत्य को सदा वृद्धिकारी जान कर सर्वत्र उसका उपदेश करो । लकड़ का बोझा ढोके ले जाने के कार्य में जिस प्रकार बलवान् बैल को जोटा जाता है उसी प्रकार आप दोनों भी बड़े भारी प्रकाशमय वेद के ज्ञान को और उसमें उपदिष्ट कर्म को और सब कार्यों के सम्पादन करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को, अपने बड़े भारी कार्यभार के उठाने में उप-युक्त किया परो ।

मृही श्रत्र महिना वारमृगवथोऽरेण्यस्तुज ग्रा सद्यन्ध्रेनवः ।

स्वरन्ति ता उपरताः सूर्यमा निष्पृचं उपसस्तकवृवीरिव ॥५॥२०॥

भा०—हे स्त्री पुरुषों ! आप दोनों इस पृथ्वी में विशेष महत्ता से धरण करने योग्य और दुःखों के धारण करने वाले एक दूसरे को प्राप्त होया । घर में दोष रहित दूध पिलाने वाली गायें जिस प्रकार रभाती हैं, उसी प्रकार शिशुओं को अपना दूध पिलाने वाली निदोष, अन्न आदि देने वाली पत्नियाँ, रात और दिन मेष के समान क्षान्वर्षक और सूर्य के समान तेजस्वा पात्नक पुरुष को स्वपूर्वक प्राप्त हो । परस्पर एक दूसरे को उत्तम चयन करें और सबट से एक दूसरे को चेताते रहें । इति विशो पत्नीः ॥

आ वासुताय काशनाग्नूय मित्र यत्र वह्नि ग्रातुमर्चयः ।

अथ तमना सजतु पिनात । पयो यत्र विप्रैश्च मन्मन निरज्ययः ॥६॥

भा०—हे दिन रात्रि के समान श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषों ! उत्तम केशों से युक्त महत्त्व विभा पुत्रों सत्य जागर और व्यवहार के विषय में वि ८.

तुम दोनों की स्तुति करें । और तुम दोनों परस्पर के व्यवहार का आदर करो । और आप दोनों स्वयं उत्तम बुद्धियों और वाणियों का परस्पर प्रयोग करो । और एक दूसरे को बढ़ाओ और प्रसन्न रखो । और विद्वान् पुरुष की मनन करने योग्य ज्ञानवाणी को प्राप्त करो ।

यो वाँ यज्ञः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसा-
घनः । उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमति
गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों का जो पुरुष नाना प्रकार के दानो और सत्संग योग्य ज्ञानोपदेशों से आदर सत्कार करने वाला, विद्वान्, ज्ञानप्रदाता, ज्ञान विज्ञान को मननपूर्वक साधन करने वाला होकर, तुम्हें उत्तम ऐश्वर्य देता और ज्ञानोपदेश करता है, और जो तुमसे सत्संग करता है, तुम दोनों सदा उसके ही समीप जाया आया करो । उस सौम्य अहिंसक द्वेषरहित पुरुष को प्राप्त होओ और हम सब के प्रिय होकर ज्ञान वाणियों और शुभ मति को प्राप्त होवो और हमें भी प्राप्त कराओ ।

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावान्ता मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मता संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाये ॥८॥

भा०—जो पुरुष मन के उत्तम प्रयोगों में कुशल और सत्य ज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्यवान् तुम दोनों को, उत्तम सत्कार, मान, पूजा और सत्कर्मों द्वारा, वाणियों और भूमियों द्वारा, उज्ज्वल करते हैं, और जो आप दोनों को मनन करने योग्य ज्ञान और सयमशील तथा बिना गर्व के चित्त से वेदवाणियों का उपदेश करते हैं, वे आप दोनों उनके ज्ञानैश्वर्य से युक्त वचन और ज्ञान को प्राप्त होवो ।

रेवद्वयो दद्याथे रेवदाशाये नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।

म वां द्यावोऽहभिनोत सिन्धवो न देवत्वं पृणयो नानशुर्मवम् २।२।

भा — हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्ययुक्त बल और ज्ञान और दीर्घ जीवन को धारण करो, और उसको ऐश्वर्ययुक्त बना कर उपभोग करो । आप दोनों नायक होकर इस लोक में रक्षा करने वाले महान् सामर्थ्य को अपनी उद्वियों से प्राप्त करो । आप दोनों की दानशीलता और ज्ञानप्रकाश को प्रकाशमान पदार्थ अथवा तीनों लोक भी नहीं व्याप सकते । और आप की विद्वत्तायुक्त ज्ञान-दानशीलता को सदा प्रवाहशील नदियाँ वा समुद्र भी नहीं प्राप्त हो सकते, और आप दोनों के ऐश्वर्य को व्यवहार-कुशल पुरुष भी नहीं प्राप्त हो सकते । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१५२]

दीर्घतना ऋषि ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ६ त्रिष्टुप् ।

१ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

युवं पश्चाणि पीयसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अशतिरतमनृतानि विश्वं ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र अर्थात् परस्पर स्नेहपूर्वक सखा बन कर रहने और वरण अर्थात् एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री और पुरुषो ! तुम दोनों राव ह्यपुष्ट होकर उत्तम चरों को धारण करो, और उत्तम गृहों में निवास करो । और तुम दोनों के उत्पन्न किये हुए पुत्र पौत्रादि सन्तान दोपरहित, परस्पर द्वेष वा द्वेषभाव से रहित और एक दूसरे का आदर करने और स्वयं मनन करने वाले, विचारशील हो । हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों सत्य-त असत्य व्यवहारों का अपने सत्य व्यवहार और सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य के बल से नाश करो । सत्य से असत्यो पर विजय प्राप्त करो । और सत्य के बल से तुम दोनों परस्पर मिल कर रहो ।

सुतञ्जन त्वो वि विदेतदेवो सुत्यो मन्त्रं कविशस्त ऋधावान् ।
त्रिष्टुप् हन्ति बहुराधिरागो देवनिर्दो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

भा०—इन लोगों ने ते कोई ही ऐसा सत्यभाषी, मननशील, विद्वान्

से उपदेश प्राप्त, नाना सत्यासत्य विवेक करने वाली मति से युक्त होता है, जो चारों वेदों को प्राप्त करके वाणी, मन और शरीरों से भोग करने योग्य अथवा तीनों गुणों को प्राप्त करता है, और बलवान् होकर इस जगत् का विजय करता है। प्रायः विद्वानों की निन्दा करने वाले अन्य सब बातों में श्रेष्ठ होकर भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

अपादैति प्रथमा पद्धतीनां कस्तद्धौ मित्रावरुणा चिकेत ।

गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपत्यनृत नि तारीत् ॥ ३ ॥

भा०—चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से प्रथम चरणादि से रहित वेद वाणी प्रकट होती है। हे अध्यापक विद्यार्थी आदि जनो ! आप दोनों में से कौन इस रहस्य को जानता है। विद्यार्थी को ग्रहण करने में समर्थ जिज्ञासु पुरुष इस संमुख स्थित आचार्य के ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है। वही उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता, और अज्ञान और अनृत व्यवहार को दूर करता, उससे पार हो जाता है।

प्रयन्तमिपरिं जारं कुनीनां पश्यामसि नोपनिषद्यमानम् ।

अनवपृग्णा चितंता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग कमनीय कन्याओं के कन्यात्व को जीर्ण करने वाले उसके प्रिय पति को सदा सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाते हुए देंगे। और उसको हम कभी नीच मार्ग से जाते हुए न देंगे। और सदा हम उसे विस्तृत वस्त्रों और गृहों में रहते हुए देंगे। यही स्नेहशील और वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम तेज, वैभव और धारणसामर्थ्य का स्वरूप या उत्तम पद है।

अनश्वो जाता अतभीशुर्व्या कनिकदत्पतयदृर्वमानु ।

अचित्तं ब्रह्म जुजुष्युर्वान प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अश्व रहित होकर भी शीघ्रगामी प्रसिद्ध है,

शांति गन्त करने वाला जोकर उसके कोई रास्ते नहीं हैं, तो भी वह मेघादि द्वारा गर्जता हुआ पर्वतादि उच्च प्रदेशों में व्यापकर शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार उत्पन्न होकर बालक, 'अश्व' या भोक्ता के समान बद्ध न होकर, वे लगाम घोड़े के समान बाधक करणों से रहित होकर शिरों, स्कन्धों को ऊंचे रखता हुआ, और सूक्ष्म विद्याभ्यास करता हुआ ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करें। और फिर युवा होकर वे ब्रह्मचारीगण अचिन्तनीय ब्रह्म को प्राप्त करें। और जेहमान् तथा श्रेष्ठ पुरुष में होने योग्य तेज और धारण पोषण सामर्थ्य का उन्नत रीति से उपदेश करें। अध्यात्म में—आत्मा स्वभाव से अनन्ता होने से 'अनश्व' है, अगुलि आदि अंगों से रहित होने से 'अनन्ताशु' है, व्यापक होने से अर्था है। वह सर्वोपरि प्राप्तव्य होने से 'ऊर्ध्व-सानु' है। महान् होने से 'ब्रह्म', अचिन्तनीय होने से 'अचित्त' है। योग द्वारा साक्षात्कारा जन 'युवा' है, वे उसका सेवन करते हैं।

आ धेनवो मामतृयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्तस्सस्मिन्नुधन् ।

पितृभ्यो मित्रेभ्यः पुत्र्युत्तमैः विद्वानासावित्रासन्नैर्दितेभ्यः मुख्यं ॥ ६ ॥

भा०—गोण जिस प्रकार अपने स्तन पर ममता से पालन करने योग्य बच्चे की रक्षा करती हुई उसको एष्ट पुष्ट करती है, उसी प्रकार दूध पिलाने वाली माताण ममता से युक्त जन्म के अभिलाषी पुत्र को पालता हुई अपने ही स्तन के आश्रय पर पुष्ट करें। और जिस प्रकार बालक माता को प्राप्त होकर जन्म की याचना करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी अपने मुख से भोजनार्थ जन्म की याचना करे, और वह सूर्य के समान तेजस्वी और माता के समान अहोमान् आचार्य को प्राप्त कर उत्तम सब प्रकार से सेवा करता हुआ, मुख से उत्तम शब्दों की मुक्त से याचना करे और उत्तम रक्षा करे।

ॐ श्री गणेशाय नमः ।

॥ ५॥ २२॥

भा०—हे स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों की अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष अन्न द्वारा और आदरपूर्वक ज्ञान और रक्षा द्वारा पुनः २ सम्पादन करूँ । पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आप का आदर करूँ । हमारा अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग सब मनुष्यों में सब शत्रुओं और सब अकाल आदि कष्टों और दारिद्र्य आदि दुःखों और विष्वक् बाधाओं और द्वन्द्वों को सहन करे । और हमारी दिव्य सुख-वृष्टि प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१५३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द — १, २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥
३ त्रिष्टुप् । ४ भुरिकः ॥ चतुष्टुप् सूक्तम् ॥

यजामहे वां म॒हः स॒जोषां ह॒व्येभिर्मि॒त्रावरु॑णा नमो॑भिः ।

घृ॒तैर्घृत॑स्म॒न् अथ॒ यद्वा॑म॒स्मे अ॒ध्व॒र्य॒वो न धी॑तिभिर्भेर॑न्ति ॥ १ ॥

भा०—हे स्नेहवान् एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने हारो ! अति प्रेम से युक्त होकर हम स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और उत्तम अन्नो का सत्कारों द्वारा आप दोनों के उत्तम यज्ञ आदि कार्य का सम्पादन करें । मेघ जिस प्रकार जल, और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सबके प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनों ! आप दोनों के हितार्थ और हमारे कल्याण के लिये, ऋत्विजों के तुल्य, धारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तिओं और उपायों से आप दोनों का पोषण करें ।

प्र॒स्तु॒तिर्वी॑ घाम॒ न प्रयु॑क्तिर॒यामि॑ मि॒त्रावरु॑णा सुवृ॒क्तिः ।

अ॒न॒क्ति॒ यद्वा॑ वि॒दये॑षु होता॑ सु॒म्नं वा॑ सु॒रि॒वृष॑ण॒विर्य॑क्षन् ॥ २ ॥

भा०—हे सूर्य और मेघ के समान स्नेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो । हे ज्ञानों, सुखोंके वर्पक और वीर्यवान् स्त्री पुरुषो ! जब विद्वान् और ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष तुम दोनों के साथ सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह यज्ञों, सत्संगों और ज्ञानप्रसङ्गों में आप दोनों के हितार्थ सुत्रकारी कल्याण ज्ञान को प्रकट करता है । उसी प्रकार मैं यथार्थतत्त्व को वर्णन करने वाले के समान ही क्रिया कौशल को जानने वाला, और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग में प्रेरित करने द्वारा होकर, आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊँ ।

पीपायं धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।

दिनोति यद्वा विदथे सपर्यन्तस रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

भा०—जिस प्रकार दुधार गाय अज्जादि खाद्य पदार्थ देने वाले को अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार अखण्डित चरित्र वाली स्त्री देने योग्य अन्न, वस्त्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले और सत्य व्यवहार वाले पुरुष को सुख समृद्धि से बढ़ाती है । और जो तुम दोनों का ज्ञान और धन के लाभ होने पर आदर करता हुआ आप दोनों की वृद्धि करता है वहाँ यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है । (२) इसी प्रकार अदिति आचार्य अपने प्रिय पदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है । ज्ञान यज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में से जो दूसरे का आदर पूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है ।

उत वा विष्णु मत्स्यास्वन्धो गावश्चापञ्च पीपयन्त देवीः ।

उतो नो प्रस्य पूर्यः पतिर्दन्वीतं प्रातः पर्यस उस्त्रियायाः ॥३॥२३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो । हर्ष देने वाली और हर्ष प्राप्त करने योग्य प्रजाओं के साथ न रहने हुए आप दोनों की, गौ आदि पशुगण और जल, धूप, भस्म, तिलान आदि और अन्न विदुषों द्वारा, वृद्धि करें । और हमारे

भा०—हे स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों की अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष अन्न द्वारा और आदरपूर्वक ज्ञान और रक्षा द्वारा पुन २ सम्पादन करूं । पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आप का आदर करूं । हमारा अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग सब मनुष्यों में सब शत्रुओं और सब अकाल आदि कष्टों और दारिद्र्य आदि दुःखों और विन्न बाधाओं और द्वन्द्वों को सहन करे । और हमारी दिव्य सुख-वृष्टि प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१५३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥
३ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्रान्तिः ॥ चतुर्थं च सूक्तम् ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।

घृतैर्वृतम्नु अथ यद्वांसस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

भा०—हे स्नेहवान् एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने हारो । अति प्रेम से युक्त होकर हम स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और उत्तम अन्नों वा सत्कारों द्वारा आप दोनों के उत्तम यज्ञ आदि कार्य का सम्पादन करें । मेघ जिस प्रकार जल, और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सबके प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनों ! आप दोनों के हितार्थ और हमारे कल्याण के लिये, ऋत्विजों के तुल्य, वारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तिओं और उपायों से आप दोनों का पोषण करें ।

प्रस्तुतिर्वी धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृत्तिः ।

अनक्ति यद्वा विदथेपु होता सुम्नं वा सुरिवृषणाविर्यक्षन् ॥ २ ॥

भा०—हे सूर्य और मेघ के समान स्रेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो ! हे ज्ञानों, सुखोंके वर्धक और वीर्यवान् स्त्री पुरुषो ! जब विद्वान् और ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष तुम दोनों के साथ सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह यज्ञों, सत्सगों और ज्ञानप्रसङ्गों में आप दोनों के हितार्थ सुखकारी कल्याण ज्ञान को प्रकट करता है । उसी प्रकार में यथार्थतत्त्व को वर्णन करने वाले के समान ही क्रिया कौशल को जानने वाला, और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग में प्रेरित करने द्वारा होकर, आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊँ ।

पीपाय धेनुरदितिर्भुताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।

हिनोति यद्वा विदथे सपर्यन्तस रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

भा०—जिस प्रकार दुधार गाय अज्ञादि स्वाद्य पदार्थ देने वाले को अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार अखण्डित चरित्र वाली स्त्री देने योग्य अन्न, पत्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले और सत्य व्यवहार वाले पुरुष का सुख समृद्धि से बढ़ाती है । और जो तुम दोनों का ध्यान और धन के लाभ होने पर आदर करता हुआ आप दोनों की वृद्धि करता है वही यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है । (२) इसी प्रकार अदिति आचार्य अपने मित्र पदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है । ज्ञान यज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में ले जो दूसरे का आदर पूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है ।

भूत वा विष्णु भस्मास्वप्नो गाव आर्षश्च पीपयन्त देवीः ।

ततो नो प्रसूय पूर्यः पतिर्दन्व्रीतं प्रात पर्यस उस्त्रियायाः ॥४॥ २३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हर्ष देने वाली और हर्ष प्राप्त करने योग्य भस्मादि के साथ ते रटने हुए आप दोनों की, गो आदि पशुगण और जल, वृष, वृद्धा, तन्मज आदि और उत्तम विद्वान् क्रिया, वृद्धि करें । और हन्तारे

बीच में आप दोनों में से जो समस्त सुखों को देने हारा, गौ के दूध को देने वाले गोपालक के समान होकर, पूर्व के बड़े आस पुरुषों द्वारा स्थिर कर दिया जाता है, वह ही पालक पति रूप से रहे । वे तुम पति पत्नी इस पुष्टिकारक दुग्ध, अन्नादि को खाओ और पीओ और आनन्दित रहो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१५४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६

निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ षडृच मृक्तम् ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभाय दुत्तरं सधम्यं विचक्रमाणस्त्रेधेरुगायः ॥ १ ॥

भा०—जो परमेश्वर पार्थिव पदार्थों और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकों को विविध रूप से बनाता है, जो जगत् के प्रलय हो जाने के बाद भी विद्यमान उस कारण रूप प्रकृति को, जिसमें कि समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं, धारण करता है, और जो बहुत प्रकारों और मन्त्रों से स्तुति किया जाता है या सबको वेद द्वारा उपदेश करने हारा है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय, या कारणरूप, सूक्ष्म कार्यरूप और स्थूल कार्य पदार्थों को विशेष रूप से सञ्चालित करता है, उस व्यापक परमेश्वर के बलशाली महान् कार्यों का मैं वर्णन करूँ ।

प्र तद्विष्णुं स्तवते वार्येण मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

भा०—जिस जगदीश्वर के तीन महान् विक्रमणों अर्थात् सत्त्व, रजस, तमस इन तीनों से बने सगों में, या सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन तीन क्रियाओं में समस्त भुवन आश्रय पर पा रहे हैं, और जो बल, पराक्रम और शक्ति में सिंह के समान पापकारियों को नष्ट देने हारा, सम विषम

आदि नाना स्थानों में भी विचरने हारा, वेद वाणी में स्थित है, वह व्यापक परमेश्वर अच्छी प्रकार स्तुति करने योग्य है।

प्र विष्णवे शुभमेतु मन्म गिरिक्षतं उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

भा — जो परमेश्वर पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः इन तीन स्थानों से, इन लम्बे चौड़े, उत्तम यज्ञ द्वारा बनने वाले, एक ही आकाश स्थान में स्थित जगत् को अकेला बनाता है, उस सर्वव्यापक, अनन्त बलशाली, वेदवाणियों में ज्ञानरूप में विराजने वाले, महान् स्तुति योग्य परमेश्वर का मनन करने योग्य ज्ञान और महान् बल उत्तम रूप से हमें प्राप्त हो।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा सृधया मदन्ति ।

य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामको द्वाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

भा० — जिस परमेश्वर की तीनों सृष्टियाँ मधुर गुण से पूर्ण हैं। और जो तीनों नाश न प्राप्त होते हुए जीवनपर्ग को धारण करने वाली क्रिया से सब प्राणियों को तृप्त और आनन्दित करती है, और जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य को और तीनों धारण करने वाले सत्य, रजस्, तनस् इन गुणों से बने समस्त सत्तार को धारण करता है वह ही समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों को अकेला, बिना अन्य किसी की सहायता के स्वयं धारण करता है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णो पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥

भा० — जिस परमेश्वर के आश्रय पर रहकर, परम उपास्य देव की आराधना करने वाले, उसके अक्षय्य आनन्द लान करते हैं, नै उस परमेश्वर के प्रिय पावनवासों तथा आनन्द रस का साक्षात् लान कहे। सधुच पर निरूप से हनारा बन्धु है। नाना लोकों में व्यापक परमेश्वर

के सर्वोत्कृष्ट 'प्राप्तव्य' परम वेद्य स्वरूप में ही मधुर आनन्द रस का स्रोत है ।

ता वां वास्तून् युष्मसि गमध्वै यत्र गावो भूरिऽश्वङ्गा अयासः ॥

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥२४॥

भा०—जिन गृहों में बहुत उत्तम २ सींगों वाली गौएँ और बहुत सी किरणें बहुत से रोगों का नाश करने वाले गुणों से युक्त होकर प्राप्त हों, हम लोग आप दोनों को ऐसे २ निवास गृहों को प्राप्त करना चाहते हैं । निश्चय से यहाँ बहुस्तुत्य, बलवान् सूर्य का परम प्रकाश बहुत अच्छा प्रकाशित होता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१५५]

दीर्घतमा ऋषि ॥ विष्णुर्देवता इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, २, ६ मुरिक् विण्डुप् ।

४ स्वााट् विण्डुप् । ५ निचृत् विण्डुप् । २ निचृज्जगती ॥ षडृच सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तमन्धसो धियायुते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।

या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरवेतेव साधुना ॥ २ ॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोग इन्द्रिर्दक यज्ञ करने वाले महान् शूरवीर, और उत्तम विद्या और गुणों में प्रवेश करने वाले पुरुष के हित के लिये अपने जीवन धारण कराने वाले अन्नादि के बने पान करने और पालन करने योग्य पदार्थ आदर सत्कार से प्रदान करो । उत्तम अश्व के द्वारा जिस प्रकार लोग पर्वतों तक पहुँच जाने हैं उसी प्रकार साधनाशील और ज्ञान मार्ग में आगे बढ़ने वाले विद्वान् के द्वारा पर्वतों के शिखरों के समान उच्च पदों पर पूजित होकर विराजते हैं । और कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते ।

स्वेपसिन्धा समरणं निर्मावतोऽन्द्राविष्णू सुतपा वांमुदृष्यति ।

या मन्याय प्रतिभोगमानमिन्कशानोऽस्तुरमुनामदृष्यथः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य और वायु के तेज और वेग की जिस प्रकार उत्तम जल-

पान करने वाला मेघ अपेक्षा करता है, हे वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी विद्वान् और दूरवीर पुरुषो ! क्रियाकुशल तुम दोनों पुरुषों के इस प्रकार के तेज को और उत्तम ज्ञान और सत्संग को उत्तम ज्ञान-रस का पिपासु प्राप्त करता है । जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों ही मनुष्यों के हित के लिये प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य भग्नादि पदार्थों का पालन करते हैं और जिस प्रकार वे दोनों अग्नि की व्यापनशील ज्वाला की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उक्त इन्द्र और विष्णु, सेनापति और राजा प्रजा के साधारणजन के हितार्थ धारण करने योग्य प्रत्येक पदार्थ की रक्षा करें और वे शत्रु पर बाणवर्षा करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शत्रु को उखाड़ फेंकने की शक्ति की रक्षा करें ।

ता इ॑ वर्धन्ति॒ मह्यस्य॑ पौंस्यं॒ नि मा॒तरा॑ नयति॒ रेत॑से भुजे ।

दधा॑ति पु॒त्रोऽव॑रं॒ परं॑ पि॒तुर्नाम॑ तृ॒तीय॑मधि॒ रोच॑ने॒ दि॒वः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वृष्टि की धाराएँ अन्न को बढ़ाती हैं और इसके बड़े नारी पुरुषत्व का बल बढ़ाती हैं, और वह अन्न खाया जाकर वीर्य उत्पत्ति और शरीर की रक्षा और पालन और नाना प्रकार के भोग भोगने के लिए ही पुरुषों को प्रवृत्त करता है । वही अन्न वीर्य द्वारा माता पिता से उत्पन्न होकर पुत्र रूप होकर सूर्य के समान प्रकाशित होने और ज्ञान प्रकाश और व्यवहार के उत्तम रचिवर तेजस्वी कार्यों में भी पिता के निरुपेक्ष, सर्वोच्च और सबसे उत्तम यश को भी धारण करता है । उसी प्रकार वे विपुला स्त्रियाँ, जो माता और पिता उत्सकी वीर्य रक्षा और संरक्षण के लिये उसके बड़े भारी बल की वृद्धि करें । वह पुत्र उनको जो बाप की नम्रता से प्राप्त हो । वह सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी होकर प्रकाशित होने के लिये उसके परे के और तीसरे स्वरूप को भी धारण करे ।

‘अवर पर तृतीयम्’—अवर अर्थात् दौरे, पर अर्थात् पुत्र और तृतीय

अर्थात् पिता तीनों को धारण करे। अर्थात् पुत्र स्वयं पुत्र का कर्तव्य पालन करे, पौत्र को उत्पन्न करे और पिता का पालन करे। वह पुत्र एक ही समय में अपने पुत्र का पिता, अपने पितामह का पौत्र कहावे अर्थात् वह तीन पीढ़ियों का रक्षक हो।

तत्तदिदं स्य पौत्र्यं गृणीमस्मिन्नस्य त्रातुरः कस्य मीळदुषः।

यः पार्श्वानि त्रिभिरिद्विगामभिरुक्रमिष्टो ह गायाय जीवसे ॥४॥

भा० — जिस प्रकार सूर्य अपने अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन विशेष रूपों से समस्त लोकों में व्याप जाता है उसी प्रकार जो पुरुष तीन विशेष गमन या उपायों से अति प्रशंसित जीवन की रक्षा और धारण करने के लिये पृथिवी के समस्त पदार्थों और लोकों और प्राणियों को अति उत्तम रूप से क्रमण कर जाता है, वह नाना प्रकार का पुरुष, हम लोग, स्वामी, रक्षक, भेड़िये के समान वृत्रक वा प्रजामक्षक न होने वाले मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्धक प्रजापालक का ही बतलाते हैं।

द्वे इदं स्य क्रमणे स्तुर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरगयति।

तृतीयं मम्य नकिरा दधर्षति वयश्च न प्रतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥

भा० — जिस प्रकार इस तेजोमय सूर्य के दो क्रमण, दो स्थान पृथिवी और अन्तरीक्ष इनको मनुष्य विद्या के बल से प्राप्त कर लेता है, और इसके तीसरे स्थान आकाश को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, दूर तक उड़ने वाले बड़े २ पक्षी भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकते, इसी प्रकार सन्तान आदि के सुखमय मार्ग को देने वाले हारे इस वीरवान् प्रज्ञाचारी के दो ही ऐसे क्रमण अर्थात् गमन, आश्रय या आचरण हैं जिनको अच्छी प्रकार ज्ञानपूर्वक देख कर मनुष्य वारण कर सकता है। इसका तीसरा स्वरूप या विद्याजन्म वह है जिसको मार्ग में जात, गिरने से बचाने वाले सहायकों से युक्त या रथादि के स्वामी और सामान्य ज्ञानवान् पुरुष भी कभी तिरस्कृत नहीं कर सकते।

चतुर्भिः साकं नवति घ नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान् ऋक्वैभिर्युवा कुमारः प्रत्येत्याहुवम् ६॥२५

भा०—जिस प्रकार कुमार दशा को त्याग कर बड़े लम्बे चौड़े विशाल शरीर वाला युवा पुरुष अपनी बाणी या आज्ञा के अर्धान पुरुषों से विविध दिशाओं के शत्रुओं के गिराता हुआ युद्ध को जाता है, और चार के साथ नव्ये अर्थात् ९४ पुरुषों के बने विशेष बलशाली पुरुषों और ऋक्वैयूह को भी हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान अपने नमाने वाले बलों से कपा देता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी कुत्सिक काम क्रोधादि से व्रन्त न होकर, आचार्य के उपदेशों को जीवन में सगति करने वाला, नित्य वृद्धिशाल, विशालकाय होकर, वेद की ऋचाओं या ज्ञानवान् विद्वानों से विविध ज्ञानों को प्राप्त करता हुआ, समस्त ज्ञान को प्राप्त हो । वह ९४ प्रकार के विरुद्ध बाधक कारणों को गोल चक्र के समान अपने चार आध्रमों या चार प्रकार के ब्रह्मचर्य बलों से कपा दे, उनको दूर करे । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१५६]

वायना अपिः ॥ विष्णुः पता ॥ अन्तः—निवृत्तिः । २ विराट् त्रिदुप् ।
५ रजराट् त्रिदुप् । निवृत्तिः गती । ४ जगती ॥ पंचचं सूक्तम् ॥
नवां मिथो न श्रेयो पतासुतिर्विभूतसुस एवया उ सप्रथाः ।
अथा ते विष्णो विदुषां चिदर्थः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो
द्विविधता ॥ १ ॥

भा०—हे विद्याजो म व्यापक विद्वन् ! तू निवृत्ति अर्थात् मृत्यु से अपने बाँटे रक्षक के समान सुख का देने हारा हो । तू जलवर्षी नेष के समान जेह जोर परिवारक अथ जोर तेजोदुक्त पदार्थों और जोर का प्रदान करने वाला हो । तू सूर्य के समान अति तेज, ऐश्वर्य, अथ जोर दश से सम्पन्न हो । तू रक्षक रूप से सबको प्राप्त होने और इसी प्रकार

से विख्यात कीर्ति वाला हो । और हे व्यापक शक्ति वाले । तेरा स्तुति करने योग्य व्यवहार और गुण विद्वान् पुरुष द्वारा पूज्य, और तेरा सत्संग और दान आदि कार्य अन्नादि से समृद्ध पुरुष द्वारा सम्पादन करने योग्य हो । (२) इसी प्रकार सर्व व्यापक परमेश्वर सबका मित्र, सुखप्रद, अन्न, जल, तेज का दाता, ऐश्वर्यवान्, रक्षक, महान् व्याप्तिमान् है । विद्वान् उसके गुण गाता, और हविष्मान् उसके निमित्त यज्ञ दान करता है ।

यः पुर्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।

यो ज्ञातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, मेधावी, अपने से पूर्व विद्यमान विद्याव-
योवृद्ध पुरुषों की उत्तम रीति से सेवा करने वाले, सदा सुप्रसन्न, स्वभाव
से ही ज्ञान सम्पादन करने में सलग्न, ज्ञान मार्ग में प्रवेश करने वाले नव
विद्यार्थी को ज्ञान दान करता है, और जो पुरुष व्रतों और गुणों में महान्
इस विद्यार्थी को उत्तम २ ज्ञान का सदा उपदेश करता है, वह ही श्रवण
योग्य कर्मों से युज्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास
करता है ।

तमुं स्तोतारः पूर्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषां पिपर्तन ।
आस्यं ज्ञानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमति
भजामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे यथायं गुणों का उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों ! आप
लोग पूर्व के विद्वानों द्वारा विद्या के योग्य पुरुष को यथाविधि प्राप्त करो ।
और ज्ञानैश्वर्य को अपने में धारण करने वाले को विद्या द्वारा नवीन जन्म
प्राप्त कराके विद्या से पूर्ण करो । इसके उत्तम नाम को भी जानते हुए
इसे विशेष रूप से उपदेश करो । हे विद्याओं में व्यापक विद्वन् ! हम
तेरे महान् उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ।

तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिन्ता क्रतुं सचन्तु मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदै वृजं च विष्णुः सखिर्वा अपोर्णुते ॥४॥

भा०—व्यापक प्रकाश वाला सूर्य जिस प्रकार दिन को प्राप्त कराने वाले किरण समूह को प्रकट करता, और उत्तम बल को धारण करता है, और जिस प्रकार वायुगुणों के द्रैक इस सूर्य के सामर्थ्य को मेघ और दिन रात्रि प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य उस परम वेद्य ज्ञान को और गो रूप वाणियों के संघ वेद को प्रकाशित करे । वह प्रकाश लाभ कराने वाले, तथा उत्तम ज्ञानसामर्थ्य को धारण करे । तेज से चमकने वाला धेठ पुरुष, और नाना ऐश्वर्यों के भोक्ता स्त्री-पुरुष, ज्ञानवान् आचार्य के उस ज्ञान और कर्मसामर्थ्य को प्राप्त हों और उसमें सहयोग करें ।

आ यो प्रिवाय सचथाय देव्य इन्द्राय विष्णुः सुरुते सुकृत्तः ।
वेधा अजिन्वत्तिष्ठस्थ आर्यमृतस्य भागं यजमानमाम-
जत् ॥ ५ ॥ २६ ॥ २१ ॥

भा०—जो विद्वानों का हितकारी, शुभ गुणों और विद्याओं में प्रवेश करने द्वारा जिज्ञासु पुरुष, विद्या आदि ऐश्वर्य से युक्त गुरु को प्रसन्न करने के लिए और उसकी सेवा करने के लिए उसको प्राप्त होता है, और जो उत्तम उपकार करने वाले के प्रति अधिक उपकार करने वाला होता है, वह बुद्धिमान् पुरुष, कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों में स्थिर होकर, उत्तम शुभ गुणों और विद्या में निपुण धेठ गुरु को प्रसन्न करे । धनार्थी जिस प्रकार धनशील को प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त वह विद्या दान देने वाले को प्राप्त हो, और उसकी सेवा शुभ्रूपा करे । इति पञ्चमो वर्गः । इत्येकविंशोऽनुवाकः ॥

[१५७]

सर्वतया ऋषि ॥ अग्निर्देवते ॥ अन्ध — १ विष्णुः । ५ विष्णुः विष्णुः ।

६ विष्णुः विष्णुः । २, ३ विष्णुः । ४ विष्णुः । ५ विष्णुः ।

अवो॑ध्य॒ग्निर्ज॑र्म उदे॑ति सूर्यो॑ व्यू॒पाश्चन्द्रा॑ म॒ह्यावो॑ अ॒र्चिषा॑ ।

आयु॑क्षाताम॒श्विना॑ यात॒वे रथं॑ प्रासा॑वी॒द्देवः॑ स॒विता॑ जगत्पृ॒थक् ॥ १ ॥

भा० — अग्नि जिस प्रकार प्रज्वलित होता, और पृथिवी को प्रकाशित करने वाला सूर्य जैसे उदय को प्राप्त है, वैसे विनयी शिष्य अपनी विद्या-भूमि आचार्य से विद्वान् होकर सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो । जैसे आल्हादकारिणी विस्तृत वेला कान्ति के सहित प्रकट होती है, उसी प्रकार कान्तमती कन्या तेज से विविध गुणों को प्रकट करे । इसी प्रकार विद्या में व्यापक और विद्या के बल से जगत् के सुखों को भोगने वाले विद्वान् स्त्री-पुरुष मिलकर संसार के मार्ग पर चलने के लिये उत्तम आनन्द देगे और वेग से चलने वाले गृहस्थ रूप रथ को युक्त करे । जैसे सर्वग्रेरक सूर्य प्राणिसंसार को पृथक् प्रेरित कर सबको उनकी प्रकृति के अनुसार चलाता और उनको जीवन देता है उसी प्रकार उत्पादक कामनावान् पुत्रैषी, प्रिय पुरुष संतान को उत्पन्न करे ।

यद्यु॒ज्जाथे॑ वृष॑णम॒श्विना॑ रथं॑ घृ॒तनं॑ नो भ॒धुना॑ क्षत्रमु॒न्नतम्॑ ।

अ॒स्माकं॑ ब्र॒ह्म पृ॒तना॑सु जि॒न्मत॑ वयं घ॒ना शूर॑साता भजेम॒हि ॥ २ ॥

भा० — हे गृहस्थ सुखों के भोगने और एक दूसरे के हृदय में व्याप्त करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! जब आप दोनों सुख का और वीर्य का सेचन करने वाले रमण करने के साधन रूप अंग को संयुक्त करो इसमें एवं आप दोनों अपने वीर्य को घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ से और मयुर अन्न से सींचो । इसी प्रकार हमारे मनुष्या में उत्तम अन्न और बल को करो । जिसमें हम लोग सदा शूरवीर पुरुषों को प्राप्त करने के लिए नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करें और सेवें ।

अ॒र्वाङ् वि॒चक्रो॑ म॒बुवा॑र्ह॒नो रथो॑ जी॒राश्वो॑ अ॒श्विनो॑र्यात् सु॒ष्टुतः॑ ।

त्रि॒बन्धुरो॑ म॒घवा॑ वि॒श्वसौ॑भि॒गुः शं न॒ आ व॑क्षद् द्वि॒पट्टे॑ चतु॒ष्पदे॑ ॥ ३ ॥

भा०—विद्यावान् श्री पुरुषो का जल के बल से चलने वाला, मधुर नाना सुखों को प्राप्त कराने वाला, और अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, वेगवान् अश्वों से युक्त, तीन चक्रों वाला, उत्तम, परास-नीय, तीन बन्धनों वाला, बहुमूल्य, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त रथ हमें प्राप्त हो, और हमारे दो पाये भूतय आदि चौपाये गो आदि पशुओं को शान्ति सुख प्राप्त करावे ।

॥१॥ न उजै बहुतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्ट नी रपांसि मृक्षतुं संधतुं द्वेषो भवेतं सचाभुवा ॥२॥

भा०—हे विद्यान् श्री पुरुषो ! आप दोनों हमें बल पराक्रम और उत्तम अन्न प्राप्त कराओ । और तुम दोनों हमें मधुर तथा विज्ञानयुक्त गन्धों से लेचन करो, उससे हमारे ज्ञान की वृद्धि करो । जीवन को बहुत अधिक बढ़ा हमें दीर्घायु दरो । हमारे सब पापों को सब प्रकार से शुद्ध कर दूर करो । देव के नावों को दूर करो और सदा एक दूसरे के साथ रहना होकर रहो ।

युव ह नभै जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।

पृथग्नि च नृपणावपष्ट वनस्पतीरश्विनावैरयेयाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे बलवान् श्री पुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य और वायु भूतियों के तार प्राणिप्राणियों में स्वतन्त्र गन्ध धारण कराते हैं, उसी प्रकार मानवाजो, पक्षों, पार्थों के लेचन और वीर्य रक्षण करने हारो । आप दोनों जल जल राशियों में हा जलधान क्रिया द्वारा गर्भ धारण करा करते अतिरिक्त निषिद्ध राशियों में नहो । आप दोनों सब लोकों के सब पुत्र बन रहो । आप दोनों जग्नि और अलों को और वनस्पतियों को अपने में लाओ ।

युव ह स्यो भिपजां मेपुजेभिरधो ह स्यो रुध्या राध्वेभिः ।

प्रयो ह पुनर्धि धत्थ उष्ट्रा यो वा इविष्मन्मनसा इदाश द॥२॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो । आप दोनों रोगनाशक वैद्यों और औषधियों से रोग निवारण करने वाले होकर रहो और रोग निवारण किया करो । आप दोनों रथ के योग्य उत्तम अश्वों और बैल आदि पशुओं से रथ संचालन के कार्य में कुशल होकर रहो । और तुम दोनों उग्र होकर, जो अन्न और ऐश्वर्य आदि ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों में सम्पन्न होकर चित्त से, प्रेम से प्रदान करता है उसको, क्षात्र बल और राष्ट्र के भी ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थापन करो । इति सप्तविंशो वगैः ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥

[१५८]

दीर्घतमा ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ द्यम् — १, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । भुरिक् पक्तिः । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षट्च सूक्तम् ॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशरयतं नो वृषणावभिष्टौ ।

दक्षा ह यद्रेक्का औचथ्यो वृं प्र यत्सस्त्राथे अक्वाभिरुती ॥१॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान सुखों का वपंग करने वाले माता और पिता । आप दोनों प्रजाओं के बसाने और स्वयं राष्ट्र और गृह बसाने हारे दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों के देने, और दुष्टों को नष्ट करने वाले, परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए, अति अधिक ज्ञानशील, दुःखों के नाशक और दर्शनीय होओ । उपदेश करने योग्य उत्तम शिष्य तुम दोनों के समीप जब विद्याप्राप्ति के निमित्त प्राप्त होता है तब आप दोनों आनन्दनीय ज्ञान वाणियों और रक्षा क्रियाओं सहित ज्ञान का प्रसार करो । और आप दोनों का दान देने योग्य जो ज्ञान और ऐश्वर्य है उसको उत्तम कामना की पूर्ति और दृष्ट मिट्टि के लिये अच्छी प्रकार प्रदान किया करो ।

को वा दशसुमन्तये चिदस्य वसु यद्वेये नमसा पुदे गोः ।

जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्वीः कामप्रेणै मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

भा०—हे राजा रानी पुरुषो ! आप दोनों, एक दूसरे के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले मन से परस्पर आचरण करते हुए जब पृथिवी के ऊपर रहने के स्थान में परस्पर आदरपूर्वक ऐश्वर्य से सम्पन्न नगरानिनी प्रजाओं को पुष्ट करो, तब प्रजाओं के बीच उनको बसाने वाले उनके प्राणों के समान होकर तुम दोनों हमारे हित के लिये जागते रहो, सदा सावधान होकर रहो । इस शुभ मति के लिये तुमको कौन ज्ञान प्रदान करे । अथवा प्रजापति परमेश्वर ही उत्तम मति का उपदेश करे ।

युक्तो ह यद्धौ तौग्रथाय पेहर्वि मध्ये ग्रथैस्तौ धार्थि पुत्रः ।

उपं ग्रामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयन्निरेवैः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और गैन्धर्व सञ्चालन के कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिए, सर्व पालक तथा पिता और बलवान् राष्ट्रपति प्रजासागर के बीच स्थापित किया जाता है, जिस प्रकार शूरवीर सेनापति वेग से जाने वाले अश्वों सहित महासागर में जाता है, उसी प्रकार मैं भी वेगवान् साधनों से युक्त होकर आप दोनों राष्ट्र के सभी पुरुषों की शरण को प्राप्त होता हूँ ।

उपस्तुतिरौग्रथमुरुप्येन्मा माभिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।

मा गामेप्रो दर्शतयधितो धाक् प्र यद्धौ वृद्धस्तमनि खादति क्षाम् ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान सदा प्रकाशमान् सना और सेना के स्वामी जनों । समाप २ बैठकर राष्ट्र तथा राज्य के हित लिये यथायथा वाक्पथ किया करो, वचनों के पात्र प्रशस्तनीय राजा की रक्षा किया करो । वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दावे दावे रहने वाली, और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सना के सदस्यों की दोनों भोजन, पुरा राजा या स्वामी की विपरीत रूप से दोहन न करे अर्थात् दानिवारक रूप में करावे । बलि दानानुसार रूप किया हुआ शत्रु के सन्तान प्रवृत्ति त होने वाली तेजस्वी तेज्य समूह जो शत्रुओं के लिये है ।

क्योंकि तुम दोनों सभा और सेना के स्वामियों के आश्रय पर ही राजा वा प्रजावर्ग अपने राष्ट्र में बंधकर इस भूमि का भोग करता है।

न मा गरन्तुद्यौ मातृत्तमा दासा यद्री सुसमुब्धमवाधुः ।

शिरो यदस्य त्रैतुनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्व ॥२॥

भा०—जब राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन अच्छी प्रकार धन धान्य से परिपूर्ण, राष्ट्रगति को नीचे गिराने का यत्न करें, उस समय उत्तम माताओं के समान हितकारिणी और वनैश्वर्य से सम्पन्न आस प्रजाएँ मुझे निगलने का यत्न न करें, प्रत्युत मेरी रक्षा करें। जब वन, जन और कोप, तीनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ाकर राष्ट्र का नाश करने वाला शत्रुजन इस राष्ट्र के शिर को विविध और विपरीत मार्ग से नाश करता है तब वह मानो अपने ही आप अपने ही छाती और कन्धों पर आघात करता है। प्रजा का उत्तम बलवान् नायक राजा का घात करना अपना ही नाश कर लेना है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुवीन्द्रशमे युगे ।

अपामर्थ्य युतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—जो अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल, जोर अति ममताशील लोभी होता है वह राजा दसवें वर्ष जीर्ण होकर नाश की प्राप्त हो जाता है। और जो राजा नियमों में सुबद्ध, जितेन्द्रिय प्रजाओं के ऐश्वर्य और प्रयोजन को प्राप्त करता है वह उनका महान् स्वामी और रथ के संचालक के समान उनको सन्मार्ग में ले जाने द्वारा होता है।

अथवा युग = ५ वर्ष। दशमे युगे = पचासवें वर्ष। अज्यात्म मे—ज्ञानरहित जीव दीर्घतमा मामतेय है। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ वावापृषिव्या । देवते ॥ धन्द्रः—१ निराद् जगतो । २, ३, ४

निचृज्जगतो । ५ जगतो च ॥ ५३ च ॥ ५४ च ॥

प्र धावां यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधां मही स्तुपे विदथेपु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदसंसेत्था धिया वार्याणि प्रभूपतः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी बड़े और प्रजाओं को अन्न और जल में बढ़ाने वाले हैं, और जिस प्रकार वे दोनों प्रकाशयुक्त किरणों और सुखप्रद पदार्थों द्वारा पालन करने वाले और उत्तम रीति में दुःखनाशक रह कर नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश में युक्त और भूमि के समान प्रजा के उत्पादक माता पिता और गुरुजन अति पूजनीय सत्य ज्ञान और अन्न जल से सन्तानों की मन आत्मा और देह की वृद्धि करने वाले हैं । उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त से युक्त उन दोनों की मैं ज्ञानों के निमित्त स्तुति कहूँ । जो दोनों उत्तम विद्वानों द्वारा व्यवहारकुशल पुत्रों और शिष्यों में युक्त होकर, तथा उत्तम कर्म और ज्ञान से युक्त होकर बुद्धि और कर्म के बल से वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्या को अधिक मात्रा में धारण करते कराते हैं ।

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतपस्तद्धवीमभिः ।

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुरुह प्रजायां अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

भा०—जोर में द्रोह रहित पिता और माता के मन को, छेहों से स्वयं बलवान् और अति पूज्य मानता और जानता हूँ । क्योंकि सन्तानों के पातक माता पिता उत्तम वीर्यवान् होकर श्रेष्ठ २ उपायों से स्वसन्तानों के लिये बहुत अधिक जन्मादि उत्पन्न और प्रदान करें । इसी प्रकार गुरुजन उत्तम वार्यवान् होकर, स्वशिष्यों को भूमा स्वरूप अमृतमय ब्रह्मज्ञान प्रदान करें ।

ते ह्यनुज २ उपसः सुदसंसो मही जनुमतिरां पूर्वचित्तये ।

स्थातुर्ध्वं सत्यं अर्वातश्च धर्मणि पुत्रस्य पापः पदमद्रयाचिनः ॥ ३ ॥

भा०—वे पुत्र जन, उत्तम ज्ञान उत्तम कर्म और व्यवहार वाले होकर, सत्य पूर्व ज्ञान जादर धरने के लिये माता पिता दोनों और ज्ञान करने

वाले आचार्यजनों को सबसे अधिक पूज्य जानें । हे माता पिताओ ! आप दोनों स्थावर सम्पत्ति और जंगम पुत्रादि के धारण करने में साधारण मां बाप से गुणों में अधिक हो, आर्य पुत्र के स्थान का मार्ग का पालन करो । ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो ज्ञामो सयोनी मिथुना समोकसा । नव्यन्नव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥५॥

भा०—वे पुत्र बुद्धिमान्, उत्तम ज्ञान और चित्त वाले, क्रान्तदर्शी दीर्घदर्शी, उत्तम दीप्ति और तेज से युक्त, अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणों के समान पुत्रोत्पादन में समर्थ होकर, जोड़े २ बन कर एक ही स्थान में घर बना कर रहते हुए, नये २ प्रजातन्तु को अपनी कामनारूप पुत्रैपणा के निमित्त उत्पन्न करें ।

तद्राधो अथ सवितुर्धरेण्यं नृयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयि धत्तं वसुमन्तं शतृग्विनम् ॥२॥

भा०—हम लोग सर्वोत्पादक परमेश्वर के श्रेष्ठ आराधनीय स्वरूप को उत्तम उपासनाकाल में सदा चिन्तन करें । वे दोनों सूर्य और पृथिवी के समान उत्तम चित्त और ज्ञानवान् होकर हमारे लिये सैकड़ों गौओं और वाणियों से युक्त ऐश्वर्य युक्त, सम्पदा प्रदान करें । द्वितीयो वर्गः ॥

[१६०]

दीधनमा ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्द — १ विराड गगती । २, ३, ४,

५ तिचृज्जगती ॥ पचर्च सक्तम् ॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी । सुजन्मनी ध्रियणं भन्तरीयते देवो द्रवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥२॥

भा०—सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार समस्त विश्व को शान्ति और कल्याण देने वाले हैं, प्रकाश और जल से पूर्ण होकर क्रान्तदर्शी प्रकाश को धारण करते और सबको धारण करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों धी-पुरुष या माता पिता भी समस्त ससार को शान्ति देने और कल्याण करने

बाले नय व्यवहार ने युक्त होकर, प्रजाजनों और लोकों के हितार्थ, मान्तदर्शा विद्वानों को धारण करने वाले, उत्तम जन्म वाले, समस्त लोकों को अपने आश्रय में धारण करने वाले हों । उनमें से सूर्य के समान तेजस्वी और कामना युक्त पुरुष धर्म से शुद्ध पवित्र हो । उसी प्रकार कामना युक्त गेहवर्ती स्त्री भी धर्म से शुद्ध पवित्र होकर अन्तःकरण में विराजे ।

उरुच्यर्चमा म॒हिनीं अ॒सृश्च॒तां पि॒ता मा॒ता च॒ भुव॑नानि रक्षतः ।
सु॒भृष्ट॑म वपु॒ष्ये ३ न रोद॑सी पि॒ता यत्सी॑मभि रू॒पैरवा॑सयत् ॥२॥

भा०—जिन प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों अति विस्तृत और विविध मान्ति में ने युक्त होते हैं, और महान् होकर समस्त भुवनो को पालते हैं, वार उत्तम रीति में दृढ़ होकर रहते हैं, उसी प्रकार माता और पिता जति पिताल इदय वाले, गुणो में महान्, अयुक्त कार्यों कामादि पिलासों न अन्तर्गत होकर, गृह में उत्पन्न सन्तानों की रक्षा करें । वे दोनों अच्छी प्रकार लष्ट पुष्ट और उत्तम शरीर वाले सुन्दर हों । और उन दोनों में जो सन्तानों का पालक पिता है वह नाना रचिकर पदायों और वस्त्रों में सब प्रकार से सब पुत्रादि सन्तानों को आच्छादित करे और पाले ।

स॒ र्वाहिः॑ प॒त्रः पि॒त्रोः प॒विश्र॑वान् पु॒नाति॑ धी॒रो भुव॑नानि मा॒यया॑ ।
प्रे॒तु च॑ पृ॒थ्वीं नृ॒प॒त॒म॒ सुरे॑त॒मं वि॒श्रवा॑हो श॒क्रं प॒थो अ॒स्य दु॑क्षत ॥३॥

भा०—वह माता पिता का पुत्र, पवित्र आचार और पवित्र वेद ज्ञान से युक्त होकर, धैर्यवान्, जति के समान तेजस्वी और गृहस्थ को बहन करन न समर्थ होकर, अपना उत्तम उद्दि ने समस्त उत्पन्न सन्तानों और पालन का ना पवित्र करता है । सूर्य जित प्रकार पृथ्वी और उत्तम तज्जल जप को जल से पूर्ण करता है उसी प्रकार यह पुत्र भी दूध पिलाने वाली माता या नाना को उत्तम धैर्यवान् बलवान् दीर्घ निषेका पिता को तदा हा पवित्र करता है । हे पुरुषों । आप लोग इसके बल दीर्घ को और उपकारक जल जल को पूर्ण करो ।

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जुजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतु ययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

भा०—यह पुत्र उत्तम ज्ञानी और कर्मण्य विद्वानों के बीच सबसे अधिक ज्ञानी, कर्मनिष्ठ भास होवे । जो पुत्र अपने को उत्तम ज्ञान देने वाले माता पिताओं तथा गुरुजनों को सब प्रकार के कल्याणों के उत्पादक रूप से जानता है, और जो चित्त को मनोरजक करने वाले माता पिताओं को उत्तम कर्मयुक्त किति से विशेष कितिमान् बनाता है, और उन दोनों को कभी नाश को प्राप्त न होने वाले स्तम्भों के समान आश्रयप्रद उपायों से अच्छी प्रकार से सेवा करता है, उनको प्रसन्न करता है ।

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी घासथो
बृहत् । येनाभि कृषीस्तुतनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे
समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञान और आश्रय के देने वाले । आप दोनों स्तुति योग्य और अति पूज्य होकर, बड़ी कीर्ति, बड़े भारी बल वीर्य को धारण कराओ । जिसके बल से हम सदा ही प्रजाओं को विस्तृत करें । आप दोनों स्तुति योग्य बल पराक्रम को हममें प्राप्त कराओ । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ इन्द्रः—१ भिराट् जगती ॥ ३, ५, ६, ८, १२ निचृजगती । ७, १० जगती च । निचृत् त्रिष्टुप् । ४, १३ भुरिह् त्रिष्टुप् । स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् । १४ स्वराट् पङ्क्तिः । चतुर्दशर्चं नक्तम् ॥
किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते द्रुत्यङ्कयद्वाचिम ।
न निन्दिम चमसं यो मद्राकुलोऽग्रे घातुर्द्रुण इन्द्रतिमूदिम ॥१॥

भा०—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन । क्या यह पुरुष सबसे अधिक प्रशंसनीय गुणों से युक्त है, क्या यह सबसे अधिक युवा, बलवान्,

वाले पुरुष को लक्ष्यकर जो २ नाना कार्य आप लोग कहते हो कि उसके लिये उत्तम अश्व, अनुगामी रथ और अश्वसैन्य तैयार करो, और रथ सैन्य तैयार करो, नाना रस पिलाने वाली गौ के समान पृथिवी तैयार करो, स्त्री-पुरुष दोनों को युवा बलवान् बनाओ । हम विद्वान् लोग प्रजा के हितार्थ ही उन नाना उत्तम कार्यों को करने के लिये आस होते हैं ।

चक्रुर्वांसं ऋभवस्तदपृच्छतु कवेर्दभुवः स्य दूतो न राजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्वष्टा आस्यन्तन्यानिजे ॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न किये मेघों को प्रकट करता है और स्वयं दिशाओं के बीच में प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष जिन स्वयं तैयार किये चतुरंग सैन्य बलों को, चारों वर्णों या चारों आश्रमों को सुव्यवस्थित रूप से बने और अच्छे रूप से आचरण किये हुए अपने अर्चन देखता है, तब वह राजा प्रजा और शासन करने योग्य भूमियों के बीच उनका भोक्ता होकर सब प्रकार से प्रकाशित होता है । तब राज्य शासन करने वाले, सत्य धर्म और ज्ञान से प्रकाशित होने वाले बड़े पुरुष उससे यह प्रश्न करें कि वह जो भी दूत हमारे पास आवे वह कहाँ रहे ? प्रमुख २ विद्वान् को किस २ पद पर स्थापित करें । इस प्रकार राजा से पूछ कर विद्वान् लोग उसी प्रकार उसका निश्चय करें ।

हनामैताँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
श्रुत्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कुर्यात् नामभिः
स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—जो लोग मेघ के समान सब सुगंधों के वर्णक, विद्वानों द्वारा पालन करने योग्य राजा के निन्दक हैं उनको हम मारें, इस प्रकार से जब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष आज्ञा का निश्चय करता है, तब उत्तम शासन में वे पुरुष दण्ड से भयभीत होकर नाना प्रकार से मुक्त होते हैं । तब राजा की कामना योग्य राज्यव्यवस्था नाना प्रकार के बस करने के

उपायो मे सव वनाकर मिले हुए राष्ट्र के मनुष्यों को पाले पोसे, प्रसन्न
करे और आगे बढ़ावे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।

ऋभुर्विभ्या वाजो देवो अंगच्छत स्वपसो यश्रियै भागमैतन ॥६॥

भा०—शत्रुहन्ता तेनापति राष्ट्र के धारण और शत्रुसंहरण के बलों
का प्रयोग करे । श्री पुरुष बृहस्पतिश्रम को, रथ को सारथी के समान
सदा संचालित करें । राजा जिस प्रकार सब प्रकार की प्रजा को धारण
करता है उन्हीं प्रकार वेद की वाणी का पालक विद्वान् ससार के पदार्थों
का एकत्र करने वाली वेदवाणी का ज्ञान करे । सत्य वाणी, सत्य व्यव-
हार के द्वारा सामर्थ्यवान्, ज्ञान और ऐश्वर्य में युक्त राजा, विविध
सामर्थ्यों सहित, दानशील और तंजस्वी पुरुषों के पास जावे । इन प्रकार
है पुरुष । आप लोग सुसभ्य, सुशिक्षित, सत्वर्मी होकर यज्ञ अर्थात्
परस्पर सत्वग से जोर लेन देन के व्यवहार से प्राप्त होने योग्य सर्वोच्च
राष्ट्र के ऐश्वर्यों को प्राप्त करें ।

निधर्मिणो गामरिणीत प्रीतिभिर्या जरन्ता शुब्रशा ताकुणोतन ।

सोपेन्वता अश्वदध्वमतक्षत युक्त्वा रजसुर्प देवो प्रयातन ॥७॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धारा पुरुषों । आप लोग ढाल के बल पर शूनि
का अपना धारण सामर्थ्यों से प्राप्त कर अपने बल करने में सन्तुष्ट होयों ।
जहाँ हैं शिल्पाजनों । आप लोग शिल्पों द्वारा धर्म में से वेदों को दूर
फेंकने वाली धनुष को और प्राप्त करें । जो युवक पुम्मारों को अपने
अपान धारण करें उन ऐसे उपदेश करने वाले विशासुद्ध माता पिताओं
का अपना प्रपुत्र स्वीकार करें । उत्तम जन्म से उत्तम जन्म को तैयार
करें । उत्तम जन्म से जन्म सन्तति प्राप्त करें । रथ जोड़ कर दिव्य लोगों,
शुणों, समस्त उत्तम व्यवहारों और विजयशील सन्तान कर्तव्यों को
प्राप्त करें ।

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।

सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सर्वने मादयाध्वे ॥ ८ ॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धर वीर पुरुषों के शिक्षण में कुशल पुरुषों ! आप लोग अपने अधीन पुरुषों को ऐसा उपदेश देते रहा करो कि ऐसा जल पान किया करो । यह रोगों से छुड़ाने और शरीर को शुद्ध कर देने वाला औषधिरस है इसे निश्चय ही पान किया करो । यदि वह भी पान न करना चाहो तो उन सबसे भी उत्तम सोम आदि रस में ही सदा अनन्दित रहो ।

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।

वधूर्यन्ती बहुभ्यः प्रैको अब्रवीद्वता वदन्तश्चमसौ अपिशत ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! आप लोगों में एक विद्वान् यही उपदेश करे कि जल ही बहुत गुणा से युक्त है, वह जलों की विद्याओं का ही उपदेश करे । दूसरा व्यक्ति ऐसा उपदेश किया करे कि अग्नि ही बहुत गुणों से युक्त है । वह अग्नि के ही गुणों का उपदेश किया करे । और आप में से एक बहुत से शिष्यों को शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का या भूमि की विद्या का ही अच्छी प्रकार प्रवचन किया करे । इस प्रकार आप लोग सत्य ज्ञानों का उपदेश करते हुए, ज्ञान और ऐश्वर्यों का भोग करने वाले या ज्ञान जिज्ञासु मानवों को नाना विभागों में बांट दो ।

थोणामेकं उदकं गामवाजति मांसमेकं पिशति सूनयाभृतम् ।

आ निष्पुच्छः शकृदको अपाभरत्किं स्विपुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः १०

भा०—विद्वान् पुरुषों के कार्यों का वर्णन । एक विद्वान् पुरुष जल को यन्त्र द्वारा नीचे से ऊपर निकालता है, और दूसरा विद्वान् श्रवण करने योग्य उत्तम वाणी को नीचे की तरफ हृदय या नभिदेश से उठा कर ऊपर मुख द्वारा प्रकट करता है । अथवा श्रवण योग्य गीतों को चराता है ।

र एक पुरुष हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से प्राप्त हुए मन्त्र

को उत्तम लगने वाले अज्ञादि को पैदा करता या उसे रुचिर बनाता है ।
एक विद्वान् अन्त होने सूर्य के शक्तिदायक अश को उसमें प्राप्त करता
है । वपुता को रक्षा करने में समर्थ विद्वानों के हित के और जो कुछ भी
पदार्थ है उन्हें पाक माता और पिता दोनों प्राप्त कराना चाहे ।

उत्तस्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।

प्रगोषस्य वदस्स्तना गृहे तद्व्येदमृभयो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुषों ! आप लोग ऊँचे स्थानों पर उम पशुपदों के हितार्थ
धाम आदि चरने योग्य पदार्थ उत्पन्न करो, और नीचे के गहरे स्थानों पर
उत्तम वपुता की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर जल एकत्र करो ।
घर में जत्र जाकर रहो या सोचो तब सदा अग्राह्य पुरुष के दुश्चरित्र का
नाम अनुमान मत करो ।

सुगमोऽयं यद्वचना पर्यसर्पतु क्वं स्विज्ञात्या पितरां व आसतुः ।

पशपतु यः कुरस्तं व आददे यः प्राच्यपीत्यो तस्मा अव्यतीतन ॥ १२ ॥

भा०—हे पुरुषों ! जत्र परस्पर प्रेम से मिल कर प्राणियों और पशुओं
का प्राप्त होना, उस समय आप लोगों के माता पिता वहीं जा रहे,
रक्षा चिन्ता मत करो । जो आप लोगों के बाहु की पकड़े, जो तुम्हारी
विपत्ति पर प्रतिबन्ध लगावे उसको तुम उरा जहो, और जो तुम्हारे
हिंसे उत्पन्न शक्ति से उपदेश करे उसके लिये प्रिय वाणी बोलो करो ।

सपुत्रात्वं पश्यत्तदपुच्छतागोष्य क इदं नो अवृधत् ।

ध्यानं वस्तो बोधयितारमवतीत्संवत्सर इदमथा व्यरयत ॥ १३ ॥

भा०—हे सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले सूर्य किरणों के तन्मान
पुत्रात्मान । हे सुख से शयन करने वाले, निश्चिन्त विद्वानों जनों ! आप
लोग उत्तम परम ज्ञान के लक्ष्मण ने सदा प्रवृत्त किया करो । तुम से कुछ
भी न छिपा रहने योग्य है आचार्य । होने वह सब ज्ञातव्य विषय कौन
बतला सकता है * । तब अपने घर के अधीन रहने जला दिखाना हो

अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, ज्ञान प्रदान करने वाले
आचार्य को कहे कि आप एक वर्ष में ही यह समस्त ज्ञान हमें विशेष
रूप से व्याख्यान कर दें।

द्विवा यान्ति मरुतो भूम्याशिरयं चातो अंतरिक्षेण याति ।

अद्वियीति वरुणः समुद्रैर्युष्मो इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥

भा०—हे बलीयों और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे
विजान पुरुषों । जिस प्रकार वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं, और अग्नि
भूमि के आश्रय से बढ़ती, और यह वायु अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर
चढ़ता है, और जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ राजा समुद्र के समान गम्भीर
आसनों के साथ या मेव आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए जलों
के माध्यम गमन करता है, ठसी प्रकार तुमको चाहने वाले तथा बल-वीर्य
का पतन या म्यलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों । इति
पथो वर्गः ॥

[१६२]

दीवता ऋषिः ॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवाः ॥ छन्दः—१, २, ६,
१०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् ।
त्रिष्टुप् । ३, ११, २१, चुरित् त्रिष्टुप् । १२ सारट् त्रिष्टुप् । १३, १४ चुरित्
पङ्क्तिः । १५, १६, २२ सारट् पङ्क्तिः । १६ विराट् पङ्क्तिः । ३ निचृ-
जानता ॥ द्वाविंशच्च सूक्तम् ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुना मदतः परि खगम् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सतेः प्रचक्ष्यामो विदये वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हमारा मित्र, श्रेष्ठ पुरुष, ऋभुओं का नियन्ता न्यायाधीश,
वायु और जीवनप्रद, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुषों के बीच निधान करने
वाला मेरावी, और अन्य विद्वान् या शत्रुनाशक मैत्रिक लोग हमारे उन
विषयशाल पन्थों में प्रसिद्ध, वेग से आगे बढ़ने हारे पुरुष के जलो और

सामर्थ्यों की कभी निन्दा और उपेक्षा न करें । जिस बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल पुरुष के नाना सामर्थ्यों का हम अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं । अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनों शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वार्जा' है, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है । व्यापक होने से 'सप्ति' है । हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें । प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें । (यजु० । अ० २५ । २५) यान्नेर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्रावृजो मेभ्यद्विश्वरूप इन्द्रापृष्णाः प्रियमप्येति पार्थः ॥ २ ॥

भा०—जब अभिषेक तथा धनैश्वर्य से सुशोभित पुरुष की दीर्घ उर्ध्व और मुख्यरूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्व पुण्य प्राप्त करने है, तब उत्तम प्रजाल विचारों के समान उत्तम शोभा से युक्त, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का भ्राना, सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ, सेनापति और पोषक स्वाना दोनों का प्रिय लगने वाले तथा जल और अन्न के समान सबको पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ।

पुष च्छागः पुरो प्रभ्येन व्राजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्व-
देव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोळाशमवता त्वेष्टेन सौप्रवृत्तार्थं
जिन्वति ॥ ३ ॥

भा०—यह विजयी तथा व्यवहारकुशल समस्त विद्वान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ शत्रुओं का उद्बल नैदान करने द्वारा और पुरुष, वेगवान् अचैन्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साथ, सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के तेज और ऐश्वर्य को जीत करने वाला होकर, सब से जाने २ सेनापति के दुष्ट पद पर स्थापित किया जाता है, तब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष हा विद्वान्

अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य को कहे कि आप एक वर्ष में ही यह समस्त ज्ञान हमें विशेष रूप से व्याख्यान कर दें।

द्विवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अंतरिक्षेण याति ।

अद्विर्याति वहणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥

भा०—हे बलवीर्य और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं, और अग्नि मृमि के आश्रय से बढ़ती, और यह वायु अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर चलता है, और जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ राजा समुद्र के समान गम्भीर आसजनों के साथ या मेघ आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए, जलों के साथ गमन करता है, उसी प्रकार तुमको चाहने वाले तथा बल-वीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१६२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् । त्रिष्टुप् । ६, ११, २१, भुरिक त्रिष्टुप् । १२ मराट् त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक पङ्क्तिः । १५, १६, २२ मराट् पङ्क्तिः । १६ विराट् पङ्क्तिः । ३ निचृ-
जगती ॥ द्वाविंशच्च सूक्तम् ॥

मा नो मित्रो वहणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुना मदतुः परि खनन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवृक्षामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हमारा मित्र, श्रेष्ठ पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता न्यायाधीश, वायु और जीवनप्रद, पृथ्वीवान्, विद्वान् पुरुषों के बीच विवाह करने वाला मेधावी, और अन्य विद्वान् या शत्रुनाशक सनिक लोग हमारे उस विजयशील पुरुषों में प्रसिद्ध, वेग से आगे बढ़ने हारे पुरुष के बलों और

सामर्थ्यों की कभी निन्दा और उपेक्षा न करें । जिस बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल पुरुष के नाना सामर्थ्यों का हम अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं । अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनों शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वाजी' हैं, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है । व्यापक होने से 'ससि' है । हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें । प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें । (यजु० । अ० २५ । २५) यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राड्जो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णाः प्रियमप्येति पार्थः ॥ २ ॥

भा०—जब अभिप्रेक तथा धनैश्वर्य से सुशोभित पुरुष की दी हुई और मुख्यरूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्थ पुरुष प्राप्त करते हैं, तब उत्तम प्रशशील विद्यार्थी के समान उत्तम शोभा से युक्त, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का स्वामी, सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ, सेनापति और पोषक स्वामी दोनों को प्रिय लगाने वाले तथा जल और अन्न के समान सबको पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्व-
देव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोळाशमवता त्वेष्टेदेनं सौश्रवसाय
जिन्वति ॥ ३ ॥

भा०—यह विजयी तथा व्यवहारकुशल समस्त विद्वान् पुरुषों में सर्वथेष्ट शत्रुओं का छेदन भेदन करने द्वारा वीर पुरुष, वेगवान् अश्वसैन्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साय, सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के तेज और ऐश्वर्य को भोग करने वाला होकर, सब से आगे २ सेनापति के मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है, तब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ही विद्वान्

जन और अश्व के सहित सर्वप्रिय, सबके संमुख देने योग्य प्रधान पद को प्राप्त इस नायक को उत्तम कीर्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये परिपुष्ट करता है ।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं विर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा
पुष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्तजः ॥ ४ ॥

भा०—जब उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ, तथा विद्वानों का भार अपने ऊपर लेकर उनको उत्तम मार्ग पर ले जाने हारे, अश्व के समान बलवान् सेनापति मननशील पुरुष तीन प्रकार से करते हैं, इस अवसर पर सर्व-पोषक पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ भोक्ता, तथा शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ पुरुष, विद्वानों और तेजस्वी विजयाभिलाषी पुरुषों के प्रति सब के सयोजक सेनापति को एक दूसरे का परिचय कराता हुआ प्राप्त हो । वर्ष की तीनों ऋतुओं में सेनापति आदि का भ्रमण करावे और उसी अवसर पर गौर प्रधान २ प्रजापालक शासकों से उसका परिचय कराया करें ।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्वो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्र ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन सिंघेन वक्षणा ग्रा पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अश्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता और ब्रह्मा ये ऋत्विज् होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र रूप यज्ञ में अविकारों का प्रदाता, समस्त प्रजापालन के तन्त्र को चलाने द्वारा महामात्र, सबको अर्चीन योग्यतानुसार कल गुणों के समान जोड़ने वाला, राजादि नायकों और विद्वान् ब्रह्मणों को मान दान आदर से सदा उत्साहित और उत्तेजित करने वाला, विद्वानों और शस्त्राम्ब बल को अपने वश में रखने वाला, सन्मार्ग का उपदेष्टा, उत्तम मंत्रापी या सत्रधी न्यूनताओं को पूर्ण करने द्वारा आदि नाना अविकारी हो । हे विद्वान् अधिकारियों ! आप सब उस सुव्यवस्थित तथा उत्तम रीति में सुशोभित राजा वा राष्ट्र द्वारा, प्रजा की कुक्षियों को सब प्रकार से पूर्ण करो ।

(२) अध्यात्म में सातो प्राण सात ऋत्विग् हैं । यज्ञ आत्मा है । उपा-
सना धर्ममेघ तथा आनन्दघन में रम रम कर सब कामनाएं पूर्ण करो ।
इति सप्तमो वर्गः ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्च षालं यं अश्वयुपाय तक्षति ।

ये चावैते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वन्तु ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य प्रजा के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय राजा
के पद को परिश्रम से बनाते हैं, और जो उसको अपने कंधों पर धारण
करते हैं, और जो स्तम्भ के मुख्य भाग के समान राजा के प्रधान पद
को वृक्ष को वर्धकि के समान शस्त्रास्त्र सचालनों द्वारा बाधक कारणों को
नाश करके बनाते हैं, और ज्ञानवान्, वेगवान्, शत्रु पर प्रयाण करने
वाले अश्वसैन्य और सेनानायक के लिये परिपक्व अन्न को सब प्रकार से
संग्रह करके उन तक पहुँचाते हैं, उन सभी सहोद्योगी पुरुषों का उद्यम
इमें प्राप्त हो ।

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।

अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सुवन्धुम् ॥ ७ ॥

भा०—जो पुरुष मुझ प्रजाजन के लिये मनन करने योग्य ज्ञान को
धारण करता है, और जो विद्वान् और वीर तेजस्वी पुरुषों की समस्त
आशाओं कामनाओं को धारण करता है, वह गुरु के समीप प्राप्त यज्ञो-
पवीत वाला द्विज, उत्तम ज्ञानवान् और उत्तम रीति से सबको आनन्दित
करने हारा होकर हमें सदा प्राप्त हो, इसको देख कर विविध विद्याओं के
प्रेता विद्वज्जन और मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि जन सदा प्रसन्न होते हैं । उसको
हम लोग विद्वानों और वीर पुरुषों के पोषण कार्य में उत्तम बन्धु रूप से
बनावें ।

यद्वाजिनो दामं सन्दानुमर्वतो या शीर्षिया रथुना रज्जुरस्य ।

यद्वा घास्य प्रभृतमास्येऽतृणं सखा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

भा०—जो ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष का दमन साधन, यम नियम पालन, और व्यवस्था हो, उसका दान आदि करने का धन और दण्ड बल, आदि हो, और जो इस ज्ञानी, बलवान् पुरुष की शोभा देने वाली सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक, सर्जनकारिणी या व्यवस्था निर्मात्री और जो इसके प्रमुख स्थान पर शत्रु और सकटों के काटने में समर्थ बलवान् सैन्य अच्छी प्रकार से वेतन पर नियत है, है पुरुष । तब वे सब पदार्थ विद्वान् वीर पुरुषों के अधीन और उनके हित के लिये हुआ करें ।

यदश्वस्य क्रविषो मल्लिकाशु यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।

यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ६ ॥

भा०—जो भाग विजयी राष्ट्र का रोप का कार्य करने वाली सेना या जाती है, और जो अंश तापदायक और शत्रु सन्तापक वज्र आदि शस्त्राग्र बल में लग जाता है, और जो भाग शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले वीर पुरुष के हाथों अर्थात् हनन करने के साधनों और उपायों में लग जाता है, जो राष्ट्र के ऐश्वर्य का अंश छिन्न रहित राष्ट्र प्रबन्ध कार्यों में और प्रबन्धकर्ताओं में व्यय हो जाता है, वे सब कार्य तुझ राष्ट्र और राष्ट्रपति के देवों के अधीन ही हुआ करें ।

यदूर्ध्वमुदरस्यापवाति य ग्रामस्य क्रविषो गुण्यो अस्ति ।

सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तु मेधं शृतुपाकं पचन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—जो बच करने योग्य शत्रु पेट के भीतर पड़े अन्नकचरे अन्न के समान नाशक विभाग के हाथ से निकल भागें, और जो रोगकारी हिम रु जन्तुओं का परपोदन का कार्य है, उपद्रव को शान्त करने वाले विद्वान् और वीर पुरुष उत्तम उपाय से उसका विनाश करें । और हिमाकारी रोग को खूब सन्तप्त करें । जिसमें वह दुष्टता त्याग सीम्य हो जाय । विशेष देखो यजु० २५ । ३३ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

यत्ते गात्रादिभिर्ना पृथग्मानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।

मा तद्भूम्यामा त्रिपुन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

भा०—हे राष्ट्र । शूल अर्थात् हल आदि द्वारा तोड़े फोड़े गये, तथा सूर्य आदि से सत्पापित परिपक्व खेतों से जो भाग अलग हो वह भूमि पर न पड़ा रहे, और वह तिनको घासो में भी न मिल जाय । प्रत्युत वह अज्ञादि के इच्छुक विद्वान् और विद्या और विजय के इच्छुक विद्यार्थियों और वीरों का प्राप्त हो । देखो यजु० अ० २५ । ३४ ॥

ये चाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।

ये चार्वाता मांसभिर्क्षामपासंत उता तषामभिर्गूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

भा०—जो विद्वान् लोग अज्ञादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब पके खेतों वाला देखते ह, और जो इसके विषय में कहते हैं कि वह खेत खूब उत्तम पके धान के गन्ध से युक्त है इस पके खेत को काट के ले जाओ, और जो इस भोगयोग्य राष्ट्र के मन को लुभाने वाले अन्न ऐश्वर्यादि की याचना करते हैं उनका उद्यम और उपदेश हमें प्राप्त हो । देखो (यजु० २५ । ३५)

यज्ञीक्ष्ण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।

ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्गाः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

भा०—जो मन को अच्छे लगाने वाले नाना अन्नों और फलों का परिपाक करने वाली और खोदी जाकर उत्तम फल देने वाली भूमि की निरन्तर देख भाल करता है, और जो सब प्राणियों की पालना करने वाले रस या जल से सेचन करने के साधन कूप, तडाग आदि स्थान हैं, और जो विचरने वाले पथिकों के निमित्त ग्रीष्म काल में सुखकारी आच्छादित स्थान, विधाम गृह हैं, और जो स्थान २ पर अङ्कित मार्ग और छान करने के तीर्थ आदि स्थान हैं, वे सभी सुखजनक पदार्थ अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को सुभूषित करते हैं । (यजु० २५ । २६)

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पङ्क्तिशुमर्वतः ।

यच्च पपौ यच्च वासि जुघासु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

भा०—वे सब तेरे काम राष्ट्र में जाने आने के मार्ग, राजसभा आदि के अधिवेशन होने के स्थान, पदाधिकार के योग्य नियुक्ति, प्रजा के मान योग्य जल और अन्न इन सबका निरीक्षण विद्वान् पुरुषों के अधीन रहे । (यजु० २५ । (२८)

मा त्वाग्निध्वनयीद्धमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्लु जात्रिः ।

इष्टं वीतमभिगूर्तं वर्षदकृतं तं देवासुः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥ १॥

भा०—हे राष्ट्र ! विपैले धूम से पीड़ित करने वाले तथा उद्देजक गन्ध वाले अग्निमय अस्त्र प्रयोग तुझे कभी पीड़ित और दुःखित न करें । लूट भड़कती हुई हड़िया अर्थात् बारूद से भरा बम आदि तुझे कभी उद्दिग्ध न करें । प्राप्त हुए, सबको प्रिय, दानशील, परिश्रमी, राष्ट्रपति को, दानशील और विजय के इच्छुक जन स्वीकार करते हैं । इति नवमो वर्गः ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीचासं या हिरण्यान्यस्मै ।

सुन्दानमर्वन्तं पङ्क्तिशं प्रिया देवेष्वामयन्ति ॥ १६ ॥

भा०—राष्ट्रपति के आदर के लिये उत्तम वस्त्र बिछाते हैं, ऊपर पहनने का लवादा सर्वोत्तम गृह और अध्यक्ष पद देते हैं । सुवर्ण के आभूषण, प्रजाओं का मिल कर उत्तम से उत्तम अभिनन्दन या वस्त्र आदि उत्तम पदार्थ का देना, और पेरों का रखने का पीड़ा आदि ये सब प्रसन्न करने के पदार्थ उस बलवान् पुरुष को विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच व्यापक अधिकार वाला और व्यवस्थित करते हैं ।

यत्ते सादे महसा शुक्रतस्य पाध्याया वा कश्या वा तुतोर्द ।

द्युचेव ता हवियो अश्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा मृदयामि ॥१७॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार तेज घोड़े को पड़ी या चाबुक से पीड़ित कर ठीक मार्ग पर चलाया जाता है, उसी प्रकार अब बिना विचार

शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले तेरे अवसाद अर्थात् पथभ्रष्ट होने पर कोई अपने बल से या पाणिग्राह अर्थात् पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रुसेना से, या अपनी बड़ी शासन शक्ति से तुझे पीड़ा पहुँचावे तो तेरी उन सब त्रुटियों को मैं विद्वान् पुरोहित, यज्ञो में जैसे हवियों को वेद मन्त्र सहित सुचों से दिया जाता है उसी प्रकार, महान् बल और वेदज्ञान और ऐश्वर्य द्वारा दूर करूँ ।

चतुर्विंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्कीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।

अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

भा०—राष्ट्र को अपने बल से धारण करने वाले वीर्यवान् पुरुष का शासन चक्र, विद्वानों के बीच सुप्रबन्धक, तथा ऐश्वर्यवान् व्यापक राष्ट्र के ३४ पसुलियों के समान चौतीसों विभागों को अच्छी प्रकार सुसंगत करे । हे विद्वान् लोगो ! आप लोग राष्ट्र के सब अंगों को छिद्र अर्थात् त्रुटि रहित रखो । और सब काम और सब ज्ञान त्रुटि रहित सम्पादन करो । पुनः २ घोषणा करके राष्ट्र के अंगों को विभक्त करो । प्रजा को विविध विद्याओं में शिक्षित करो ।

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतुस्तथ ऋतुः ।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥१९॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्र के प्रजापति से तुलना करते हैं । तेजस्वी सूर्य के आशुगामी, काल का विभागकर्त्ता एक पूर्ण संवत्सर है, उसके भी दो अयन नियन्ता होते हैं । उसी प्रकार ऋतु भी संवत्सर को विभक्त करता है उस ऋतु के भी दो दो मास नियामक हैं । उसी प्रकार हे प्रजापालक राष्ट्रपते । तथा सबके भोक्ता तेरे ऊपर एक सर्वोपरि ज्ञानवान् पुरुष तुझे विशेष रूप से शासन करने वाला हो, और तेरे अधीन दो शासक प्रजा को नियम रखने वाले, देह में दो भुजाओं के समान विद्वानक हो । तेरे राष्ट्रिय अंगों में से जिन २ को ज्ञानवान् नियन्ता

के अधीन करूं, उन २ अंगों को ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के अधीन अच्छी प्रकार वश करूं ।

मा त्वां नपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठि-
पत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्तातिहायं छिद्रा गात्राण्यसिन्ना
मिथू कः ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! शस्त्रबल तेरे शरीर पर आघात न पहुँचावे । हे विद्वन् ! शासन करने में अकुशल पुरुष लोभी होकर तेरे दोगों की उपेक्षा करके शस्त्रादि से देह के अंगों को कभी छिन्न भिन्न या पीड़ित न करे । अर्थात् तुझे सच्चा शिक्षक प्राप्त हो । हे राजन् ! शासन में अकुशल लोभी पुरुष तेरे देहों के अवयवों को व्यर्थ न काटे फाटे ।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिप्यसि देवाँ इदं पि पथिभिः सुगेभिः ।
हरीं ते युञ्जता पृथ्वी अभूतामुपास्याद्वाजी धुरि रासभरय ॥ २१ ॥

भा०—हे राष्ट्र ! इस प्रकार सुव्यवस्था से तू कभी न मरे, न पीड़ित हो । सुख से गमन करने योग्य मार्गों और उपायों से उत्तम व्यवहारों और योद्धाओं को प्राप्त हो । रथ में दृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान दो योग्य नायक नियुक्त हो । ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष उपदेश आज्ञापक की पुरा अर्थात् मुख्य पद पर उपस्थित हो ।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुनं गृधिम् । अन्ना-
गास्त्वं नो अदिनिः कृणोतु ह्यत्र नो अश्व्यो वनतां द्विविमान् २२।१०

भा०—ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष, हमारे लिये, उत्तम घोड़ों से युक्त, पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त, उत्तम जन्मादि से समृद्ध, और सबको पुष्ट करने वाले ऐश्वर्य, को और हममें अनावार अन्याय और अवमं अभाव को, तथा पुरुषत्व युक्त पुत्रों को उत्पन्न करे । वह अखण्ड बल से युक्त होकर राष्ट्र का भोक्ता एवं अन्नादि प्राण पशुओं

से समृद्ध होकर हमारे धन, बल, वीर्य और क्षात्र बल को प्राप्त करे ।
इति दशमो वर्गः ॥

[१६३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अथोऽग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, १३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक्
त्रिष्टुप् । ३, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, १०, १२
भुरिक् पङ्क्तिः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्तसमुद्रादुत्त वा पुरीषात् ।

प्रयेनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं तं अर्वन् ॥१॥

अ. ०—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य का
वर्णन करते हैं । हे ज्ञानवान् पुरुष ! जो तू समुद्र या महान् आकाश से
उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के समान ज्ञानों के सागर और ज्ञानों में
परिपूर्ण गुरु से टिजन्मा रूप में उत्पन्न होता हुआ, सबसे उत्तम पद पर
विराज कर उपदेश करता है । और बाज के दोनों बाजू जिस प्रकार
बलवान् होकर आकाश के पार जाने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार ज्ञान-
वान् आत्मा या पुरुष के वश करने वाले दोनों ज्ञान और कर्म उसको
अपार भयसागर से पार करने में समर्थ हों । हरिण की बाहुएं जिस
प्रकार जिस प्रकार वेग से वन अदि में उसकी रक्षा करने में समर्थ होती
हैं उसी प्रकार सर्वदुःखहारी आत्मा की अज्ञान सकटों और विपक्षियों को
दूर करने और पीड़ित करने वाले देह और मन के दोनों बल प्राप्त हों ।
तभी ऐसा तेरा मातृगर्भ और आचार्यगर्भ से उत्पन्न होना अति आदर
योग्य एवं सफल है ।

समस्त सूक्त की राजा के पक्ष में लगने वाली अर्धयोजना देखो
यजु० अ० २९ । १२-२४ ॥

युमेन वृत्तं त्रित पनमायुनगिन्द्रं परं प्रथमो अर्ध्यतिष्ठत् ।

अन्पूर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादध्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

भा०—यम नियमों के पालन करने और उत्तम सयम कराने वाले गुरु या पिता द्वारा दिये गये इस योग्य शिष्य को, अज्ञान सागर से पार उतरने में समर्थ, ज्ञान कर्म और उपासना तीनों में सिद्ध, एवं तीनों वेदों में पारंगत आचार्य सन्मार्ग में लगावे । सबसे से श्रेष्ठ अज्ञान का नाशक आचार्य इस पर शासन करे । और गौ अर्थात् वेद वाणी को धारण करने वाला आचार्य उसको व्यापक विद्या प्राप्त करावे और वश करने वाली मर्यादा को अपने अधीन रखे । इस प्रकार जिन विद्वान् पुरुषों के अधीन शिष्यगण ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हुए निवास करें वे विद्वान् जन मिल कर सूर्य के समान तेजस्वी गुरु से ही सर्वविद्या के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मचारी को उत्पन्न करते और प्राप्त करते हैं । (राज्यपक्ष में देखो यजु० २९। १३)

असि यमो अस्यादित्यो अर्धन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।

असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३॥

भा०—हे ब्रह्मचारिन् । तू यम नियमों का पालन करने वाला, इन्द्रियों को दमन करने द्वारा होने से 'यम' है । तू भूतल से जल ग्रहण करने वाले सूर्य के समान आचार्य से ज्ञानग्रहण करने वाला, और 'अदिति' अर्थात् माता, पिता, आचार्य का पुत्र और शिष्य होने से भी 'आदित्य' है । हे अज्ञान के नाशक ! तू पालन करने योग्य ब्रह्मचर्यव्रत के पालन से तीनों वेदों में पार करने वाला, और पुत्र तथा शिष्य रूप से माता पिता गुरु को भी इह और पर दोनों लोकों में तारने द्वारा है । तू अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य के साथ विशेष प्रकार से स्नेहवान् और विश्वासमन्ध से सम्बद्ध है । ज्ञान को प्राप्त करने के लिये तेरे ऊपर तीन बन्धन कहे गये हैं अर्थात् पितृ ऋण, देव ऋण, और ऋषि ऋण ये तीनों ही बन्धन हैं । उनसे बद्ध ही 'त्रित' है । राष्ट्र और राजा के पक्ष में देखो यजुर्वेद (२९। १४)

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।

उतेव मे वरुणश्छन्तस्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! ज्ञान प्राप्त करते हुए तेरे ऊपर विद्वान् तीन बन्धन बतलाते हैं । इसी प्रकार कर्मों के करने और ज्ञानों के धारण करने में भी तेरे तीन ही बन्धन हैं, कर्म, कर्मफल और करण । आकाश के समान महान् परमेश्वर के बीच रहते हुए तेरे तीन कर्तव्य हैं, स्तुति, प्रार्थना और उपासना या श्रवण, मनन और निदिध्यासन । हे ज्ञानवान् आचार्य ! और तू सर्व श्रेष्ठ, और सब कष्टों का वारण करने-द्वारा होकर मुझ शिष्य को वहा लेजा, जिस स्थान में कि तेरा सबसे उत्तम जन्म या स्वरूप होता हुआ बतलाते हैं । राजा आदि पक्ष में (देखो यजु० अ० २९ । १५) ।

इमा ते वाजिनश्चमार्जनात्मीमा शफानां सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभि रक्षन्ति गोपाः ॥५॥११॥

भा०—हे बलवीर्यसम्पन्न ! तेरे लिये ये पापों को दूर करने और आत्मा को शुद्ध करने वाले व्रत आदि नाना उपाय हैं । और ये शान्ति का ज्ञानप्रदान करने वाले तथा तेरी सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के शान्ति-दायक उपदेश करने वाले ज्ञानवचनो या आचरणों के खजानों के समान ज्ञानभण्डार हैं । इस गुरु के अधीन इस आश्रम में तेरे योग्य सुख और ब्रूयाणकारिणी रस्सियों के समान उत्तम मर्यादाओं और व्यापक विद्याओं या वाणियों को मैं साक्षात् देख रहा हूँ, जिन का कि सत्यज्ञान और वेद की रक्षा करने वाले विद्वान् जन सब प्रकार से पालन करते हैं । (राजा पक्ष में यजु० २९ । १६) 'शफाः'—श फणन्ति इति शफाः । इत्येका-दशो वर्गः ॥

आत्मानं ते मनसारादजामासुर्वो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।

शिरो अपश्य पृथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! मैं तेरी आत्मा को ज्ञान और मगन शील चित्त से अति समीप होकर तेरी सेवा और उपासना द्वारा जान लू, अर्थात् गुरु के हृदयगत ज्ञान को शिष्य समचित्त होकर प्राप्त करे । और हे आचार्य ! दिन के समय में गमन करते हुए और सब पर ऐश्वर्यवान् स्वामी के समान आचरण करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी तेरे रक्षण को मैं प्राप्त करू । और शिर के समान तेरे मुख्य पद को रजोदोष और हिंसा के भावों से रहित तथा सुख से गमन करने योग्य मार्गों से विचरने वाला देखू । (राजपक्ष में — यजु० २९ । १७) । (२)

अत्रां ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पुदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानुळादिद्यत्सिष्ठ ओषधीरजीग ॥७॥

भा०—हे शिष्य ! इस गुरु गृह में वेदवाणी के प्राप्त करने के अवसर में और योग द्वारा इन्द्रियगण को दमन करने के अवसर में, समस्त कामनाओं को विजय करने की इच्छा करते हुए तेरे सबसे उत्तम स्वरूप को मैं देखू । जब मनुष्य तेरे भोजन करने योग्य पदार्थ को अनुकूल होकर आदर से प्राप्त करावे तभी तू उत्तम रीति से ग्रहण करने वाला, भूत्वा ते गुह्य होकर उत्तम अन्नादि ओषधियों का सेवन कर । राजा के पक्ष में देखो (यजु० । २९ १८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु वानासस्तव सुखमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

भा०—हे अश्व के समान बलवान् पुण्य । जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ, मनुष्य, गौ आदि सम्पत्ति, कन्याओं का सोभाग्य, और अनुगामी रक्षकों के दल चलते हैं, वितयेन्नु लोग अश्व के बल को जानते हैं, उसी प्रकार तेरे पीछे २, तेरे अर्वाण रथ और रक्षण करने योग्य पदार्थ हैं, तेरे अर्वाण साधारण जन हैं, तेरे अर्वाण गौ आदि पशु हैं, तेरे अर्वाण, तेरी रक्षा में ही तुझे चाहने वाले हैं, पुण्य का सोभाग्य और ऐश्वर्य गुरुरहित

रहे । तेरे अधीन नाना व्रताचरण करने हारे शिष्यगण या शिष्य समूह तेरे ही मैत्रीभाव को प्राप्त हो । और विद्वान् और दानशील पुरुष भी तेरे बल वीर्य का उत्तम आदर करें, उसका महत्व जानें । राजपक्ष में देखो (यजु० २९ । १९)

हिरण्यशृङ्गोऽयों अस्य पादा मनोजवा अवर् इन्द्र आसीत् ।

देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ६ ॥

भा०—इस विद्वान् के प्राप्त होने योग्य ज्ञान के साधन ज्ञानमार्ग में वेग ले जाने वाले हों । सुवर्गादि को शिर पर रखने वाला ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष भी इसके नीचे की श्रेणी का है । और जो आचार्य उससे भी अधिक श्रेष्ठ होकर ज्ञानवान् शिष्य के भी ऊपर अधिष्ठाता होकर विराजता है उसे अक्षादि भोग्य पदार्थों को दानशील पुरुष प्राप्त करावे । राजा के पक्ष में—देखो (यजु० २९ । २० ॥)

ईर्मान्तासुः सिलिकमध्यमासुः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।

हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिपुर्दिव्यमज्ममध्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—अश्व जिस प्रकार पिछले भागों पर कशा द्वारा प्रेरित होकर मध्य भागों को मिलाए हुए, शीघ्र रण में जाने वाले, वेगवान् होकर हत्तों के समान पक्ति दल बनाकर दौड़ते हैं, विजयप्रद संग्राम को जाते हैं, उसी प्रकार योगाभ्यासी विद्वान् जन, गुरुओं द्वारा बतलाये सिद्धांतों और उद्देश्यों को धारण करके, आदित्य के समान प्रमुख पुरुष को अपने बीच में रखते हुए, आने वाली बाधाओं को नष्ट करते हुए, ज्ञानमार्ग में जाने पाले, सब विघ्नों को पार कर जाने वाले, और निरन्तर आगे २ ही बढ़ने वाले आत्मावान् हों । जब वे ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त होने में सब से उत्तम पार चहुँचा देने वाले मार्ग अथवा सब बंधनों को फँक देने वाले मोक्षमार्ग को प्राप्त हों तब वे आनन्द सुख को भोगने और परम मार्ग प्रेक्षण को जाने वाले परम हंस के समान अपने व्रत कर्मों और भक्ति

में दृढ़ता से आश्रय पाकर निरन्तर यत्न करें। अधो और बीरो के पक्ष में देखो (यजु० २९। २१) । इति द्वादशो वर्गः ॥

तव शरीरं पतयिष्यन्तव चित्तं वातं इव धर्जीमान् ।

तव शृङ्गाणि विष्टिता पुरुत्रारण्येषु जम्भुराणां चरन्ति ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेरा शरीर वेगवान् अश्व के समान शीघ्रता से जाने में समर्थ और बलवान् हो । तेरा चित्त वायु के समान वेग से युक्त हो, तेरे पर्वत शिखरों के समान दूर से सबको दीखने योग्य, कर्म, यज्ञ आदि, कृप, बगीचे, और भवन आदि परोपकारी पदार्थ ओर उच्च शिखर वाले बहुत से प्रासाद, जंगल के दुर्गम स्थानों में भी विविध रूप से स्थित हों । देखो (यजु० अ० २९। २२)

उप प्रागाच्छसन्नं वाज्यवीं देवद्रीचा मनसा दीध्यातः ।

अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

भा०—सर्व व्यापक ज्ञानवान् आत्मा, विद्वानों को प्राप्त होने योग्य ज्ञान से देदीप्यमान होता हुआ स्तुति को प्राप्त होता है । वह स्तुति करने योग्य है । वह जन्म रहित होने से 'अज' है । वह सबका प्रबन्धक और बन्धु होने से 'नाभि' है । वही सब यज्ञों में पुरोहित के समान सब से आगे मुख्य पद या उपास्य पद पर प्राप्त कराया जाता है । उसी को लक्ष्य करके स्तुति कर्त्ता विद्वान् जन आगे बढ़ते हैं । विद्वान् जन उस परमात्मा की ही स्तुति करते, उसी को प्राप्त करने का यत्न करते हैं । राजा के पक्ष में देखो (यजु० २९। २३)

उप प्रागात्परमं यत्सुधस्त्रमर्च्यं अच्छा पितरं मातरं च ।

अथा देवाञ्जुष्टमो हि गुह्या अथा शास्ते द्वाशुपे वार्याणि ॥ २४ ॥

भा०—ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष जो सबसे उत्तम स्थान को प्राप्त करे वह पिता और माता और विद्वान् पुरुषों को भी प्राप्त होकर उनकी उत्तम प्रकार से सेवा करने वाला होकर आगे बढ़ता है । तब विद्या आदि देने वाले

मान्य पुरुष के आदरार्थ श्रेष्ठ धन देने की भी इच्छा करे। अध्यात्म में एवं राजपक्ष में—देखो (यजु० अ० २९। ३४)। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१६४]

दापतना ऋषिः ॥ देवता—१—४१ विश्वदेवाः। ४२ वाक्। ४२ आपः। ४३ शक्रपूतः। ४३ सोमः ॥ ४४ अग्निः सूर्यो वायुश्च। ४५ वाक्। ४६, ४७ सूर्यः। ४८ सवत्सरात्मा कालः। ४९ सरस्वती। ५० साध्याः ५१ सूर्यः पजन्यो वा अग्नयो वा। ५२ सरस्वान् सूर्यो वा ॥ छन्द — १, ६, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप्। ८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत् त्रिष्टुप्। २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४, २८, ३२, ५२, त्रिष्टुप्। १४, ३६, ४१, ४४, ४५ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२, १५, २३ जगती। २६, ३६ निचृज्जगती। २० भुरिक् पङ्क्तिः। २२, २५, ४८ स्फराट् पङ्क्तिः। ३०, ३८ पङ्क्तिः। ४२ भुरिग् वृद्धती। ५१ विराट्-नुष्टुप् ॥ द्वापन्चाशद्वच सूक्तम् ॥

(समस्त सूक्त देखो अथर्व० का० ९। सू० ९, १०)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्वः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्वपतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

भा०—सब पदार्थों का सेवन करने वाले, ज्ञानवान् या वयोवृद्ध, अज्ञादि भोजन ग्रहण करने वाले देहवान् जीव का, भरण पोषण करने वाला, बीच में रहने वाला, अज्ञादि खाने वाला जाठर अग्नि है। अथवा आत्मा और इन्द्रियो के बीच में स्थित मन सबका भोक्ता होकर विद्यमान है। और तीसरा पोषक तत्व सब अंगों में तेज और बल का सेवन करने वाला आत्मा है। मैं साधक शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाले, और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों की प्रजा को राजा के समान पालना करने वाला आत्मा का साक्षात् करता हूँ। (२) परमेश्वर पक्ष में—तनस्त विश्व को बमन कर देने, अपने में से उगल देने, या रचनेद्वारा

वा परमसेव्य परमेश्वर 'वाम' है । अपने में ले लेने हारा होने से वह 'होता' है । सर्व पालक होने से 'पालित' है । कर्मफलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है । देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है । इसका तीसरा भाई 'वृत्' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेवन, दान, और वर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है । इसी पुरुष में सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पितृ प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता हूँ ।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभिं चक्रमजरमनूर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

भा० — वह आत्मा से संयुक्त देह एक आत्मा रूप रथी से युक्त रथ के समान है । उस देह रथ में सात गौण प्राण उतते हैं, और एक ही मुख्य प्राण गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा धारण करता और उसे चलाता फिराता है । वह आत्मा स्वयं पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है । देखने से आत्मा ही चक्षु और सुंघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है । वह कर्त्ता शरीर में तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन वातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है । वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है । उसके चेतन्य के लिये दूसरा कोई सञ्चालक कारण उपेक्षित नहीं होने से वह 'अनर्वा' है । वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यो से सञ्चालित नहीं होता । जिसके आश्रय में सप्त प्राणि गण स्थित हैं । (२) सूर्य सप्तचक्र रथ है । गतिमान् होने से वह 'रथ' है । व्यापक होने से 'अश्व' है । मान ग्रह उसमें लगते हैं । ४१ मानों को धारण करता और नमाता है । स्वयं अपने, म्रद और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है । अथवा तीनों लोकों को बांधने से 'त्रिनाभि' है । भ्रव होने से अजर या अचर है । स्वतः गतिमान् होने से 'अनर्वा' है ।

ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं। (३) परमेश्वर पक्ष में—यह परमेश्वर सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है। उसको सातों चित्त भूमियों पर स्थित साधक जन योग द्वारा साक्षात् करते हैं वह व्यापक होने से 'अश्व' है। वह सातों के प्रति, पुत्रों के प्रति, माता के समान भृत्य रस पान के लिये नमता है अतः 'सप्तनामा' है। तीन लोको, प्रकृति के तानो गुणों को बाधने वाला होने से 'त्रिनाभि' है। उसमें ही समस्त लोक आश्रित है। इसी प्रकार संवत्सरात्मक चक्र में अधिक मलमास सहित सात ऋतु हैं। सूर्य एक अश्व है। वह सात किरणों को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है। तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप में बद्ध है। विशेष देखो (अथर्व० का० ९। सू० ९। २ ॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वः ।

सप्त स्वसारो ग्रभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सात मुख्य चक्रों वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमें प्रत्येक चक्र पर एक २ अध्यक्ष इस प्रकार सात अध्यक्ष सञ्चालक नियत हों, और उनके अधीन सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें, और उसमें सात अपने ही बल से चलने वाले कलापुञ्ज भली प्रकार चलते हों, जिन में गमन करने वाले यन्त्रों के पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हो, उसी प्रकार इस रमण करने के देहरूप रथ को सात मुख्य प्राण अपने परा वरते हैं। वे सातों ही के भोक्ता इन्द्रिय होकर धारण कर रहे हैं। उनमें रहने वाली सात बहनों के समान सात शक्तियां सात तनू-माताएं 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तियां गति कर रही हैं। जिनमें इन्द्रियों के सात स्वरूप स्थित हैं। (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ ने पञ्चभूत महत् और अहकार ये सात अश्व हैं, उनमें विद्यमान शक्तियां सात स्वसाए हैं। (३) आदित्य पक्ष—में सात रहिमियां, सात

वा परमसेव्य परमेश्वर 'वाम' है। अपने में ले लेने हारा होने से वह 'होता' है। सर्व पालक होने से 'पालित' है। कर्मफलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है। देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है। इसका तीसरा भाई 'वृत्' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेचन, दान, और वर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है। इसी पुरुष में सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पितृ प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता है।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभिं चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

भा० — वह आत्मा से संयुक्त देह एक आत्मा रूप रथी से युक्त रथ के समान है। उस देह रथ में सात गौण प्राण जुतते हैं, और एक ही मुख्य प्राण गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा धारण करता और उसे चलाता फिराता है। वह आत्मा स्वयं पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है। देखने से आत्मा ही चक्षु और सूँघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है। वह कर्त्ता शरीर में तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन वातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है। वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है। उसके चैतन्य के लिये दूसरा कोई सञ्चालक कारण उपेक्षित नहीं होने से वह 'अनर्वा' है। वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यो से सञ्चालित नहीं होता। जिसके आश्रय ये सब प्राणि गण स्थिर हैं। (२) सूर्य सप्तचक्र रथ है। गतिमान् होने से वह 'रथ' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। सात ग्रह उसमें लगते हैं। वह सातों को धारण करता और नमाता है। स्वयं अपने, ग्रह और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। अथवा तीनों लोकों को बाधने से 'त्रिनाभि' है। भ्रव होने से अजर या अचर है। स्वतः गतिमान् होने से 'अनर्वा' है।

ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं । (३) परमेश्वर पक्ष में—यह परमेश्वर सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है । उसको सातों चित्त भूमियों पर स्थित साधक जन योग द्वारा साक्षात् करते हैं वह व्यापक होने से 'अश्व' है । वह सातों के प्रति, पुत्रों के प्रति, माता के समान अमृत रस पान के लिये नमता है अतः 'सप्तनामा' है । तीन लोकों, प्रकृति के तानों गुणों को बाधने वाला होने से 'त्रिनाभि' है । उसमें ही समस्त लोक आश्रित हैं । इसी प्रकार सवत्सरात्मक चक्र में अधिक मलमास सहित सात ऋतु हैं । सूर्य एक अश्व है । वह सात किरणों को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है । तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप में बद्ध है । विरोप देखो (अथर्व० का० ९ । सू० ९ । २ ॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वः ।

सप्त स्वसारो अग्नि सं नवन्ते यत्र गवा निहिता सप्त नाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सात मुख्य चक्रों वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमें प्रत्येक चक्र पर एक २ अध्यक्ष इस प्रकार सात अध्यक्ष सञ्चालक नियत हों, और उनके अधीन सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें, और उसमें सात अपने ही बल से चलने वाले कलापुञ्ज भली प्रकार चलते हों, जिन में गमन करने वाले यन्त्रों के पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हों, उसी प्रकार इस रमण करने के देहरूप रथ को सात मुख्य प्राण अपने पक्ष परते हैं । वे सातों ही के भोक्ता इन्द्रिय होकर धारण कर रहे हैं । उनमें रहने वाली सात बहनों के समान सात शक्तियां सात तनून्माताएं 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तियां गति कर रही हैं । जिनमें इन्द्रियों के सात स्वरूप स्थित हैं । (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रूप में पञ्चभूत महत् और अहंकार ये सात अश्व हैं, उनमें विद्यमान शक्तियां सात स्वसाण हैं । (३) आदित्य पक्ष—मे सात रश्मियां, सात

ग्रह, सात ऋतु, (४) संवत्सर पक्ष में—अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त ये सात कालावयव हैं । स्वयं गतिमान् होने से, या 'स्वः' नाम तेज-तापमय सूर्य से प्रेरित होने से रहिम 'स्वसा' है । विशेष देखो अथर्व० का० ९।९।३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनुस्था विभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्रको विद्वांसमुपगात्प्रष्टुमेतत् ॥४॥

भा०—जो हड्डियों आदि शरीर के घटक पदार्थों से रहित होकर भी हड्डियों आदि से युक्त शरीर को धारण और पालन पोषण करता है, उस सबसे पहले और इस शरीर से भी पूर्व विद्यमान, और देह से प्रादुर्भूत होते हुए को कौन देख पाता है । भूमि का विकार पाद्यभौतिक स्थूल पार्थिवाश, वायु का अंश प्राण, जल अश रुधिर और यह जीव सभी कहाँ रहे । उस समय कौन जिज्ञासु होकर इस रहस्य को पूछने के लिये समस्त सर्ग के तत्व को जानने वाले के समीप जाता है । अर्थात् बहुत कम इस तत्व को पूछने वाले हैं । विशेष देखो (अथर्व० का० ९।९।४।)

पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।

चतसे वृष्कयेऽपि सप्त तन्तुन्वि तत्तिरे क्वयु त्रोटवा उ ॥५॥१४॥

भा०—मैं ब्रह्मचर्य, तपस्या और गुरु-उपासना द्वारा अपने देह बल-वीर्य और ज्ञान को परिपक्व करने द्वारा जिज्ञासु, मन से विशेष तत्वज्ञान को न जानता हुआ प्रश्न करता और ज्ञान प्राप्त करता हूँ । अन्तर्दर्शी विद्वान् पुरुष देखने योग्य, उत्तम पुत्र के निमित्त ही मानो उसके देह-घटक धातुओं को विविध रूप से विस्तृत करने है । विद्वाना या प्राणा के ये ही ज्ञातव्य निगूढ़ तत्व गुप्त रूप में रक्षे हैं । अथवा—सत्य स्वरूप, सब में बसे, वा सब को बसाने वाले आत्मा में ही विद्वान् जन साते सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं । उनको न जानता हुआ मैं मन से प्रश्न करता हूँ कि वह आश्रय भूत 'वन्म' कौन है ? उसके आश्रय पर साव

तन्तु कैसे फैलाये जाते हैं, उन देवों के ज्ञेय गुप्त रूप कौन से और कहाँ छुपे हैं ? विशेष देखो अथर्व० ९।६।९। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

अविक्त्वान्निचितुषश्चिदत्र क्वीन्पृच्छामि विद्वान्ते न विद्वान् ।
वि यस्तुस्तम्भ वलिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि सिद्धेकम् ॥६॥

भा०—इस तत्त्वज्ञान के लिये मैं ज्ञानवान् क्रान्तदर्शी विद्वानों के समीप जाकर स्वयं कुछ भी न जानता हुआ अज्ञानी शिष्य के समान ज्ञान लाभ करने के लिये ही उस परमेश्वर या महान् शक्तिमान् के विषय में प्रश्न करता हूँ। मुख्य प्राण जिस प्रकार छ. गौण प्राणों पर बशी है, उसी प्रकार इन छहों लोकों को जो विशेष रूप से और विविध प्रकारों से धाम रहा है, अजन्मा, अनादि, सबके सम्मालक उस परमतत्त्व के रूप में किसी एक अद्वितीय पदार्थ का उपदेश करो।

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वडास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।

शीर्ष्णं क्षीरं दुहत् गावो अस्य वृत्रि वसाना उदकं प्रदापुः ॥७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो में से जो विद्वान् पुरुष भी इस सूर्य के समान अति उत्तम कान्तिमान्, व्यापक, गतिमान्, तेजोमय हस के समान विवेकवान् आत्मा के भीतर छुपे, निगूढ़, चिन्मय स्वरूप को नली प्रकार जानता और साक्षात् करता है वह इस आत्मा के सम्बन्ध में हमें उपदेश करे कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें तेजोमय रूप को धारण करती हुई शिर अर्थात् ऊपर की ओर से मेघ द्वारा जल वर्षण करती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा की गोरूप इन्द्रिया शिरोभाग से क्षरणशील आनन्द रस को उत्पन्न करती हैं, और वरण करने योग्य देहिक आवरण या विषय के स्वरूप को धारण करती हुई ज्ञान सामर्थ्य से, वृक्ष जिस प्रकार परण भाग से जल पीते हैं, उसी प्रकार उत्तम ज्ञान का पान करती हैं। विशेष विवरण और पहली का स्पष्टीकरण देखो (अथर्व० का० ९।९।५॥)

माता पितरमृत आ वभाज धीत्यग्रे मनसा स हि जग्मे ।

सा वीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार माता पुत्रों के उत्पादक पुरुष को परस्पर सगम के निमित्त ऋतु के अवसर पर सेवती है, उसके समीप आती है, और पूर्व से कल्पित चित्त से उससे सगत हो जाती है, और बन्धन चाहती हुई गर्भरूप और साररूप वीर्य को धारण करने में समर्थ होकर पति से अच्छी प्रकार संगत होकर रहती है, और पति-पत्नी परस्पर विनयशील होकर परस्पर के वचन प्रतिवचन को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वेद वाक्य के तत्व को जगन्निर्मातृ माता-प्रकृति पिता-परमात्मा को ऋत अर्थात् उसके परम ऐश्वर्यमय बल में बंध कर उसका आश्रय लेती है, उसके धारण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य से वह उसके साथ सदा सगत रहती है । वह ब्रह्म के बीज से गर्भित होकर इसकी शक्ति से ओत प्रोत हो जाती है । इस तत्वज्ञानमय वचन रूप उपनिषत् को ज्ञानवान्, विनयी जन ही प्राप्त करें ।

युक्ता मातासीद्दुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।

अमीमेदत्सो अनु गार्मपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार कार्य करने में समर्थ और धारण करने में समर्थ पुरुष की शक्ति पर पुत्रों की माता एक चित्त होकर आश्रय पाती है, और अनन्तर बाह्य बाधाओं को वर्जन करने वाली सुरक्षित नाडियों के भीतर गर्भ स्थिर हो जाता है अनन्तर बालक उत्पन्न होकर शब्द करता है, इन सब कार्यों में विद्वान् जन तीनों लोकों में समस्त रूपों के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को इस गृह्यो के समान ही उत्पादक पालक और विश्वजननी रूप में देखा करें ।

त्रिष्टो मातृस्त्रीन्पितृन्विभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थो नेमव ग्लापयन्ति ।

मुन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विद्वविद्वं वाचमविश्वमिन्वाम् १०।१५

भा०—अकेला सूर्य जिस प्रकार अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु इन तीनों को, और पालन करने वाले अग्नि, वायु और विद्युत् इन तीन को धारण करता हुआ सबसे ऊपर अध्यक्ष होकर विराजता है, इसको कोई पदार्थ मन्द तेज नहीं कर सकता, उसी प्रकार एक अद्वितीय परमेवर ही सत्त्व, रजस्, तमस् तीन गुणों से युक्त तीन प्रकार की प्रकृति, या उत्तम, मध्यम, निरुष्ट या भूमि, अन्तरिक्ष और दो तीनों को, और अग्नि, वायु, और जल इन तीन जीवों के पालकों को धारण करता हुआ सबके ऊपर अध्यक्ष रूप में होकर विराजता है। इसके सामर्थ्य और तेज को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि कोई भी तिरस्कृत नहीं कर सकने। विद्वान् लोग उस परोक्ष, तेजोमय परमेश्वर के सेचन के सामर्थ्य के वर्णन में, समस्त साधारण यज्ञ जनों से न सेवन करने योग्य, तथा समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली वेद वाणी को गूढ़ रूप से, भावपूर्ण रूप में वर्णन करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

द्वादशारं नृहि तज्जराय वर्तति चक्रं परि घामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सदागतिशील काल का बारह मास रूप अरों वाला सबत्सर चक्र सूर्य के आश्रय पर सदा घूमता रहता है, वह कभी नाश होने के लिए नहीं होता, प्रत्युत परावर चलता है, और उससे सात सौ बीस दिन रात उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सत्य चिन्मय आत्मा का बारह प्राणरूप अरों वाला चक्र अर्थात् करणसमूह जो इच्छा करने वाले मन के आश्रय पर चेषा करता है, वह उसके नाश के लिये नहीं होता, प्रत्युत उसकी शक्ति के विकास के लिये ही होता है। इस देह में सात सौ बीस जोड़े अर्थात् अध्यात्मतत्त्व आत्मा को प्राण करने वाले उसकी शक्ति जो प्रकट करने वाले होकर, है ज्ञानवान् पुरुष। इस आत्मा के आश्रय देह न रहते हैं। सबत्सर में दिन रात्रि के समान प्राण और रयि दो पक्ष

हैं उनके ही अंशांश रूप से वर्ष के दिन रात्रि के समान ३६०, ३६० कलाप हैं । इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १-६ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे पल्लर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

भा०—विद्वान् लोग सबके पालक कालात्मा सूर्य या सवत्सर को प्रकाशमान तेज के सर्वोत्तम स्थान में स्थित, क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष अथवा हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप चरणों, और १२ मास रूप १२ स्वरूप वाला, और वर्ष द्वारा जल बरसाने वाला, बतलाते हैं । और ये दूसरे विद्वान् जीवन में आनन्द देने वाले, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रात, मुहूर्त्त इन सात अथवा सात ग्रहों की परिधि से युक्त, छः ऋतु रूप अरों वाले वर्ष से युक्त क्रान्तिचक्र में विविध पदार्थों को दिखाने वाले सूर्य को स्थित बतलाते हैं । (२) अभ्यात्म में—ज्ञान करने के पांचों साधनों का स्वामी आत्मा, 'पञ्चपाद' है । १२ प्राणों का स्वामी होने से वह 'द्वादशाकृति' है । उसको कामनाशील देह के परम स्थान हृदय में 'पुरीषी', पुरु अर्थात् ग्रीणन सावन इन्द्रियों द्वारा भोग्य विषयों की इच्छा करता हुआ और इस देह रूप पुर का सञ्चालन करता हुआ बतलाते हैं । दूसरे व्यक्ति उसी को सात मूर्धन्य प्राणों के चक्र या समूह या मूल, अविष्टान, नाभि, मणिपूर, आज्ञा, सोम, महस्मदल आदि सात चक्र वाले और मन सहित छहों इन्द्रिय रूप अरों से युक्त इस देह में विविध विषयों के द्रष्टा रूप से स्थित बतलाते हैं । इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १ । ११ ॥ और (३) परमेश्वर ब्रह्माण्ड रूप पुर का सञ्चालक होने से 'पुरीषी' है । अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ये ब्रह्म के पञ्चपाद हैं । पञ्चतन्मात्र, पञ्चस्थूल भूत अहङ्कार और महत् ये १० उर्मी की शक्ति के द्वारा भौतिक विकास, आकार या विकार होने से वह ब्रह्म 'द्वादशाकृति' है । तेजोमय परमेश्वर के परम समृद्ध रूप के निरूपण में उक्त

प्रकार ब्रह्म को सबका उत्पादक पिता पालक बतलाते हैं। दूसरे उसी को सप्ततत्त्व से युक्त तन्मात्रामय ज्ञानसाधनों से सम्पन्न देह पर दृष्टारूप समष्टि चेतन्य रूप से वर्णन करते हैं।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सुनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥

भा०—पांच अरो वाला चक्र जो बराबर घूम रहा है उसके आश्रय में ही समस्त भुवन स्थित है। उसका बहुत से भार से युक्त धुरा गरम नहीं होता, वह अपनी नाभि सहित चिर काल से चला आ रहा है, तो भी वह नहीं घिसता आदित्य या संवत्सर चक्र बराबर घूम रहा है। उनमें पांच प्रतु पाच अरे हैं उसका अक्ष अर्थात् अध्यक्ष बहुत से प्राणियों का भरण पोषण करने से 'भूरिभार' है। वह सतप्त नहीं होता, जिस प्रकार चक्र का धुरा बहुत भार लेकर चलता हुआ गरमा जाता है। उसी प्रकार संवत्सर चक्र का केन्द्र तप्त नहीं होता, तो भी वह कालचक्र अनादि काल से चला आ रहा है, वह क्षीण नहीं होता। (२) अध्यात्म में—पाच इन्द्रिय पाच अरे हैं। उनमें युक्त आत्मा के आश्रय ही सब उत्पन्न होने वाले प्राणी गण स्थिर हैं, उसका अध्यक्ष आत्मा सबको धारण करके भी त्रिद्व नहीं होता, सर्व शक्तिमान् प्रभु अनादि काल से विद्यमान, सबका समान रूप से नाभि अर्थात् आश्रय है, वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (३) यह समस्त जगत् चक्र भी पाच भूत रूप अरो से युक्त है, उसका अध्यक्ष भी ईश्वर है।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।

सूर्यस्थ चक्षु रजसेत्यावृतं तस्मिन्नापिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार उत्तान भूमि पर दश अश्व एक ही रथ में जुड़कर उसको ओं ले जाते हैं, और हाल सहित दृढ़ चक्र बराबर घूमता जाता है, इसी प्रकार उत्तम शक्तिमान् परमेश्वर के आश्रय पर विद्यमान प्रकृति

में ही पांचों भूत और पाच उनकी तन्मात्राएं सब मिलकर दसों परस्पर सम्मिलित होकर इस जगत् को धारण करने हैं, और सर्वत्र समान रूप से नियमपूर्वक चलने हारा काल कभी नाश को न प्राप्त होकर विशेष रूप से वर्तता है, व्यतीत होता है। जिस प्रकार देखने वाली आल प्रकाश से युक्त होकर आगे ग्राह्य विषय तक जाती है और अन्य इन्द्रियगण भी उसी के आश्रय रहते हैं, उसी प्रकार सर्वप्रेरक सूर्य के समान तेजोमय परमेश्वर का सब पदार्थों को दिवाने और बतलाने वाला वेद और प्रकाशमय सूर्यादि प्रकाश युक्त तेज और ज्ञान से युक्त होकर प्राप्त होता है, उसी के ऊपर सब लोक स्थित हैं। (२) अ-यात्म में—सर्ववशकारी प्राण, सबमे ऊपर विद्यमान चित्ति शक्ति के आधार पर चल रहा है और दश प्राण उसमें युक्त होकर देह को धारण करते हैं। सूर्य रूप आत्मा या सूर्य-चक्र सहस्रदल कमल का अन्तश्चक्षु ज्ञान युक्त होकर आगे बढ़ता है उसी के आश्रय सब देहस्थ प्राणी जीते हैं।

साकृञ्जानां सप्तयमाहुरेकजं पलिश्रमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धाम्नाः स्थाने रजन्ते विकृतानि
रूपशः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार एक साथ उत्पन्न हुए वसन्तादि ऋतुओं में से सातवें को एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और ७ यम अर्थात् जोड़े, दो दो मासों के बने ऋतुओं को क्रान्तदर्शी विद्वान् 'देवज' अर्थात् तेजस्वी सूर्य से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, उनके समस्त प्राणियों को अनिलपित स्वरूप भिन्न २ रूप में विकार को प्राप्त हुए हैं, वे स्थिर सूर्य के ही धारण सामर्थ्य या तेज के अनुसार विविध रूप से बनते हैं, उसी प्रकार आत्मा से अव्ययित देह में एक साथ उत्पन्न शरीरगत सातों में से सातवें मुख्य प्राण को अ-यात्मवेदी ऋषिजन एक मात्र आत्मा के दो मुख्य दल से एवं अकेला ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और शेष छह जोड़े

आत्मा की शक्ति से उत्पन्न होते बतलाते हैं, उनके अभिलपित रूप भादि विषय भी स्थाता के धारण सामर्थ्य के अनुसार ही रचे हैं, वे सब रूप वाले देह में विकृत होकर गति करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

स्त्रियः सुतीस्ताँ उमे पुंस आहुः पश्यदक्षएवात्र वि चैतदन्धः ।
कुरियः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्विप्तासत् १६

भा०—आदित्य पक्ष में—सूर्य के रहिम जल को अपने गर्भ में धारण करने में स्त्रियों के समान होते हैं, और वे ही पुनः भूमि पर पुरुष के समान वीर्यवत् जल सेचन कर ओषधियों के उत्पादक होने से पुरुष के समान होते हैं (२) आत्मा के पक्ष में—ज्ञानवृत्तियाँ अपने गर्भ में आत्मा को धारण करने से स्त्रियों के समान हैं और वे ही प्राण देने से पुमान् हैं । अथवा वे सब वृत्तियाँ मुझ पुरुष की ही हैं ऐसा बतलाते हैं । उनको ज्ञानी ही जानना है । अज्ञानी नहीं जानता । ब्रह्मज्ञानी पुरुष पुत्र अर्थात् अल्पायु होकर भी ज्ञानवान् होने से वृद्ध अज्ञानियों के पिता के समान आदरणीय है ।

ध्रुवः परेण पर एतावरेण एता उत्सं विभ्रती गौरुदस्थात् ।

सा कद्रीची कस्त्रिदध परागात्कत्रे स्विदसूते नहि यूथे अन्तः ॥१७

भा०—जिस प्रकार गाय परे के अर्थात् पिछले पैरों के नीचे और अगले पैरों के पीछे अपने बछड़े को धारण करती हुई खड़ी होती है, उसी प्रकार यह उपा परम स्थान आकाश से नीचे और अवर पद इस भूलोक से ऊपर, अन्तरिक्ष गत मेघ से बसने वाले जीवलोक का पालन पोषण करती हुई उदित होती है । वह अदृश्य स्थान से न जाने कहा से आती हुई फैली सगुदतम आधे आकाश को व्यापती है, कहीं भी वह सूर्य को यूथ के बीच में नहीं प्रसव करती । (२) परमेश्वरी शक्ति सर्व व्यापक होने से 'गौ' ८ । उसका पर पद आकाश और अवर पर यह लोक, दोनों के बीच स्थित जगत् को अपने सामर्थ्य से धारण करती हुई सबको उद्यतम्

प्रसव नहीं करती । प्रत्युत परमेश्वर की निरपेक्ष शक्ति ही जगत् को उत्पन्न करती है । अभ्यात्म में देखो अथर्व० का० ९ । ९ । १८ ॥

अथः परेण पितरं यो अस्यानुवेदं पुर एनावरेण ।

कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनुः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, इस स्थावर जगत् जगत् के इस लोक में और पर अप्रत्यक्ष लोक में परिपालक परमेश्वर को, इस पृथ्वीलोक से ऊपर और आकाश से नीचे स्थित भेद के समान सबके जीवनप्रद रूप में साक्षात् जान लेता है, वह इस लोक में कोई विरल ही होता है, जो क्रान्तदर्शी होकर तत्त्वज्ञान का उपदेश करता है वही यह भी बतलाता है कि इसी प्रकार अन्तःकरण भी कहा से उत्पन्न होता है ।

(अथर्व० ९ । ९ । १८)

ये अर्वाञ्चस्ता उ पराच आहुये पराञ्चस्ता उ अर्वाच आहुः ।

इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

भा०—जो जीवगण इस लोक में हैं वे अज्ञान के कारण ब्रह्म से दूर होने में दूरस्थ हैं । जो परम पद को प्राप्त हो जाते हैं उन को ही ब्रह्म पद के समीप गया बतलाते हैं । जीव और ब्रह्म दोनों के द्विये कर्म ही सब लोकों को धारण करते हैं । (२) दूर के ग्रह आदि समीप और समीप के चक्रगति वश से दूर हो जाते हैं । चन्द्र और सूर्य के भ्रमण ही लोकों को धारण करते हैं । (अथर्व० ९ । ९ । १९)

द्वा सुपुर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि पश्यजाने ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वर्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥२०॥

भा०—जीव ब्रह्म वृक्ष पर स्थित दो पक्षियों के दृष्टान्त से वर्णन करते हैं । जिस प्रकार दो उत्तम पक्षी बड़े पक्षी एक साथ प्रेम में

सयुक्त हुए, एक दूसरे के मित्र बने हुए, एक ही वृक्ष के ऊपर स्थित होकर एक दूसरे से आलिंगन करते या वृक्ष का आश्रय लेते हैं, उसपर सुख लाभ करते हैं, उनमें से एक स्वादयुक्त फल खाता हो दूसरा न खाता हुआ देखा करे, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा दोनों, उत्तम पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' है । परमात्मा सब से बड़ा पालक है, जीव अधीनस्थ प्राणी और देहादि संघात का पालक होने 'सुपर्ण' है । वे दोनों साथ रहने वाले साथी हैं । वे व्याप्य व्यापक भाव से सदा सम्बद्ध हैं, पिता पुत्र भाव से, आश्रयाश्रयी भाव से, उपान्य-उपासक भाव से सदा युक्त हैं । दोनों सखा अर्थात् मित्र के समान रहते हैं । वे दोनों एक वृक्ष का आश्रय लेते हैं । ग्रथनीय अर्थात् काटे जाने वाले देह में जीवात्मा आश्रित है, विराट् प्रलण्ड रूप में परमेश्वर है, जो विराट् प्रलय में काट दिया जाता है । उन दोनों में एक जीवात्मा स्वादु मनोहर वाञ्छित पके फल के समान अपने किये पाप पुण्यमय कर्म के सुख दुःख रूप फल का भोग करता है । और परमेश्वर न करता हुआ केवल साक्षी-मात्र होकर सर्व द्रष्टा होकर रहता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकुमत्रा विवेश ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार रश्मिया जल के अंश को लेती और निरन्तर सब पदार्थों के लाभ या क्षान कराने के निमित्त सर्वत्र प्रकाश करती हैं, सूर्य समस्त जगत् का रक्षक है, वह पकने योग्य ओषधि आदि में किरणों द्वारा प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जिस परमेश्वर ने उत्तम गति से जाने वाले देवयान मार्ग के आत्मज्ञानी पुरुष उत्त अमृत, नित्य, अवि-वर्धी, परमेश्वर के स्वरूप के भजन सेवन को ही निरन्तर समाहित चित्त होकर क्षान और परम पद के लाभ के लिये उसी की स्तुति करते और अन्यो को उत्तम उत्तम उपदेश करते हैं । और बड़ी सबका स्वामी

परमेश्वर समस्त जगत् का रक्षक है। वह ध्यानवान्, धीर बुद्धिमान् पुरुष परिपक्व ज्ञान वाले मुक्त सधक को इस परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करे। (२) अभ्यात्म में—यास्क के [निरु० ३। २। ६] अनुसार—इन्द्रिय गण 'सुपर्ण' हैं। अविनाशी आत्म-चैतन्य द्वारा गृहीत ज्ञान को ग्रहण करती है। वह आत्मा सब इन्द्रियों का रक्षक है। वह मुक्त अपरिपक्व ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त हो।

यस्मिन्बृक्षे मध्वदः सुपर्ण निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वये तन्नोन्नश्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

भा०—जिस संसार रूप वृक्ष के ऊपर मुर कर्म फल के भोक्ता उत्तम कर्म और ज्ञानवान् जीवगण आश्रय पाते, और अपनी सन्तान उत्पन्न करते, और परमेश्वर का भजन करते हैं, उसके उत्तम स्थान में पालनकारी फल की विद्वान् लोग चर्चा करते हैं। जो पुरुष अज्ञानप्रश सर्वपालक परमेश्वर को नहीं जानता वह ही उस स्वादु परम आनन्द रूप फल को नहीं प्राप्त करता।

यद्वायुत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्या त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पद य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमोग्रुः ॥ २३ ॥

भा०—गान करने वाले का ग्राण करने वाला परमेश्वर ही गायत्री छन्द में वेद में स्तुति किया गया है। तीनों वेदों में स्तुति करने योग्य परमेश्वर का ही त्रिष्टुप् छन्दों में वर्णन किया है। जगती छन्दों में भी उसी सर्व व्यापक प्रभु का वर्णन किया गया है। उस प्राप्त-य परमेश्वर को जो जानते हैं वे अमृतत्व को भोगते हैं। श्रुतौ (अथर्व० भाष्य का० ६ सू० १०। १) ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते श्रुर्मर्कणं साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

भा०—वह परमेश्वर गायत्री छन्द से ऋग्वेद को आरम्भ करता है । ऋचाओं के समूह से गान को रचता है । और यजुर्वेद भी विधियों की दृष्टि से अथर्ववेद को रचता है । दो चरणों और चार चरणों वाले अक्षरों से ही विद्वान् लोग सात छन्दों से रची वाणियों का ज्ञान करते हैं । देखो (अथर्ववेद भाष्य का० ९ । १० मन्त्र २) ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् । गायत्रस्य सामधस्तिस्त्र आहुस्ततो मुह्य प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥१८॥

भा०—वह परमेश्वर गति देने वाली कालशक्ति से तेज से गति करने वाले सूर्यादि लोक समूह को आकाश में धामता है, और अधिक वेगवान् के आश्रय पर ही सूर्य के समान तेजस्वी पिण्ड को सर्वत्र भ्रमण करते हुए दिव्याता है । गान करने वाले के रक्षक परमेश्वर के ही अधीन अच्छी प्रकार देदीप्यान् अग्नि, विद्युत् और सूर्य तीनों हैं । वह महान् सामर्थ्य से ओर स्वरूप से उनसे भी कहीं बढ़कर है । विशेष विवरण देखो (अथर्व० का० ९ । १० । ३) ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

उप हये सुदुग्धा धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।

धेष्टुं स्रवं सविता साविपन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु पु प्र वोचम् ॥२६॥

भा०—जिस प्रकार कोई गृहस्थ सुखपूर्वक दोहने योग्य गाय को पाहता है और कुशल पुरुष उसको दोहता है, उसी प्रकार मैं उस वेद वाणी रूप गो का दोहन करता हूँ, ब्रह्मवाणी का गुरु के समीप जाकर अध्ययन करता हूँ । उत्तम कुशल तथा गो अर्थात् वाणी के रस का दोहन करने द्वारा विद्वान् पुरुष ही इसको दोह पाता है । जैसे अति प्रदीप्त सूर्य जल को वृष्टि रूप में उत्पन्न करता है उसी प्रकार शिष्यों का आज्ञापक आचार्य स्वयं तेजस्वी तपस्वी, या ज्ञान का धारण करने द्वारा होकर सब से उत्तम ज्ञाननिषेक करता है । उसकी शिक्षा ही मैं सदा उत्तम रीति से उपदेश करता हूँ । विशेष विवरण देखो अथर्व० का० ७ । ७३ । ७ ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वृत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्नयेय सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

भा०—अपने बछड़े की प्यारी गौ अपने वत्स के प्रति प्रेम हिकार शब्दपूर्वक उस को चूमती हुई चित्त से स्नेहपूर्वक गृह में बछड़े के समीप आ जाती है, और वह मनुष्यों के अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल वृद्धादि सबको पालने वाली होती है, वह कभी वध न करने योग्य एवं सदा पालने योग्य होकर स्त्री पुरुषों के लिये दूध प्रदान करती है, वह बड़े भारी सौभाग्य की वृद्धि के लिये वृद्धि को प्राप्त हो । उसी प्रकार समस्त लोकों में बसने वाले जीवों का पालन करने वाली और ज्ञानपूर्ण वसे हुए इस लोक रूप वत्स को प्रेम से चाहती हुई प्रभु की परमेश्वरी शक्ति वेद द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई साक्षात् दिपाई देती है । वह अविनाशिनी होने से 'अघ्नया' है । वह आत्मा और मन दोनों को पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है । वह उत्तम ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये सबसे बढ़ कर है, वह हमें बढ़ावे । देखो अथर्व० ७ । ७३ । ८ ॥

गौरमीमेदन्तु वृत्सं मिपन्तं मुधीनं हिङ्कृण्वतीमात्रा उ ।

सृक्वाणं वमममि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

भा०—जिस प्रकार आँख झपकते बछड़े को देख कर प्रेम में गौ शब्द करती है, और उसको प्रेमपूर्वक अपनाने के लिये उसे सूँघती और पुचकराती है, माता के धनों में रस उत्पन्न करते हुए बछड़े को लक्ष्य करके अति कामना करती हुई रमाती है, उसी प्रकार व्यापक और ज्ञानमय होने से परमेश्वर 'गौ' है । प्रजाजन वत्स है । वह मानों सब को दया से अपनाने या सब को ज्ञान कराने के लिये आचार्य के समान उपदेश करती, और सामगान आदि करती है । वह तप करते हुए शिष्य के प्रति उपदेश करने वाले आचार्य के समान आत्मा के प्रति अन्तनाद करती हुई ज्ञानपूर्ण उपदेश करती है, और पुष्टिकारक पदार्थों या ऐश्वर्यों में उन्हें पुष्ट करती है । अन्य पक्षों की योजना देखो (अथर्व० ४० । १० । ९ । ७ ॥)

अयं स शिङ्कं येन गौरभीवृता मिमांति मायुं ध्वसनावधि
श्रिता । सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति
वृत्रिमौहत ॥ २६ ॥

भा०—(१) यह मेघ गर्जना करता है । जिसके साथ २ अति वेग
से जाने वाली मध्यमिका वाक् या विद्युत् सब तरफ जमजमाती हुई, ध्वंस
होने अर्थात् क्षीण होने वाले मेघ के आश्रय में आश्रित हुई, शब्द किया
करती है । वह तीव्र क्रियाओं से मनुष्यमात्र को भयभीत करती है । वह
विशेष दीप्तिमती होकर अपना रूप प्रकट करती है । (२) वह परमेश्वर
वेद द्वारा आचार्यवत् उपदेश करता है जिसके साथ कि वेद वाणी सदा
सगिनी होकर रहती है । वेद वाणी नाशवान् वर्ण की ध्वनि पर आश्रित
रह कर ज्ञानों द्वारा मनुष्य का बड़ा उपकार करती है, विशेष २ अर्थ की
द्योतिका होकर वर्णीय परमेश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करती, उसी का
प्रतिपद वर्णन करती है । विशेष देखो (अथर्व० ९ । १० । ७ ॥)

अनच्छ्रये तुरगांतु जीवमेजद्ध्रुव मध्य आ प्रस्त्यानाम् ।

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥ १६ ॥

भा०—जीव आत्मा, गृहो के बीच गृहपति के समान, देहों के बीच
उनका धारण करने वाला होकर स्थिर रूप से जीवनप्रद और प्राणसाधक
तथा अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करता हुआ, शरीर को सञ्चालित
करता हुआ, प्राण देता हुआ व्याप रहा है । वह जीवात्मा मरने वाले
जड़ देह के बीच में अपने आप को धारण करने वाली शक्तियों या अक्षो
के द्वारा भोग करता और विचरता है । वह स्वयं मरणधर्मा देह से भिन्न
होकर भी मरने वाले शरीर के साथ एक ही आश्रय में रहता है । परमेश्वर
के पक्ष में—परमेश्वर सबको प्राण देता हुआ, शीघ्र गति देने वाला,
पूटस्थ, शरीरों के बीच कर्मानुसार जीव को प्रवेश करता हुआ स्वयं अदृश्य,
निरिक्रिय रूप से व्याप रहा । और जीव जड़देह का अपने किये कर्मों द्वारा

या अन्नो से भोग करता है। वह ब्रह्म मरणवर्मा जीव से भिन्न होकर भी जीव के साथ ही व्यापक रूप से रहा करता है। देखो (अथर्व० ९। १०। ८ ॥) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमान्मा च परां च पृथिभिश्चरन्तम् ।

स संधीचीः स-विपूचीर्विसान्नां वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥

भा०—सब के रक्षक, नाना मार्गों से समीप आते और दूर जाते हुए, कभी भी नाश को प्राप्त न होते हुए अस्त न होने वाले सूर्य के समान विद्यमान स्वयं प्रभु का नाना प्रकारों से मैं साक्षात् करता हूँ। परमेश्वर सार्विक मार्ग से सावक के कभी अति निकट और तामस प्रवृत्तियों से कभी बहुत दूर होता प्रतीत होता है। वह उसके सदा साथ रहने वाली अर्थात् स्वाभाविक, और सब तरफ जाने और व्यापने वाली शक्तियों को अपने में धारण करता हुआ उत्पन्न हुए समस्त लोका के भीतर और बाहर सर्वत्र वर्तमान रहता है। (२) जीवात्मा भी समीप और दूर के मार्गों से विचरता, कभी नाश को प्राप्त होता, उस आत्मा का मैं साक्षात् करूँ। वह स्वाभाविक और विविध दिशाओं में जाने वाली प्राण और इण्ड्रियों की चेशओं पर वश करता हुआ समस्त प्राणों के भीतर चेश करता है। (देखो अथर्व० ९। १०। ११)

य ई चकार न सो अस्य वैद य ई दृदर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्वहुप्रजा निर्ऋतिमा विवश ॥ ३२ ॥

भा०—जो जीव यह सब कार्य करता है। वह जीव भी इस जीव स्वरूप को नहीं जानता है। और जो इस सब अपने कर्म आदि को साक्षी होकर देखता है वह भी उस सब से पृथक् और छिपा हुआ नदृश्य है। वह माता के गर्भाशय के भीतर छिपट २ कर बहुत से जन्म धारण करता हुआ प्राकृत ब्रह्म को धारता है या भूमि को प्राप्त होता है। देखो अथर्व० भाष्य ९। १०। १० ॥

द्यौर्मै पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मै माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्योऽयोनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

भा०—मेरा पालक और उत्पादक सूर्य है, वही केन्द्र के समान हम सब जीवों का आश्रय है । उसी आश्रय में बन्धु के समान प्रेम से बाधने वाली, माता के समान गर्भ में धारण करके उत्पन्न कर पालने वाली यह पृथिवी है । ऊर्ध्व रीति से अतिविस्तृत, भोग्य भोक्तृ के समान परस्पर सयुक्त सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच में मेरा प्रकट होने का स्थान है । इस स्थान में ही पालक सूर्य अग्नादि ऐश्वर्यों को दोहन करने वाली पृथिवी में गर्भ धारण करता है । अथवा जलादि देने वाले अन्तरिक्ष में गर्भ अर्थात् जल से पूर्ण मेघादि को स्थापित करता है । (२) परमेश्वर प्रकृति पक्ष में—तेजोमय प्रभु ही 'द्यौः' है । वह सबको कर्म बधनों में बाधने वाला है । सर्व निर्मात्री प्रकृति माता है । ऐश्वर्य दोहन करने वाली प्रकृति है । वह ईश्वरीय शक्ति से विकार को प्राप्त होती है । उसमें ब्रह्म हिरण्यगर्भादि को धारण करता है । अथर्व० ९ । १० । १२ ॥

पृच्छामि त्वा वरमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं द्यौम ॥ ३४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! मैं तुझ से पृथिवी के परले अन्त को पूछता हूँ । मैं उस परले अन्त के विषय में पूछता हूँ जिस पर समस्त ससार की धुरी टिकी है । मैं तुझसे पूछता हूँ कि भूमियों पर उत्पादक वीर्य के निषेक करने वाले तथा सर्व व्यापक परमेश्वर का उत्पादक वीर्य कौन सा है जिससे यह विविध प्रजाएँ तथा लोक लोकान्तर उत्पन्न होते हैं । और पूछता हूँ कि वेद वाणी का सर्वोत्कृष्ट परमाश्रय कौन सा है । उत्तर अगले मन्त्र में स्पष्ट है । अथर्व० ९ । १० । १३ ॥

इयं धेनुः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं द्यौम ३५।२०

भा०—यह वेदि पृथिवी का परला छोर है। यह परमोपास्य परमेश्वर समस्त संसार का आश्रय है। यह सर्वोत्पादक सूर्य निषेचक परमेश्वर का परम बीर्य रूप तेज है। यह महान् प्रभु ही वेदवाणी का परम रक्षा-स्थान है। अथर्व० ९। १०। १४ ॥ इति विशो वगं. ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विद्यमणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विप्रश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ३६

भा०—सर्पण करने वाले किरण, समृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हुए, प्राणिमात्र को उत्पन्न करने में समर्थ जल को, महान् सामर्थ्य वाले सूर्य के उत्तम शासन से विशेष रूप से धारण करने वाले अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं। वे किरण शक्तिशाली सूर्य की क्रियाओं और स्तम्भन बल से सर्वत्र व्यापकर सबत्र ओर पहुँच जाते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में—अपने से अधिक शक्तिमान् परमेश्वर के बल प्रेश्वर्य को भीतर धारण करने वाले सातों महत् अहकार और पञ्च सूक्ष्मभूत, विविध पदार्थों को धारण करने वाले आकाश में परमेश्वर के शासन में विराजते हैं। वे सातों ईश्वर की धारणशक्तियाँ, ज्ञान सामर्थ्य से विद्वानों के समान क्रिया और ज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र विकृत होकर, सर्वोत्पादक होकर नाना पदार्थों के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

न वि जानामि यदि वेदमस्मि त्रिण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मार्गप्रयमज्ञा ऋतस्यादिद्वाचो अशुवे भागमस्याः ॥ २७ ॥

भा०—जिस तरह का यह मैं हूँ सो मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूँ। मैं तो वस्तुतः मनोरूप जन्तुकरण से प्रहार हुआ हुआ और उर्मो में छिपा हुआ विचरता हूँ। जब मन्त्रान्वित परमेश्वर के सङ्घर्ष से प्रयत्न उत्पन्न विषयग्राही इन्द्रिय रूप ज्ञानमायन मुझे प्राप्त होते हैं, तब इस वाणी के द्वारा मज्जन करने योग्य परम ब्रह्म को अथवा वेदवाणी के नाम अर्थात् प्रतिपाद्य सत्यज्ञान को मैं प्राप्त हूँ। (अथर्व० ९। १०। १५)

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता
शुश्वन्ता विपचीना विगन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ३८

भा०—यह जीव अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किये
कर्मों के फल से बद्ध होकर नीचे अर्थात् तुच्छ योनियों में जाता, और
उसी प्रकार कर्मों से बद्ध या शरीर में बद्ध होकर उत्कृष्ट देहों में जाता है ।
वह अविनाशी आत्मा मरणधर्मा जड़देह के साथ मिलकर एक साथ
रहता है । आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह वे दोनों परस्पर सदा साथ
रहने वाले सभी लोको में साथ ही जाने वाले विविध लोको को प्राप्त होते
हैं । सभी जन उनमें से एक को भली प्रकार जान लेते हैं और मूढ़ जन
दूसरी आत्मा को नहीं जान पाते ।

अचो अक्षरं परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ६

भा०—ऋग् आदि चारों वेदों के बीच प्रतिपादित किये गये, जिस
अविनाशी, और सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रूप से सब के रक्षक परमेश्वर
में सब तेजोमय सूर्यादि लोक आश्रय पा रहे हैं, जो पुरुष उसको नहीं
जानता वह ऋग् आदि वेदों से क्या करेगा ? क्या फल प्राप्त कर सकता
है । जो विद्वान् उस परम वेद्य आत्मा को जान लेते हैं वे ही उस आनन्द-
मय परमेश्वर की सम्यग् ज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं ।

सुयवसाद्भगवती हि भूया प्रथो वयं भगवन्तः स्याम ।

अदि तृणमप्ये विश्वदानी पिवं शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥२१॥

भा०—हे अविनाशीले । जिस प्रकार गौ उत्तम तृण आदि खाने
द्वारा होकर शुद्ध जल पीती और तृण खाती, और समस्त तत्तार को दूध
आदि पौष्टिक पदार्थ और वृषि आदि द्वारा जल प्रदान कर ऐश्वर्य सुख से
पूर्ण करती है, उसी प्रकार हे कर्मी नारा न होने योग्य परमेश्वरी शक्ते !
तु उपास 'यवसू' अर्थात् प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य सुखों का अन्यो को प्राप्त

कराने वाली है। तू सदा निश्चय से सेवने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी है। हम ऐश्वर्यवान् बनें। छेदन करने योग्य तुच्छ देहबन्धन एवं तुच्छ सासारिक दुःखों को तू खा जा, नष्ट कर। यह परमेश्वरी शक्ति सर्वत्र व्यापती हुई विशुद्ध ज्ञान रस अन्यों को पान कराती है। देखो अथर्व० का० ७।

७३। ११॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तल्लत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभ्रुवृषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥

भा०—जिस प्रकार ध्वनि करने वाली अन्तरिक्ष की वाणी वियुक्त ध्वनि करती है, वह जलों को उत्पन्न करती, मेवरूप एक आश्रय में रहकर 'एकपदी', मेव और वायु के आश्रित रहने से 'द्विपदी', और चारों दिशाओं में व्यापने से 'चतुष्पदी', और चार दिशा और चार उपदिशाओं में व्यापने से 'अष्टापदी', और ऊपर की ऊर्ध्व दिशा में भी व्यापक होने से 'नवपदी' होती हुई, सहस्रों प्रकार से जलप्रस्रवण करती हुई, परम आकाश में चमकती है, उसी प्रकार परमेश्वर की वेदवाणी ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाली और ज्ञानवान् विद्वानों को रमण कराने वाली होकर, ज्ञानानन्द रसों को उत्पन्न करती है। वह एकमात्र परम परमेश्वर का ज्ञान कराने से 'एकपदी', गुरु शिष्य दो द्वारा ज्ञान करने कराने योग्य होने से 'द्विपदी', चारों वेद में आश्रित या चारों आश्रमों द्वारा सेवने योग्य होने से 'चतुष्पदी' है। चार वर्ण चार आश्रमों की व्यवस्थापक और उनको ज्ञान देने वाली होने से 'अष्टापदी', वही एकमात्र नव वेदों के आश्रित होने से 'नवपदी' है। और सहस्रों प्रकार से 'अक्षर' अर्थात् परमेश्वर का वर्णन करने और सहस्रों अक्षर अर्थात् कक्षरादि वर्णराशियुक्त होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम रक्षास्थान ओम्कार में आश्रित है। वह सबको उपदेश करती, ज्ञान प्रदान करती और अज्ञान का नाश करती, सन्मार्ग में प्रेरित करती है। (३) अथवा—'मुत्तम्य वाणी सरस्वती' विद्वानों में रमण करने से गौरी, ज्ञानरसों या सत्परा भावों की उत्पन्न

करती है। प्राणरूप एक चरण वाली, अथवा अव्याकृत रूप से एक गणमय स्वरूप होकर एकपदी, या एक ओंकार रूप होने से एकपदी है। सुप्, तिङ् भेद से द्विपदी, वा मनुष्य की वाणी होने से द्विपदी, नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात भेद से वा अव्याकृत रूप से चौपायों में भी व्याप्त होने से 'चतुष्पदी', सम्बोधन सहित सात विभक्तियों द्वारा जानने योग्य होने से वा अष्टविध प्राणि-सर्ग में व्यापक होने से 'अष्टापदी', नव-विधि वकारिक सर्ग में व्यापक होने से, वा अव्यय सहित पूर्वोक्त विभक्ति तथा सम्बोधन युक्त होने से 'नवपदी' होकर, सहस्रों अक्षरों वाली होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम सर्वोत्कृष्ट विशेष ज्ञानवान् पुरुष में विकास को प्राप्त होती है। अथर्व० ९।१०।२१।

प्रमाण—जैसे 'एकपदी'—अज एकपात् । वेद ॥

'द्विपदी'—प्रकृति पुरुषश्चैव विद्वयनादी उभावपि । गी० अ० १३।१९।

'चतुष्पदी'—प्रकृति पुरुषश्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च । गी० अ० १३।११॥

'अष्टापदी'—भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा । गी० अ० ७।९॥

'नवपदी'—अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् । गी० अ० ७।५॥

सहस्राक्षरा—एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अह कुत्सस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । गी० अ० ७।६॥

विशेष विवरण देखो अथर्ववेद आलोक भाष्य का० ९।१०।२१।

तस्याः समुद्रा अपि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशुश्चतस्रः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥

भा०—जिस प्रकार उस विष्णु से आघात लाकर जलों को यहाने वाले भेध बहुत अधिक मात्रा में और विशेष रूप से बरसते हैं, उस वर्षा से पारो दिशाओं में बसने वाले जीवगण जीवन धारण करते हैं। उस भेधवर्षा विष्णु से ही जल बरसता है और उसी के आश्रय जीव तत्तार

अपना जीवन धारण करता है, उसी प्रकार उस परमेश्वरी शक्ति से पेश्वरों के समुद्र बहते हैं, उससे चारों दिशाओं में स्थित लोक जीते हैं, उसी से अक्षय जीवन शक्ति प्राप्त होती है, जिससे समस्त जीव ससार जीवन प्राप्त करता है।

शकमयं धूममारादपश्यं विपुवतां पुर एनावरेण ।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरारतानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं शक्तिमान् तथा धूम के समान नीहार (Nebula) को मैं वैज्ञानिक देख रहा हूँ। अपेक्षया समीप तथा चारों दिशाओं में फैलने वाले इस नीहार से भी सूक्ष्मतर तथा विविध दिशाओं में गति करने वाले अति सूक्ष्म तत्व जो कि भारी पिण्डों में बलसेवन करने वाले हैं, वे महान् सूर्य को परिपक्व, परिपुष्ट और अधिक प्रतापी बना रहे हैं। वे जगत् को धारण करने वाले तत्व सृष्टि के पूर्व में विद्यमान थे। (२) परमेश्वर पक्ष में—यह जीव या यह ससार स्पन्दन शील होने से, 'धूम', और शक्तिमय होने से 'शकमय' है। वह अति समीप है। स्वय उत्पन्न होने और विविध प्रजाओं के उत्पन्न करने में 'विपुवान्' है। उससे भी उत्कृष्ट सर्वसाधक, सब को बल देने वाला परमेश्वर है। उसको निदान् जन प्राप्त करने के लिये तप और योग करते हैं। वे धर्म सर्व वेष्ट हैं। (अथर्व० ९। १०। २५)

अथ केशिनं ऋतुया वि चक्षते संवत्सरे वपतु एकं एषाम् ।

विश्वमेको अग्निं चष्टे शचीभिर्वाजिरेकस्य दृष्ट्ये न रूपम् ॥ ३४ ॥

भा०—इस विश्व में केश अर्थात् किरणों और अपने २ जागक चिन्हों सहित तीन पदार्थ विद्यमान हैं जो क्रम से विद्युत्, सूर्य और वायु हैं। वे तीनों अपनी २ ऋतु के अनुसार विशेष २ लक्षणों से अपने आप को दिखलाते हैं। इनमें से एक विद्युत् वरमते मेघ के साथ प्रकट होता है, वह वर्ष में एक बार समस्त ओषधियों और प्राणियों के बीजों को वापन करता

है। वे मौसम में उत्पन्न होते हैं। उनमें से एक सूर्य ज्येष्ठ आदि मास में समस्त विश्व को किरणों से सब प्रकार से देखता और प्रकाशित करता है। और तीसरे वायु का वेग तो देखने में आता है, परन्तु उसका रूप नहीं देख पड़ता। (२) इसी प्रकार विश्व के प्रति परमेश्वर के तीन रूप हैं। वे कालगति के अनुसार ससार को दीखते हैं। पहिला बीजों के समान सबको उत्पन्न करता है, दूसरा सब प्रकार शक्तियों से देखता पालता है। तीसरा सहारकारी रूप है, उसका वेग दीखता है रूप नहीं दीखता, काल होकर तू सबका सहार करता है। अथर्व० ९।१०।२६॥

चत्वारि वाक्परिभिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेह्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

भा०—वाणी के चार जानने योग्य स्वरूप माने गये हैं। जो बुद्धिमान वेदज्ञ विद्वान् हैं वे वाणी के इन चारों स्वरूपों को भली प्रकार जानते हैं। उनमें से तीन रूप गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित रहकर प्रकट नहीं होते। और वाणी के चौथे स्वरूप को मनुष्य बोलते हैं।

वाणी के ये चार स्वरूप कौन २ से हैं इसमें बहुत से मत भेद हैं जिनका संक्षेप से उल्लेख करते हैं। (१) भू, भुव., स्व. और प्रणव इन चार पदों में समस्त वाणी परिमित है। (२) ऋग, यजु., साम और अथर्व (३) तपे, पक्षी, क्षुद्र सरीसृपो और चौथे मनुष्यों की भाषा। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैतरी। इन में परा मूलाधार में सूक्ष्म नादरूप से रहती है, हृदयचक्र में वही पश्यन्ति है, बुद्धि में आकर वह मध्यमा है, मुख में आकर वैतरी है। (५) वाणी के ४ रूप हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। नाम सत्तासत्ता सम्बन्ध का धोतक है, क्रिया का धोतक आख्यात, विशेषण का धोतक उपसर्ग है, और अव्यय सन्दर्भ का निपात बड़ा ज्ञात है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥

भा०—विद्वान् लोग परमात्मा को ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । और वह ही गरुत्मान् और दिव्य 'सुपर्ण' कहाता है । विद्वान् लोग एक सत् परमात्मा को ही बहुत तरह से कहते हैं, उसको ही अग्नि, यम और मातरिश्वा नाम से कहते हैं । परमेश्वर ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' है । स्नेही और मृत्यु से त्राणकारी होने से 'मित्र' है । सर्व श्रेष्ठ और दुःख-निवारक होने से वरुण, तेजोमय होने से 'दिव्य' है, भली प्रकार पालन-कारी और पूर्ण होने से 'सुपर्ण' है । महान् आत्मा होने से 'गरुत्मान्' है । वह सब से पूर्व और ज्ञानवान् होने से 'अग्नि', सर्व नियन्ता होने से 'यम', जगन्निर्मात्री प्रकृति में और ज्ञाता आत्मा में भी सूक्ष्मतया व्यापक और गतिदाता होने से 'मातरिश्वा' है । विद्युत् प्राण, जल, समुद्र, सूर्य, अग्नि, मृत्यु, वायु आदि दिव्य पदार्थ भी भिन्न २ गुणों से ही इन्द्रादि नामों से कहे जाते हैं । और उनमें भी वे गुण परमेश्वर से प्राप्त होने से वे सब नाम परमेश्वर में ही मुख्यतया अधिक उचित हैं । अन्यो के वे गोण नाम हैं । वह परमेश्वर अद्वितीय होने से 'एक' है । सर्वत्र व्यापक, सर्वाश्रय, बलरूप एवं कारण होने से 'सत्' है । सब उसी की नाना नामों और बलकारों से स्तुति करते हैं । विशेष प्रमाण देखो अथर्व० ९ । १० । २८ ॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

कृष्णं नित्यानुं हरयः सुपर्णा यपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आववृचन्त्सदनाहूतस्यादिद् वर्तनं पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥

भा०—दयाम वर्ण के, तथा नीचे की तरफ जाने वाले, जल में नारी मेघ को ले जाने वाले, उत्तम वेग से जाने वाले वायुगण, जगत् के सूक्ष्माश्रयों को धारण करते हुए जब आकाश की ओर उड़ते हैं, वे जल के स्थानों से सब ओर फैल जाया करते हैं, और बाद में आकाश से गिरते हुए जल

से विशाल भूमि विशेष रूप से गीली हुआ करती है, इसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् जीवगण प्राणमय लिङ्गशरीरों को धारण करते हुए, काले अशुक्ल, नीचे गिराने वाले पापकर्म को दूर करने हारे होकर, ज्ञान प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे सत्य ज्ञानमय प्रकाश के आश्रयस्थान से पुनः लौटते हैं और फिर उनके तेजोमय ज्ञान से यह भूमि सिंचती हैं। वे ज्ञानोपदेश करते हैं। अथर्व० ९।१०।२२॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।

तस्मिन्त्साकं त्रिंशता न शङ्कवोऽर्पिताः पृष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

भा०—जिस प्रकार किसी यन्त्र में १२ परिधिएं हों, और एक ही चक्र हों। और तीन धुरें पर लगने वाले पट्टे हों। उसको कोई विरला ही ठीक २ जान सकता है। उस चक्र में तीन सौ साठ खूंटियों के समान चलने और न चलने वाली कलाएं लगी हैं। प्रकार २ कालचक्र में १२ मास १२ परिधियां हैं। सवत्सर का एक चक्र है। उसने तीन मुख्य क्रतुएं तीन धुरें पर स्थित तीन पट्टे हैं। उससे ३६० दिन रात्रि रूप ३६० शंकु के समान कलाएं हैं, जिनके घुमाते ही रात्रि दिन होता है। ब्रह्म पक्ष में—पाच रघूल, पाच सूक्ष्म महत् अहकार ये १२ परिधि हैं। एक ब्रह्म कर्त्ता 'चक्र' है। तीन गुण ससार में बन्धनकारी होने से नभ्य हैं। ३६० सवत्सर की अहोरात्र रूप प्राण 'कलाएं' हैं। अध्यात्म में १२ प्राण हैं। एक आत्मा कर्त्ता है। तीन गुण बाधने वाले हैं। ३६० धारक प्रयत्न कला रूप हैं।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभ्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।

यो रत्नधा वसुभिः सुदधुः सरस्वति तमिह घातवे क. ॥४९॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम दुग्धदात्री माता का स्तन बालक को सुख से सुला देने वाला, सुखप्रद होकर उसे पुष्ट करता है, उसी प्रकार वे देवगण ! और वेद वाणी के जानने वाले विद्वन् और उत्तम ज्ञानमय

परमेश्वर ! जो तेरा पालक स्वरूप उपासक को शान्ति देने वाला है, और जो सुख और आनन्द देने वाला है जिससे समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को पुष्ट करता है, जो रमणीय सुखों को धारण करता, अपने में बसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है, जो सुख कल्याण का देने वाला है, उसको इस जगत् में सबके पोषण के लिये प्रकट करता है । राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८ । ५ ॥ विदुषी छी माता और योः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७ । १० । १ ॥

यश्चेन यक्ष्मयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नार्क महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति दे ॥ ५० ॥

भा०—देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष, अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से उपास्य परमेश्वर की उपासना करते, तथा प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुण्यार्थों की साधना करते हैं । वे नाना प्रकार के ऋचय अनुष्ठान आदि कर्तव्य सबसे उत्तम हैं । जिन कर्तव्यों के बीच में रहकर प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील उत्तम पद की कामना करते हुए रहते हैं और जिन कर्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही वे पूर्वोक्त साधक पुरुष बड़े सामर्थ्यवान् होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित मोक्ष तक की प्राप्ति होते हैं । विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व० ७ । ५ । १ ॥

समानमेतदुदकमुच्चैत्यत्र चार्हभिः ।

भूमिं पुर्जन्या जिवन्ति दिवं जिवन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥

भा०—यह जल जिस प्रकार ऊपर भी जाता है, कुछ दिनों में नीचे भी उतरता है, यह दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है । जल को बरसाने वाले मेघ भूमि की सृष्टि करते हैं, और अग्निया अन्तरिक्ष में

जल से तृप्त करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है, अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुनः नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में आता है तब उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण प्राण, आदि उसके उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं, और जब ज्ञानी पुरुष उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं तब वह उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दिव्यं सुपूर्णं वायुसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोपधिनाम् ।

अभीष्टतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥२३॥

भा०—आकाश में स्थित, उत्तम रश्मियों से युक्त, अति वेग से गमन करने वाले, सबकी वृद्धि करने वाले और स्वयं महान्, जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, ओषधियों को ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाले जलों से तृप्त करने वाले जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य का जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक अति कामनीय, पान्तिमय, दिव्य, उत्तम पाहनवारी और ज्ञानमय, ज्ञान और बल में सबसे महान्, सबसे बड़े प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश में रखने हारे, परम दर्शनीय, अति सुन्दर, देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले परापर जगत् को सब तरफ की सुखों की जलधाराओं से तृप्त, एवं आनन्दित करते हुए, उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की, ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये, उपासना करता हूँ, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूँ। इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

[१६५]

अनस्य ऋषिः ॥ १ द्वौ देवता ॥ मन्त्रः—१, २, ४, ५ ११, १२ निराद्य

परमेश्वर ! जो तेरा पालक स्वरूप उपासक को शान्ति देने वाला है, और जो सुख और आनन्द देने वाला है जिससे समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को पुष्ट करता है, जो रमणीय सुखों को धारण करता, अपने में बसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है, जो सुख कल्याण का देने वाला है, उसको इस जगत् में सबके पोषण के लिये प्रकट करता है । राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८ । ५ ॥ विदुषी सी माता और द्यौः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७ । १० । १ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नार्क महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥

भा०—देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष, अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से उपास्य परमेश्वर की उपासना करते, तथा प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुरुषार्थों की साधना करते हैं । वे नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य अनुष्ठान आदि कर्त्तव्य सबसे उत्तम है । जिन कर्त्तव्यों के बीच में रहकर प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील उत्तम पद की कामना करते हुए रहते हैं और जिन कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही वे पूर्वोक्त साधक पुरुष बड़े सामर्थ्यवान् होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित मोक्ष तक को प्राप्त होते हैं । विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व० ७ । ५ । १ ॥

समानमेतदुडकमुच्चैत्यच्च चाहभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्रयः ॥ ५१ ॥

भा०—यह जल जिस प्रकार ऊपर भी जाता है, कुछ दिनों में नीचे भी उतरता है, यह दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है । जल को बरसाने वाले मेघ भूमि को संतृप्त करते हैं, और अग्नियां अन्तरिक्ष को

जल से तृप्त करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है, अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुनः नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में जाता है तब उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण प्राण, आदि उसके उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं, और जब ज्ञानी पुरुष उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं तब वह उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दिव्यं सुपूर्णं वायुसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोपधीनाम् ।

अभीपुतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥२३॥

भा०—आकाश में स्थित, उत्तम रश्मियों से युक्त, अति वेग से गमन करने वाले, सबकी वृद्धि करने वाले और स्वयं महान्, जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, ओषधियों को ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाले जलों से तृप्त करने वाले जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य का जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक अति कामनीय, पान्तिमय, दिव्य, उत्तम पाहनकारी और ज्ञानमय, ज्ञान और बल में सबसे महान्, सबसे बड़े प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश में रखने हारे, परम दर्शनीय, अति सुन्दर, देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले पराचर अगत् को सब तरफ की सुखों की जलधाराओं से तृप्त, एवं आनन्दित करते हुए, उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की, ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये, उपासना करता हूँ, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूँ। इति त्रयो-विंशोऽध्यायः ॥

[१६५]

अन्यत्र ॥ १०० देवता ॥ अन्तः—१, २, ३, ४ ११, १२ विराट्

त्रिंशत् । २, ८ ६ त्रिंशत् । १३ निचृत् त्रिंशत् । ६, ७, १०, १४ सुरिक्त
पक्तिः । १५, पक्तिः । पचदशत्वं सूक्तम् ॥

कया शुभा सर्वयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसुया ॥ १ ॥

भा०—वायु के समान आलस्य रहित छात्रजनो ! आप सब लोग एक समान वीर्य, ज्ञान और अवस्था वाले, एक ही स्थान पर रहते हुए, किस प्रकार उत्तम रीति से परस्पर को बलवान् बनाओ ? इस बात को अच्छी प्रकार जानो । उत्तर—आप लोगों में एक दूसरे की बलवृद्धि सदा समान क्रिया, समान रहन सहन, वेश, आहार, विहार, चेष्टा आदि से होनी सम्भव है । ये शिष्य आदि जन किस २ देश से आ २ कर और किस विचार या संकल्प से प्रेरित होकर स्वयं बलवान् होकर भी अधिक बलशाली और प्रवृद्ध ज्ञानवान् पुरुष को आदर पूजा देते और उसके अधीन रहते हैं ? । उत्तर—उसके अधीन शिष्य बन कर रहने की इच्छा, या वसु अर्थात् ब्रह्मचारी होने की इच्छा से ।

कस्य ब्रह्माणि जुजुपूर्युवानः को अंध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥

भा०—हे युवा विद्वान् पुरुषो ! आप लोग किस के पास से ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्रों के ज्ञान और नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकते हो ? अन्तरिक्ष में वेश से जाते हुए वाजों के समान भोग्य व्यसनों या विषयों के प्रति जाते हुए तुम लोगों को अहिंसामय वेदाध्ययनादि यज्ञ-कार्य में कौन तुम्हें वेदाभ्यास कराता है ? किस बड़े ज्ञानवान् पुरुष से हम सब मनुष्य अति आनन्द लाभ कर सकते हैं । उत्तर—उस प्रजापति तुल्य, सर्वोपदेशक गुरु से वेदज्ञान प्राप्त करें, वही हमें सत्पथ में चलावे, वही से हम सुप्रसन्न रहें । अध्यात्म में—(२) मरुतः प्राणगण वे एक ही देह आश्रित रहकर समान वायु की चेष्टा से देह में आरोग्य सुख

वर्षण करते हैं। वसु अर्थात् आत्मा की शक्ति से सब मुख्यप्राण के आश्रय रहते हैं। वे उसी के बलों को सेवते हैं। वही उन पर बश करता है। उसी के ज्ञान और स्तम्भनबल से देह में रमण करते हैं।

कुतस्त्वमिन्द्र माहि॑नः सन्नेको॑ यासि सत्पते॑ किं तं इत्था॑ ।

सं पृ॑च्छस समरा॑णः शु॒भानै॒र्वो॒चेस्तनो॑ हरि॒वो यत्तं॑ अ॒स्मे ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू सबसे अधिक महान्, पूजनीय होकर एक अद्वितीय होकर किस बल पर गमन करता है, हे सज्जनों के पालक तेरा ऐसा बल क्योंकर है, हमसे मिला हुआ है तो भी तेरे सम्बन्ध में नाना विध प्रश्न किये जाते हैं। अतः हे उत्तम आकर्षक गुणों से युक्त, दु.पहारी साधनों से युक्त स्वामिन् ! तेरा जो भी हमारे लिये हितकारी वचन हो वह उत्तम २ उपायों से हमें उपदेश कर ।

प्र॒क्ष्वाणि॑ मे म॒तयः॑ शं सु॒तासुः॑ शु॒ष्म इ॒यति॑ प्रभृ॒तो मे॒ आद्रिः॑ ।

आशा॑सते॒ प्रति॑ ह॒र्यन्त्यु॒कथे॒मा हरी॑ वह॒तस्ता॒ नो रु॒च्छं ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! मेरा बलवान् तथा मेघ के समान ज्ञान-जलों की वर्षा करने वाला उपदेश शान्ति को प्राप्त करता है। और मनन-शील पुत्र और शिष्यगण मेरे धन अर्थात् वेदज्ञानों को, पिता के धनों के समान चाहते हैं, इन उत्तम वचनों को सदा ले लेना चाहते हैं। उनको ज्ञानवान् और कर्मनिष्ठ और गुरु और शिष्य हमें अच्छी प्रकार प्राप्त कराए ।

अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्यु॒जानाः॑ स्व॒क्षत्रे॑भिस्त॒न्वः शु॒ग्भमा॑नाः ।

महो॑भिरे॒ता उ॒प शु॒जम॑हे न्विन्द्र॑ स्व॒धाम॑नु हि नो॑ व॒भूथं॑ ॥५॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! क्योंकि तू हमें 'त्व' अर्थात् शरीर को धारण करने योग्य वृत्ति को प्रदान करता है इसलिये हम सैनिक लोग देवों को धमकाते और लुण्ठित करते हुए और अपने समीप के बड़े २ सैन्यों सहित तेरा साथ देते हुए इन समस्त पदार्थों को हम अपने उप-

योग में लेते हैं । हे परमेश्वर ! तू हमारे जीवात्मा में भी व्यापक है । हम अपने आत्मिक बलों से अपने आपको सुशोभित करते हुए, योगसमाधि का अभ्यास करते हुए, इन गतियुक्त प्राणों को वश में करते हैं ।

ध्रुवस्यार्वो मरुतः स्ववासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्यै ।

अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्त्रैः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के बल से जल नहीं उत्पन्न होता अपितु विद्युत् ही बलवान् होकर अपने प्रहारों से जल को नीचे गिराता है उसी प्रकार हे सैनिको ! राष्ट्र का धारण पोषण करने वाला आप लोगों का बल कहां विद्यमान रहता है ? क्या आप लोगो में रहता है या मुझ सेनापति में ? सुनो, मैं निश्चय से तीक्ष्णस्वभाव और बलवान् होकर शत्रुओं के प्रहारों में समस्त शत्रु को नमा लेता हूँ ।

भूरि चक्रथ्र्यं युज्यैभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्यैभिः ।

भूरीणि हि कृण्वामा शविष्ठेन्द्रु कृत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥

भा०—हे हममें सबसे अधिक बलवान् ! हे ऐश्वर्यवान् । हे जलो के चराने वाले सूर्य के समान तेजस्विन् । तू हमारे परस्पर सहयोग से होने वाले एक समान पुरुषोचित बलों से बहुत काम करता है । और हम बहुत से कार्य जो भी हम मलद् सैनिक चाहे वह तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से करने में समर्थ होते हैं ।

वर्धो वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविगो वभ्रुवान् ।

अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रवाहुः ॥ ८ ॥

भा०—वीर सैनिको ! मैं अपनी उग्रता से बलवान् होकर राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को नाश करने में समर्थ होता हूँ । और मैं शद्याद्य और यम्प्र कलादि को हाथ में धारण कर, मननशील प्रजाजन के हित के लिये, इन नाना प्रकार के नदी तड़ाग आदि को सुख से बहने वाले नहर आदि रूप में बनाता हूँ ।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावां अस्ति देवता विद्वानः ।

न जायमानो नशते न ज्ञातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ६ ॥

भा०—हे पूज्य गुणों से युक्त ! परम आत्मन् ! कोई भी पदार्थ या कार्य तेरी प्रेरणा के बिना नहीं है । तेरे जैसा ज्ञानवान् विद्वान् तथा दान-शील भी कोई और नहीं । हे सबसे अधिक बड़े हुए ! तू जिन अद्भुत कर्मों को करता है उनको न उत्पन्न होने वाला ही कोई कर सकता है, न उत्पन्न हुआ ही कोई कर सकता है ।

एकस्य जिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृण्वै मनीषा ।
अह ह्युग्रो मरुतो विद्वानो यानि च्यवमिन्द्र इदीशि पयाम् १०॥२५

भा०—एक मेरा ही व्यापक पराक्रम हो । मैं जिन कर्मों को मन की शक्ति से या स्वल्प की शक्ति से वश कर लेता हूँ उनको करने में समर्थ होता हूँ, हे वीरो ! मैं निध्रय से बलवान् और विद्वान् होकर जिनको भी प्राप्त कर लेता हूँ । मैं शत्रुहन्ता उन पर ही अपना प्रभुत्व करता हूँ । इसी प्रकार परमेश्वर का बल व्यापक है । अद्वितीय ही अपने व्यापक बल से सृष्टि के कार्य करता, वह ज्ञानवान्, बलवान्, जिन पदार्थों में व्यापक है उन सब पर वह वशी है ।

अमन्दन्मा मरुतु स्तोमो अथ यन्मे नर श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मध्यं सख्ये सखायस्तन्वै तनूभिः ॥११॥

भा०—हे नायको ! इस राष्ट्र में आप लोगों के जो स्तुति वचन मेरे लिये हर्षवारी होते हैं, और जो श्रवणयोग्य महान् ऐश्वर्य और प्रभुत्व आप लोग बना रहे हो वह सब आप लोगों को भी सुखकारी हो । हे मित्रवर्गो ! आप लोग अपने शरीरों से मेरे शरीर की रक्षा और दृढ़ि के लिये, मेरे ऐश्वर्य की दृढ़ि के लिये, सुखों के वर्धक उत्तम यज्ञशील दुष्ट निरा के लिये, जो यज्ञ करते हो उसका उत्तम फल आपको भी प्राप्त हो ।

एवेद्रेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव पंपो दधानाः ।

सञ्चदया मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूतम् ॥१२॥

भा०—हे प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार करने वाले प्रिय विद्वान् पुरुषो ! आप सब लोग मेरे प्रति अति स्नेहवान् होकर रहो ! और उत्तम गुरु उपदेश, वेद ज्ञान और उत्तम इच्छाओं और शक्तियों को धारण करते हुए चन्द्र या सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण वाले, तेजस्वी और शुद्ध चरित्रवान् होकर उत्तम रीति से अन्यो को उपदेश करके, और उत्तम रीति से तत्त्वों का आलोचन करके, अपने को आच्छादित करो, अपने को अन्न वस्त्रादि से सुभूषित करो और सुरक्षित रखो । और मेरे राष्ट्र की भी अवश्य रक्षा करो ।

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन् सखीरँच्छा सखायः ।

मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त पपां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! देखो यहां आप लोगों का कौन आदर सत्कार करता है । हे मित्रों अपने समान स्नेही को ही प्राप्त होवो । हे अद्भुत् २ नाना कर्म करने हारे विद्वानो ! आप लोग मनन योग्य को प्राप्त कराते हुए मेरे इन समस्त ऐश्वर्यों और सत्यज्ञानों के शेष न रखकर, पूर्ण रीति से प्राप्त करने वाले और ज्ञाता होवो ।

आ यहुवस्याहुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।

ओ पु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥

भा०—सेवा शुश्रूषा करने योग्य पुरुष से जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को शिल्पसाधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है, उसी प्रकार माननीय पुरुष की बुद्धि भी हमें योग्य बनावे । हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वान् पुरुष के समीप उसके समक्ष

जाकर उसका सत्संग करो । और वह विद्वान् उपदेश आप लोगों को, नाना प्रकार के वेदज्ञान आदरपूर्वक प्रदान करे ।

एव वः स्तामो मरुत इयं गीमिन्द्रायस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेधं वृजत जीरदानुम् ॥१५॥२६॥३॥

भा०—हे मनुष्यो ! यह आप लोगों के लिये ही उत्तम वेदमन्त्र तन्द्व है । सबको हर्षित करने वाले माननीय तथा संसार के कारीगर परमात्मा की यह वेदवाणी है । आप लोग उसके समीप इच्छापूर्वक आवें । हम लोग उत्तम ज्ञान, दृढ़ इच्छाशक्ति, पाप निवारक और शत्रु निवारक बल, और जीवन या जयदायी सामर्थ्य को प्राप्त करें । इति षड्विंशो बर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[१६६]

मेधावरणोऽगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, जगती । ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती । ४ विराट् जगती । ७, ९, १० भुरिक त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् १५ पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सप्तम् ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वे महित्वं वृषभस्य केतवे ।

प्रेधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥

भा०—हे विद्या के अनिलार्थी विद्यार्थी जनो ! मेघ के समान निष्पक्ष-पात लेकर ज्ञानवर्षण करने वाले आचार्य के ज्ञान को प्राप्त करने, और बलपूर्वक उसके अधीन रहकर उत्तम दिजत्व प्राप्त कर विद्या में जन्म लेने के लिये जो आप लोगों का नाता पिता से प्राप्त या पूर्व जन्मों से प्राप्त महान् सामर्थ्य है उसका उपदेश करते हैं । नाना प्रकार की वेदव-

नियों को करने वाले शिष्यो ! जिस प्रकार मार्ग बनाने के लिये वृक्षादि की लकड़ियों को काट दिया जाता है और जिस प्रकार रा.य शासन के जमाने के लिये युद्ध या शस्त्रप्रहारों से शत्रुओं के सैन्यों को काट गिराया जाता है उसी प्रकार आप लोग शक्तिमान् होकर संयम के पालन के लिये बलों का सम्पादन करो ।

नित्यं न सूनुं मधु विभ्रतु उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु
घृष्वयः । नक्षन्ति रुद्रा अवंसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो
हविष्कृतम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार गृहस्थ लोग इन्द्रियोपभोग्य विषयों में रमण करते हुए, मधुर अन्नादि पदार्थ धारण करते हुए, अपने औरस पुत्र को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार सहनशील तपस्वीजन अपने पुत्र के समान ही देह को प्रेरणा देने वाले नित्य आत्मा को मधुर आनन्दमय रूप से धारण करते हुए, उसी में रमण करते हुए, उपासना द्वारा उसको प्राप्त हो अतिप्रसन्न हुआ करते हैं । वे सत्य ज्ञान के उपदेष्टा नमस्कार करने वाले विनत शिष्य को अपने ज्ञान से युक्त करते हैं । वे 'स्व' अर्थात् अपने आत्मा के बल से बलवान् होकर दानयोग्य अन्नादि पदार्थों के प्रदान करने वाले को कभी नष्ट नहीं करते ।

यस्मा ऊमासा अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददा-
शुषं । उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरु रजांसि परसा-
मयोभुवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण हितकारी मित्रों के समान जल से सबको सुखजनक होकर इस जीवगण के सुख के लिये बहुत लोकों को जल से सींचते हैं, और वे सबके रक्षक और अमृत, प्राणमय होकर हवि द्वारा यज्ञ करने वाले को धन, गौ आदि समृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार वीर सैनिक हितकारी मित्रों के समान, अपने २ पदों पर स्थित

होकर अन्न और पुष्टिकारक पदार्थों से सबको सुख देने वाले जिस अन्न-दाता के वृद्धार्थ धनो की समृद्धि को दें वे राष्ट्ररक्षक अमर होकर उसी के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, बहुत से लोकों को बढ़ाते हैं ।

आ य रजोसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासुः स्वयंतासो
अधजन् । भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः
प्रयंतास्वृष्टिपु ॥ ४ ॥

भा०—जो वीर पुरुष अपनी बलशालिनी सेनाओं से समस्त लोकों की धूलियों ओर लोकों को वायु गणों के समान सब तरफ से व्याप लेते हैं । हे वीर पुरुषो ! वे आप लोगों के तीव्र वेग से जाने वाले अपने आप संयत, उत्तम रीति से बंधे हुए, या जितेन्द्रिय, अध्वगण और सवार लोग वेग से जाते हैं, उस समय सब प्राणी गण भयभीत होते हैं, ओर सब महल या उनमें रहने वाले स्त्री आदि जन कापते हैं । हे वीरो ! त्व भी खूब उत्तम नियमों में बंधे, हथियारों के बीच सुसज्जित होकर आप लोगों का प्रयाण करना बड़ा अद्भुत, विस्मयकारी होता है ।

यस्त्रेपयांमा नृदयन्तु पर्वतान्द्रिवा वा पृष्ठ नर्या श्रुच्यवुः ।

विभ्यो वो अजान्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत
ओषधिः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी तीव्र वेग से जाने वाले वायु ग . पर्वतों ओर मेघों को गुजाते हैं, आकाश या अन्तरिक्ष पृष्ठ को भी व्याप लेते हैं, जिस प्रकार वायुओं से सब बड़े वृक्ष उनके वेग के भय से कापते हैं, ओर ओषधिः रथ पर चढ़ी स्त्री के समान खूब वेग से उल्टा सा दौड़ती है, उसी प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी वीर और सज्जन पुरुषों के रथ आदि जो कि विष्णु के द्वारा चलते हैं वे पर्वतों की दोगी बराबरी ओर पृथ्वा पर पर्वतों को गुजावें । वे नृनि और अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर जा बैठें । हे वीर पुरुषो ! आपके उल्लाड़ फैलने वाले बल के

आधार पर सब सैन्य दल के रक्षक शत्रुजन तथा ऐश्वर्यपालक जन भी भय खाते हैं। और दाहकारी अस्त्रों के धारण करने वाली सेना भी रथ को चाहने वाली नव वधू के समान भीरु होकर मानो अपने नायक को चाहती हुई खूब कांप जाती वा आगे बढ़ती है। इति प्रथमो वर्गः ॥

युयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।

यत्रा नो विद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पृथ्वः सुधितेव ब्रह्मणा ॥६॥

भा०—हे विद्वान् वीर पुरुषो ! प्रचण्ड, तीव्र गुण-कर्म स्वभाव वाले आप लोग उत्तम ज्ञान से अपने जन संघों, ग्रामों और प्राणसमूहों को नष्ट न होने देते हुए, उनकी रक्षा करते हुए, हमारी शुभ बुद्धि, ज्ञान और बल को सदा पूर्ण करो। जहां तुम वीरों की हिसाकरी दातो वाली चमचमाती विद्युत्शक्ति भूमि और आकाश को फाड़ देती है और खूब लगी हुई या चलाई हुई तेज धार की शस्त्र धारा के समान विद्युत् भी में अश्वादि पशुओं और अधीन होकर लड़ने वाले सैनिकों का नाश कर सग्राम डालती है।

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।

अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य प्रीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौस्या ॥७॥

भा०—वीर पुरुष युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच में दृढ़ता आदि गुणों के देने वाले, कभी धन का नाश न करने वाले, सदा समृद्ध, शत्रुओं को खूब काट गिरा देने वाले और अति दानशील, सग्रामों और यज्ञों में उत्तम प्रशंसित होते हैं, वे आनन्दप्रद राष्ट्र की रक्षा के लिये सूर्य समान तेजस्वी पुरुष की अर्चना करते हैं, उसको प्रमुख बना कर उसके अधीन रहते हैं। इसी प्रकार विद्वान् ज्ञान मार्गों में अति आनन्दमय आत्मरस का पान करने के लिये तेजोमय प्रभु की उपासना करते हैं। वे ही शूरवीर परम शक्तिमान् प्रभु के श्रेष्ठ २ कर्मों को भली प्रकार जानते हैं। शतभुजिभिस्तमभिहुतेरघात्पूर्वी रक्षता मरुतो यमावत ।

जन्तं यमुग्रास्तवसो विरपिशनः पाथना शंसत्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! सदा बलशाली, नाना वाणियो, ज्ञानोपदेशों व विद्याओं के ज्ञाता, बलवान् होकर जिस पुरुष को बचाते और गर्व-भरी स्तुति या हिंसा होने से पुत्र समान पोषणादि कर्मों से रक्षा करते हो, उसको आप लोग कुटिल मूर्छाकारी प्राणघातक पाप से सैकड़ों को पालने वाले, पुरों या नगरों से सुरक्षित रखो ।

विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविपाण्याहिता ।
ग्रंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षौ वश्चक्रा समया वि वावृते ॥६॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! तुम्हारे वेग से जाने वाले रथों में सब प्रकार के युद्धकारीपदार्थ और परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली मीना, और प्रबल हवियार रथे होने चाहिये । इसी प्रकार तुम्हारे कन्धों पर भी और उत्तम २ मागों में गाने योग्य फल आदि उत्तम पदार्थ हों, और तुम्हारे रथ का धुरा दोनों चक्रों के निकट ही विशेष रूप से घूमे ।

भूरीणि भद्रा नयेषु बाहुषु वक्षसु रुक्मा रभसासा अज्जयः ।
ग्रंसेष्वेताः पृथिविषु क्षुरा अपि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥१०॥

भा०—जो वीर मनुष्य वेग से काम करने वाले होकर मनुष्यों के हितकारी, शत्रु-बाधक बाहुओं पर बहुत से कत्याणकारी कर्तव्य धारण करते हैं, छातियों पर सुवर्ण के आभूषण पदक को जो कि उनके किये उत्तम कार्यों और गुणों को प्रकट करते हैं, कन्धों पर शुभ्रवर्ण के वस्त्र, चार वाणियों में उत्तम शब्द, और शत्रुओं में तीक्ष्ण धारों को, पक्षों को पक्षियों के समान, विविध प्रकार से धारण करें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

मृगान्तो भूजा विभवो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तुभिः ।
मन्दा सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्रता इन्द्रे मृतः
पारेष्टवः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के आभय वायुगण होते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा के जवान सैनिक वीर, और अन्यकारनाशक विद्वान्

आचार्य के अधीन चतुर विद्यार्थी जन रहें । वे महान् सामर्थ्य से गुणों में महान् अर्थात् आदरयोग्य हों, वे कार्य करने में समर्थ, नाना ऐश्वर्यों से युक्त, दिव्य पदार्थ सूर्य चन्द्र आदि लोक जिस प्रकार नक्षत्रगणों सहित दूर से दीखने वाले होते हैं उसी प्रकार ये भी ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर विस्तृत गुणों और अनुभवों सहित दूरदर्शी हों । वे स्वयं सब उत्तम पदार्थों की कामना करने वाले, आल्हादकारी और स्तुति युक्त, उत्तम वाणी वाले, मुखों से उत्तम वचन बोलनेहारे, परस्पर अच्छी प्रकार मिले हुए, स्नेही, सबको धारण करने और सब विद्याओं का अध्ययन करने वाले हों ।

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्च न त्यजसा विहणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

भा०—यह वायुओं का ही महान् सामर्थ्य है, और उनका ही लम्बा चौड़ा दान सामर्थ्य है जो विद्युत् भी जल के साथ विविध कुटिल मार्ग से चमका करता है । उसी प्रकार हे उत्तम कुलो में उत्पन्न और गुणों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का वह नाना प्रकार का महान् सामर्थ्य है, और आप लोगों का ही वह लम्बा चौड़ा विद्यादान है, आप लोगों का व्रत आचरण भी सूर्य के व्रत के समान ही है । आप लोग जिस उत्तम पुण्यकारी पुरुष के उपकार के लिये विद्या आदि दान करते हो, उसके उपकार के लिये ऐश्वर्यवान् पुरुष भी अपने दान देने योग्य धन से प्रत्यक्ष परोक्ष विविध प्रकारों से सहायकारी होते हैं ।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरु यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरोऽंसनैरा चिकिचिरे ॥१३॥

भा०—वायुगण की यह बन्धुता है कि वे गत वर्ष या गत काल के समान शान्तिदायक मेघादि को पुनः लाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं । इस प्रकार मनुष्यमात्र को सुख और अन्न आदि प्राप्त कराकर अपने वर्षणादि कर्मों सहित ही जाने जाते हैं । उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो !

आप लोगों का वह उत्तम बन्धुभाव है कि आप लोग जीर्णजीवी होकर अतीत काल में भी जो उपदेश करने योग्य उत्तम वेदवचन और ज्ञान पहता है उसकी रक्षा किया करते हो, और इसी उत्तम धारण शक्ति, बुद्धि और अध्ययन आदि कर्म से मनुष्यमात्र के हित के लिये श्रवण करने योग्य ज्ञान की रक्षा करके, स्वयं नेता बनकर उत्तम आचारों और कर्मों के साथ ज्ञान का सम्पादन करते और कराते रहते हो । ऐसा ही किया करो ।

येन दीर्घं महतः शूशवांम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।

प्रा यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यशेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४॥

भा०—हे वेगवान्, वायुओं के समान सर्वोपकारक विद्वान् और वल्लभान् पुरुषो ! आप लोगों के जिस बड़े भारी सामर्थ्य और ज्ञान से हम बहुत लम्बा जीवन बढ़ा लेते हैं, और आप के जिस विघ्ननिवारक बल पर निर्भर करके लोग नाना यज्ञ करते हैं, मैं उन यज्ञों, दान, सत्संग, उपासना आदि पुण्यकर्मों के साथ २ आप के उसी बल सामर्थ्य से अपने जन्मीष्ट, मनचाही मनोकामना को प्राप्त करूँ ।

युप वः स्तोमो मरुत इय गीर्मान्द्वार्यस्य सान्यस्य कारो. ।

यथा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सू० १६५ का १५ वां मन्त्र ।
इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६७]

अगाधं अपि ॥ २ शो नरय देवता जन्द — १, २, ५, पुरिक् पञ्क्ति । ७, ८
 १० निचुक् पञ्क्ति । ११ पञ्क्तिः । २, ३, ६, = निचुक्
 निचुक् ॥ १५ दशवं वृत्तम् ॥

अहं त इन्द्रोत्थो नः सहस्रभिषो हरिवो गुर्ततमाः ।

अहस्य राजो मादृष्यै सहासिष्य उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् । तेरी हजारों रक्षा के साधन, उत्तम उद्यमी सहस्रों सेनाएं, और हजारों ऐश्वर्य, और हजारों ऐश्वर्य प्रदान करने वाले ज्ञान, और नाना ऐश्वर्य और बल और अन्न हमें हर्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिये प्राप्त हों ।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्विदैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

भा०—वे वैश्य गण और विद्वान् जन ! जो विद्या और वयस् में वृद्ध, बड़ी भारी ज्ञानज्योतियों से प्रकाशमान, विद्वानों के सत्संग से उत्तम शुभ बुद्धिवाले हैं, वे हमें सदा ज्ञानों और रक्षा साधनों सहित प्राप्त होते रहे । और वे जो उत्कृष्ट कोटि के आदमी समुद्र के परले पार भी धन ऐश्वर्य की कामना से व्यापार करते हैं और ऐश्वर्य उपार्जन करते हैं वे भी हमें प्राप्त हों ।

मिम्यन्न येषु सुधिता घृताक्षी हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋषिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सुभाचती विद्वथ्यैव सं वाक् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं में जल प्रकट होते वाली, उत्तम रूप से विद्यमान, सुवर्ण के समान चमकने वाली मेघमाला लचकती तलवार के समान चमकती है, और जिन वायुओं में समान कान्तिवाली मनुष्य की स्त्री के समान अन्तरिक्षरूप गुफा में विचरने वाली शब्द करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् आश्रित है, उसी प्रकार जिन विद्वानों में, प्रकाश-युक्त और सु-अभ्यस्त, तथा हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों के ज्ञान-सामर्थ्य को बढ़ाने वाली, सबको प्राप्त होकर रमण कराने वाली, पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली, मनुष्य की सभा में एक साथ बैठने वाली स्त्री के समान धर्मसभा आदि सभाओं को धारण करने वाली, हृदय में या बुद्धि के आश्रय होकर विचारपूर्वक मुख से निकलने वाली, ज्ञान देने में श्रेष्ठ-वाणी अच्छी प्रकार निवास करती है वे विद्वान् जन हमारे आदर के पात्र हों ।

परां शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।

न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुपन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार संयोग विभाग करने वाली साधारण गति से बहने वाले और भासने वाले वायु गण, दूर २ तक के देशों को जलों से सौंच देने हैं, शब्द करने वाले मेघ और विद्युत् दोनों का भी गर्जन दूर नहीं हटा देने प्रत्युत स्वयं भदकर वेग से चलकर जल का प्रदान करने वाले होकर, सब प्राणियों के प्रति मित्रभाव के लिये, सबके बढ़ाने तथा तथा पुष्ट करने वाले जल अन्न या सूर्य का सेवन करते कराते हैं, उसी प्रकार विद्वान् लोग अपने से कम अवस्था वाली, अपने समान बल वीर्य धारण करने वाली स्त्री के साथ संगत होने वाले, अलफारों और उत्तम उज्ज्वल बखों से शोभायमान होकर उत्तम रीति से स्त्री क्षेत्र में बीज वपन करें । रोने के स्वभाव वाली दुःखिता स्त्री को या दीन दुःखिया को भी वे अपने से दूर न करें । बलवान् शत्रुओं के लिये भयकर होकर भी दिव्य गुणों से युक्त पुर कामनाशील प्रेमयुक्त होकर अपने कुल को बढ़ाने वाला स्त्री को ही मित्रभाव की वृद्धि के लिये उससे और अधिक प्रेम करें ।

जोषद्यदीमसुर्या सचध्ये विषितस्तुका रोदसी नमणाः ।

आ सूर्येव विधतो रथं गात्रेप्रप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की मध्याह्न काल की दीप्ति जिस प्रकार तेज प्रकाश देने वाली होकर विविध लोकों को धारण करने वाले सूर्य के रमणीय बिम्ब को प्राप्त होती है, अवयवा वायु की तीव्र गति जिस प्रकार विशेष शिल्प रचने वाले पुरुष के वेगवान् रथ को प्राप्त होती है, उसी प्रकार असुर अर्थात् प्राणप्रिय पुरुष की हितकारिणी, विविध प्रकार से अपने केशों को बाधने वाली, विधुक्त होते हुए माता पिता सम्बन्धियों को देखकर आँखों में जल भरवाने वाली, सब मनुष्यों के लिये उचित स्नेहवाली, दीप्तियुक्त

मुख वाली, कान्तिमती, सुन्दर स्त्री जब अपने अभिलषित पुरुष को स्वीकार करे, तब वह सूर्य की कान्ति के समान और जल की धारा के समान विवाह विधि से धारण करने वाले वर के प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

आस्थापयन्त युवार्ति युवानः शुभे निर्मिष्ठां विदथेषु पञ्चाम् ।
अर्को यद्वो मरुतो ऽविष्मान्गार्यद्वाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जलों का ग्रहण करने वाला, ओषधियों को उत्पन्न करने द्वारा, क्रिया करता हुआ वायुओं की 'गाथा' अर्थात् ध्वनि करने वाली गर्जना को गाता है, तब वे वायुगण संघातयोग्य जलों में व्यापने वाली, सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली अतिबलवती विद्युत् को जलवर्षण और दीप्ति के लिये अन्तरिक्ष में प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का आदरणीय, उत्तम ज्ञान और अन्न सम्पदा से युक्त, ऐश्वर्य को प्राप्त करके वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करने वाला शिष्य, जब गाथा अर्थात् वेदवाणी का अध्ययन कर लेता है, या अग्नि की परिक्रमा करता हुआ गाथा अर्थात् वेद मन्त्र का पाठ करता है, तब वर के सखाजन धर्मानुकूल व्यवहारों में अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली युवती कन्या को, शुभ कार्य के निमित्त सब प्रकार से दृढतया स्थापित करें। उसे किसी प्रकार का क्षोभ न होने दें।

प्र तं विवक्षिम् वक्म्यो य एषा मरुता महिमा सत्यो अस्ति ।

सच्चा यद्वो वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥

भा०—जो इन विद्वान् पुरुषों का सत्य, वर्णन करने योग्य, महान् सामर्थ्य है, मैं उसका उपदेश करता हूँ। वह यह कि जो उनमें से वीर्य-सेवन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ का अभिलाषी, पुत्रैषणावान्, अहंभाव से युक्त, आत्मवान्, जितेन्द्रिय है वह ही धर्म

आर लोकयात्रा में स्थिरचित्त, सुख सौभाग्य से युक्त, पुत्र जनन में समर्थ दारा को विवाहे ।

पान्ति मित्रावरुणावब्रथाच्चर्यत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।

उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ई मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मित्र अर्थात् सबका स्नेही या प्रजा को मरण से बचाने वाला, तथा वरुण अर्थात् सब दुष्टों का वारक और श्रेष्ठ जन और शत्रुओं को सयमन करने वाला न्यायकारी पुरुष, निन्दनीय पापाचरण से रक्षा करें । और तुरे पापाचारी लोगों का विनाश करें । इस प्रकार न करने से कभी न डिगने वाले स्थिर राष्ट्र भी उत्तम पद से गिर जाते हैं । इस प्रकार दानयोग्य कर आदि सम्राट् पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला पुरुष सब प्रकार से बढ़ता और इस प्रजाजन को भी बढ़ाता है ।

तुही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छ्रवसो अन्तमापुः ।

ते पृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेपो धृषता परिष्टुः ॥ ९ ॥

भा०—हे शत्रुओं का नाश करने वाले बलवान् पुरुषो ! हम प्रजा-जनों में से आप लोगों के बल और ज्ञान का दूर और पास पड़ी भी बदाचित् कोई पार न पा सके । आप सब लोग शत्रु का पराजय करने वाले बल से सदा बढ़ते हुए, अपने धर्मक बल द्वारा हर्ष करने वाले अधा-मिक शत्रुओं को, जल को तटों के समान, चारों ओर से घेर कर रोक लो । प्रथमयेन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।

वयं पुरा महि च नो अनुधून् तन्न श्रुभुक्ता नरा मनुष्यात् ॥ १० ॥

भा०—हम लोग परमेश्वर वा राजा के अति प्रिय होकर ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की आज्ञा और जाने वाले दिनों में आगे भी अन्य मनुष्यों के सम्पन्न में स्तुति करें । उसके गुणों का वर्णन करें । हम पहले भी और अब सब दिनों उसके गुण गान करें । वह हमें बहुत बल सामर्थ्य प्रदान

करे । और वह सब नायकों में से सबसे बड़ा होकर हमारे अनुकूल सुखदाता हो ।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू० १६५।१५०॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१६८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, मुरिक् त्रिष्टुप् । ८, त्रिष्टुप् । ९, निचृत् त्रिष्टुप् । १० पक्ति ॥

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवया उ दधिध्वे ।

आ वोऽर्वाचःसुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मिलकर करने योग्य उपासना, युद्ध, यज्ञ, सत्संग आदि प्रत्येक कार्य में आप लोगों की शीघ्र गति भी एक समान वेग से हुआ करे । उपासना में एक साथ मन्त्रादि कहें, युद्ध में एक चाल से कदम उठावें, सत्संगों में समान भाव से वर्तें । आप लोगों में से जो दिव्य गुणों वाले और विद्वानों के उपासक शिष्य आदि हैं, और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त वैज्ञानिक लोग हैं, वे प्रत्येक काम और प्रत्येक ज्ञान को धारण करें, आप लोगों में से नव शिक्षितों को, आकाश और पृथिवी के बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, और बड़े भारी रक्षा कार्य के लिये, दुःखदायी कारणों को दूर कर देने वाले साधनों सहित, सब प्रकार से वरण कछें और उनको कार्य में नियुक्त कछें ।

यत्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इष्वरभिजायन्त धृतयः ।

सहस्रियोसो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष निरन्तर देश देशान्तर में भ्रमण करने हारें, बल-ऐश्वर्य और आत्मसामर्थ्य से । संसार में प्रकट हैं, और स्वयं अपने

बल से बलवान्, शत्रुओं को ओर बाधक मोह आदि अन्तः शत्रुओं को कपाकर दूर करने हारे, परम सुखमय सूर्य के समान प्रकाशमय, सर्व-प्रेरक परमेश्वर को साक्षात् करते हैं, वे सूर्या में सहस्रों जलतरंगों के समान स्वयं भी ज्ञानों और कर्मों का उपदेश करने हारे, तथा गौओं के समान ज्ञानदुग्ध से सबको पालने वाले, और अभिवादन आदर और वामना करने योग्य, तेचन करने वाले मेंवों के समान मुख से ज्ञान का वर्णन करने हारे हैं ।

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु प्रीतासो दुवसो नासत ।
पेपामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु स्वादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३॥

भा०—सोम आदि ओपधिया जिस प्रकार एक २ रेशे में तृप्त अर्थात् रस में पूर्ण होती है उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष सौम्य गुणों में युक्त शिष्यों वाले, तथा पुत्री और अपने औरस पुत्रों वाले हैं, वे हृदयों में पूर्ण तृप्त होकर सबको के समान सदा सेवा करने को तैयार होकर विराजें । उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करने वाली, या प्रेमालिगन करने वाली स्त्री जिस प्रकार कन्धों पर हाथ रखकर पति का आलम्बन और अलिगन करती है उसी प्रकार इन वीर पुरुषों के कन्धों पर बलवती अस्त्रादि शक्ति आश्रय पाता है, और हाथों में अपना खाद्य भोजन और किया कौशल या कर्तव्य जपवा हाथों में हस्तप्राण और काटने वाली तलवार सदा तैयार रहता है ।

अथ स्वपुंजा द्विव आ पृथा ययुरमर्त्युः कशया चोदत
भना । ग्रेश्वस्तुविज्ञाता अचुच्यबुर्द्वहानि चिन्मृदतो
आजंरुय ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण अपने ही बल से प्रेरित होकर आकाश में उड़ना चल जाते जाते हैं, वार अपनी गति से आप ही सबको प्रेरित करते हैं, और वे जिस प्रकार रेणुरहित और बलशाली होकर बलवते

सूर्य से रहिमयां पाकर बड़े दृढ़ वनों पर्वतों को भी कंपा देते हैं, उसी प्रकार ये वीर पुरुष और विद्वान् जन धनैश्वर्य के द्वारा नियुक्त होकर, तेजस्वी पुरुष के अधीन अनायास ही जाते आते हैं। वे साधारण मनुष्यों से भिन्न रहकर स्वयं शासनव्यवस्था से प्रजा को संचालित करें। वे हिंसादि दोषों से रहित, बल द्वारा प्रसिद्ध, तीव्र गतिवान्, और चमचमाते शस्त्रों से सुसज्जित होकर शत्रु के दृढ़ सैन्यों और दुर्गों को भी कपा देते और स्थायी ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करते हैं।

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति तमना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुषैषा अह्न्योऽनैतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—दुधारा तलवार के समान विजली को धारण करने वाले जैसे वायुगण होते हैं, वे वृष्टियों अन्नो को प्राप्त कराने के लिये आकाश से जल बरसाते हैं, प्रश्न यह है कि उनके बीच में कौन सा बल उसको चला रहा है ? उत्तर—जैसे उत्तम अश्व बिना ताड़ना के ही मार्ग में जाता है उसी प्रकार शुक्ल कान्ति से युक्त सूर्य जो दिन को करनेहारा है वही सब वायुगण को चला रहा है। ठीक इसी प्रकार है विद्वान् और वीर पुरुषों ! विद्युत् के समान रण में दुधार तलवार और आत्मा में ज्ञान दीप्ति को धारण करने वाले आप लोगों के बीच वह कौन है जो जिह्वा की गति से जिस प्रकार दोनों जवाड़े चलते हैं उसी प्रकार शत्रु को हनन करने वाली दायें बायें या स्वपक्ष परपक्ष की दोनों सेना को अपनी वाणी द्वारा ही सञ्चालित करता है। और आप लोग अन्नो की प्राप्ति के लिये जल बरसाने वाले भेदों के समान वाणों और सेनाओं के सञ्चालन के कार्य में धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने वाले, बहुत से ऐश्वर्यों के लिये उत्कृष्ट इच्छा वाले, अश्व के समान बिना ताड़ना के ही मार्ग पर जाने वाले हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं कवावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।

यच्छयावयथ विधुरेव संहितं द्यद्विणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥

भा०—इस लोक का सबसे उत्कृष्ट बड़ा भारी कारण या आश्रय कहा है ? 'अबर' अर्थात् उत्पन्न कार्य जगत् किस पर आश्रित है ? हे विद्वान् लोग ! जिस परम आश्रय पर आप पहुँचते हैं उसका उपदेश करो । देवगण जिसके बल से गति करते हैं ? जिस प्रकार शिथिल जलों को वायु गिरा देते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! वह कौन सा बल है जिससे प्रेरित होकर व्यथित दुःखितों को आप प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार वायु गण विद्युत् या मेघ से दीप्तिमान् जलमय मेघ को लाते और बरसाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी सर्वत्र समानभाव से व्यापक, सबके लिये हितकारी, सूर्य के समान दीप्तिमान्, सब शक्तियों के सागर की मेघ के समान आनन्दवर्षी धर्ममेघ, या आत्मा सहित विविध उपायों से प्राप्त करते हो । वह कौन सा है ? उत्तर—वह परमेश्वर है ।

सातिर्न वोऽमवती स्वंती त्वेपा विपाका मरुतः पिपिप्रती ।

भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्या अस्यैव जञ्जती ॥५॥

भा०—वायुओं का जलादि का विभाग रोगकारी न होकर सुख देने वाला है । वह वायुओं का विभाग वेगवान्, विविध फलों को पकाने वाला, मेघ के जलों को छिन्न भिन्न कर पीसने वाला होता है । वायु गणों का दान सुखजनक, बहुवेगयुक्त, मेघ लाने वाला, अर्थात् सबको दधाने वाला होता है । इसी प्रकार हे विद्वान् जनो ! वीर पुरुष ! आप लोगों का किया हुआ विभाग भी अन्यो को कुछ देने वाला न हो, प्रत्युत सुख देने वाला हो । आप लोगों की दीप्ति नाना प्रकार के उत्तम परिणामों का परिपक्व करने वाला हो । और वह आप लोगों का विविध भागों में विभक्त होता भी शत्रु या प्रत्येक अंग पीस उलटने वाला हो । और आप लोग जो दिया दान पाटन करने वाले यजमान की दी दक्षिणा के समान कार्यक्षमता को दाने वाला हो । और वह बड़े २ लोगों ने भी वेग या शक्ति पैदा कर देने वाला, प्राणों की शक्ति के समान या मेघों के दीप्ति

उत्पन्न विद्युत् के समान या बलवान् पुरुषों की सेना के समान सबको अपने अधीन कर देने वाला और कल्याणकारी सुखदायक हो ।

प्रति प्रोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।

अथ समयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी वृतं मरुतः पुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

भा०—जब वायुगण मेघ से उत्पन्न गर्जना को उत्पन्न करते हैं तब जलधाराएं या वेगवान् जलधारा बहाने वाले मेघ विद्युत् के आघातो से बराबर विक्षुब्ध होते हैं, और जब वायुगण सब तरफ वर्षा करते हैं तब मानो पृथिवी पर बिजलियां मानो नीचे को मुंह किये ईपद् हास करती, मुस्कराती हैं । इसी प्रकार विद्वान् लोग जब भी मेघ के समान ज्ञान धाराओं के देने वाले पद पर स्थित होकर परमपवित्र करने वाले ईश्वरोपासना तथा पवित्र कार्यों के लिये वेदवाणी का उच्चारण करते हैं, तब वे बहुत नदियों या बरसते मेघों या गर्जते समुद्रों के समान 'स्तोभ' नामक सामगानोपयोगी ध्वनि को उत्पन्न करते हैं । और जब ऋत्विगूजन पृथिवी पर इस अग्नि को घृत धारा स्नान कराते हैं तब विशेष कान्तियुक्त अग्निज्वालाएं प्रत्यक्ष रूप से मुस्कराती हैं, चमक उठती हैं ।

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्रमादित्स्वधामिपिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य बड़े भारी जीवलोक के आनन्दपूर्वक रमण करने के लिये अपना प्रकाश, तीक्ष्ण ताप उत्पन्न करता, और वेग से जाने वाले वायुगणों के समूह को भी प्रेरित करता है, और वे तीव्र वेग से जाने वाले वायुगण जलमय मेघ को उत्पन्न करते हैं, उसके अनन्तर लोग इच्छानुकूल जल और खेतों में अन्न को ही सब ओर बरसा और उत्पन्न हुआ देखते हैं, उसी प्रकार आदित्य के समान तेजस्वी ऐश्वर्यवान् प्रतापी राजा या सेनापति बड़े भारी संग्राम के विजय के लिये तेजस्वी तथा आक्रमण करने में कुशल शत्रुमारक वीरपुरुषों के सैन्य को उत्पन्न

करं और आज्ञा से चलावे । जब वे समवाय या दस्ते या दल बना कर चलने हारे और जन असामर्थ्य, थकान प्रकट करते हैं तब वे अपनी रक्षा और अभिलषित वेतन और अन्न को भी प्राप्त करते हैं ।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्द्रायस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वया विद्यामेव वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥७॥

भा०—व्याख्या देखो ऋ० १ । १६५ । १५ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[१६६]

गस्त्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ३ भुरिक पक्तिः । २ पक्ति ।

५, ६ स्वराट् पक्ति । ४ वृषायुष्णिक । ७, ८ निचवृ त्रिष्टुप् ॥

महश्चिरमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरुता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्तुस्मा वनुष्य तव हि प्रेष्टा ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! दुष्टों के नाशक । सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू भी महान् ही ह । क्योंकि तू ही इन सब बड़े २ लोगों को अपने से उत्पन्न पुत्रों के समान ही अपना रहा है, उनकी रक्षा करने हारा ह । हे पायुओं के प्रवर्तक सूर्य के समान और शिष्यों के प्रवर्तक ज्ञानवान् गुरु के समान हम सब प्राणियों के पिता के समान सबके उत्पादक ! वह तू सर्व पूज्य सब कुछ जानने हारा है । तू तेरे जितने अति प्रिय सुख ह उन्हें हमें प्रदान कर ।

अयुजन्त इन्द्र विश्वकुण्ठिर्विद्वानासो निष्पिधो मथ्येन्वा ।

भरतां पृथ्विर्हासमाना स्मर्माहस्य प्रधनस्य सातो ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् । राजन् ! विद्वन् । मनुष्यों के बीच ने विद्वान् लोग पुरे जागों और पुरे जाचरणों का निषेध करते हुए तेरी समस्त मनुष्य प्रजाजा को उत्तम धर्म से प्रेरित करें । क्योंकि सुखों के बढ़ाने-पाँके उत्तम धर्म के सर्वत्र विज्ञान कर देने न विद्वान् पुरो की सर्व-

अभ्युक् सा त इन्द्र ऋष्टिस्मे सनेभ्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।

अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३॥

पा०—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तेरी ही वह अवर्णनीय प्रेरणा और शक्ति सर्वश्रेष्ठ और सर्वत्र व्यापक है, जो कि विद्वान्गण अतिपुरातन सनातन से चले आये अनादिसिद्ध ज्ञान का हमें उपदेश करते हैं । काष्ठ में लगा अग्नि जिस प्रकार लगकर खूब चमकता है और आकाश में जिस प्रकार सूर्य चमका करता है उसी प्रकार व्यापक आत्मा में ज्ञानवान् पुरुष भी शुद्ध ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित हो । जल जिस प्रकार द्वीप को घेर लेते हैं और उसको अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार प्राणगण भीतरी और बाहर दोनों ओर से प्राणों को धारण करने वाले देह को बल और अन्न प्रदान करते और पुष्ट करते हैं ।

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।

स्तुतश्च यास्ते चकनन्त व्रायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् । सूर्य के समान अन्धकारों और शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस प्रकार अति बल प्रदान करने वाली दक्षिणा के द्वारा दान करने योग्य द्रव्य राशि को यजमान पुरोहित के हाथ सौंपता है उसी प्रकार तू भी सबसे अधिक बलशालिनी 'दक्षिणा' अर्थात् आत्मा को कार्य करने में समर्थ बलवती शक्ति या सेना के द्वारा हम प्रजाजनों को सब ऐश्वर्य देने वाली राज्यलक्ष्मी प्रदान कर । हे राजन् ! जो स्तुतिशील प्रजागण वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् और ज्ञानवान् तुझको चाहती हैं, क्षीर के देने वाले स्तन को जिस प्रकार अन्नों के द्वारा अधिक पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार वे प्रजाएँ भी अपने बलों और ऐश्वर्यों से मधुर और शत्रु को कंपाने वाले गर्जनशील तुझ बीर को खूब समृद्ध करें ।

त्वे रायं इन्द्र त्रिशतमाः प्रणेतारः कस्य चिद्वृत्तायोः ।

ते पु र्णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातुयन्तीव देवाः ॥५॥८॥

भा०—जिस प्रकार दानयोग्य मेघ के जल, जल के इच्छुक किसी भी किसान को खूब प्रसन्न करते और उसको खेत के काम में लगाने वाले होते हैं उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवान् ! दानशील पुरुष ! तेरे ऐश्वर्य सत्य और धन की इच्छा करने वाले के लिये अतिसुख देने वाले और उसको उत्तम कार्य में लगाने वाले हों । इसी प्रकार हे आचार्य ! तेरे देने योग्य ज्ञानोपदेश, वेद और सत्य ज्ञान के इच्छुक शिष्य को, उसके अज्ञान को अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाले और उसे सन्मार्ग में ले जाने वाले हैं । जो विद्वान् जन, या विद्याभिलाषी जन पहले पृथिवी के समान सबके आश्रयभूत प्रलयचर, सन्मार्ग और गानयोग्य वेदराशि के अभ्यास की इच्छा करते हैं वे विद्वान् पुरुष हमें खूब सुखी करें । इति अष्टमो वर्गः ॥

प्रातृ प्र याहीन्द्र मीळ्हृषो नृन्मृदः पार्थिवे सदने यतस्व ।

अथ यदेवा पृथुवध्नास एतारतीर्य नार्यः पौरुषानि तुरतुः ॥६॥

भा०—हे सेनापते ! तू मेघों के समान तुझ पर राय वर्षाने वाले प्रातपक्षा पर प्रयाण कर, उन पर चढ़ाई कर, और बड़े भारी पृथिवी के राजसिंहासन के प्राप्त करने के निमित्त यज्ञ कर । क्या कर ? जब कि इन अपने वीर सैनिक पुरुषों के बड़े मूल, आधार वाले, दृढ़ अश्वगण, चढ़ा २ प्रयाण करने वाली सेनाएँ, स्थिरा और प्रजाएँ, पार पहुँचा देने वाला नाव पर वेध के समान समग्राम सागर से पार उतारने वाले नायक पुरुष के अधीन रहकर नाना बल कर्म करने को तैयार बैठी हैं ।

प्रति धाराणामतानामयासो मरुतो मृत्वा प्रायतामुपदि ।

ये मर्त्ये पूतनायन्तुमूर्ध्निर्वाणानुं न पूतयन्तु सगैः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार वेग से बहने वाले, गतिशील, और सब तरफ

जाने वाले वायुओं की ध्वनि सुनाई देती है, और जिस प्रकार वे वायु गान्धर्व, अन्न को चाहने वाले मनुष्य को पशु आदि रक्षा साधनों और जल सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार धनी लोग रक्षाकारी पुरुषों यन्त्र नाना उपयोग सहित ऋण वाले पुरुष के प्रति अपने को उसके धन का भय स्वामी बतलाते हैं, उसी प्रकार दुष्टों को भय देने वाले, शुक्ल वर्ण के ब्रह्मन्त्र वाले, उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न, ज्ञानवान्, सब तरफ जाने वाले, वायु और प्राण के समान सर्वोपकारी परिव्राजकों की उपदेशमयी वाणी बराबर सुनाई दे जो विद्वान् पुरुष अपने रक्षासाधनों से और नाना प्रकार उपायों से सेना और सहायक मनुष्यों को चाहने वाले पुरुष को भी ऋणी पुरुष के समान प्राप्त कर, उसे अपने बशकर, उत्तम उपदेशों से उस पर आधिपत्य प्राप्त करते हैं ।

त्वं मानेभ्यः इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोग्रामाः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् आचार्य विद्वन् ! तू समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली, शीघ्र ही दुःखों को रोकने और अज्ञान का नाश करने वाली श्रेष्ठ वाणियों को, मान करने वाले उत्तम शिष्यों के लिये खोल २ कर रख । हे ब्रह्मदान के दातः ! तू प्राणों के समान प्रिय स्तुतिशील, विद्या की कामना करने वाले शिष्यजनों से इस प्रकार प्रार्थना किया जाता है कि हम सन्मार्ग में उत्तम प्रेरणा वाले, पापों के निवारक, और जीवन देने वाले अमृत को प्राप्त करें । इति नवमो वर्गः ॥

[१७०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द — १ स्वराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् ।

३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ५ भुरिक पक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेदं यदद्भुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीनं वि नश्यति ॥ १ ॥

भा०—जो निश्चय से आज नहीं है वह कल भी नहीं । उसको कौन जानता है जो अनुत, आश्वर्गजनक या जो कभी हुआ ही नहीं ? जो सब से भिन्न है उस अन्य का ज्ञान करने का साधन चित्त, इधर उधर सञ्चार करता है, इधर उधर सर्वत्र विचलित होता रहता है, वह स्थिर नहीं होता । ओर अच्छी प्रकार विचार ओर स्मरण किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है । अर्थात् आज, कल परसो आदि काल के भागों में उत्पन्न अनित्य पदार्थों को कोई नहीं जानता । तब जो आत्मा कभी उत्पन्न नहीं हुआ उसके विषय में भी कोई क्या जाने । वह आत्मा सबसे पूर्वक रहने से 'अन्य' है । उसका सकल्प विकल्प साधन चित्त है वह इधर उधर जाता, नाना फल भाग करता, एक स्थान पर नहीं टिकता ।

किं न इन्द्र जिघाससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभि कल्पस्य साधुया मा नः समरगो वधीः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! हम तेरे ही भरण पोषण करने वाले वा तेरे द्वारा ही पोषण पाने योग्य, तेरे भाई है । तू हमें क्यों मारना चाहता है ? तू उनके साथ उत्तम, साधना द्वारा सबको वश करने वाले व्यवहार से आचरण कर । हमें समान में, एक साथ मिलकर बनी सघनशक्ति से जाने योग्य कार्य में मत मार ।

किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नतिं मन्यसे ।

विद्या हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके भरण पोषण करने वाले । हे वृक्षादि स्थावर पदार्थों को जो पेन से उखाड़ पेंवने से समर्थ वायु के समान बलशालिन् ! तू हमारा मित्र होकर क्यों हम से अधिक अपने को मानता और हमारा तिरस्कार करता है, जिस प्रकार तेरा पित्त है हम भी उसे प्राप्त करें, जाने तू क्या हमें दाना देने की नहीं देना चाहता ? प्राणाय आत्मा को कह रहे हैं वह सबका भरण पोषण करने से भ्राता है । द्रव्य, धोता, नन्दा

आदि समान नामों से कहलाने योग्य होने से 'सखा' है। उसके पास 'मनः' मननसामर्थ्य, ज्ञानसामर्थ्य है। वह अपनी ज्ञान शक्ति ही इन्द्रियों को प्रदान करता है।

अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निभिन्धतां पुरः।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

भा०—वेदि को विद्वान् पुरुष सुशोभित करें उत्तम रीति से उसका निर्माण करें। अग्नि को आगे प्रज्ज्वलित करें। वहां अमरणधर्मा नित्य जीव को ज्ञान कराने वाले तुझ परमेश्वर की पूजा, उपासना रूप यज्ञ को हम स्त्री पुरुष मिलकर करें।

त्वमीशिवे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणामित्रपते घेष्टः।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाद्य प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥५॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्। हे सब ऐश्वर्यों और वसने वसाने वाले जीवों और लोकों के पालक। तू ही सब प्राणियों, ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी है। उनको अपने वश कर रहा है। हे मित्रों के पालक! तू सब स्नेह करने वालों का पालन पोषण और धारण करने वाला है। तू प्राणों के समान प्रिय विद्वान् मनुष्यों के साथ उत्तम सवाद कर। और ऋतु अनुसार उत्तम अन्नों का अच्छी प्रकार भोग करा। अधीन रहने वाले शिष्य अन्तेवासी 'वसु' ब्रह्मचारी है। उनका आचार्य 'वसुपति' है। वे ही 'मरुत' हैं उनसे संवाद कर उनको विद्योपदेश देवे। ऋतु अनुसार अन्नों और हविष्यों का भोग करे। इति दशमो वर्गः ॥

[१७१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्।

४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३ मुरिक पात्तिः ॥

प्रति व पुना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्।

रुराणता मरुतो पेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

भा०—हे योग्य शिष्यो । मैं इस नमाने के साधन, विनय को सिखाने वाले उपाय से तुम्हें प्राप्त होता हूँ । उत्तम वेद के उपदेश से चंचल वृत्ति वाले आप लोगों की उत्तम मति को चाहता हूँ । आप सब अपना मनोयोग मुझे दें । आप लोग ज्ञान करने योग्य विद्याओं से आनन्द युक्त हुए प्रसन्न चित्त से क्रोध और हृदय के बीच छुपे अनादर और चंचलता के भाव को वश में करो । और भोक्ता इन्द्रियों को विशेष रूप से वश करो ।

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृन्दा तृष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यातु मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस्तु इदृधासः ॥ २ ॥

भा०—हे शिष्य जनो । हे उत्तम विद्या और शुभ गुण, कर्म, उपदेशों की कामना करने वालो । यह आप लोगों के लिए विनयशीलता से युक्त, विनय से ग्रहण करने योग्य उत्तम उपदेश हृदय में सूक्ष्म विचार किया गया और मनन द्वारा धारण करने योग्य है । आप लोग मन से इसको ग्रहण करते हुए सब प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा, मेरे अति निकट आओ । आप लोग ही जपों की वृद्धि करने वाले पायुगण के समान गुरुजनों के प्रति विनयशीलता और उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करने हारे हो ।

स्ततासो ना मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मधवा शम्भविष्ठः ।
उर्ध्वानः सन्तु काम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो । आप लोग स्तुति किये जाकर और गुरुओं द्वारा उत्तम रीति से उपदेश प्राप्त करके हमें सदा सुखी करो । और उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य वा स्वामी अति प्रशंसित होकर हमारे लिये अत्यन्त शान्ति और कल्याण का करने वाला हो । हे विद्वान् वीर पुरुषो ! हमारे पास सब दिना सब से ऊँचे अत्यन्त सुन्दर, तेजने योग्य ऐश्वर्य और आतने योग्य राज्यसुख प्राप्त हो ।

अस्मादहं तविषादीपमाण इन्द्राङ्गिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो । इस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष से प्रेरित या भयभीत होता हुआ, और उसी से मैं प्रजाजन भयभीत होकर, कांपता रहता हूँ । इसलिये तुम्हारे लेने योग्य जो तेज धार वाले अस्त्र शस्त्र हैं उनको हम भी अपने पास रखें और आप लोग भी हमें सदा सुखी रखो ।

यावन्तः स्त्रीपुरुषा. भवेयुः तावन्त. सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः । इति महर्षिदयानन्दः । 'जितने स्त्री पुरुष हो वे सब शस्त्राभ्यास करें' यह भावार्थ इस मन्त्र पर महर्षि ने लिखा है ।

येन मानासश्चितयन्त उस्त्रा व्युष्टिषु शंससा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविर. सहोदा. ॥५॥

भा०—हे प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे राजन् ! सभाध्यक्ष ! उपाओं के चमकने पर किरण जिस बल पराक्रम से सबको प्रशुद्ध करती है उसी प्रकार सनातन से चली आयी प्रजाओं की वस्तियों में विचारवान्, ज्ञानवान् और माननीय, उत्तम मार्ग में चलने हारे, या वहा के ही रहने वाले पुरुष प्रजा को शिक्षित और जागृत करें । हे राजन् ! वह तू हमें बलवान् तेजस्वी, वीरों और विद्वानों और व्यापारियों से ज्ञान, बल, कीर्ति, ऐश्वर्य प्रदान कर । तू स्वयं भी बलवान् तेजस्वी, वृद्ध और स्थिर दृढ़ और शत्रु पराजयकारी बल का देने वाला हो ।

त्वं पाहन्द्मि सहीयसो नृन्मवां मरुद्भिरव्यातहेळाः ।

सुप्रकृतेभिः सासुहिर्दधानो विद्यामेधं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥११॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्यवान् ! तू अति बलवान् और सहनशील मनुष्यों की रक्षा कर । उनको अपने अधीन राजपुरुष बना कर रख । तू राष्ट्रदेह को प्राणों के समान प्रिय और शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों,

विद्वानों और व्यापारी वेश्यों के सहयोग से अपने क्रोध, और अनादर के कारणों को दूर करता रह । उत्तम, शुभ, सुखजनक, ज्ञान वाले तथा ध्वजा चिन्हादि वाले वीरों और विद्वानों के साथ शत्रु को पराजित करता हुआ राष्ट्र का पालन करता रह । और हम प्रजाजन उत्तम अक्षादि समृद्धि शत्रु वर्जन करने योग्य बल आर जीवन प्राप्त करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१७२]

अपस्तम्ब एषि. ॥ मरुतो देवता छन्दः—१ विष्णु गायत्री । २, ३ गायत्री ॥

तुव भूक्तम् ॥

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊनो सुदानवः ।

मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान और वीर पुरुषों । आप लोगों का जीवन मार्ग, आगमन और प्रयाण भी अद्भुत मान करने योग्य आर अन्यों को ज्ञान प्रदान करने और चेताने द्वारा हो । आप लोग जो उत्तम दानशील, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सब की रक्षा करने और ज्ञान देने के लिये हों । (२) देह में—प्राणियों का आगमन, गति और व्यापन चेतनासत्कार करने वाला हो । जीवनप्रद होने से वे 'सुदानु' हैं । न मरने वाला अविनाश आत्मा 'अहि' है । उसके नानु अर्थात् तेज और ओज को धारण करने वाले प्राण 'अहिभानु' हैं । वे देह का रक्षा के लिये होते हैं ।

आरे सा वः सुदानवो मरुतं चतुर्विजती शरः ।

आर प्रश्मा यमस्यध ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील आर शत्रु तैना के खण्ड २ करने वाले विष्णु और राष्ट्रदेह के प्राणरूप आर पुरुषों । आर लोगों की जो बहुत दोग से आने वाली शत्रुओं को सताप देने, जलाने वाली, हिंसा करने वाली आर भाग्य है वह हम से दूर रहे । और वज्र के समान कठोर अथवा दूर तक फैलने वाला विष्णु जिसकी तुलना फैलते ही रहती दूर ही रहे ।

(२) प्राणों की रोगादिनाशक शक्ति शरीर को साधने वाली होने से 'ऋजती शक्त' है । 'अश्मा' भोक्ता आत्मा है जिसको वे धारण करते हैं । वह दोनों प्राप्त हों ।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।

ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील पुरुषो ! आप लोग जो तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी राजा है उसके अधीन प्रजा को उससे बचाओ । हमारे जीवन की रक्षा के लिये हमें ऊंचा करो । (२) अध्यात्म में—वायु से जिस प्रकार तृण हिलता है उसी प्रकार चलने वाला यह देह 'तृण-स्कन्द' है । उसके भीतर प्रविष्ट प्राणगण रोग आदि से बचावें । और उनके दीर्घ जीवन के लिये उनको उत्कृष्ट बलवान् बनावें । इति द्वादशो वर्गः ॥

[१७३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ वन्दः—१, ५, ११ पक्षिः ६, ९, १०, १२ भुरिक् पक्षिः । २, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ बृहती ॥ त्रयोदशर्च सूक्तम् ॥

गायत्सामं नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्विवृधानं सर्वत् ।

गावो धेनवो वर्हिष्यद्वधा आ यत्सुधानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! जब सूर्य की किरणें अन्तरिक्ष में अपने दिव्य, तेजस्वी निवास या आश्रयस्थान सूर्य को सब तरफ प्रकाशित करें तब प्रातःकाल के समय तू जिस प्रकार भी चाहे या जिस प्रकार तू जानता हो उसी प्रकार तू अज्ञान के नाश करने वाले या अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाले साम का गान कर । और सबके बढ़ाने वाले सब सुखों के स्वामी की हम भी स्तुति करें । दुवार गौओं के समान ज्ञानरस देने वाली वेदवाणियां, कभी नाश को न प्राप्त होकर, सबको बढ़ाने वाले उपासना

रक्ष मे दिव्य और सबके आश्रय परमेश्वर को सब प्रकार ने प्रकट करती है ।

प्रर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहवैर्मृगो नाशनां अति यज्जुगुयति ।

य मन्त्रयुमनां गूर्त हाता भरतु मयो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

भा०—प्रजा पर सुखों का वर्णन करने हारा, शत्रुओं पर शस्त्रों का वर्णन करने हारा, विद्वान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष, अपने चमकानाते शस्त्रों से युक्त बलवान् शस्त्रवर्षी सैनिकों के साथ गमन करे । वह भूखे सिंह के समान खूब बढ़कर उद्यम करे, शत्रु पर सेनाबल को दण्ड के समान उठाकर उससे पाड़ित करे । और वह सबको अन्न, व्रतनादि देने वाला, सबका दाता, सबको सत्संगादि कराने वाला, व्यवस्थापक उत्तम मनुष्य, मननशील और शत्रुस्तम्भनकारी पुरुषों के बीच उनकी स्तुति को सुनता हुआ, या उन्हें प्रसन्न करता हुआ अच्छी प्रकार उद्यम करता, और समस्त नर नारियों का अच्छी प्रकार भरण पोषण करता है ।

नल्लदोता परि सन्नं मिता यन्मरुद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।

मरुदश्चो नयमानो रुवद्गौरन्तर्द्धतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार होता परिमित उत्तम गणित विज्ञान और विज्ञान के नियमों से सापेक्ष बनाये गये गृह में रहता है, और पृथ्वी के गर्भ को धन आदि से पूर्ण कर लेता है, उसी प्रकार किरणों द्वारा जल को लेने हारा सूर्य गमन करता हुआ परिमित स्थानों में व्यापता है, और पारतु अथात् वर्ष नर के पृथिवी के मध्य या भीतरी बीजधारक भाग को जल से पूर्ण करता है । जिस प्रकार तपारी को ले जाते हुआ घोंटा हिन-विनाता है, जिस प्रकार वृषभ हनारता है, जिस प्रकार राजसभा में दूत अपना लक्ष्य निर्णय होकर चरता है, उसी प्रकार यह विपुत्र गर्जन आकाश और भूमि दोनों को व्यापती है ।

। प्रमार्पितरारभे प्र च्छौत्तानि देवयन्तो भरन्ते ।

ओषादेन्द्रो हस्मवर्चा नास्तथेव सुमयो रघेष्ठा ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् और दानशील राजा को स्वयं प्राप्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष, इस राजा के हित के लिये, शत्रु को पदच्युत करने वाले शस्त्रास्त्रों का अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं। शस्त्रास्त्र शत्रु पक्ष के हथियारों की अपेक्षा अधिक वेग से फैलने और जाने वाले हो। हम प्रजागण उन यन्त्रों और अस्त्रों को बनाएँ और तैयार करें। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, शत्रुनाशकारी तेज और पराक्रम से युक्त उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्वश्रेष्ठ होकर, परस्पर असत्याचरण से न वर्तने वाले स्त्री पुरुषों के समान रथ पर विराजमान् होकर, पूर्वोक्त शत्रुनाशक साधनों को करे।

तमुं पु॒हीन्द्रं॑ यो ह॒ सत्त्वा॑ यः शू॒रो म॑घ॒वा यो र॑थे॒ष्टा ।

प्र॒तीच॑श्चि॒द्योर्धो॑ग्रान्बृ॒षण॑वान्बृ॒त्रुष॑श्चि॒त्तम॑सो वि॒हन्ता॑ ॥५॥१३॥

भा०—हे विद्वन् । तू उस ऐश्वर्यवान् की ही सदा स्तुति कर जो निश्चय से बड़ा बलवान्, शूरवीर, ऐश्वर्यवान्, रथ या रथसेना पर स्थित, हो, और जो अपने प्रति आने वाले शत्रुओं के साथ सबसे अधिक युद्ध करने वाला, मेघ के समान शस्त्रवर्षी वीरों का स्वामी, और आवरणकारी शत्रुओं का विविध उपायों से नाश करने वाला है। (२) अध्यात्म में—इन्द्र अर्थात् आत्मा सत्त्वगुण से युक्त होने से 'सत्त्वा', ऐश्वर्यवान् और पूजायोग्य होने से 'मघवा', देह और ब्रह्माण्डरूप रथ पर स्थित, या रस रूप आनन्द में स्थित होने से 'रथेष्टा' है। वह बड़े योद्धा के समान आवरणकारी अज्ञान का नाशक है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्र यद्वि॒त्था म॑हि॒ना नृ॒भ्यो अ॑स्त्य॒रं रोद॑सी॒ कद॑ये॒ न्नास्मै॑ ।

सं वि॒व्य इ॒न्द्रो वृ॑ज॒नं न॑ भू॒मा भ॑र्ति॒ स्व॒धावो॑ ओ॒पश॑मि॒व द्याम् ॥६॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् अपने महान् सामर्थ्य से सचमुच मनुष्यों के हित के लिये सब कार्य करने में समर्थ है उसके लिये अगल बगल में रहने वाले छोटे मकानों के समान स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएँ भी पर्याप्त नहीं हैं। वह महान् ऐश्वर्यवान् राजा सबको अच्छी प्रकार अपने

वश कर लेता है । और शत्रुवर्जक बल जिस प्रकार बहुत प्रजा की रक्षा करता है उसी प्रकार वह भी बलवान् होकर बहुत से ऐश्वर्य और बड़े राज्य को धारण करता है, और जलमय मेघ जिस प्रकार समीप विद्यमान् अन्तरिक्ष और पृथ्वी का भरण पोषण करता है उसी प्रकार वह भी अन्न समृद्धि का स्वामी होकर समीप सोने वाली स्त्री या बन्धुजन के समान स्नेहमयी प्रजा को या पृथ्वी को पालता है । (२) परमेश्वर पक्ष में— वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से इतना भारी है कि उसके लिये आकाश और भूमि भी समाने को पर्याप्त नहीं है, वह पापनिवारक महान् आत्मा सब में व्यापक है । वही शक्तिमान् होकर पृथिवी को मेघ के समान धारण करता है ।

समत्सु त्वा शूर सुतामुराणं प्रपथिन्तम परितंसयध्यै ।

सजोपसु हन्द्र मदे क्षोणीः सूरि त्रिये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥

भा०—भूमिया जिस प्रकार अन्न को प्राप्त होकर सूर्य को उत्पन्न करके बहुत प्रसन्न होता है, उसी प्रकार है शूरवीर । जो भूमियासी प्रजाण अपने ऐश्वर्यों, बलवान् अश्वों और वीरों के साथ अपने प्रेरक, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष को हर्ष के अवसरों में स्वामी में साथ २ बड़ा हर्ष अनुभव करता है वे ही सग्राम के अवसरों में सज्जनों के बल को बढ़ाने वाले सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाले तुलको प्रेम और उत्साह से युक्त होकर सब तरफ से सुशोभित करने के लिये तैयार रहते हैं ।

परा हि ते शं सर्वना समुद्र प्राण यत्तं प्राप्नु मदन्ति देवी ।

वभ्या ते अनु जोष्या भूद्रौ सूरिधियदि धिपा वेपि जनान् ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् । तेरे समस्त ऐश्वर्य तथा यत्न यागादि समुद्र या अन्तरिक्ष के जलों के समान निश्चय से सुख और कल्याणकारी होते हैं, जब तब दिव्य गुण वाला उत्तम प्रजाण २ न जास पुरुष और प्राणों ने अति हर्ष प्राप्त करती है । जब तु मानवाय विद्वान् पुरुषों को उत्तम आदर

की मधुर वाणी भी अनुकूल होकर सेवन करने योग्य हो जाती है ।

असांस यथा सुपुत्राय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।

असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्टास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्रणी पुरुषों के उत्तम उपदेशों से लोग अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने में सफल होते हैं, उसी प्रकार हे पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त करने कराने हारे नायक विद्वान् ! हम लोग उत्तम उपदेशों से ही सुखदायी कामनाओं को प्राप्त होकर, उत्तम रीति से उत्तम मित्रभाव से सखा होकर रहे । ऐश्वर्यवान् पुरुष जिस प्रकार सत्कार पूजा और स्तुति में दत्तचित्त होकर उत्तम स्तुत्य पदार्थ प्रदान करता है, उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् प्रभु जैसे भीतर वैसे हमारे स्तुति प्रार्थना और उपासना के भीतर विद्यमान रहे । जिस प्रकार वेगवान् रथ या पुरुष हर काम कुर्त्ती से कर लेता है उसी प्रकार शीघ्र फलप्रद परमेश्वर उत्तम २ वेदोपदेशों को प्राप्त कराता रहे ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।

मित्रायुवो न पूर्पति सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिन्नन्ति युवैः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम मार्ग के नायक पुरुषों के उपदेशों से, मनुष्य परस्पर स्पर्धा या द्वेष संघर्ष को छोड़कर प्रेमी हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे बीच शासन को अपने हाथ में सभालने वाला बलवान्, पराक्रमी, न्यायशील राजा रहे । हम लोग कलहहीन होकर परस्पर प्रेम से रहे । धर्मविरुद्ध स्पर्धा न करें जिस प्रकार मित्रता चाहने वाले और मध्यस्थ होने के इच्छुक राजागण, उत्तम शासन में रहकर, पुर या नगर के स्वामी राजा को भेंट पुरस्कार देते हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तू ज्ञान वज्र से अज्ञान दूर करने हारा होकर हमारा ही होकर रह, और उत्तम पुत्रों की शिक्षाओं से हम भी मानो द्वेष रहित होकर, मित्रों के इच्छुक और मध्यस्थ पुरुषों

के इच्छुक होकर, उत्तम उपासना और सत्सगों द्वारा इस देहपुरी के पालक आत्मा की शिक्षा करते, उसकी साधना करते हैं।

युक्षो हि प्मेन्द्र कश्चिदन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा पण्डितम् ।

तीर्थे नाच्छां तातृपाणमोको ढीघो न सिधमा कृणोत्यध्वा ॥११॥

भा०—कोई ही परस्पर सगति योग्य या दानशील राजधर्म निश्चय से ऐश्वर्यवान् राजा को समृद्ध कर देता है। और कोई दूसरा चित्त से कुटिलता करता हुआ इधर उधर भटक जाता है। जिस प्रकार कोई स्थान घाट में पियामे को भी भली प्रकार उसे प्राप्त होकर उसकी व्याप्त दुःखा दता है, और जेमे कोई २ लम्बा रास्ता भी जाने वाले पथिक को इधर उधर कर देता है। इसी प्रकार कोई आत्मा या परमेश्वर की उपासना का साधन इन्द्र को बड़ा देता अर्थात् इन्द्र के समृद्ध रूप को प्रकट कर देता है और मन से कुटिल सदा इधर उधर भटकता है।

मो पू णं इन्द्राश्रं पृत्सु देवेरस्ति हि पमा ते शुष्मिन्नव्याः ।

महद्भिद्यस्य मील्हुरो यव्या ह्विष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! तू हमारा नीचे गिराने द्वारा कभी न हो। प्रत्युत इस जगत् में सेनाओं और सम्राटों के बीच में तेरा शत्रुओं और पापों को दूर करने वाला वज्र या सामर्थ्य विजयाकाक्षी सेनिकों के साथ रहा ही करता है। जिस महान् वीर्यवान् तेरी शत्रु को दूर कर देने वाली बाणा, घेतन पुरस्वार आदि पाने वाले वीर भटों की प्रशंसा करती है वह तू ही कभी सक्कट में न आल।

पप. स्तोमं इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।

आ नो वपुन्त्या सुपेताय देव धिद्याभेष वृजत जीरदानुम् ॥१३। १५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् । हमारा यह बल, तप और स्तुतिचक्र नर रित के लिये है। इससे तू हमारे लिये पृथिवी, और तन्नाग को प्राप्त करता है अचलत्व के स्थानिन् । हे विजयशाल राजन् । तू अपने ऐश्वर्य

की वृद्धि, रक्षा और उत्तम प्रयाण के लिये हमें सब तरफ भेज । और हम सर्वत्र अन्न, बल और जीवन या आजीविका देने वाले उपाय को प्राप्त करें । इति पञ्चदशो वर्गः ।

[१७४]

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—निचृत्पक्तिः । २, ३, ३, ८, १०
मुक्तिः पक्तिः । दगर्च नृक्तन् ॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्प्राह्यसुर त्वमस्मान् ।

त्व सत्यतिर्मयवा नस्तच्छस्त्वं सत्यो वसवान् सहोदाः ॥ २ ॥

भा०—हे परम ऐश्वर्य युक्त ! तू राजा है । तू मनुष्यों और उत्तम नायक लोगों और जो दानशील धनाढ्य और विद्यादाता विद्वान् है उनकी रक्षा कर । हे बलवन् । तू हम प्रजाजनों का पालन कर । तू हमारा उत्तम वेदमय सत्यज्ञान का पालक और ऐश्वर्यवान् है । तू हमें दुःखों से तारने वाला, सजनों में सर्वश्रेष्ठ, सब धनों को ला देने वाला एवं वसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला और बल प्रदान करने वाला है ।

दत्तो विश इन्द्र मृध्रवाचः स्रष्ट यत्पुरः शर्म शारदीर्दत् ।

ऋणोरपो अनव्याणी यूने वृत्रं पुळकुन्साय रन्धीः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् । तू दानशील प्रजाओं को अति कोमल वाणी बोलने वाला कर । वे धनादि के मद में पदप भाषण न किया करें । जिस प्रकार सूर्य वर्ष की सातों ऋतुओं को खण्ड २ करता और मेघों द्वारा जल प्रदान करता है, और संयोग विभाग करने में समर्थ बहुत से वज्रों से या विद्युत् से युक्त वायु के लिये जल या मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार जब तू सात प्रकार की शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियों का नाश करे तब हे अनिन्दनीय ! तू जलों के समान ऐश्वर्यों को प्रदान कर, और बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र के युवकगण के प्रोत्साहन के लिये नगर के घेरने वाले शत्रुओं का विनाश कर ।

अज्ञा वृतं इन्द्र शूरपत्नीर्धा च येभिः पुरुहूत नूनम् ।

रक्षो अग्निमशुपं तूर्वेयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुहन्त. राजन् । तू वरा जाकर शूर पति वाली सेनाओं को ओर तुझे अपने मन से चाहने वाली इस पृथिवी को सञ्चालित कर । बहुतो ने स्मरण करने योग्य ! वीर पुरुषों के साथ तू अन्यो को पीडा न देने वाले, शीघ्रगामी रथों के स्वामी अग्रणी को अवश्य सुरक्षित रख । जिसमे वह सब कर्मों ओर राष्ट्र के कार्यों पर रहने के लिए और उच्छृंखलों पर दमन करने के लिये सिंह के समान निर्भय रहकर राष्ट्र की रक्षा करे ।

शेषन्तु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पथीरवस्य मुह्य ।

सजदृणास्थय यद्यथा गास्तिष्ठद्वरी भृषना मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! एक ही समान मे तेरे यज्ञ की गर्जना ध्वनि के महान् सामर्थ्य से तेरे शत्रुगण पृथ्वी पर गिर पड़ने हें । यह सब तेरा ध्याति के लिये ही है । राजा जब अपने भेनिकायलों को अपने अधीन रख कर लेता है तब युद्ध द्वारा आज्ञावाणियों को प्रकट करता या भूमियों को अपने अधीन कर लेता है, और वेगवान् दो जधों से युद्ध रथ में बैठकर, शत्रुपराजयकारी बल से ऐश्वर्यों और समानों पर विजय प्राप्त करता है ।

५६ कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्यूमन्यू ऋज्वा वातस्थाभ्या ।

प्र सूरध्वकं पृथ्वाद्भुक्तिऽभि स्पृधो यासिष्ठद्वज्जवाटु. ॥ ५॥ ६६ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते । वायु के वेग से जाने वाले, सरल गाते वाले, तु प्रभु दोनो जधों को, और शत्रु के सेन्यों को काट गिराने वाले राजाज बल को, जिस पर तू जाहे उस पर चढ़ा ले, उस पर सेना-बल और अस्त्रबल से चढ़ा कर । तू सूर्य के समान तेजस्वी होकर अपने सेनाप अपने राज्यजन को रक्ष पड़ा और उसका नार अपने ऊपर जधों

प्रकार ले । तब शस्त्रबल को हाथ में लेकर स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण कर । (२) अध्यात्म में—दो अन्न प्राण अपान हैं जो वात अर्थात् मुख्य प्राण के दो रूप हैं । इन्द्र आत्मा है । वह जिस पर भी चाहे अपनी स्तुतिकारी वाणी का प्रयोग और प्राणापान का बल रोककर करे । वह आत्मा मुख्य 'चक्र' सहस्रदल को पहुँचे और ज्ञान के वज्र को हाथों में लेकर बाधक वृत्तियों पर विजय करे । इति शोडशो वर्गः ॥

ज्वन्वाँ इन्द्र मित्रेऋचोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।

प्रये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्तो वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के नाशक सेनापते ! तू चोदना अर्थात् वेदाज्ञा के बल से बढ़ी हुई शक्ति से युक्त, सबसे बड़ा आदरणीय होकर, अदानशील लोभी, तथा मित्रघाती को दण्ड देने वाला है । जो लोग तुझ न्यायकारी को अच्छी प्रकार जान लेते हैं वे जब मनुष्यों की सन्तानों को हरते हुए पकड़े जावें तो वे धूर्त लोग एक साथ समवाय बल से तेरे द्वारा दण्डित किये जाया करें ।

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां द्रासायोऽपवर्हिणी कः ।

करत्तिस्त्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुर्यवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥

भा०—क्रान्तदर्शी पुरुष उत्तम अन्न को प्राप्त करने के निमित्त भृत्य-वर्ग के लिये निवास करने की भूमि का उपदेश करे । वह पृथिवी को सूख ऐश्वर्य बढ़ाने वाली बनावे । ऐश्वर्यवान् पुरुष ही तीनों प्रकार की पर्वतमय, सम, और जलमयी स्थली, अथवा उत्तम, मध्यम और निरुष्ट तीनों को उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप से पूर्ण करे । और वही दुःखदायी रणागण में कुत्सित वाणी के बोलने वाले को सूख मारे ।

सन्ता ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।

भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य प्रीयोः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् । नये विद्वान् लोग तुझे उन अनेकानेक तथा सनातन से चले आये प्रजापालनकारी धर्मों का उपदेश करें । तू पहले की शत्रुसेनाओं को विशेष युद्धादि के न करने के लिये पराजित कर । तू शत्रु की नगरियों को तोड़ डाल, और कर न देने वाले, तथा कूट जलने वाले द्रोही लोगो को निरन्तर नमा । और राजा को न स्वीकार करने वाले हिंसक पुरुष का हनन कर उसे दण्ड दे ।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरुपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमतिं शूरं परिं पारयां तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू शत्रु को कंपा देने हारा हो । तू शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली प्रजाओं को वहती नदियों या देह में वहती नादियों के समान प्रवाह में सञ्चालित कर । जो तू हे शूरवीर ! समुद्र को ना अतिक्रमण करके अपनी प्रजा और सेना के पालन करने में समर्थ है इसलिये तू शीघ्रता से जाने वाले अपने अधीन मनुष्य को, और वसन्त ऋतु पुरुषों को सुख से समुद्र के भी पार कर, सफटों से पार उतार ।

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधं स्या अयुक्तमो नरा नृपाता ।

स नो विश्वासां स्पृधा सहोदा विद्यामेपं यजनं जीरदानुम् १०।१७

भा०—हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्त । तू हमारे में से सब प्रकार से सबसे अधिक ईमानदार, उपायु, चौर्यवृत्ति से रहित, और समस्त नायक पुरुषों में से सबसे उत्तम, मनुष्यों का पालक लेकर रह । वह तू हमारी समस्त गुणियों और सन्मानकारी सेनाओं के बीच में शत्रुविजयकारी बल को देने वाला हो । जिससे हम लोग अनिमित्त पदार्थ, शत्रुवर्जक बल और जीवनप्रद सामर्थ्य प्राप्त करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१७५]

अथर्ववे ॥ १७५। १०। १७—१ यत्समुद्रम् । २ परिं पारयां । ३ यदुं स्वस्ति । ४ अयुक्तमो नरा नृपाता । ५ विश्वासां स्पृधा सहोदा विद्यामेपं यजनं जीरदानुम् । ६ इति सप्तदशो वर्गः ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पात्र में रखा हुआ आनन्ददायक ओषधियों का सार देह में हर्ष का सञ्चार और वृत्ति करने वाला होता है और वह मनुष्यों द्वारा पान किया जाता है, इसी प्रकार तुझ प्रजा के पालक का दमनकारी सामर्थ्य महान् है, और सबको हर्ष देने वाला होता है, जिसमें तू अति हर्षयुक्त रहता है । तथा जो प्रजाओं द्वारा पालन किया जाता है, हे अश्वसैन्य के स्वामिन् ! हे प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले ! तेरा अति बलवान्, प्रजावर्ण या शासक वर्ग, चन्द्र के समान आत्हादकारी और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला, और सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाला, सहस्रों को ऐश्वर्य विभक्त करने वाला हो ।

आ नस्ते गन्तुमत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

सुहावा इन्द्र सानुसिः पृतनापालमर्त्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् । तेरा हर्षकारी तथा दमनकारी शासकवर्ग नायक रूप से स्वीकार करने योग्य तथा बलवान् होकर हमें प्राप्त हो ! हे इन्द्र ! तू या वह शासकवर्ग शत्रुपराजयकारी बल वाला, ऐश्वर्य का सर्वत्र विभाग करने वाला, शत्रु सेनाओं और प्रजा के मनुष्यों को दवाने हारा कभी नहीं मरता ।

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।

सुहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू निश्चय से शूरवीर है । तू सैन्य को व्यूहों में, ऐश्वर्य को प्रजाओं में यथोचित रूप से विभाग करने हारा होकर पेंदल योद्धा पुरुषों को और रथसैन्य को भी सञ्चालित कर । तू ही बलवान् होकर व्रत अर्थात् उत्तम कर्मों से हीन प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुषों को अपने तेज से, हृदि या को आग के समान, संतप्त करे ।

मुपाय सूर्ये कवे चक्रमीशान् ओजसा ।

वह शुष्णाय वृधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

भा०—हे क्रान्तर्दशिन । तू सूर्य का स्वामी है । तू अपने बल पराक्रम से सूर्य के समान समृद्धियुक्त, बलवान्, अन्धकारनाशक, राज्यचक्र, बलचक्र, मण्डल तथा शस्त्रबल को अप्रत्यक्ष रूप में धारण कर । और वायु के समान बलवान् मैत्र्य के तीव्र घुटमवारों के द्वारा प्रजा के रक्त-शोषण करने वाले आतङ्गकारी दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये उनको काट २ कर नाश कर देने वाले जब ज्यों शस्त्रबल और राजदण्ड को धारण कर ।

शुष्मिन्तमो हि ते भद्रो शुष्मिन्तम उत क्रतुः ।

चक्षुषा धरियोविदा मंसीष्टा श्रवणमातम ॥ ५ ॥

भा०—हे पृथर्व्यन् राजन् । दमन का सामर्थ्य, राज्य प्रबन्ध निबन्ध में अति अधिक प्रवृत्तता, और तेरा धर्म और धान का सामर्थ्य ना सबसे अधिक गत, अतः और तेज से युक्त है । बढ़ने हुए और नगरों परने वाले दुष्ट शत्रु का नाश करने और धनेर्धर्म प्राप्त कराने वाले उन्ना दमनसामर्थ्य से तू समस्त अथर्व्य को राष्ट्र के निज २ भागों में विभक्त करता हुआ सबको अच्छा प्रचार जान ।

यथा पूर्वैभ्यो आरतुभ्य इन्द्र मय इवापो न तृप्यते प्रभुर्व ।

तामनु त्वा त्रिविद ओदधीमि विद्यामेधं वजने जीरदातुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् । जिस प्रकार प्यासे को जल अति सुखदायी होते है, उसी प्रकार पूर्ण विद्वान् विजोपदेशों के लिये तू भी अचन्त सुख प्रदानकारा के समान यथावत् हुआ कर । तुझे लक्ष्य करके मैं उस निज वेद विद्या का प्रदान करता हूँ । जिससे हम सब अन्न, प्रेरणा, उत्तम विद्या, पावनिवारक अन्न, और आसन प्राप्त कर लें ।

इन्द्रायो वर्यः ॥

[१७६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप्
३ विराडनुष्टुप् । ५ मुरिगुष्मिक् । त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

मत्सि नो वस्य इष्ट्य इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश ।

ऋवायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! तू उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये प्रजा-
जनों को आनन्दित कर । मेघ के समान दयालु एवं बैल के समान
बलवान् होकर ऐश्वर्य का प्रदान कर, या ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में प्रवेश कर ।
तू शत्रुओं का हनन और अपनी वृद्धि करता हुआ खूब राज्य बढ़ा । और
समीप में कहीं भी शत्रु को प्राप्त न कर ।

तस्मिन्ना वैशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कषद्दृषा ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष । जो एक अद्वितीय देखने वालों के बीच
सर्वद्रष्टा है, तू उसको लक्ष्य करके अपनी स्तुति वाणिया का प्रयोग कर ।
जिसको लक्ष्य करके स्तुति करने से, हल खेंचने वाले बैल के प्रयत्न के
अनन्तर या मेघ के वर्षण के बाद खेत में अन्न के समान, आत्मा में अमृत
बीज रोया जाता और उत्पन्न होता है, वह समस्त सुखों का वर्षक, मेघ
के समान और बलवान् बलीवर्द के समान आत्मा या अन्तःकरण रूप
क्षेत्र में, खेत में जो के समान, दुःखों से छुड़ा देने वाले ज्ञानरूप अन्न की
कृपि करता कराता है । वह भवबन्धन काटने के साधन ब्रह्मज्ञान को
उत्पन्न करता है ।

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।

स्पाशयस्व यो अस्मद्भुगिद्व्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

भा०—जिसके हाथों में पाँचों राष्ट्रवासी प्रजाजनों के सब प्रकार के

धन और समस्त जन हैं, वह तू जो हम से द्रोह करे उस दुष्ट पुरुष को, आकाश की बिजली के समान पीड़ित कर और दण्डित कर ।

पञ्च क्षितयः—पाच प्रकार के प्रजाजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निपाद, अथवा देव, मनुष्य, पितृ पशु और पक्षीगण । (२) अध्यात्म में— पाचो क्षिति, पञ्च प्राण । 'पशु' = सविद् आदि विभूति । अस्मधुग् = अज्ञान ।

असुन्वन्त समं जहि दूणां यो न ते मयः ।

अस्मभ्यमस्य वेदं न दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

भा०—यज्ञ न करने हारें, बड़ी कठिनता में नष्ट होने वाले उस दुष्ट पुरुष का नाश कर, जो तुझे सुखकारक नहीं होता । हमें उसका धन प्रदान कर । सूर्य के समान विद्वान् पुरुष ही उन धन को प्राप्त करें ।

आचो यस्य द्विवहसोऽर्केषु सानुपगस्यत् ।

आजाविन्द्रस्येन्द्रो प्राचो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

भा०—विद्या और पुरुषार्थ या राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों में बढ़ने वाले जिसकी अर्चा के प्राप्ति कार्य में सदा अनुकूलता रहती है, हे ऐश्वर्य-वान् ! तू उसकी रक्षा कर । तू सम्राट के लिये ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये बलवान्, वेगवान् तेजस्वी या पुरुष की अच्छी प्रशार रक्षा कर ।

यथा पूर्वभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृप्यते बभूध ।

तामनु त्वा निविद जोहवीमि विद्यामेष वृजन जीरदानुम ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—ज्याऊँगा देवों (सू० १७५, मन्त्र ६) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१७७]

अगत्तय अपि ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्र — १, २ निषुद निडुद । ३ नि-डुद ।

* गुह्येक निडुप । ५ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१—० देवता । ५ इन्द्रः ॥

इन्द्रो देवता ॥

आ चर्षणि॑प्रा वृ॒षभो॑ जना॑नां राजा॑ कृ॒ष्टीनां॑ पु॒रुहु॑त इन्द्रः ।

स्तु॒तः श्र॑व॒स्यन्न॑व॒सोप॑ म॒द्रिग्यु॑क्त्वा हरी॑ वृ॒षणा॑ या॒ह्यर्वा॑ङ् ॥१॥

भा०—मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला, मेघ के समान सबको विद्या और ऐश्वर्यों का देने वाला, सब मनुष्यों का राजा सब प्रजाओं के बीच में सबसे सत्कार करने योग्य पुरुष ही 'इन्द्र' है, वह प्राप्त हो । हे राजन् ! तू प्रशंसित होकर, यश और वन का अभिलाषी होकर, अपने रक्षणसामर्थ्य से समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला घोड़ों को जोड़कर हमारे समीप आ ।

ये ते वृ॒षणो॑ वृ॒षभा॑स इन्द्र॑ ब्रह्म॒युजो॑ वृ॒षरथा॑सो अ॒त्याः ।

ताँ आ ति॑ष्ठ ते॒भिरा॑ या॒ह्यर्वा॑ङ् ह॒वामहे॑ त्वा सु॒त इन्द्र॑ सोमे॑ ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! जो तेरे बलवान् प्रजाओं में श्रेष्ठ और प्रजा और शत्रुओं पर मेघों के समान सुखों और शस्त्रों की वर्षा करने वाले दानवीर और युद्धवीर, महान् ऐश्वर्य और अन्न से युक्त और उच्च उत्तम पदों पर नियुक्त, बैलगाड़ियों या बलवान् अश्वों से युक्त रथों पर सवार, वेग से गमन करने वाले हों, हे राजन् ! तू उन पर शासक होकर विराज । उनके साथ ही सबके समक्ष प्रकट हो । अभिपेक द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त होने पर तुझे बुलाते हैं ।

आ ति॑ष्ठ रथं॑ वृ॒षणं॑ वृ॒षा ते॑ सु॒तः सोमः॑ परि॒षिक्ता॑ म॒वूनि॑ ।

यु॒क्त्वा वृ॒षभ्यां॑ वृ॒षभ॑ क्षि॒तीनां॑ ह॒रिभ्यां॑ या॒हि प्र॒तोप॑ म॒द्रिक् ॥३॥

भा०—हे राजन् ! तू बलवान् रथ और रथमैत्र्य को अपने अधीन रख, उस पर नायक बन कर रह । तेरे ही कार्य के लिये बलवान् तथा सबको ठीक २ प्रेरने और सञ्चालन करने वाला अभिषिक्त पुरुष सेना-नायक हो । जिस प्रकार अभिपेक काल में जलों का परिषेचन किया जाता है उसी प्रकार शत्रु को व्यथित और सतप्त करने वाले नाना सैन्यांग

भी तूय परिपुष्ट हो । हे नरश्रेष्ठ । तू हमें प्राप्त होकर बलवान् अश्वों से या अश्वमेन्य के दो दलों से बलवान् रथ और पूर्वोक्त रथ-मेन्य को जोड़कर, अश्व मेन्यों ने रथ-मेन्य को सुरक्षित करके बड़े वेग से प्रयाण कर । (२) अध्यात्म में—बलवान् 'रथ' देह है । 'सोम' वीर्य है । रक्तादि रत्न 'मनु' है । प्राण और अपान दो 'हरि' हैं । वह चित्तभूमियों के विजय के लिये आत्मवशी होकर प्रस्थान करता है ।

अथ यज्ञो देव्या अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।

स्तीर्णं ब्रह्मिरा तु शक्रं प्र याहि पिवा निपत्य वि मुञ्चा हरी इह ॥४॥

भा०—यह 'यज्ञ' अर्थात् सचका उचित आदर नत्कार, नञ्जनों का सम्मग आर उत्तम व्यवस्था करने द्वारा राजा और राज्य, दिव्य गुण प्राप्त कराने काग है । यह शक्रादि पैंकने योग्य जायुओं ने अति प्रदीप्त होने वाला सेनापति है । ये नाना धर्मधर्म्य ह । हे शक्रहन्त । यह महान् ऐश्वर्य, या उत्तम जापप्रि रस या सबको सम्मार्ग में चलाने द्वारा ब्राह्मण-वर्ग है । यह राज्यवृद्धि करने वाला प्रजाजन दूर तक फैला हुआ अध्या विज्ञा हुआ उत्तम आसनवत् है । हे शक्तिशालिन् । तू इन पर विराज पर जाग यह आर अच्छी प्रचार इसका पालन कर और उपभोग कर । इसी राष्ट्र में रथ के दो अश्वों के सम्मान राष्ट्र को चलान करने वाले, योग्य वार्यसञ्चालक सेनापति और न्या तर्थाश दोनों को निज रक्षक ने पुच्छ पर, उनको स्वतन्त्रता से वार्य करने दे । (२) जाना तर्थाश होने से 'यज्ञ' है । विज्ञानों द्वारा या प्राणों से संगत होने से 'देवता' है । प्राणकों से शरीर को धारण करने या अति परिण होने से वह निवेध्व' है । जस 'यज्ञ' है । उत्पन्न 'सोम' वीर्य है । जस से चलने द्वारा शरीर बाध है । शक्तिमान् जा मा उत्सवा उपभोग करता है ।

ओ सुतुत इन्द्र याधुर्वीष्ट ब्रह्माणि सान्यस्य क्षारो ।

त्वयाम् वरुणोर्वसा मणतो विष्टामेव यजने क्षीरदोतुम् ॥५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम रीति से स्तुति को प्राप्त होकर, वेदज्ञानों को विद्वान् के समान, ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । हम लोग मान करने योग्य कार्यकर्त्ता, शिल्पी के ज्ञान और रक्षा साधन से सुरक्षित रहकर, उत्तम विद्याओं का उपदेश करते हुए, प्रतिदिन उत्तम ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करें । और अन्न, वल और जीवन भी प्राप्त करें । इति विंशो वर्गः ॥

[१७८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ मुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूव जरितृभ्य ऊती ।

मा नः कामं मह्यन्तु मा धृग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आचार्य ! तेरी जो वह प्रसिद्ध श्रवण करने योग्य ख्याति है, जिस से तू विद्वान् उपदेश्य और स्तुतिशील प्रजाजनों की रक्षा करने में समर्थ होता है, उसी ख्याति से तू हमारे कामना करने योग्य, हमें उत्तम बना देने वाले मनोरथ को भस्म मत कर । मैं तेरी मनुष्यों के योग्य समस्त प्राप्त सम्पत्तियों को सब प्रकार से प्राप्त कदं । (२) हे इन्द्र परमेश्वर जो तेरी श्रुति वेद है जिससे तू विद्वानों को ज्ञान देता है, उससे हमारे मनोरथ को विफल न कर ।

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृण्वन्तु योनौ ।

आपश्चिदस्मै सुतुका अवेष्टन्गामेन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

भा०—राजा सूर्य और विद्युत् के समान तेजस्वी होकर भी हम प्रजाओं को पीड़ित न करें, जो प्रजाएं कि उसकी बहनों के समान उसकी बन्धु होकर वा उसकी शरण में स्वयं आकर एक ही स्थान या देश में नाना कार्य व्यवहार करती हैं, तथा जो इस राजा के हित के लिये प्राणों के समान प्रिय होकर, उत्तम सुख भोग देने हारी होकर देश भर में

फैलकर रहती है। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, देह में आत्मा और घर में पति के समान, हमारे प्रति मित्र भाव से हमें अन्न और बल आदि प्रदान करे। (२) अध्यात्म में 'यानि' देह है। प्राणगण स्वयं अनायास वा आत्मा के बल से चलने वाले होने से 'स्वप्ता' है। वे ही आपोमय होने से 'आप.' हैं। उत्तम देह पालक होने से 'सुतुक' है।

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता ह्यत्र नाधमानस्य कारोः।
प्रभर्ता रथं द्राशुप उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥

भा०—शरण याचना करने वाले कार्यकर्ता जनों के बचनों का सुनने वाला, सग्रामों में शूरवीर, शत्रुहन्ता राजा, अपने नायकों सहित विजय करने वाला होकर जब भी अपने सामर्थ्य में करप्रद राष्ट्र के समीप उत्तम जाजाओं को उठा देने में समर्थ होता है, तभी वह रथमैन्य को लेकर शत्रु पर प्रहार करने वाला भी हो।

एवा नृभिरिन्द्रः सुध्वस्य प्रख्यादः पृक्षो अग्नि मिश्रिणो भूत्।
समर्थ इव स्तवते विवाचि सत्राकारो यजमानस्य शसः ॥ ४ ॥

ग०—शत्रुहन्ता राजा अपने नायकों के साथ मिलकर उत्तम वश प्राप्त करने की इच्छा से, अपने मित्र राष्ट्र के अजय को रक्षा करने वाले शत्रुओं को पराजित करे। अथवा पराजित करने में समर्थ हो। वह कर देने वाले राष्ट्र का उत्तम उपदेष्टा के समान शासक होकर, तत्त्व २ न्याययुक्त आचरण करने वाला न्यायाधीश होकर, एक दूसरे के विरुद्ध वादाप्रतिवादा की वाजिया से युक्त सभामें अथवा परस्पर विवाद का बहस के अवसर में, उत्तम जनों के समान आप्र दाता की हो स्तुति करे, उत्तरा निर्णय रूप से प्रस्तुत करे, आप्र दाता की नहीं। अथवा राज जिस प्रकार रुप का दर फोक कर जनों को ग्रहण करता है उसी प्रकार विवादा न न्यायाधारा आप्र तत्त्व को ले लेवे, अस्तित्वों की नहीं।

त्वया यव मध्वजिन्द्र शत्रुभि ध्यामं महतो मन्यमानान्।

यं प्राता त्वमु नो पुये भूर्विद्यामेष वजने जीरदानुम् ॥५॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! हे उत्तम पूज्य धनाध्यक्ष ! तेरे सहाय से हम बड़े २ अभिमान करने वाले शत्रुओं को भी पराजित करें । तू हमारा रक्षक हो, और तू ही हमारी वृद्धि के लिये हो । हम प्रजागण अन्न और शत्रु को पराङ्मुख कर देने वाला बल और जीवन प्राप्त करें । एकविंशो वर्गः ॥

[१७६]

लोपासुद्राऽगस्त्या ऋषी ॥ दम्पती देवता ॥ छन्द — १, ४ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ५ निचृद्वहती ॥ षडर्च सूक्तम् ॥

पूर्वो॒रहं॑ श॒रदः॑ श॒श्रमा॒णा ढोषा॑ वस्तो॒रुप॑सो॒ जुरय॑न्ती ।

मि॒नाति॑ श्रियं॒ जरि॑मा त॒नूना॒मप्यु॒ नु प॒त्नीर्वृष॑णो जग॒म्युः ॥२॥

भा०—दिन रात और आयु को निरन्तर न्यून २ करने जाने वाले उपाकालों में भी प्रतिदिन निरन्तर श्रमशील होकर गृहकार्य करती और करता हुआ मैं गृहपत्नी और गृहपति, अपनी आयु के पूर्व के वर्ष व्यतीत करें, बाद में वृद्धावस्था देहों के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है । इसलिये ही वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष अपने यौवन काल में ही अपनी धर्म पत्नियों को प्राप्त करें ।

ये चि॒द्धि पूर्वं॑ ऋ॒तसा॑प॒ आस॑न्त॒साकं॑ दे॒वेभि॑रव॒दन्न॑तानि ।

ते चि॒दवा॑सु॒र्नह्य॑न्त॒सापुः॑ समु॒ नु प॒त्नीर्वृष॑भिर्जग॒म्युः ॥ २ ॥

भा०—जो भी पूर्ण विद्यावान्, सत्यज्ञान को समान रूप से प्राप्त करने हारे हों वे ज्ञानप्रदान करने वाले उत्तम विद्वानों के साथ मिलकर सत्यज्ञानों की चर्चा करें । वे भी अपना देह गिरा देते हैं, और जीवन का परम प्राप्य फल नहीं प्राप्त करते, इसलिये हे स्त्री पुरुषो ! जब बड़े २ ब्रह्मचारियों तक के देह अस्थिर हैं और वे भी अपने छोटे जीवन में अपना उद्देश्य नहीं प्राप्त कर सकें तो फिर गृहस्थियों को अपने गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये विलम्ब न करना चाहिये,

अवश्य गृहस्थ का पालन करने में समर्थ स्त्रियां यौवन काल में ही वीर्यलेचन में समर्थ पुरुषों के साथ संगति लाभ करें और उत्तम सन्तान प्राप्त करें ।

न मृषां श्रान्तं यदवेन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।

जयावेदत्र शतनीथमार्जि यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

भा०—क्योंकि विद्वान् पुरुष भी बिना उद्देश्य के श्रम करने वाले की रक्षा नहीं करते । हमलिये हे प्रियतम । हे प्रियतमे ! हम दोनों मिलकर अपने से स्पर्धा या सवर्ष करने वालों का मुकाबला करें । हम गृहस्थ में रहकर शतवषा में व्यतीत करने योग्य जीवनरूप सग्राम का परस्पर मिलकर विजय करें । और एक दूसरे का अच्छी प्रकार प्राप्त करते और एक दूसरे का अच्छी प्रकार आदर करते हुए दोनों पति पत्नी एक दूसरे को प्राप्त करें, गृहस्थ कार्य निभायें ।

नुदस्य मा रुधतः काम आगन्तु आजातो अमुतः कुतश्चित् ।

लोपांमुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमपीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

भा०—इसके हुए नद अर्थात् नाले का जिस प्रकार बल वा वेग वा अत्यन्त ताता है उसी प्रकार वीर्य का निराध करनेहारों विद्याभ्यसनशाल मनुष्यों का काम, गृहस्थ करने का सवर्ष गुप्त स्त्री वा पुरुष को भी प्राप्त होता है । वह इस शरीर के स्वाभाविक धारण से और अन्य बाह्य धारणा से और अन्य भी कितना अवर्णनीय परस्पर प्रेम आदि धारण से ना प्रसूत हो जाता है । ऐसा दशा में स्त्री अपनी तकोच मुद्रा का लोप कर जब रक्षा परके वीर्यलेचन में समर्थ युवा पुरुष को सब प्रकार से प्राप्त होता है । वह ना अधार सी होकर प्रियवान् और गर्वीर बात लेने वाले पुरुष को धारण करें, उसका उपनोष करें ।

इमं तु लोगमान्तिता दृष्टु शीतमुपं नुव ।

अन्वोमान्तिता तत्स मृज्जतु पुण्ड्रामो हि मृत्यै ॥ ५ ॥

भा०—मैं स्त्री चन्द्र के समान आल्हादजनक, उत्तम सन्तान के प्रसव करने में समर्थ पुरुष को, अति निकटतम हृदय की गहरी तहों में मानो रसवत् पिये हुए के समान ही कहूँ, जानूँ और अनुभव करूँ। हम स्त्रीजन जो भी परस्पर का अपराध करें उसको बहुत सी कामनाओं वाला मनुष्य दूर करके हमें सुखी करे।

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं वलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुषोष सत्या देवेष्वशिषो जगाम ॥६॥२२॥

भा०—खोदने के साधन कुदाल, हल आदि से खेत को खोदता हुआ किसान या माली जिस प्रकार क्षेत्र से उत्तम फल प्राप्त करता है उसी प्रकार सैकड़ों दुर्गम अविचल संकटों को दूर फेंक देने में समर्थ, अथवा अभिय, कुवचनादि अपराधों को दूर करने वाला, क्षमाशील पुरुष, अवदारण अर्थात् भेदन करने वाले, संकटों को तोड़ने वाले उपायों से खनन करता हुआ, विघ्नों को दूर करता हुआ, उत्तम प्रजा, उत्तम पुत्र, और बल को प्राप्त कराना चाहता हुआ, ऋषि के समान एक दूसरे के वरण वाले वर वधू दोनों को पुष्ट करता है, और ज्ञान धन के देने वाले उत्तम और विद्वानों के आश्रय पर ही सच्ची २ आशाओं और कामनाओं को प्राप्त करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१८०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ निचृत् ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ६ सुरिक् ॥ पक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवो रजांसि सुयमांसो अश्वा रथो यद्वां पर्यणोसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिवन्ता उपसं सचेथे ॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों का वेगवान् रथ जलपूर्ण मुद्रों और रमण करने योग्य उत्तम २ स्थल प्रदेशों को, और मनोरञ्जन

करने वाले स्थानों को जावे, तो दोनों के घोड़े भी उत्तम रीति से बरा
क्रिये हुए होने चाहिये । लोहे की बनी चक्रवाराणं जिस प्रकार मार्ग को
काटता हुई जाती है उन्हीं प्रकार तुम दोनों के पवित्र आचार परस्पर के
हितकारा आर रमणीय होकर एक दूसरे को पुष्ट करें और सब संकटों

काटें । तुम दोनों जल के समान मगुर २ जीवन के आनन्द रसों का
आम्याद लेने हुए सब दिनों का उत्तम सेवन किया करो ।

युवमन्युस्यायं नक्षथो यद्विपैत्मनो नयैस्य प्रयज्योः ।

म्वसा यद्वा विश्वगूर्तो भराति वाजायेष्टे मधुपात्रिये च ॥ २ ॥

भा०—तुम दोनों विविध विज्ञानों में युक्त, सब मनुष्यों में श्रेष्ठ,
नक्षत्रगति करने योग्य, अब के समान भ्रमणशील परित्राजक के समीप
बैठ विनय में जाया करो । ओर है सब प्रकार का उत्तम करने में लगे हुए
वा पुत्रों । जोर है नारा भौरी के समान मगुरान् मगुर ज्ञान, अन्न,
जलादि पदार्थों का उपयोग आर समग्र करने हार का पुरस्कार । जो भी
विज्ञान तुम्हारे पास स्वयं प्रेम से जाकर आई या बलि के समान तुम
ज्ञान का, ज्ञान, बल आर ऐश्वर्य के सम्पादन करने के लिए अधिक पुष्ट,
सक्तिमान् बनाता है, जोर उत्तम अन्न का उपयोग के लिये तुम्हें उपदेश
करता है, तुम उसको विनय में प्राप्त होओ, उत्तम सदा आदर
में तार करो ।

युवं पर्यं बुध्रियायामपस्त पक्रमामायामव पूर्य गोः ।

अनर्थदानेनो वाशुतस्तू धारो न शुप्रियजते इविष्मान् ॥ ३ ॥

भा०—जब सूर्य के ताप जोर प्रकाश के समान हुई अन्त करन
जाया और उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सत्यज्ञान को प्राप्त करने के अनिलापों
जोष ज्ञान के जोर ज्ञान का प्रदान करें, तब तुम दोनों हे वा पुरस्कार ।
जब जब अनुभव जाया स्वयं ज्ञान की तरफ जाने वाले अपनी बुद्धि
में जाणा न जलादि वाते में प्राप्त जो पद सार्वभूत ज्ञान है उत्तम
प्राप्त करो ।

युवं ह॑ ध॒र्मं मधु॑मन्त॒मत्र॑येऽपो न क्षोदोऽवृ॒णीत॑मे॒वे ।

तद्धा॑ नराव॒श्विना प॒श्वेऽष्टी॑ रथ्यै॒व च॒क्रा प्र॑ति॒ यन्ति॑ मध्वः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने और सब प्रकार के अन्न प्राप्त करने के लिये, तथा तीनों दु.सों से रहित होने और देह के भोजनादि भोग प्राप्त करने के लिये, अन्न सहित घृत को प्राप्त करो, वायक कारणों को समूल उखाड़ देने वाले कर्मों और ज्ञानों को प्राप्त करो । हे नर नारियो ! आप दोनों को सम्यग्दर्शन करने वाले विद्वान् का सत्संग, और मधुर अन्नादि पदार्थों को प्राप्ति रथ के चक्रों के समान परस्पर एक साथ और एक मार्ग पर चलने पर, स्वमेव प्राप्त होवे ।

आ वाँ दानाय॑ ववृ॒तीय द॒स्त्रा गो॑रोहै॒ण तौ॒ग्रयो न जि॒त्रि॑ ।

अ॒पः क्षो॑णी स॒चते॑ माहि॒ना वां जु॒र्णो वाम॑सुर॒हसो॑ यज॒त्रा ॥५॥२३

भा०—जिस प्रकार शत्रुबलों का नाश करने में श्रेष्ठ विजयशील पुरुष, पृथ्वी के भार को अपने ऊपर धारण करने से, नाशकारी शत्रुओं के खण्डन करने के लिये प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम, तथा विद्यावृद्ध में वाणी के ऊहापोह द्वारा, तुमको सब प्रकार का उत्तम ज्ञान देने के लिये, दु.सों के नाशक तुम दोनों को प्राप्त होता हूँ । और जिस प्रकार जल नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं इसी प्रकार आप जन, आप दोनों की महानुभावता से, सूर्य और पृथिवी के समान स्तुति के योग्य आप दोनों को प्राप्त हों, और सब तत्वों का द्रष्टा विद्वान्, ज्ञान और वयस् में वृद्ध, परस्पर संगत और दानशील और यत्नशील आप दोनों को पाप से परे रखे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

नि यद्यु॒वेथे॑ न्रियुतः सु॒दानू॑ उप॒ स्व॒धाभिः॑ सृज॒थ॒ पुर॑न्धि॒म् ।

प्रे॒ष॒द्वेष॒द्वातो॑ न सु॒रिरा॑ म॒हे द॑दे सु॒व्रतो॑ न वाज॒म् ॥ ६ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो । जय तुम दोनों भूत्यों को नियुक्त करते हो । तब तुम दोनों उत्तम दानर्गल आर विघ्नो के नाश करने में चतुर होकर, अपने प्रजा वारण के सामर्थ्यों से, उत्तम पुत्र के वारण योग्य सामर्थ्य को उत्पन्न करने हो । उन समय वह तेजस्वी विद्वान् वायु के समान सबका जावनप्रद होकर सबको उत्तम मार्ग में चलावे, और सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्यापे । और वह उत्तम कर्मसम्पादन करता हुआ प्रयोजन के लिये बल को अपने हाथ में लेवे ।

यथ चिद्धि वीं जरितारं सत्या विप्रन्यामहे वि प्रणिद्धिनावान् ।
अथा चिद्धि प्माश्विनावनिन्या पाथो हि प्मा वृषणावन्ति देवम् ७

भा०—हे पुरुषों के भोग करने वाले स्त्री पुरुषों । उत्तम स्तुति करने हार आर सज्जना में उत्तम सत्यवचन कहने वाले हम तुम दोनों का विविध प्रकार का स्तुति करने ह आर तुमसे नाना प्रकार के बदरवार करने ह । उसी प्रकार हित चाहने वाला विघ्न पुण्य की विविध प्रकार से उपद्रव ह । इसी प्रकार व्यवहारदान करके जन को सुख प्रगल्भत्व प्राप्त होकर तुम लोगों से नाना प्रकार के व्यवहार किया वरे । और उसी प्रकार आप दाना कमा किता सामर्थ्य होकर सब पर सुखों का दृष्टि करने वाले होकर, परनेपर और विघ्नो के समाप स्वर विघ्नदान करने वाले होकर, और सब के समाप स्मित शरीरोंपान्तक जन का पालन किया करो ।

यथा चिद्धि प्माश्विनावन्तु एन्विहंद्रस्य प्रस्रवणस्य सुतौ ।

जगत्स्यो नृश नृप प्रशस्तुः कारापुनीव चितयत्सहस्रे ॥ ८ ॥

भा०—हे व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री पुरुषों । जिस प्रकार विशेष जायज करता हुआ और पुरुषों को उत्ताप फैलाने वाला वायु सहस्रो गर्जना से सबको के समान स्त्री पुरुषों को लक्षित करता ह, उसी प्रकार आप सब से पुष्क उत्तम अवयव दान्य ज्ञान प्राप्त कराने के लिये

अज्ञान और पाप अपराधों को उखाड़ फेंकने वाला, नायक पुरुषों में से उत्तम नेताओं में, प्रशंसा को प्राप्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष, ध्वनि करने वाले मेघ या नक्कारे के समान हजारों उपदेशों या बलवान् उपायों से तुम दोनों को सचेत, प्रबुद्ध और ज्ञानवान् करे ।

प्र यद्वहेये महिना रथस्य प्र स्पन्दा याथो मनुषो न होता ।

धत्तं सुरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ६ ॥

भा०—दानशील पुरुष जिस प्रकार अन्य मनुष्यों के रथ के बल से प्राप्त होता है उसी प्रकार जब तुम दोनों आगे बढ़ने में समर्थ होकर रथादि के सामर्थ्य से आगे बढ़ो, और सबसे आगे बढ़ जाओ । तब तुम दोनों कभी भी असत्याचरण और अशिष्टता का व्यवहार न करते हुए विद्वानों के हित के लिये उत्तम वेगवान् अश्व आदि साधनों को रखो, जिससे हम प्राजावर्ग ऐश्वर्यों से सम्पन्न हों ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।

अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेधं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥२४॥

भा०—हे उत्तम गुणवान् पुरुषो । आज हम आप दोनों के अधीन, रथ के समान संकटों से पार ले जाने वाले नये से नये, दुःखों के निवारक, आकाश में जाते सूर्य के समान ज्ञान वाले विद्वानों की सभा को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पुरुष को, सुख से दुर्गम मार्गों को तय करने के लिये, उत्तम स्तुतिवचनों और अविकारसूचक तथा मानवर्धक पदों से पुकारें । और हम प्रजाजन अन्न, बल, और जीवन प्राप्त करें । इति चतुविंशो वर्गः ॥

[१८१]

आगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते । छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ६,

७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ नवर्च सूक्तम् ॥

कठु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।

अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्ति वसुधित्वा अवितारा जनानाम् ॥१॥

भा०—हे राष्ट्रसम्पत्ति और व्यापक अधिकार का भोग करने वाले श्री पुरुषों । आप दोनों अनित्यापा योग्य उत्तम अन्न आदि धनैश्वर्यों के लिये अतिलोकप्रिय होकर यज्ञ करने की इच्छा करते हुए, कभी जल-कणों के सदृश तुच्छ प्रजाजनों को जब भी उन्नत करते हो वही आप दोनों का बड़ा भारी दान है जो तुम दोनों की बड़ी कीर्ति उत्पन्न करता है । क्योंकि तुम दोनों ही सबको बसाने वाले राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर मनुष्यों के रक्षा करने हारें हो । राजा, रानी, सभा सभाध्यक्ष, मेना, मेनापति आदि युगल 'अश्विना' है ।

आ धामश्वसुः शुचयः पयस्वा वानरहसो दिव्यासो अत्राः ।

मनुजुषो वृषणो वीतिपृष्ठा पृह स्वराजो अश्विना वदन्तु ॥ २ ॥

भा०—ए अश्वों और विडाना के ग्वामा राजग्रापुरुषा । आप दोनों के अधान शुद्ध पवित्र आचार वाले, शुद्ध जल और पुष्टिकारक दुग्ध आदि पान करने हारें, वायु के समान वेग से जान वाले, दिव्य, मनु रा सामा का अनिमग्न कर वेग से जानमग्न करने वाले मन के वेग के

करने योग्य एवं बुद्धि और विवेक में कार्य करने हारो । तुम दोनों में जो पुरुष रथ के समान रमण करने और अन्यो को रमण कराने या अपने आश्रय रखकर ले जाने हारा, पृथ्वी के समान पालन करने हारा, उत्तम वेगयुक्त साधनो का स्वामी, वेगवान् पदार्थों और वीरपुरुषो के बीच में व्यवस्थित, बलवान्, मन से भी अधिक वेग और बल वाला, अपने को ही सबसे प्रथम रखने हारा, सबसे अधिक पूज्य सत्सगयोग्य पुरुष है, वही सुख से लोकयात्रा के लिये हमें प्राप्त हो ।

इहेहं ज्ञाता समवावशीतामरेपसां तन्वा नामभिः स्वैः ।

जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सुरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान अश्विनामक स्त्री पुरुषो । आप दोनों अमुक २ कुल में उत्पन्न हुए, शरीर और अपने गुणों से निष्पाप होवो । आप दोनों परस्पर संगत होकर एक दूसरे को चित्त से चाहो । तुम दोनों में से प्रत्येक विजयशील, एक दूसरे से गुणों में उत्कृष्ट, उत्तम गृहस्थ यज्ञ का करने वाला, तेजस्वी माता पिता का उत्तम भाग्यवान् पुत्र होकर गृहस्थ को धारण करे ।

प्र वां निचेरुः ककुहो वशो अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।

हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथना रजांस्यश्विना वि घापैः ॥५॥२५॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापक स्त्री पुरुषो ! हे जिस प्रकार वृषभ गौ के पीछे कामनावश जाता है उसी प्रकार तुम दोनों में से जो भोगों का भोक्ता और सर्वश्रेष्ठ और सूर्य या सुवर्ण के समान सुन्दर रूप का है, वह कामना करने योग्य उत्तम २ पुत्र आदि पदार्थों को लक्ष्य करके, गृहस्थ आदि आश्रमों को जाता है । तुम दोनों में से प्रत्येक के मन और इन्द्रिय रूप अश्व को, मनोरञ्जन करने वाले नाना राजसू भोग और नाना लोक, ऐश्वर्यों से, हृदय को मथन कर देने वाले आकर्षण से, और उत्तम २ वाद्य आदि संगीतों से, स्वरों से विविध प्रकार से तृप्त करें और उनकी वृद्धि करें । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

प्र वो शूरद्वान्प्रभो न निष्ठात् पूर्वोरिपश्चरति मध्व इष्णुः ।

एवैरन्यस्य प्रीपयन्तु वाज्रैर्वेपन्तीरुध्वो नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के नमान हैं श्रीपुत्रयो । जिस प्रकार सूर्य वर्षणशील होकर सबको व्यापता हुआ मनु अर्थात् जलों को लेना या अन्नो को उत्पन्न करना चाहता हुआ पूर्वप्राप्त जलों को ग्रहण करता है, और वह प्रति क्रतु का स्वामी है, उन्हीं प्रकार तुम दोनों में मे शरत् आदि उत्तम रमण करने योग्य क्रतुओं का स्वामी, निषेधादि करने में समर्थ, सब विभाग पर विजय पाने वाला, मरु अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यो और पुत्रादि फलों की वामना करता हुआ प्रथम मन में चाला दाराओं को प्राप्त करता है । वे हृदय में व्यापन वाला पतिवा ना उन दोनों में मे एक की सुख प्राप्त कराने वाले वामनाओं और उपायों में, नाना भोग्य एवं सानाग्या, वलवान् पुत्रों में, उनको लस और पुष्ट करता है । वे उमड़ता हुई नदियाँ के समान उत्तम फाटि वा तम नुणों में नष्ट होकर उल प्राप्त है । (२) जन्मात्म में सा वर्ष जाने के शरदार वृद्धन आता है । वह मरु फलों का हठा ले पूर्व विद्वानों के वाणिज्य पर जाकर करता है । और वे व्यापक सत्य वाला वाणिज्य उत्तको प्राप्त होता है और अपने धनता से भर जाता है ।

असंजि वा र पृथिवी वेधसा गीर्वाह्ये अभिजा त्रेधा सरन्ती ।

उपरतुतावपत्तं नार्धमान् यामुपयानिन्द्रयुतं हव मे ॥ ७ ॥

से क्षरण = सुख से, चक्षु से और हाथों से अथवा अभिवा, लक्षणा और व्यंजना रूप से । या आकांक्षा, योग्या, आसत्ति से । अथवा शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्यग्बन्ध से ।

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिवर्हिषि सदसि पिन्वते नृन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों ने से तेजस्वी और उत्तम रूपवान् पुरुष की वह उत्तम वाणी, त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं की बनी धर्मसभा के बीच में सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे । बलवान् साड जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में अति प्रसन्न होता है, और जिस प्रकार वर्षणशील मेघ पृथ्वी पर जल वर्षाने में सबको तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार तुम दोनों में से वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् मनुष्य वीर्य-दान देता हुआ स्वयं प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे ।

युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वा वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—हे एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों को उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सबके पोषक सूर्य के समान और राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर, अग्नि अर्थात् तेजस्वी सूर्य और कमनीय प्रभातवेला के समान स्तुति करता है । जो तुम दोनों को सेवा आदि कर्तव्यों का भी पूर्ववत् उपदेश करता हुआ तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे । इस प्रकार हम सभी प्रजाजन अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराट् जगती । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ८ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभूद्विदं वृयुनमो पु भूपता रथो वृषणश्चान्मदता मनीषिणः ।
धियज्जिज्ज्वा धिष्ण्या विशपलावसू द्विवो नपाता सुकृते
शुन्निवता ॥ १ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् पुरुषो । यह सबसे उत्तम देह है । इसमें
बलवान् प्राणा का स्वामी, रमण करने और चलाने हारा आत्मा है ।
उसको उत्तम राति में अलकृत करो, उसमें उत्तम गुण और बल धारण
कराओ, उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो । मृत्यु के समान तेजस्वरूप
उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारं, जान-कर्म दोनों
का प्रेरने वाले, उत्तम प्रजा का उत्पन्न करने वाले, प्रजाओं का पालने
वाला धन बल में सम्पन्न, उत्तम कर्म और आचरण में बड़ा पवित्र व्रत
का पालन करने वाले, देह में बड़ा शुद्धि वक्ष्य रखने वाले, दो प्रधान
पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान है । उनको उत्तम मानधन्यमान्
करो और सब प्रकार से अज्ञादि द्वारा लपट पुष्ट करो और वृत्त पाँचों ।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दध्ना दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वह्ये मध्व आर्चितं तेन द्वाश्वासमुपैषाधो अश्विना ॥ २ ॥

से क्षरण = सुख से, चक्षु से और हाथों से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना रूप से । या आकांक्षा, योग्या, आसत्ति से । अथवा शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध से ।

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिवर्हिषि सदसि पिन्वते नृन् ।
चृषां वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों ने से तेजस्वी और उत्तम रूपवान् पुरुष की वह उत्तम वाणी, त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं की बनी धर्मसभा के बीच में सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे । बलवान् सांड जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में अति प्रसन्न होता है, और जिस प्रकार वर्षणशील मेघ पृथ्वी पर जल वर्षाने में सबको तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार तुम दोनों में से वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् मनुष्य वीर्य-दान देता हुआ स्वयं प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे ।

युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वा वरिवस्या गृणानो विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—हे एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों को उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सबके पोषक सूर्य के समान और राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर, अग्नि अर्थात् तेजस्वी सूर्य और कमनीय प्रभातवेला के समान स्तुति करता है । जो तुम दोनों को सेवा आदि कर्तव्यों का भी पूर्ववत् उपदेश करता हुआ तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे । इस प्रकार हम सभी प्रजाजन अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराट् जगती । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ८ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ अष्टर्च सूक्तम् ॥

अभूद्विदं वयुनमो पु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिज्जन्वा धिष्ण्यां विशपलावसू द्विवो नपाता सुकृते
शुचिवता ॥ १ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् पुरुषो । यह सबसे उत्तम देह है । इसमें
बलवान् प्राणों का स्वामी, रमण करने और चलाने हारा आत्मा है ।
उसको उत्तम रीति से अलंकृत करो, उसमें उत्तम गुण और बल धारण
कराओ, उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो । सूर्य के समान तेजःस्वरूप
उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारे, ज्ञान-कर्म दोनों
को प्रेरने वाले, उत्तम प्रज्ञा को उत्पन्न करने वाले, प्रजाओं को पालने
वाले धन बल से सम्पन्न, उत्तम कर्म और आचरण में सदा पवित्र व्रत
का पालन करने वाले, देह में सदा शुद्धि वन्धये रखने वाले, दो प्रधान
पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान हैं । उनको उत्तम सामर्थ्यवान्
करो और सब प्रकार से अज्ञादि द्वारा दृष्ट पुष्ट करो और तृप्त होवो ।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दक्ष दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहथे मध्व आचितं तेन द्राश्वासमुपयाथो अभिना ॥ २ ॥

भा०—हे जो रथी पुरुष रमणयोग्य गृहस्थरूप रथ को मधुर अन्न
और आमोद प्रमोद और स्नेह से पूर्ण कर धारण करते हैं और जो
अपने देहरूप रथ को बलवीर्य से पूर्ण रखते हैं, वे इन्द्रतम अर्थात्
देहरथ में लगे उत्तम घोड़ों के समान हों, वे सब प्रकार से ज्ञानवान्,
ज्ञानप्रद गुरु को उसी रथ्य गृहस्थ व्रत से प्राप्त हों । (२) अध्यात्म
में वे इन्द्र = आत्मा के प्रमुख बल होने से 'इन्द्रतम' हैं । मुख्य प्राण
होने से मरुत्तम, दुःखनाशक होने से 'दक्ष', देह में हित होने से 'रथ्य',
देह में आश्रित होने से रथात्म हैं । वे अन्न पालित देह का वहन करते
हैं । उसी देह से वे सब प्रकार से चेतनावान् आत्मा को प्राप्त हैं ।

किमत्र दद्या कुरुधः किमासाधे जनो यः काश्चिदहविर्महीयते ।
अति कामेष्टं जुरते प्रणेरसु ज्योतिर्विप्राय कुरुतुं वचस्यवे ॥ ३ ॥

भा०—हे गुरुओ ! आप विद्या का प्रक्रम करने वाले शिष्य की प्रज्ञा या मति को पार करते हो और वेदवाणी के इच्छुक विद्वान् जो कोई भी बिना दान भेटे के भी आता है उसके लिये क्या आप दोनों उदासीन रहते हैं ? या क्या करते हैं ? उदासीन नहीं रहते, प्रत्युत् ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हो । (२) प्राणापान इस देह में कैसे रहते हैं ? क्या करते हैं ? जो पुरुष अन्न नहीं खाता उसकी क्रियाशक्ति और प्रज्ञा को न्यून कर देते और पीड़ित कर देते हैं । जो वाणी को बोलने वाला 'विग्र' अर्थात् विविध उपायों से शक्ति को अन्नादि से पूर्ण करता है उसको वे प्रकाश, तेज देते हैं ।

जम्भयंतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरितू रत्तिर्नी कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

भा०—सब ओर से भौकते और भयकर चीत्कार आदि करते हुए कुत्ते के स्वभाव के जन्तुओं और शत्रुओं का अच्छी प्रकार नाश करो । संग्रामकारी पुरुषों को मारो । हे विद्या और बल से युक्त स्त्री पुरुषों ! आप दोनों उक्त कर्मों के करने के नाना साधनों को प्राप्त करो और जानो । और आप लोग उत्तम उपदेश से विद्या प्राप्त करके हरेक वाणी को उत्तम रमणीय गुणों से अलंकृत, रत्नों से जड़ी लड़ी के समान बनाओ । ऐसे आप दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए मेरे प्रशसनीय उपदेश को जानो और उसका पालन करो ।

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु सवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्रयाय कम् ।

येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपसनी पैतथुः क्षोदसो मुहः ॥५॥२७॥

भा०—आप दोनों स्त्री पुरुष वर्ग मिलकर समुद्रों में, ऐसे २ अपने जनों से युक्त या दृढ़ पक्षों और पतवारों वाले जहाज को, शत्रुनाशकारी वा लेन देन करने वाले व्यापारी पुरुषों के उपयोग के लिये बनाओ । जिससे विद्वानों में विद्यमान ज्ञान के द्वारा सुप्त से गमन करने में समर्थ

होकर दूर २ तक पहुँचो, और बड़े भारी जलसागर के भी पार करने में समर्थ होवो (२) अध्यात्म में—यह देह प्राणों के आश्रय पर बना तत्सार सागर से पार उतरने का 'प्लव' है, आत्मायुक्त होने से 'आत्म-न्वान्' है । वाम, दक्षिण पार्श्व पक्षों के तुल्य हैं । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अत्रविद्धं तौग्रयमुप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिपिताः पारयन्ति ॥६॥

भा०—समुद्र के मध्य भाग में साय लगो चार २ नौकाएं हों, जो समुद्रों के बीच में आलम्बन रहित, भयजनक अन्धकार के समान गंभीर जल में फसे और निराश हुए व्यापारी जन को जल अग्नि से युक्त अश्व अर्थात् एंजिनों के दो दो स्वामियों से सज्जालित होकर उसे पार पहुँचा दें । (२) अध्यात्म में—'जठल' मध्यस्थ मुरय चित्त में लगी चार नावें चार अन्तःकरण हैं । देहधारी यह 'तौग्र', जीव है । जो आलम्बन रहित, निरुपाय अविद्यान्धकार में फसा और प्राणों में या लिङ्ग शरीरों में फसा रहता है । अथवा चार नौका चार वेद, जो अज्ञान में फसे को तारते हैं ।

कः स्विदृक्षो निष्ठितो मध्ये अणैस्तौ यं तौग्रयो नाधितः
पर्यपस्वजत् । पूर्णा मृगस्य पुतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः
ध्रोमेताय कम् ॥ ७ ॥

भा०—जल के बीच में कौन सा वह वृक्ष खूब अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित है जिसको उत्तम बलवान् पुरुष जल के बीच में अति दुःखी होकर प्लव जातावात् होकर खूब अच्छी प्रकार पकड़ लेता है ? गिरते हुए वानर के लिये जिस प्रकार पत्ते ही उसको सम्भालने के लिये पर्याप्त होते हैं, उसी प्रकार विद्वान् स्त्री पुरुष भी गिरने वाले, आश्रय की खोज लगाने वाले पुरुष के आलम्बन के लिये पालन करने वाले साधन बनकर, अग्नि के लिये उसे ऊपर उठा लिया करें । पूर्व प्रश्न का उत्तर है—जिस

प्रकार जल से भरे सागर के बीच आलम्बन के लिये वह वृक्ष की बनी नौका ही है जिसे व्यापारी वा परराष्ट्र विजयी आश्रय के लिये पकड़ता है ।

तद्वा नरा नासत्यावन्तु व्याद्यद्वां मानांस उच्यमवोचन् ।

अस्माद्वद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

भा०—हे सदा सत्य का भाषण, मनन और आचरण करने वाले नर नारी जनो ! तुम दोनों के माननीय पुरुष जो वेदोपदेश करें, वह तुम दोनों को सदा अनुकूल हो । इस विद्वानों की सभा से आज अर्थात् अभी तुम निर्णय व्यवस्था आदि प्राप्त करो । इस प्रकार हम सब लोग उत्तम मनोकामना और बल और दीर्घ जीवन प्राप्त करें । इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

[१८३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः ४ भुरिक पङ्क्तिः ।

५, ६ निचृत् पङ्क्तिः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं मृत्तम् ॥

तं युञ्ज्वां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न प्रणेः ॥ १ ॥

भा०—जो मन से भी अधिक वेगवान् है, जो तीन बन्धनों वाला, और जो तीन चक्रों वाला है, उसके साथ बलवान् दो अश्व जोड़ो । तीन धातुओं के बने जिस द्वारा उत्तम कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष के गृह को, पक्षों से पक्षी के समान, प्राप्त होवो । अध्यात्म में—मन से भी अधिक वेगवान् आत्मा है, उसकी तरफ बलवान् प्राण और अपान दोनों का योग करो । योगाभ्यास के बल से उनको वश करो । आत्मा युक्त देह सत्व, रजस्, तमस् तीनों से बंधा होने से 'त्रिवन्धुर' है । मन, वाणी और काया इन तीन कारकों से युक्त होने से 'त्रिचक्र' है । वह वात, पित्त, कफ से युक्त होने से त्रिधातु है । मन आत्मा दोनों योग द्वारा उस प्रभु परमेश्वर का साक्षात् करें ।

सुवृद्धयो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।

वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोपसा सचेथे ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सुप्त से चलने हारा यान पृथिवी के चारो ओर जाया करता है, जिस पर अज्ञादि ग्राह्य पदार्थों के प्राप्त करने के लिये काम काज वाले आदमी बैठते हैं, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! सत् आचार-युक्त, रमण करने और कराने वाला गृहस्थ-रथ, निवास योग्य भूमि के समान अपने आश्रय पर बसाने वाली स्त्री को प्राप्त होकर रहता है, जिस में परस्पर के सम्पर्क, सग, अनुराग और प्रेम के आधार पर रहकर दोनों कार्यकुशल स्त्री पुरुष विराजते हैं । हे स्त्री पुरुषो ! देह में उत्पन्न होने वाले उत्तम रूप को भी प्राप्त करो । सूर्य की कन्या उषा अर्थात् प्रभात वेला के सवा नये रूप में प्रकट होने वाले कान्तियुक्त रूप से युक्त होकर, तुम दोनों स्त्री पुरुष परस्पर मिलकर रहो ।

आ तिष्ठतं सुवृत्तं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।

येन नरा नासत्येपयध्यै वर्तियथिस्तनयाय तमने च ॥ ३ ॥

भा०—हे नरनारी जनो ! आप दोनों सदाचारयुक्त गृहस्थाश्रम रूप रथ पर आकर स्थित होवो । जो तुम दोनों को रमाने हारा, अक्ष, ज्ञान आर बल से युक्त तुम्हारे कर्तव्य कर्मों के अनुकूल रहता है । हे कर्मी परस्पर असत्य व्यवहार न करने हारो । आप दोनों जिस द्वारा गृह और लोकयागा तथा अपनी स्थिति को प्राप्त करने या निवाहने के लिये और पुत्रप्राप्त या अपने आत्मा या देह के सुख के लिये प्राप्त होते हो उस रथस्वरूप गृहस्थाश्रम पर आरुढ़ होवो ।

मा वा वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्कमुत माति धक्तम् ।

श्रुयं वा भागो निहित इयं गीर्दिसा विप्रे वा निधयो मधूनाम् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों में से कोई भेड़िये के समान कुटिला-धारा हितक या खोर स्वभाव वाला पुरुष होकर एक दूसरे को अपमानित

न करे । और तुम में से किसी को चोरस्वभाव की हिसाशोल स्त्रिया भी अपमानित न करें । तुम दोनों एक दूसरे का कभी त्याग न करो । तुम दोनों का यह परस्पर सेवन करने योग्य पृथक् २ भाग है । यह वेदवाणी व्यवस्था करने वाली है । हे एक दूसरे के दुःखों का नाश करने वाले ! ये मधुर अन्न, जलो, उत्तम फलों के खजाने सब तुम्हारे ही उपभोग के लिये हैं ।

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दक्षः हवतेऽवसे द्विविष्मान् ।

दिशं न द्विष्टामृजूयेव यन्ता मे हव नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

भा०—हे दुःखों और दुःखदायी कारणों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषों । जो पुरुष उत्तम वेदवाणी का विद्वान्, बहुतों को दान देने वाला, भ्रमणशील परिव्राजक या विविध दुःखों से रहित, उपादेय ज्ञान बल और ऐश्वर्यादि से युक्त होकर, रक्षा के लिये तुम्हें अपनी शरण में लेता है और जो निश्चित दिशा के समान पूर्वाचार्यों और उपदेशों द्वारा निर्दिष्ट और उपदिष्ट दिशा की ओर अत्यन्त सरल मार्ग से ले जाने हारा हो, वही तुम दोनों के लिये रथ में लगे वृषभ के समान सन्मार्ग पर ले जाने वाला हो । हे सदा सत्य-व्यवहार वाले स्त्री पुरुषों ! आप दोनों मेरे वचन को श्रवण करो ।

अतारिष्म तमसस्परमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पृथिभिर्देवयानैर्विद्यामेपं वृजनं जीरदानुभ ॥६॥२६॥४॥

भा०—हम लोग इस दुःखदायी अविद्यान्धकार के पार पहुँचें और पहुँच गये हैं । आप दोनों के प्रति यह बहुत से कर्त्तव्यों का उपदेश प्रत्येक को पृथक् भी कह दिया जाता है । आप दोनों विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से जीवन यात्रा करो । हम लोग भी इसी प्रकार से उत्तम अन्न, कामना, बल, और उत्तम जीवन प्राप्त करते हैं । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[१८४]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द — १ पक्षिः । ४ भुरिक पक्षिः ।

५, ६, निचृत् पक्षि. । २, ३, विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

ता वामस्य तावपरं हुवेमोच्छ्रन्त्यामुपसि वह्निरुक्थैः ।

नासत्या कुहं चित्सन्तावुर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥

भा०—हे असत्याचरण से रहित विद्वान् स्त्री पुरुषो । आप दोनों चाहे कही भी रहे, तो भी ज्ञान का वहन करने या दूसरो तक पहुँचाने वाला विद्वान् व हम लोग, प्रभात वेला के खुल जाने पर तुम दोनों को आज नित्य उत्तम उपदेश दें । उन तुम दोनों को अगले दिन भी प्रेम से उपदेश करें । तुम दोनों में से उपा के समान नित्य अपने रूप को उज्ज्वल प्रसन्न दिखाने वाली कमनीय स्त्री के निमित्त विवाह करने वाला पुरुष उत्तम वचनो से बोले । चाहे तुम दोनों किसी भी दशा या देश में रहो पर अस्तव्य-व्यवहार कभी न करने वाले होकर रहो । और जिस प्रकार वैश्य अपना माल सबसे उत्तम मूल्य देने वाले को देता है उसी प्रकार तुम दोनों में जो स्वामी है वह अधिक सुख देने वाले दूसरे अंग के लिये परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देना वाला ही रहे ।

अस्मे ऊ पु वृषणो मादयेथामुत्पूणीर्हितमूर्ध्या मदन्ता ।

धृत म अच्योक्तिभिर्मतीनामेषां नरा निचंतारा च कर्णौ ॥ २ ॥

भा०—हे वद्वान् स्त्री पुरुषो । आप दोनों वर्ग व्यवहार करने में कुशल हम लोगों को आनन्दित रखो । हृदय की प्रेमतरंग से दोनों सुप्रसन्न रहते हुए उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों तक उठकर उत्तको जादर से प्राप्त करो, उन तक उत्साहयुक्त होकर पहुँचो । हे उत्तम नरनारिणो । प्राप्त सपदाओ और ज्ञानों का सचय करने वाले स्त्री पुरुषो !

मननशील पुरुषों के उत्तम २ वचनों से मैं आप दोनों को प्राप्त करता हूँ ।
आप दोनों मेरे वचनों को कानों से श्रवण किया करो ।

श्रिये पूषन्निपुक्रतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।

वृच्यन्ते वां ककुहा अण्डु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरः ॥ ३ ॥

भा०—हे पालन पोषण करने वाले वर वधू के माता पिता जन !
जिस प्रकार कोई जन्तु बाण से विध कर तन्मय हो जाता है इसी प्रकार
एक दूसरे के प्रति मनोकामना रूप बाण से आहत हुए स्त्री और पुरुष
दोनों यदि कभी परस्पर असत्य आचरण असत्य भाषण चोरी आदि न
करके धर्मपूर्वक रहने वाले हों तो वे दोनों एक दूसरे की शोभा और
एक दूसरे के आश्रय के लिये होते हैं । प्रजाओं में प्रसिद्ध २ विद्वान्
पुरुष भी सूर्य की कान्ति या उषा के समान तेजस्वी पुन उत्पन्न करने
वाली वधू और बहुत से सामर्थ्यों से युक्त महान् स्वयंवृत पति, इन दोनों
के परस्पर के धारण रूप विवाह को लक्ष्य करके, गुजरे हुए अतीत काल
के जोड़ों की भी प्रशंसा किया करते हैं ।

अस्मे सा वा माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।

अनु यद्वा श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील, एक दूसरे के प्रति अच्छी प्रकार समर्पण
करने वाले वर वधू ! विद्वान् पुरुष यज्ञ की कामना से उत्तम वीर्यवान्
पुत्र को प्राप्त करने के लिये, तुम दोनों को देख २ कर प्रसन्न होते हैं ।
हमारी कामना है कि तुम दोनों की वह उत्तम दानशीलता या परस्पर
समृद्धि हमारे लिये मधुर, रम्य और उत्तम फलजनक हो । आप दोनों
प्रमाणभूत और मानवीय आप्त, क्रिया कुशल अनुभवी पुरुष के कहे
उपदेशों को प्रसन्नता से प्राप्त करो ।

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृत्ति ।

यातं वर्तिस्तनयाय तमने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों को ज्ञानवान् पुरुषों ने पाप के मार्ग से बचाने के लिये यह वेदमन्त्रों द्वारा उपदेश किया है । हे ऐश्वर्य-क्तो ! आप दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए, पाप या विघ्न आधाओं को दूर करने में समर्थ पुरुष के अधीन या विघ्नादि से रहित मार्ग में अति प्रसन्न होते हुए, अपनी सन्तान और अपने आप की उन्नति के लिये, उत्तम तथा दुःख से रहित मार्ग और गृह या शरण को प्राप्त करो ।

प्रतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
रह यातं पृथिभिर्देदयानैर्विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त १८३ । मन्त्र ६ ॥ इति प्रथमो वर्गः ॥

[१८५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्द — १, ६, ७, ८, १०, ११
त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कृतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा ज्ञाते कवयः को विवेद ।
विश्वं तमना विभृतो यद्ध नाम वि वर्तते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

भा०—यावा पृथ्वी रूप से माता पिता के कर्त्तव्यों का वर्णन । माता और पिता इन दोनों में से पहले कौन उत्पन्न हुआ, और बाद में कौन उत्पन्न हुआ, अथवा मुख्य कौन और गौण कौन है ? और यह भी बतलाओ कि वे दोनों किस प्रयोजन से उत्पन्न हुए हैं ? हे दीर्घदर्शी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग बतलावें कि इस तत्त्व का रहस्य कौन भली प्रकार से जानता है । यस्तुतः ये दोनों माता और पिता स्वयं अपने आप अपने देह से और अपनी आत्मा से सब जगत् को या समस्त 'विश्व' अर्थात् जीवमात्र को विविध प्रकार से धारण पोषण करते हैं । और जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी अपने सामर्थ्य से समस्त जल को धारण करती हैं उसी प्रकार, रात

और दिन के समान और रथ के दो पहियों के समान विविध प्रकार से वर्तते हैं।

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तुं पृथ्वीं गर्भमपदी दधाते ।

नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार विचलित न होते हुए, स्वयं पादों से रहित होकर भी सूर्य-पृथ्वी दोनों विचरणशील चरणों से युक्त जीव ससार को अपने भीतर धारण करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी अधर्मपथ पर न चलते हुए और धर्ममार्ग या गृहस्थ में स्थिर रहते हुए स्वयं विशेष पद या महत्वाकांक्षा से रहित होकर भी, स्पर्शरहित विज्ञान चेतनायुक्त चरणों से युक्त गर्भ को धारते हैं। माता पिताओं की गोद में पुत्र के समान पृथिवी और आकाश दोनों स्थायी सर्वग्रेरक सूर्य को धारण करते हैं। माता और पिता दोनों हमें असत्याचरण से उत्पन्न हुए तथा असामर्थ्य से बचावें।

अनेहो द्वात्रिंशदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।

तद्रोदसी जनयतं जरित्रं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों का जीवों के प्रति दान अखण्ड आकाश, सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी से ही उत्पन्न होता, और वह अविनाशी, पीड़ा न देने वाला, अन्नादि से सम्पन्न, सुखजनक, निष्पाप होता है, उसी प्रकार अखण्ड चरित्रवान् माता पिता का भी दिया हुआ वन निष्पाप, अक्षय, वध आदि द्वारा जीवन नाश के संकटों से रहित, बिना किसी का बंध किये ही प्राप्त होने वाला, अन्न से युक्त, अति सुखकारी हो। माता पिता उपदेश दाता होकर, परोपदेश करने वाले पुत्र के हितार्थ सभी ग्राह्य पदार्थों को उत्पन्न करें। माता और पिता दोनों हमें बड़े अपराध से बचावें।

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती अनु प्याम रोदसी देवपुत्रे ।

उभे देवानामुभयोभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्नादि पालन सामर्थ्य द्वारा, पृथिवी और आकाश सूर्य को पुत्र के समान धारण करते हुए, सबका पालन करते हुए भी कभी पीड़ित होकर अपने कार्य से शिथिल नहीं होते. उसी प्रकार माता और पिता भी अन्न आदि पालन और रक्षा के सामर्थ्य द्वारा पुत्रों और प्रजाओं की पालना और रक्षा करते हुए कभी संताप और दुःख अनुभव करने वाले न हुआ करें। वे दोनों सन्तानों को उपदेश करने और कुपथों से रोक धाम करने वाले हुआ करें। वे दोनों विद्वान् पुत्रों के माता पिता बनें, अर्थात् उत्तम सन्तानों को जानें। जिस प्रकार दोनों आकाश और पृथ्वी सूर्य से प्रकाशमान् दिन और चन्द्र के प्रकाश वाली रात्रि दोनों के दोनों रूपों से जीवों की कष्ट से रक्षा और पालन करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी प्रकाशवान् दिनों के दिन-रात्रि दोनों रूपों में हमें उत्तम योनि में न होने रूप महान् कष्ट से बचावें, वे सन्तानों को उत्तम रीति से पैदा और पालन करें।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।

अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो
अभवात् ॥ ५ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और भूमि दोनों, एक दूसरे से सदा मिले हुए, अति बलशाली, तीनों भागों में मिले हुए, भाई बहन के समान या एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धु होकर, संसार के चन्द्र को सब प्रकार से धारण करते हैं, इसी प्रकार पिता और माता दोनों परस्पर सगत होकर, युवा अवस्था में विद्यमान, एक दूसरे को प्राप्त होने वाले, अपने माता पिताओं के समीप बालक बालिका के समान उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले होकर भी उत्पन्न बालक या नानि को प्रेम वश बार २ सूधते या चुम्बन करते हुए हमें अस्सामर्थ्य से उत्पन्न दुःखों से मुक्त करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

उर्वी स॑न्ननी बृ॒हती ऋ॒तेन॑ हुवे दे॒वाना॑मव॒सा जनि॑त्री ।

द॒धाते॑ ये अ॒मृतं॑ सुप्रती॒के द्यावा॑ रक्ष॒तं पृथि॑वी नो अ॒भवा॑त् ॥६॥

भा०—स्त्री पुरुष, पति पत्नी या माता पिता बड़े विशाल हृदय वाले, घर के समान सबको अपनी शरण में लेने वाले, प्रजाओं को बढ़ाने वाले, धन अन्न और सत्यज्ञान से प्रिय बन्धुजनों की रक्षा आदि द्वारा उनको उत्पन्न करने हारे हो । उनको मैं आदरपूर्वक स्वीकार करता हूँ । जो वे दोनों पुत्र प्रजा आदि को और अन्न जल आदि को धारण करते हैं वे उत्तम सुख और ज्ञान प्रतीति वाले, सूर्य पृथिवी के समान होकर कष्ट से हमारी रक्षा करें ।

उर्वी पृथ॒वी बहु॑ले दूरे॒अन्ते॑ उप॑ ब्रुवे नम॑सा यु॒क्षे अ॒स्मिन् ।

द॒धाते॑ ये सु॒भगे॑ सुप्रतू॒र्ती द्यावा॑ रक्ष॒तं पृथि॑वी नो अ॒भवा॑त् ॥७॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता बड़े यशस्वी, बहुत से पदार्थों के ला देने वाले, दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो उत्तम ऐश्वर्यवान्, अति वेगवान्, कार्यकुशल होकर बिना विलम्ब के हमारा पालन पोषण करते हैं, मैं उनको इस आदर सत्कार के अवसर पर बड़े आदर भाव से बुलाऊँ । वे आकाश और पृथिवी के सम्मान हमें दुःख से बचावें ।

दे॒वान्वा यच्च॑कृ॒मा कच्चि॑दा॒णः सखा॑यं वा स॒दमि॑ज्जास्प॒र्ति वा ।

इयं घी॑र्भूया अ॒व्याना॑मेषां द्यावा॑ रक्ष॒तं पृथि॑वी नो अ॒भवा॑त् ॥८॥

भा०—हम लोग विद्वानों के प्रति जो भी किसी प्रकार का अपराध करें, और कोई भी अपराध मित्र के प्रति या पत्नी पति जमाता या वर-वधू के प्रति करें, उन सब अपराधों को दूर करने का उपाय मदा ही यह दृढ़ व्रत हो । सूर्य और पृथिवी के समान माता पिता हमें पाप से बचावें ।

उ॒भा शं॒सा न॒र्या मा॒मावि॒ष्टासु॒भे मा॒मुती॑ अ॒वसा॑ स॒चेता॑म् ।

भू॒रि॑ चि॒द्वर्यः॑ सु॒दास्त॑रा॒येषा॑ म॒दन्त॑ इ॒षये॑म दे॒वाः ॥ ६ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता दोनों स्तुतियोग्य, और मनुष्यों के हितकारक होकर मेरी रक्षा करें । और वे दोनों उत्तम रक्षक होकर रक्षण, ज्ञान, आदि गुणों से हमें प्राप्त हो । वणिग् जन जिस प्रकार उत्तम धन देने वाले को अधिक पदार्थ प्रसन्न होकर देता है उसी प्रकार हम ऐश्वर्यवान् होकर, अन्नादि से यथेच्छ प्रसन्न होकर, बहुत अधिक धन और ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा और यत्न करें ।

ऋ॒तं दि॒वे तद॑वोचं पृथि॒व्या अ॒भि॒थ्रावा॑य प्रथ॒मं सु॑मे॒धाः ।

प्रा॒ताम॑व॒द्यादु॑रि॒तादु॒भिके॑ पि॒ता मा॒ता च॑ रक्ष॒तामवो॑भिः ॥ १० ॥

भा०—मैं उत्तम ज्ञानवान् होकर, सूर्य के समान तेजस्वी राजवर्ग और पृथ्वी के समान उसके आश्रय प्रजागण के हित के लिये, सब से प्रथम और सब से उत्तम उस सत्यज्ञान, सत्यव्यवस्था वा वेदवचन का उपदेश करता हूँ, जो सबको श्रवण करने योग्य है । दोनों ही परस्पर प्रेमयुक्त होकर हमारी निन्दा योग्य पाप से रक्षा करें । और ज्ञाना रक्षण के उपायों से पालन करें और वे ही दोनों हम सब की रक्षा करें ।

इ॒दं सा॑वा॒पृथि॒वी स॒त्यम॑स्तु पि॒त॒र्मा॒तर्य॑दि॒होप॑ब्रु॒वे वा॑म् ।

भू॒तं दे॒वाना॑म॒वमे॑ अ॒वो॒भिर्वि॒द्यामे॑षं बृ॒जनै॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ११ ॥ ३ ॥

भा०—हे आकाश और पृथिवी के समान माता और पिता ! जो भी मैं यहाँ इस लोक में आप दोनों के सम्बन्ध में अन्यो को उपदेश करूँ या आप दोनों को जो कुछ कहूँ वह सत्य ही हो । आप दोनों सदा विद्वानों और उत्तम गुणों के रक्षण आदि साधनों से सदा समीप और आश्रयस्वरूप होकर रहो । जिससे हम सब लोग अन्न, उत्साह, बल, और जीवन प्राप्त करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ विरवेदेवा ॥ छन्दः—१, ८, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ११ मुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७ मुरिक् पक्तिः ६ पक्तिः । १० स्वराट् पक्तिः ॥ एकादशार्चं मूक्तम् ॥

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव पंतु ।

अपि यथा युवानो मत्संथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥

भा०—समस्त प्राणियों को सन्मार्ग पर ले जाने वाला, सबका उत्पादक, प्रेरक और प्रकाशक परमेश्वर, सब सुखद पदार्थों और ज्ञानों का दाता, सब प्रकार और सर्वत्र प्राप्त करने योग्य व्यापक ज्ञान के स्वरूप में समस्त संसार को व्यापता है । वह उत्तम स्तुतियों और स्तुत्य विभूतियों से हमें प्राप्त हो । हे बलवान् युवा पुरुषो ! आप लोग भी उत्तम मन की प्रेरणा, प्रबल इच्छा शक्ति और प्रज्ञा द्वारा समस्त जगत् को और हमें भी आनन्दित प्रसन्न करो ।

आ नो विश्व आस्का गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सृजोषाः ।

भुवन्यथा नो विश्वे वृधासुः करन्तसुपाहा विधुरं न शर्वः ॥ २ ॥

भा०—न्यायाधीश, शत्रुओं का नियन्ता, अति श्रेष्ठ राजा सभी शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले अन्य भी जो उत्तम विद्वान् और तेजस्वी, विजयेच्छुक पुरुष हों वे सभी समान प्रेम से युक्त होकर हमें प्राप्त हों । जैसे भी होवे हर प्रकार से सब हमें बढ़ाने वाले हों । वे बल और अन्न को शत्रुविजय और दुष्टों को दमन करने वाला बनावें । वे उस साम्राज्य-पालक बल को प्रजा को व्यथा देने वाला, दुःखदायी न बनावें ।

प्रेष्ठो अतिथि गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सृजोषाः ।

असृद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्यदारिगुर्तः सुरिः ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम जनो ! तुम लोग शीघ्र सन्मार्ग पर जाने हारो, प्रेम व्यवहार वाले, आप लोगों में से सबसे अधिक प्रिय, अग्नि या दीपक

के समान सबके आगे चलने और मार्ग दिखाने वाले अतिथि के समान पूज्य विद्वान् की स्तुति करो । जिससे वह सर्वश्रेष्ठ हममें रहकर उत्तम कीर्तिमान् हो । वह हमारी अन्नादि समृद्धियों और हमारी इच्छाओं को पूर्ण करे । शत्रुओं पर उद्यत होकर तथा सर्वप्रेरक और सञ्चालक होकर आयुधों और सेनाओं को भी प्रेरित करे ।

उपं वृ एपे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुधेव धेनुः ।

समाने अहन्विमिमानो अर्कं विपुरुषे पर्यसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रातः और सायं उस ही अन्तरिक्ष में नाना रूप के जलों के वर्षण के निमित्त एक-जैसे दिन में भी सूर्य को विशेष २ रूपों का बना देते हैं, और कालपर्यय से अन्न सस्यादि सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार उत्तम दुहने योग्य गौ अपने एक ही स्तनमण्डल में नाना रूप में बदलने वाला दूध प्रदान करने के लिये एक ही दिन में सूर्य से युक्त दिन को व्यतीत करके विनय भाव से घर को आ जाती है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! मैं समान अन्तरिक्ष के नीचे नाना रूप के पुष्टिकारक अन्न के निमित्त एक समान दिन में ही अर्चना करने योग्य विधान या उत्तम उपदेश प्रकट करता हुआ, शत्रु और मित्र प्रजाओं को नमाने वाले शस्त्रबल और विद्याबल या विनय से और विजय करने की इच्छा से, आप प्रजाजन और विद्वान् लोगों के समीप प्राप्त होता हूँ ।

उत नोऽहिर्वुध्न्योऽमयस्कृ. शिशुं न पिप्युधीव वेति सिन्धुः ।

येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सबके परम मूल में स्थित, सर्वाश्रय अविनाशी परमेश्वर ऐसे सुखी करे । जो सबको व्यवस्था में बाधने वाला परमेश्वर दूध पिलाने वाली माता के समान हन सुख की नीद सोने वाले बालकों को सदा प्राप्त होता है । जिसके बल से प्राणों को न गिरने देने वाले देह को हन अपने बसा करते और जिसको बलवान् मन की गति से चलने वाले

जीवगण या इन्द्रियगण आत्मारूप से अपने ऊपर धारण करते हैं । इति चतुर्थो वरगः ॥

उत न ईं त्वष्टा गुन्त्वच्छा स्मत्सुरिभिर्भिपित्वे सजोषाः ।

आ वृत्रहेन्द्रश्चर्याणि प्रास्तुर्विष्टमो नरा न इह गम्याः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों सहित व्यापने के कार्य में उत्तम है और जिस प्रकार मेवों के आवात करने वाला सूर्य या विद्युत् क्षेत्रकर्षण करने वाले किसानों के मनोरथों को पूरा कर देता है, उसी प्रकार शत्रुओं का नाश करने वाला तेजस्वी पुरुष प्रजा के प्रति अति स्नेहवान् होकर, राष्ट्र पर सब प्रकार से व्यापने और सब प्रकार से उसकी रक्षा और पालन करने के लिये विद्वान् पुरुषों सहित हमारे इस राष्ट्र को प्रशंसनीय रूप से प्राप्त हो । वह ही प्रजाजनों और विद्वानों को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण करता हुआ, बढ़ते और घेरते हुए विघ्नकारी शत्रु और दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर, सब नायकों में से बहुविध शक्तियों और ऐश्वर्यों से सब से महान् होकर, हमारे इस राष्ट्र में आवे, हमें प्राप्त हो ।

उत न ईं मृतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तृणं रिहन्ति ।

तर्प्ता गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरा न सन्त ॥ ७ ॥

भा०—समस्त नायकों में से उत्तम प्रशंसनीय पुरुष को जिस प्रकार घोड़ों को रथों में जोतने वाले और बुद्धिमान् वीर प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार गौएँ नन्हे बछ्छे को प्रेम से चाटती हैं और जिस प्रकार गौएँ युवा वीर्यवान् सांड को कामनावश चाटती हैं, और जिस प्रकार सन्तानाभिलाषी स्त्रियाँ सब मनुष्यों में या दृढ़ पुरुष को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हमारे मननशील मनुष्य भी शीघ्रगामी जन्म आदि साधनों से युक्त होकर, कष्टों से पार करने वाले, सब मनुष्यों में उत्तम पुरुष को प्राप्त होते हैं । उसको ही सब स्तुति वाणिया भी प्राप्त होती है ।

उ॒त न॑ ई॒ म॒रुतो॑ वृ॒द्धसे॑नाः स्म॒द्रोद॑सो॒ सम॑नसः स॒दन्तु॑ ।

पृ॒षद॑श्वासोऽव॒नयो॑ न रथा॑ रि॒शाद॑सो मि॒त्रयु॑जो न॒ दे॒वाः ॥८॥

भा०—सैन्यबल को बढ़ाकर सैनिकों के अधिपति नायक लोग एक पित्त होकर, आकाश और पृथ्वी के बीच वायुगण के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के बीच में निष्पक्ष रह कर हमारे इस राष्ट्र को अवश्य प्राप्त हों । भूमियों के समान देश की रक्षा करने वाली रथ सेनाएं हृष्टपुष्ट प्रबल अश्वों से युक्त होकर, सूर्य के साथ लगे किरणों के समान अन्धकार-वत् शत्रु पर विजय की इच्छा करने वाले राजा लोग और प्रजा को ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य लोग हमारे राष्ट्र को प्राप्त हों ।

प्र॒ नु यदे॑षां म॒हिना॑ चि॒क्त्रि॒त्रे प्र॑ यु॒ञ्जते॑ प्र॒युज॑स्ते सु॒वृ॒क्तिः ।

अ॒थ यदे॑षां सु॒दि॒ने न॑ शरु॒र्विश्व॑मे॒रि॒णं पु॒षाय॑न्त॒ सेनाः॑ ॥९॥

भा०—जो इन वीरों और विद्वानों के बीच में अपने बड़े विज्ञान और बल के सामर्थ्य से विशेष ज्ञान प्राप्त करते और शत्रुओं को दूर करने का उपाय करते हैं वे उत्तम प्रयोगों के कुशल पुरुष शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने के बल और साधन का प्रयोग करते हैं । उत्तम सुप्रकाश-युक्त दिन में जिस प्रकार हिसक व्यक्ति शिकार को अच्छी प्रकार मार लेता है उसी प्रकार इनकी नायक सहित सेनाएं हैं वे अन्न से युक्त समस्त देश को मेघों के समान सींचते और उनका उपयोग करते हैं । इसी प्रकार भय से कापते हुए शत्रु को सब ओर से शरणागति के बरसते मेघ के समान निरन्तर प्रहार करते हैं ।

प्रो॒ अ॒श्वि॒ना॒वव॑से कृ॒णु॒ध्वं प्र॑ पू॒षणं॑ स्व॒तव॑सो हि स॒न्ति॑ ।

अ॒द्वे॒षो वि॑ष्णु॒र्वा॒तं प्र॑भु॒क्ता अ॒च्छो॑ सु॒म्नाय॑ ववृ॒तीय॑ दे॒वान् ॥१०॥

भा०—हे राजा प्रजा जनो । आप लोग राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले सभापति, सेनापति, राजा प्रजा, एवं उत्तम स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के पालन आदि कार्यों के लिये उत्साहित करें । प्रजा का पोषण करने वाले

राजा को स्वयं बलशाली व्यक्तियों को और द्वेष रहित पर्वतों व देश के प्रकोटों के स्वामी को वायु के समान बलवान् को तथा ज्ञानवान् पुरुष को आगे २ उत्तम पदों पर रखो । इन सब देवों अर्थात् विद्वान् पुरुषों को मैं राष्ट्रपति प्रजा के सुख की वृद्धि के लिये राष्ट्रकार्य में लगाता हूँ ।

इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेधं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—हे दानशील, यज्ञ सत्संगति और ईश्वरोपासना करने वाले पुरुषो ! वह परमेश्वरी वाणी और शक्ति तुम्हारे और हमारे सबके अज्ञान को दूर करने और ज्ञान का प्रकाश करने वाली, सबसे उत्कृष्ट प्राण और बल देने वाली और सबको शरण देने वाली हो । वह जो विद्वानों, विजयेच्छु जनों और अग्नि आदि समस्त लोको में वसूयु होकर गूढ़ रूप से चेष्टा करती, गति देती है । हम उसी शक्ति की उपासना कर अन्न, बल और जीवन प्राप्त करें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१८७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ श्रोषधयो देवता ॥ छन्द — १ उष्णिक् । ३, ७ भुरिगुष्णिक् ।

२, ८ निचृद् गायत्री । ४ विराट् गायत्री । ९, १० गायत्रा च । ३, ५

निचृदनुष्टुप् । ११ स्वराट् अनुष्टुप् ॥ एकादशार्चं सूक्तम् ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।

यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

भा०—मैं अन्न के समान पालक, महान्, समस्त जगत् को धारण करने वाले बल स्वरूप परमेश्वर की निरन्तर स्तुति कहूँ, जिसके पराक्रम से वाक्, काय, मन तीनों के किये कर्मों में फसा यह जीव आवरणकारी अज्ञान को पोर २ करके छिन्न भिन्न करके विविध रूप से नाश करने में समर्थ होता है ।

स्वादो॑ पितॄ॑ मधो॑ पितो वृ॒यं त्वा॑ ववृ॒महे ।

अ॒स्माक॑मवि॒ता भ॑व ॥ २ ॥

भा०—हे सबके पालक अन्न के समान आनन्द देने वाले ! हे अन्न के समान मधुर एवं अति आनन्ददायक ! तुझे हम वरण करते हैं । तुझे ही हम सबसे श्रेष्ठ जानकर उपास्यरूप से चुनते हैं । तू ही हमारा रक्षक, प्रकाशक, प्रिय, वृत्तिकारक, वृद्धिकारक, शरण में लेने हारा स्वामी हो ।

उप॑ नः पित॒वाच॑र शि॒वः शि॒वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।

म॒योभु॑रद्विप्रे॒ण्यः सखा॑ सु॒शेखो॑ अ॒द्वयाः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे पालक ! तू अति कल्याणकारी होने से 'शिव' है, तू सुखदायी रक्षा, वृत्ति, प्रीति, कान्ति, दीप्ति, वृद्धि, ध्रुति आदि उपायों से हमें प्राप्त होता है । तू सुख आनन्द का एक मात्र उत्पत्तिस्थान, आनन्द की जननी है । तू कभी द्वेष न करने हारा और द्वेष न करने योग्य मि उत्तम सुखस्वरूप, दो के भेद से रहित अर्थात् अनन्य, अद्वितीय है ।

तव॑ त्ये पि॒तो र॒सा र॒ज्जास्य॑नु वि॒ष्टिताः॑ ।

वि॒वि वा॒ता इ॒व श्रि॑ताः ॥ ४ ॥

भा०—हे अन्न के समान सर्वपालक ! अन्न के नाना प्रकार के मधुर आदि रस जिस प्रकार सब पदार्थों में विद्यमान हैं, और जिस प्रकार आकाश में वायु स्थित है उसी प्रकार के अद्भुत २ रस, बल और आनन्द धाराएँ विविध रूपों में स्थित हैं, तू और शोभा रूप से विद्यमान है ।

तव॑ त्ये पि॒तो द॒दत॑स्तव॑ स्वादिष्ट॑ ते पि॒तो ।

प्र स्वा॒द्यान्तो र॒सानां॑ तुवि॒ग्रीवा॑ इवे॒रते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वपालक प्रभो ! तेरे प्रदान करते हुए वे नाना रस तेरे ही जलौकिक स्वरूप हैं । हे सबसे अधिक स्वादु ! हे पालक ! रसों का

स्वाद लेने वाले हम प्रबल गर्दन वाले होकर, तेरी नित्य स्तुति किया करते हैं । इति षष्ठो वर्गः ॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।

अकारि चारुं क्रेमुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे अन्न के समान पालक परमेश्वर । जिस प्रकार प्राण विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का 'मन' इस अन्न में स्थित है, इसी के आधार पर वह पुष्ट होता है, और जिस प्रकार अन्न की विज्ञानप्रद शक्ति से मन देह भर में सञ्चरणशील होता है, और जिस प्रकार अन्न के तृप्ति करने वाले गुण से यह जीव सर्प के समान मूर्छित करने वाली अमिट भूख प्यास का नाश करता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर । तुझमें ही बड़े २ प्रकाशमान लोको का स्तम्भनबल और ज्ञान बरा है । तेरे ही ज्ञान से यह जगत् सुन्दर बना है । तेरी शक्ति से ही सूर्य मेघ को भिन्न भिन्न करता है ।

यददो पितो अजगन्विचस्व पर्वतानाम् ।

अत्रा चिन्नो मघो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥

भा०—हे पालक प्रभो । तू पालन करने वाले मेघ, विद्युत्, पर्वत, अन्न, आदि सभी पदार्थों में अन्न के समान विविध रूपों में विद्यमान है । इसीलिये हे प्रभो ! उस अदृश्य, सर्वव्यापक तुझको उन पदार्थों में तुझे ही प्राप्त करते हैं । हे आनन्दमय ! हे प्रकृति मन्त्रुर । हे पालक अन्न के समान हृदय के तृप्तिकारक ! तू इस जन्म में हमारे खाने वा तृप्ति के लिये खूब पदार्थ प्राप्त करा ।

यद्रूपामोषधीनां परिशमारिशामहे ।

वातापे पीव इन्द्रव ॥ ८ ॥

भा०—जो हम जलों और ओषधियों का शरीर में व्यापने वाला अंश रचा लेते हैं इसलिये हे वात अर्थात् प्राण से बलवान् होने वाले ! तू पुष्ट ही रह ।

यत्तं सोम गवांशिरौ यवांशिरौ भजामहे । वातां पे पीव इन्द्रव ॥ ६ ॥

भा०—हे सोम ओषधे ! जो तेरा गौ के दूध से मिला और जौ आदि से मिला रस है उसको हम सेवन करें । हे वायु अर्थात् प्राण से पुष्ट होने वाले देह । तू परिपुष्ट हो ।

कुरुम्भ ओषधे भव पीवो वृक् उदारथिः ।

वातापे पीव इन्द्रव ॥ १० ॥

भा०—हे ओषधे ! अन्नादि । तू शरीर का रचने हारा है । तू स्वयं पुष्टिकारक और स्वयं परिपुष्ट, रोगों को दूर करने वाला, शक्तियों और वीर्य आदि धातुओं का उद्दीपक है । हे वायु या प्राण के समान देह में फैलने हारी ओषधे । तू पुष्टिकारक हो ।

तं त्वा व्रयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुपुदिम ।

देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥ ७ ॥

भा०—हे पालक अन्न के समान प्रभो ! गौएं या बैलगाण जिस प्रकार खाने योग्य दूध और अन्न आदि पदार्थ बहाते और खूब अधिक मात्रा में उत्पन्न करते हैं, और जिस प्रकार हम लोग विद्वान् पुरुषों और अपने लिये भी अन्न को उत्तम वाणियों सहित प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे स्वामिन् । हम उत्तम वाणियों और स्तुतियों से उस उपात्त्व तुझको प्राप्त होते हैं, तुझे द्रवित करते हैं, प्रेम और दया से पूर्ण करते हैं । तुझको उत्तम गुणों को प्राप्त करने और अपने हित के लिये, एक साथ सयोग से अति आनन्द देने वाला जान कर तुझे प्राप्त होते हैं । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१२२]

अनस्य ऋषिः ॥ आपिश्वे देवता छन्दः—१, ३, ५, ६, ७, १०

निपुडापत्रो । २, ४, ८, ११ गावन्तो ॥ एकादशर्चं त्वतन् ॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।

दुतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

भा०—खूब तेज से युक्त होकर सूर्य या अग्नि जिस प्रकार किरणों से युक्त होकर सहस्रों को अपने वश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू भी प्रकाशमान्, दानशील, अति तेजस्वी होकर ज्ञानी और वीर, विजयोत्सुक पुरुषों द्वारा सहस्रों शत्रुओं को जीत कर सब से अधिक प्रकाशित हो । तू दुष्टों का सन्ताप देने हारा, क्रान्तदर्शी होकर उत्तम खाद्य पदार्थों को प्राप्त करा ।

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते ।

दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

भा०—अन्न प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाले पुरुष का 'यज्ञ' अर्थात् जीवनमय श्रेष्ठकर्म, सहस्रों सुखैश्वर्यों के देने वाले अन्नो को अपने में धारण करता हुआ, देह को न गिरने देने वाला होकर, मरुत अन्न और जल से अच्छी प्रकार कान्तिमान्, उज्ज्वल हो जाता है, इसी प्रकार देह को न गिरने देने वाला आत्मा और राष्ट्र विस्तार को कम न होने देने वाला राजा, वेद और ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले के लिये मधुर अन्न, जल तथा आनन्द से अच्छी प्रकार चमकता है । वह हजारों की सेनाओं को और अध्यात्म में सहस्रों इच्छाओं और वासनाओं को धारण करता है ।

आजुह्वानो न इज्यो देवा आ वक्षि यज्ञियान् ।

अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्रणीनायक ! तू यज्ञाहुति करता हुआ, या आमन्त्रण पाकर, स्तुतिपात्र होकर, यज्ञ अर्थात् राष्ट्र पालन करने वाले विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा । तू सहस्रों का देने और विभाग करने वाला है ।

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् ।

यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

भा०—जहां बल से आगे की ओर बढ़ने वाले सहस्रों वीरों से युक्त वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन को तेजस्वी पराक्रमी पृथिवी के स्वामी नरपति विस्तृत करते, उस पर शासन करते हैं, हे विद्वान् पुरुषो । आप लोग वहां अच्छी प्रकार रहो ।

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्वह्नीश्च याः ।

दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—विविध गुणो कर्मों से प्रकाशमान् जो चक्रवर्ती के समान सर्वत्र अच्छी प्रकार प्रकाशित है वह राजा, और राष्ट्र में फैली हुई बहुत सी, जो द्वारों के समान शत्रुओं को चारण करने हारी प्रजाएं और सेनाएं हैं, वे उत्तम सामर्थ्य वाली होकर, दुग्धादि खाद्य पदार्थों को प्रवाहित करें, अधिक मात्रा में उत्पन्न करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः ।

उपासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥

भा०—दिन रात्रि के समान हे राजा प्रजाबर्गों ! आप दोनों इस देश में एक साथ रहो । आप दोनों उत्तम कान्तिमान्, एक दूसरे की रवि वाले, उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्यवान् होकर, लक्ष्मी से खूब शोभा को प्राप्त होवो ।

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।

यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥

भा०—विद्वानों में उत्तम, कर्षदशी, दानशील और गुणग्राही, उत्तम वाणी बोलने वाले, विद्या बल का विस्तार करने वाले उत्तम नायक विद्वान् जन हमारे इस प्रजापालन आदि कार्य का सम्पादन करें ।

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वो उपब्रुवे ।

ता नभोदयत ध्रिये ॥ ८ ॥

भा०—हे भरत अर्थात् पालन पोषण करने वाले मनुष्यों की सभे । हे भूमि सम्बन्धी प्रबन्ध करने वाली धर्मसभे ! हे उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभे ! और भी जो नाना प्रकार की सभा-समिति है मैं तुम सबसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब हमारी राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये हमें सदा सन्मार्ग में करती रहो ।

त्वष्टा^१ रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्तसमानुजे ।

तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ६ ॥

भा०—समस्त संसार का निर्माता परमेश्वर जिस प्रकार सबको उत्पन्न करने में समर्थ होकर समस्त रूपों को, रुचिकर पदार्थों और समस्त पशुओं को अच्छी प्रकार प्रकट करता है, और जिस प्रकार सूर्य रूपों को और रूप दिखाने वाली किरणों को भी प्रकट करता है, और दोनों ही प्रचुर वृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् तू भी शिल्पकार पदार्थों को गढ़ने में कुशल होकर, नाना रुचिकर सुन्दर पदार्थों और नाना प्रकार के उपयोगी पशुओं को भी वैज्ञानिक उपायों से प्रकट कर, और उनकी प्रचुर समृद्धि हमें प्रदान कर ।

उप त्मन्या^२ चनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज ।

अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार जलो और प्रकाशों या रश्मियों का पालक सूर्य, पान करने योग्य जलों को मेघ द्वारा उत्पन्न करता है, सूर्य का ताप और अग्नि परिपाक करके अन्नों और खाने योग्य फलों को स्वाद युक्त करता है, उसी प्रकार हे वनो और जलो और पेश्वरों के पालक पुरुष । तू विद्वानों, करप्रद प्रजाजनों के हित के लिये अपने सामर्थ्य से उत्तम जल, उत्तम अन्न और उत्कृष्ट पालन का उपाय किया कर । अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष खाने योग्य पदार्थों को उत्तम स्वादयुक्त बनावे ।

पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते ।

स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानवान् परमेश्वर जिस प्रकार गायत्री मन्त्रों से अच्छी प्रकार से प्रकट होता है, और अग्नि जिस प्रकार स्वाहाकारों और स्तुतियों से अच्छी प्रकार प्रकट होता है, उसी प्रकार सबका अग्रणी विद्वान् सबके आगे चलने द्वारा, विद्वानों और वीर विजेता पुरुषों के बीच वेदज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित होता है, और वही उत्तम वचन, भाषण, उत्तम हव्यादि पदार्थों के उपयोगों में होकर भला और शोभायुक्त प्रतीत होता है । इति नवमो वर्गः ॥

[१८६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् विष्टुप् । २ भुरिक् पवितः ३, ५, ६ विराट् पवित ॥ ७ पवित ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूर्यिष्ठां ते नमउक्ति विधेम ॥ १ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू मार्गदर्शक के समान हमें ऐश्वर्य और आनन्द प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार, सुखप्रद मार्ग से ले चल । हे सर्वप्रकाशक ! तू सब जानने योग्य विद्याओं को जानने द्वारा है । तू हमसे कुटिल कर्मों से उत्पन्न पाप को दूर कर । तेरे लिये हम बहुत २ नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम स्तुति करें । (२) विद्वान् पुरुष भी सब विद्याओं को जाने, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार मार्ग पर चले । पापों, कुटिल वृत्तियों को दूर करे, सब लोग उसका अधिकाधिक आदर और उसे नमस्कार किया करें ।

अग्ने त्वं पारथा नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूथं पृथ्वी चक्षुला न उर्वो भवा लोकाश्च तनयाश्च शं योः ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वान् ! परमेश्वर ! तू सदा नवीन, कभी पुराना न होने द्वारा, सदा स्तुतियोग्य है । तू सब संकष्टों से कल्याणकारी, सुखदायक मार्गों और उपायों द्वारा पार कर । तू बहुत से सुखों को देने

वाली नगरी के समान पालक, पृथ्वी के समान आश्रयरूप और विस्तृत हो । और हमारे नन्हे २ बच्चों और बड़े पुत्रों को भी सुख और शान्ति-
दायक हो ।

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्णिः ।

पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे परमेश्वर ! तू रोगकारी, पीड़ादायक रोगों और दुष्ट पुरुषों को हमसे पृथक् कर, जो कि मनुष्यों को सब प्रकार से पीड़ित करते हैं । हे सर्व सुखप्रद ! हे दानशील ! सत्संग योग्य, सुसंगतिकारक उत्तम स्नेही ! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम गति प्राप्त करने के लिये समस्त अमृतस्वरूप, प्राणप्रद, जीवनदाता औपधियों से हमारी निवास भूमि पर हमारे उपयोग के लिये पूर्ण कर ।

प्राहि नो अग्ने प्रायुभिरजस्रैरुत प्रियै सदर्शु आ शुशुक्वान् ।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विद्वन्मापरं सहस्रः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशक विद्वन् परमेश्वर ! तू हमारा स्थायी पालन करने के नाना उपायों से पालन कर, और तू अग्नि के समान कान्ति और शुद्ध तेज से चमकता हुआ हमारे प्रिय गृह में और देश में आ । हे दुःखों से छुड़ाने हारे ! हे बलवान् ! निश्चय से स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को तेरा भय न प्रतीत हो, और हे सहनशील ! बलवान् !

अन्य भी किसी प्रकार का उसको भय न प्राप्त हो ।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दृत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहस्रावन्परादाः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे ज्ञानवान् ! शत्रु और दुष्ट पुरुषों को अग्नि के सामन सताप देने हारे राजन् ! परमेश्वर ! तू हत्यारे, हिमा करने की इच्छा करने वाले शत्रु, और दुःखदायी दात वाले व्याघ्र आदि, और काटने वाले सर्प, वृश्चिक आदि खा जाने वाले और सा करने वाले, इनके लिये हमें कर्मा न छोड़ । हे बलवान् ! हमें कभी मत त्याग ।

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वेऽ वरूथम् ।

विश्वाद्रिदितोऽहोत वा निनित्सोरभिहुतामसि हि देव विष्पद् ॥६॥

भा०—हे सत्यज्ञान में विशेष रूप से प्रसिद्ध विद्वन् प्रभो ! तुझ सहायक को प्राप्त होकर पुरुष, स्तुति करता हुआ, शरीर की रक्षा के लिये आच्छादन करने योग्य कवच को विशेष रूप से बाधता है, और वह सब प्रकार के हिताकारी शत्रु और निन्दक पुरुष से बचाता है । हे देव ! तू कुटिलाचारी लोगों का विविध उपायों से बाधक है ।

त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रिः ॥ ७ ॥

भा०—हे अग्रणी शासक ! हे दानशील एवं सत्कार मान पूजा के योग्य ! तू उन दोनों प्रकार के अच्छे और बुरे ज्ञानी और अज्ञानी छोटे और बड़े सब मनुष्यों की जानता हुआ, प्राप्त होने पर विवेकपूर्वक न्याय करता है, और अधिकार प्राप्त हो जाने पर तू मनुष्यों के हित के लिये शासन करने योग्य और 'शास' अर्थात् खड्ग आदि शस्त्र धारण करने में कुशल हो । और तुझे चाहने वाले अपने प्रिय सहयोगियों से अलंकारों से सुभूषित करने योग्य होकर तू मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर ।

अवाँचाम निचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहस्राने अग्नौ ।

यथ सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥११॥

भा०—ओ ज्ञानवान् पुरुषो और शत्रुनाशक सैन्यों का सञ्चालक है उस नायक के निमित्त हम निश्चित सत्य वचनों का उपदेश करें, और उस शत्रु पराजयकारी पुरुष के अधीन रहकर हम लोग विद्वान् वेदमन्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों और वेदमन्त्रों से सहस्रो ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें । हम अब, पापनिवारक बल और उत्तम जीवन प्राप्त करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१६०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ सुरसतिदेवता ॥ ध्वन्दः—१, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८

त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ सुराद् यक्तिः ॥ धेवतः रडाः ॥

अन॒र्वाणं॑ वृ॒षभं॑ स॒न्द्रजि॑ह्वं बृ॒हस्प॑तिं वर्ध॒या न॒व्यस॑र्कैः ।

गा॒थान्यः॑ सु॒रुचो॑ यस्य॒ दे॒वा आ॑शृण्वन्ति॒ नव॑मानस्य॒ मर्ताः॑ ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! अथादि से रहित, मेघ के समान शस्त्रादि वर्ण करने में चतुर, हर्षोत्पादक गम्भीर वाणी बोलने हारे, बड़े शास्त्रज्ञान और वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक, स्तुतियोग्य ज्ञानी और वीर पुरुष को तू अन्नों द्वारा बढ़ा । ‘गाथा’ अर्थात् उत्तम वेदादि शास्त्र की कथा या ज्ञानवाणी को दूसरे तक पहुँचाने वाले उत्तम कान्तिमान् मान करने योग्य पुरुष की विद्वान् और साधारण पुरुष भी सब प्रशंसा करते और कीर्ति सुनते हैं (२) परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर अन्य पर आश्रित न होने से ‘अनर्वा’ है । समस्त सुखों की वर्षा करने से ‘वृषभ’ है । उसकी वेदवाणी हर्षजनक होने से वह ‘मन्द्रजिह्व’ है । महान् ब्रह्माण्ड या पालक होने से ‘बृहस्पति’ है । हे विद्वन् तू उसको उत्तम अर्चना करने वाले वेदमन्त्रों से बढ़ा । सब उसकी कथा को रुचि करके सुनें ।

तमृ॒त्वि॒या उप॒ वाचः॑ सचन्ते॒ सर्गो॑ न यो दे॒वय॒तामस॑र्जि ।

बृ॒हस्प॑तिः स ह्य॒ञ्जो वर॑सि॒ वि॒भ्वाभ॑वत्समृ॒ते मा॑त॒रि॒भ्या ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जल की कामना करने वाले कृपकों के लिये जल बढ़ा इर्षकारी होता है और पावस ऋतु की वाणिया उस मेघ को लक्ष्य करके उपस्थित होती है, और जिस प्रकार वायु बढ़ा बलशाली हाकर उत्तम जलों को देकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार जो पुरुष जलों के समान विद्या आदि की कामना करने वालों को हर्षजनक होता है, उसको ज्ञानवान् सदस्य पुरुषों की सभी वाणिया प्राप्त होती है । वह ही बड़े राष्ट्र और वेद का पालक आचार्य ब्रह्मवेत्ता है । वही निश्चय से ज्ञान करने वाले प्रमाता परमेश्वर के अवीन गति करने वाला होकर उस सत्यस्वरूप परमेश्वर में जा मिलता है । (२) इसी प्रकार राजा को सदस्यों की वाणियां उसी सभापति को लक्ष्य करके प्रस्तुत होती हैं जो

विधाता के समान विद्वानों के बीच सभापति बना दिया जाता है। वह राजा या सभापति बड़े भारी ज्ञान से राष्ट्रेश्वर्य और सत्य न्याय के बल पर अच्छी प्रकार अधिकार करे। वह उत्तम बातों को प्रकट करने वाला कान्तिमान् होकर बरने योग्य वचनों, ज्ञानों और कर्मों को प्रकट करे।

उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र ब्राह्म ।

अस्य कृत्वाहन्वो ऽयो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षस्तु विष्मान् ॥ ३ ॥

भा०—जो हित के समान भयकर, बहुत से बलों और बलवान् पुरुषों का स्वामी, और जो कभी किसी से मारा नहीं जा सके, उस बाधक शत्रुओं से रहित पुरुष के उत्तम कर्म और ज्ञानबल से, मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी और पराक्रमी होकर, अपने दोनों बाहुओं द्वारा प्रशस्ता शस्त्रबल के उत्थान, और वेदादि वाणी को अच्छी प्रकार अपने बश करता है।

अस्य श्लोकौ त्रिवीर्यते पृथिव्यामत्यो न यस्य च भृद्विचेताः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायौ अभिद्युन् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार भेड़ की गर्जना अन्तरिक्ष में होती है उसी प्रकार इस वेदपालक विद्वान् पुरुष का वेदोपदेश भी उपासना करने वाले का पालन पोषण करने वाला और विविध ज्ञानों से युक्त होकर, पृथिवी में वेगवान् अश्व के समान, ज्ञान की कामना करने वाले और पृथिवी के समान ज्ञानजल को धारण करने वाले शिष्य की पित्त भूनि में प्राप्त होता है। और दिनोदिन वेदज्ञ विद्वान् की ये वेदवाणियाँ, इंद्र २ कर शिखर करने वालों के बाणों के समान तथा सर्प के समान कुटिलाचारी तथा अज्ञानी पुरुषों को भी पहुँचती है और इनकी कुटिलता और अज्ञान का नाश करती है।

ये त्वा देवोऽस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवति पुत्राः ।

न दुडयेऽभ्यु ददासि धाम बृहस्पते चयस इति पयारुम् ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—हे ब्रह्मदान के देने वाले विद्वन् ! जो पापी जन तुझको वेद-वाणियों के साथ विचरने वाला विद्वान् जानते हुए आदरपूर्वक तेरे समीप आकर रहते हैं, वे भी ज्ञानवान् हो जाते हैं और उत्तम पद तक पहुँच जाते हैं । हे विद्वन् ! तू उत्तम ज्ञान को दुष्ट चित्त वाले पुरुष के लिये भी निरन्तर प्रदान करता है । हिंसक पुरुष को भी तू पालता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

सुप्रैतुः सुयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।

अनुवर्णो अभि ये चक्षते नोऽपावृती अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् मार्ग जैसे उत्तम रथ आदि से जाने वाले को सुख पूर्वक उद्देश्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार तू भी उत्तम सदाचार से आगे बढ़ने वाले और उत्तम अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों का उपयोग करने वाले को लक्ष्य तक पहुँचा देता है । मित्र जिस प्रकार अति प्रमत्त होकर अन्याय मार्ग में जाने वाले राजा को भी हित से भुरे मार्ग में हटाकर न्यायमार्ग में चलाता है, उसी प्रकार तू भी अपनी इन्द्रिय आदि को नियम में रखने में असमर्थ स्वलित पुरुष को सन्मार्ग में चलाता है । जो उत्तम धर्ममार्ग से जाने वाले तेरा साक्षात् करते हैं, या अन्यो को उपदेश करते हैं, वे सत्य मार्ग में स्थिर होकर किसी सत् तत्व को आच्छादित न करते हुए हमारे सामने रहे । वे सत्र तत्व खोल २ कर कहें ।

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न म्रवतो रोचचका ।

स विद्वो उभयं चष्टे अन्तर्वृहस्पतिस्तरु आपश्च गृध्रं ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम भूमिया जिस प्रकार स्वामी को प्राप्त होती है और बहती हुई तटों और भँवरों वाली नदियाँ समुद्र को जिस प्रकार पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार विनयशील तथा वीर्य का स्तम्भन करने वाले विद्यार्थि-जन उदार हृदय वाले तथा निरोध वृत्ति वाले होकर विद्या के अगाध सागर रूप विद्वान् को प्राप्त करते हैं । वह विद्वान् वेदवाणी या ब्रह्मज्ञान

का पालक विद्यार्थियों को हृदय से चाहता हुआ, ऐहिक-पारमाथिक दोनों जितानो का उपदेश करता है । वह अज्ञानी विद्यार्थियों के लिये ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार उतारने वाला होने से 'तर' अर्थात् नौका के समान है, और आप और जलों के समान उनके आचार चरित्र शुद्ध करने द्वारा होने से 'आप.' है ।

यथा महस्तुविज्ञातस्तुविष्मान्वृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमहिद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥२॥१३॥

भा०—वह महान्, अपने से बड़े विद्यावृद्ध से उत्पन्न, शरीर आत्मा से प्रवृत्तान्, वेदज्ञ विद्वान् विद्यादाता होकर, वर्षणशील मेघ के समान एव सर्वश्रेष्ठ रूप से धारण किया जाता है । वह प्रशसायोग्य पुरुष हमें उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, और उत्तम भूमि, वाणी और पशुओं से युक्त ज्ञान और ऐश्वर्य स्वयं धारण करे और हमें प्रदान करे । हम अन्न या मनोकामना, प्रल, और जीवन प्राप्त करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१६१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अयोधितूर्या इयताः ॥ छन्दः — १ उष्णिक । २ भुरिगुष्णिक ३, ७ स्वरगुष्णिक । १३ पिरागुष्णिक ४, ६, १४ विराडनुष्टुप् । ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् । १०, ११ निचृत् वृक्षमनुष्टुप् । १२ विराड् वृक्षमनुष्टुप् । १६ भुरिगनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं तूक्तम् ॥

कटुतो न कटुतोऽथो सतीनकटुतः ।

द्राविति प्लुपी इति न्य दृष्टा अलिप्तत ॥ १ ॥

भा०—अति पत्रल के समान दिप वाला जीव होता है । और दूसरा विप्लवा जीव जल धारा के समान पुटिल चाल से चलने वाला होता है । ये दोनों ही प्रकार के जीव देखे जाते हैं । और वे दोनों काटने पर निम्न २ प्रकार से दाहकारी होते हैं । वे जीव प्रायः देखने में नहीं

आते तो भी वे छुपे रूप से अपने शिकार को पकड़ते हैं और काट लेते हैं ।

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।

अथो अवध्नती हन्त्यथो पिनाष्टि पिपुती ॥ २ ॥

भा०—विपनाशक ओपधि कई प्रकार की होती हैं । जैसे ओपधि समीप आती हुई न दीखने वाले विप जन्तुओं को नाश कर देती है । और दूर जाती हुई भी वह अपने पूर्व प्रभाव या मादकता से उनका नाश कर देती है । और वह उनको ऐसे मारती है जैसे मानो कूट कूट कर आघात करती है । वे उसके प्रभाव से तड़प २ कर मरते हैं । अथवा ओपधि कूटी जाती हुई भी अपने उग्र गन्धों से विपैले जन्तुओं का नाश कर देती है, और पीसी जाकर और भी सूक्ष्म होकर वह विप जन्तु को मानो पीस डालती है । उनका सर्वथा नाश कर देती है ।

शरास्रः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।

मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

भा०—शर अर्थात् सरकण्डों में रहने वाले, छोटी जात के सरकण्डों में रहने वाले, दाम या कुशा घास में रहने वाले, नदियों, तालाबों के तटों में उत्पन्न घासों के बीच, मूँजों में रहने वाले, वीरण नाम तृणों में रहने वाले ये नाना प्रकार के न दीखने वाले अर्थात् छिपे हुए विपैले जन्तु सब उन २ तृण आदि पदार्थों के साथ ही चिपटे रहते और उनमें छुपे रहते और घात लगाये रहते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥

भा०—गौपं जिस प्रकार गोशाला में शान्त होकर पड़ी रहती है, हिसक जन्तु जिस प्रकार वन में छुपे २ घुसे रहते हैं, जिस प्रकार मनुष्यों

के बीच में ज्ञान या ज्ञानी पुरुष शान्त भाव से रहते हैं, उसी प्रकार विपैले जीव भी छुपे रहकर पडे रहते हैं ।

एत उ त्वे प्रत्यदृशन्प्रदोषं तस्करा इव ।

अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—ये सभी विपधारी जीव जो दिन में छुपे रहते हैं वे पूर्वोक्त सब रात्रि के प्रारम्भ समय में चोरों के समान प्रत्यक्ष रूप में दीखा करते हैं । जो जीव प्रायः नहीं भी दीखते वे भी सबको दृष्टि में आकर या स्वयं सब कुछ देखते हुए खूब अपने तईं सावधान होकर रहते हैं । अथवा रात्रि में न दीखने वाले जीव भी सबको नहीं दीखते, इसलिये हे पुरुषो ! आप सब सचेत होकर रहो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

गौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादिति स्वसा ।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य या आकाश, मेघादि वृष्टि द्वारा पालक होने से तुम जीवों का पालक, पिता के समान है । यह पृथिवी सबकी माता के समान है । ओषधिगण और चन्द्रमा भरण पोषण करने वाला होने से सबके भ्राता के समान है । ये सब उत्पन्न जीव-जन्तु सब अपने २ सामर्थ्य से चलने, सरकने वाले या सुख से रहने वाले होने से 'स्वसा' अर्थात् नागिनी के समान है । वे इनने से कुछ जो कि देख नहीं पड़ते, दूसरे जो सबको देख पड़ते हैं वे सभी हे प्राणिगणो ! तुम रहो और अच्छी प्रकार सुख पूर्वक विचरो ।

ये अस्या ये अङ्ग्याः सुचीका ये प्रकङ्कताः ।

अदृष्टाः किं चनेह वृ. सर्वे साकं नि अस्यत ॥ ७ ॥

भा०—जो कन्धों के बल सरकने वाले, जो अंग अर्थात् पावों के बल चलने वाले, सूई के समान काटे से काटने वाले, और जो अति चंचल,

अतितीव्र वेदना देने वाले हैं, जो कुछ भी यहां दिखाई नहीं पड़ते, हे सब जीवो ! तुम सब एक साथ ही हमें छोड़ जाओ या नष्ट हो जाओ ।

उत्पु॒रस्तात्सूर्य॑ पति॒ विश्व॑दृष्टो अदृष्ट॑हा ।

अदृष्टान्त॑सर्वाञ्जि॒म्भय॑न्त॒सर्वा॑श्च यातु॒धान्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—सबके देखने योग्य, न दीखने वाले दोषों का भी नाश करने वाला सूर्य पूर्व की ओर उदय होता है । वह सब न दीखने वाले प्राणियों और सब प्रकार की पीड़ा देने वाली जीव जातियों को दूर करता हुआ प्रकट होता है ।

उद॑प॒तदृ॒सौ सूर्यः॑ पु॒रु विश्वा॑नि जू॒र्वन् ।

आदित्यः॑ पर्व॑तेभ्यो विश्व॑दृष्टो अदृष्ट॑हा ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य नाना विषों और सभी अन्धकारों का नाश करता हुआ ऊपर उठता है, उसी प्रकार पर्वतों से नाना प्रकार के रस औषधियों का आदान करने वाला विष्वेद्य सब प्रकार जन्तुओं और औषधियों के गुणदोषों को प्रत्यक्ष परीक्षण से देखने द्वारा होकर, न देखे हुए विषों और रोगों का भी नाश करने में समर्थ होता है ।

सूर्ये॑ वि॒षमा स॑जामि दृ॒तिं सुरा॑वतो गृ॒हे ।

सो चि॒न्तु न म॑राति नो व॒य म॑रामा॒रे अस्य॑ योज॑नं

हरि॑ष्ठा मधु॑ त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—सुरा अर्थात् भाप की विधि से शुद्ध जल बनाने वाले के घर में पात्र जिस प्रकार रखा रहता है और उसमें भाप बना जल प्रदूष करके टपकता है, उसी में सब समाता जाता है, उसी प्रकार मैं भी विष को सूर्य में विलीन करता जाऊँ । इससे न तो सूर्य ही विष द्वारा मरता है और न हम ही प्राण त्याग करते हैं । इस विष को सूर्य के साथ लगाना विष को दूर करना है । विष हरने के कार्य में यह पदार्थ बड़ा उपयोगी है । हे विष ! तुझको भी यह सूर्य मधुर अर्थात् सख कर देता है । हे

रोगिन् । मधु देने वाली ओषधि या यह विषवैद्य भी तुझे सुख दे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इयत्तिका शकुन्तिका सूका जघास ते विषम् ।

सो चिन्तु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं

हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥

भा०—इतनी छोटी सी पंख वाली वह चिड़िया तेरे विष को खा जाती है । इससे वह भी नहीं मरती है, और हम भी नहीं मरते । इस जन्तु का योग भी विष को दूर करता है । विष के हरने वालों में उसका भी विशेष स्थान है । हे विष ! विष को मधुर करने वाली यह तुझे मधुर कर देती है ।

त्रिः सुप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।

ताश्चिन्तु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं

हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥

भा०—२१ प्रकार की विष खा जाने वाले छोटे पक्षियों की जातियाँ हैं जो विष के अतिपुष्ट या प्रबल अंश को खा जाती हैं । वे भी विष से नहीं मरतीं । और इस प्रकार हम भी नहीं मरते । (आरे अस्य योजन) इत्यादि पूर्ववत् ।

नयानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।

सर्वांसामग्रभूतामारे अस्य योजनं

हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥

भा०—मैं ९० + ९ = ९९ निन्यानवे, विष को हरने वाली समस्त ओषधियों का नाम और स्वरूप लूं, उनको जानूं, उनका अन्यों को उपदेश करूँ । (आरे अस्य योजनम्) इत्यादि पूर्ववत् । विष के ९९ प्रकार और उनके ९९ ही प्रकार के प्रतिबन्धक उपाय हैं ।

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।

तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥

भा०—३ × ७ = २१ प्रकार के मयूर जाति के पक्षी हैं, और सात प्रकार की स्वयं गति करने वाली नाड़ियां होती हैं । वे सब विशेष रूप से विष को ऐसे दूर करती हैं, जैसे कहारिया या नदियां जल को हर ले जाती हैं । मुर्गी की जातियों का गुदा भाग सर्प के काटे विष को बार २ लगाने से चूस लेता है । क्रम से एक के बाद एक लगाने से २१ मुर्गियों के बाद विष शमन हो जाता है । ऐसे पक्षियों के २१ प्रकार होना सम्भव है ।

इयत्तकः कुपुम्भकस्तकं भिन्नशयश्मना ।

ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥

भा०—इतना सा कुसुम भी विष की औषध है । उस विष के स्थान को प्रस्तर या शल्ल से छेद दूं । उससे विष दूर २ तक जाने वाली धाराओं में फूट निकलता है ।

कुपुम्भकस्तद्व्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

भा०—छोटा सा नेवला जो पर्वत से पला हुआ आता है वह मानो यह कहता है कि वृश्चिक का विष उससे निर्बल है । तो फिर हे काटने वाले विच्छू ! तेरा विष अब प्रबल नहीं है । तेरी भी औषध नकुल आदि प्राणियों में विद्यमान है । इस सूक्त के ८ वें मन्त्र में सूर्य को जहां विष नाशक बतलाया है वहां सूर्यवर्ग में पतित अकंपत्री, आदित्यमत्स्य आदि औषधियों का भी उपदेश विष प्रयोग पर जानना चाहिये । 'अकंप' के अनुभूत चिकित्सा सागर में नीचे लिखे गुण प्राप्त होते हैं—

(१) सर्प का विष उतारने के लिये उसके दंश पर आकड़े का दूध टपकता रहे जब तक शरीर में विष रहेगा तब तक दूध सूखता रहेगा

जब विष का दोष शरीर में न रहेगा तब दंश पर भी दूध न सूखेगा ।

(अनु० चि० २८ । ७६)

(२) अर्क की तीन कोपलें गुड़ में लपेट, खिलाकर ऊपर घी पिलाने से साप का विष उतरता है । (अनु० चि० २८ । ७८)

(३) विच्छू के दंश पर अर्क का दूध लगाने से उसका विष उतर जाता है । (अनु० चि० २८ । ७९)

इसकी जड़ पानी के साथ पीसकर पिलाने से साप का विष उतरता है । (अनु० चि० २८।८०)

(४) अर्कपत्रो—इसको घिस कर लगाने से विच्छू का विष उतरता है ।

(५) इसको सर्पदंश पर लगाने और खिलाने से सर्प का विष उतरता है (अनु० चि० ३० । ३, ७)

मन्त्रों में 'हरिष्ठा.' शब्द है । कदाचित् वह हरीठा हो । हरीठा के गुण—इसकी गिरी को पानी में पीस कर पिलाने से विष उतर जाता है ।

इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्नलिखित सूक्त भी विशेष प्रकाश डालते

हैं । अथर्व० (५ । १३ । १-११), (५ । २३ । १-१३), (४ । ३१ ।

१-१२), (२ । २३ । १-६), (६ । १२ १-३), (६ । ५२ । १-३)

(७ । ५६ । १८) (१० । ४ । १-२६) इनमें सर्पविष के प्रकार,

अन्य विपेले जन्तु, उनकी ओषधियो, सर्पों की जातियों, वृश्चिक, तथा बिम्ब-

रुष्ट, सूर्य आदि का प्रकारान्तर से न्यूनाधिक वर्णन है । इति षोडशो बर्गः ॥

इति चतुर्विंशोऽनुवाकः ॥

इति प्रथम मण्डलं समाप्तम्

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

[१]

आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः ,
२ भुरिक पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिः । २, १५ विराड् जगता । १६
निचृज्जगतो । ३, ५, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक
त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्ताणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मन्स्परि ।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्वी ! हे मनुष्यों और नायका के भी
पालक राजन् ! प्रभो ! तू तेजस्वी कर्मों से प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि
शीघ्र दीप्ति से अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार तू भी दुष्ट पुरुषों
का नाश करने हारा और सब प्रकार से तेजस्वी हो । मेघ के जलों में
अग्नि जिस प्रकार विद्युत् रूप से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी आस
पुरुषों से और प्रजाजनों से अधिक शक्तिशाली रूप से प्रकट हो । जिस
प्रकार अग्नि पत्थरों की रगड़ से प्रकट होता है उसी प्रकार तू 'अदमा'
अर्थात् वज्र, शङ्खाद्य बल से उसके भी ऊपर अध्यक्ष रह कर प्रकट हो ।
वनों, जगलों से, उनके वृक्षों से जिस प्रकार महान् दावानल उत्पन्न होता
है और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् जलों से, विद्युत् उत्पन्न होता है उसी
प्रकार तू भी वन अर्थात् सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से या बहुत सी सद्यः
में विद्यमान सेना-दलों से प्रकट या प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि ओष-
उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी 'ओषधि' अर्थात् शत्रु को

सताप देने वाले वीरपुरुषों की सेनाओं से राष्ट्र के रोगों के समान पीड़ा-
दायक जनों को दूर करने हारा हो । हे मनुष्यों के पालक ! तू मनुष्यों
के बीच मन, वाणी और काय, तीनों में पवित्र हो । दण्डनीति के अनुसार
चार प्रकार से शुचि रहने का उपदेश है धर्म, अर्थ, काम और भय में
राजा को शुद्ध रखना चाहिये । वह अधर्म से किसी को न सतावे, अन्याय
से धन न छीने, दूसरों की स्त्रियों, कन्याओं का कामी होकर आहरण न
करे, शत्रुओं से संग्राम काल में भयभीत न हो ।

तवाग्ने होत्रं तव पुत्रमृत्विजं तव नेष्टुं त्वमग्निद्विजायतः ।

तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥

भा०—हे विद्वन् नायक । दान देने द्वारा उत्तम सत्कार भी तेरा ही
है, यज्ञ के समान पवित्र कार्य तेरा है । प्रति ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने
वाले ऋत्विजों के योग्य आदर सत्कार और यज्ञ में नेष्टा के समान नायक-
पन अर्थात् अन्यो को सन्मार्ग में ले चलने का कार्य तेरा ही हो । और
तू ही अग्नि को प्रकाशित करने वाला, अपने समान अन्य विद्वान् और
तेजस्वी को उत्पन्न करने वाला अग्नियों को प्रज्ज्वलित एवं उनसे यज्ञ
करने द्वारा हो । सत्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न और वेदानुकूल न्यायव्यवस्था
करने वाला तेरा ही सर्वोपरि प्रधान शासन हो । तू अध्वर अर्थात् प्रजाओं
को पीड़ा का नाश और अहिंसा का पालन करना चाहता है । तू राष्ट्र
पालन के कार्य को यज्ञ के समान करना चाहता है । तू ही चारों वेदों के
जानने वाले ब्रह्मा के समान सबका स्वामी हो । घरों में हमारे बीच गृह-
स्वामी के समान राष्ट्र का पालक हो ।

त्वमग्नि इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुहगायो नमस्यः ।

त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य के समान प्रकाशमान् ! तू ऐश्वर्यवान्, उत्तम सुखों
को देने हारा, सत्पुरुषों के बीच नमस्कार और पूजा करने योग्य है । तू

व्यापक सामर्थ्यवान्, बहुतों से स्तुति किया जाय । तू वेदों का विद्वान् सब पदार्थों को जानने हारा हो । हे वेद के पालक ! हे विविध उपायों से राष्ट्र का धारण करने हारे ! तू पुरा अर्थात् राष्ट्र को धारण करने वाली बुद्धि और राजनीति के साथ रहता हुआ समवाय बना कर रह । (२) परमेश्वर ब्रह्म अर्थात् वेद का पालक और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली शक्ति से युक्त है । वह स्वयं 'ब्रह्मा' अर्थात् सब से महान् है ।

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दृस्म ईड्यः ।

त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाज्युः ॥४॥

भा०—हे पदार्थों के प्रकाशक राजन् । तू गुणों से राजा है । सबसे श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारक सत्य व्रतों का धारण करने वाला, सब का सहेही, दुःखों और दुष्टों का नाशक और सबसे स्तुति योग्य है । तू शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी, सज्जनों का प्रतिपालक है । ओर जिस राष्ट्र के उत्तम रीति से भोग और पालन करने के लिये तू मुख्य आशापक होता है, हे राजन् ! उसी के ज्ञानपूर्वक धनादि प्राप्त करने के निमित्त न्यायपूर्वक विभाग करने हारा हो ।

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।

त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं तव नरां शर्धो असि पुरुवसुः ॥५॥ १७॥

भा०—हे तेजस्विन् ! तू सबको बनाने हारा है, कुल्हाड़े या शस्त्र के समान काम करने वाले विद्वान् को उत्तम बल प्रदान करता है । हे स्तुति-वाणियों के स्वामिन् ! हे मित्र के समान सबका आदर करने वाले ! कार्यकर्त्ता के साथ तेरा ही बन्धुभाव है । तू ही सबका बन्धु है । तू बहुत शीघ्र ऐश्वर्य आदि से बढ़ाने वाला होकर उत्तम अन्नादि रयादि मैन्य और वाहनों से युक्त ऐश्वर्य को प्रदान करता है । तू बहुत सी, अनेक, प्रजाओं का बसाने वाला, तू मनुष्यों के बीच में शत्रुनाशकारी शस्त्राघों का धारण करने वाला बलस्वरूप है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो माहूत पूत ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्खयस्त्वं पूषा विधतः पृषि नु त्मना ॥ ६

भा०—हे आग के समान तेजस्विन् राजन् ! तू दुष्टों को रूढ़ाने हारा 'असुर' अर्थात् शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, महान् हे । तू द्युलोक सम्बन्धी वायुओं के वर्षाकारी बल के समान विजय करने वाले विजिगीषु के शत्रुमारक सैनिकों के परस्पर सम्मिलित बल का स्वामी हो । जिस प्रकार अग्नि वेगवान् वायुओं को बढ़ाता है उसी प्रकार हे राजन् तू वायु के समान वेग से जाने वाले अश्वों से प्रयाण कर । तू सबको शान्ति सुख पहुँचाने वाला सबका पोषक होकर, आत्मसामर्थ्य से सेवा करने वाले, कार्य कर्त्ताओं की रक्षा करता है ।

त्वमग्ने द्रविणोदा अरुद्रकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।

त्वं भर्गो नृपते वस्व ईशिषे त्वं प्रायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य के समान सब सुखों के देने हारे ! तू खूब पुरुषार्थ करने वाले को धनों, ऐश्वर्यों का देने वाला है । तू सर्वप्रद, उत्पादक, सब रमणीय रत्न आदि पदार्थों को धारण करने वाला है । हे मनुष्यों के पालक । तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी होकर समस्त ऐश्वर्यों का और बस्ती प्रजा का स्वामी हो । जो तेरे दमनकारी शासन में काम करता, तेरी सेवा परिचर्या करता है, तू उसका पालन करने हारा है ।

त्वामग्ने दम् आ विशपति विशस्त्वां राजानं सुविदमृज्जते ।

त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥

भा०—हे नायक राजन् ! प्रजाएं तुझको दमन कार्य में प्रजा पालक बनाती हैं । और वे ही तुझको उत्तम दानशील, उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, उत्तम ज्ञान का रक्षक राजा बनाती हैं । हे सौम्य सुख ! हे उत्तम सैन्य के स्थानिन् । तू सब पदार्थों का स्वामी है । और तू दस सौ हजार अर्थात् दस लाख १००००००, सैन्यों पर भी स्वामी है ।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्यां तनुरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥१६॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप राजन् ! लोग यज्ञों और सत्कारों से तुझको पालक माता पिता जानकर तेरी सेवा करते हैं । अग्नि के समान प्रत्येक देह में कान्तिस्वरूप तेरी उत्तम कर्मानुष्ठान से भाई के समान बन्धुता उत्पन्न करने के लिये सेवा करते हैं । जो तेरी अच्छी प्रकार से सेवा करता है तू उसका पुत्र के समान सहायक हो जाता है । तू ही सखा, उत्तम सुख देने वाला होकर, तिरस्कार और बलत्कार करने वालों से उसकी रक्षा करता, उसे बचाता है । राजा विस्तृत राष्ट्रदेह में शोभायमान होने से 'तनुरुच' है ।

त्वमग्ने ऋभुराके नमस् स्त्वं वाजस्य क्षमतां राय ईशिपे ।
त्वं वि भास्यन्तु दक्षि द्रावने त्वं विशिन्तुरसि यज्ञमातनिः ॥१७॥१८॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् प्रतापिन् राजन् ! तू तेजस्वी, सत्य के बल से चमकने वाला, महान् सामर्थ्यवान् है । तू समीप विद्यमान् और सबके नमस्कार करने योग्य है । तू प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त बल और विज्ञान तथा ऐश्वर्य का स्वामी है । तू विशेष रूप से चमकता है, शोभा पाता है, तू क्रम से अपने शत्रुओं को भस्म कर देता है । और आत्मसमर्पक पुरुष के हित के लिये विविध विद्याओं को सिखाने वाला और विविध उपायों से दमन करने वाला होता है । तू यज्ञ, विद्या और धन, प्राण आदि के दान कार्य को सदा करता है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुये त्वं होत्रा भारती वधसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥१९॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप ! हे सत्र गुणों के दात ! दानशील पुरुष के लिये तू सूर्य के समान अक्षय्य शक्ति, जीवन और ऐश्वर्य का नण्डार

हे । तू ही सब सुखों और ज्ञानों को देने वाली वाणी, तथा सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व को प्रकाशित करने वाली वाणी होकर, वेद वाणी से उसे बढ़ाता है । तू बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने के लिये सौ बरसों की आयु तक प्राप्त होने वाली अक्षय अन्नसम्पदा के समान जीवनप्रद है । हे ऐश्वर्य के पालक ! हे वसे प्रजाजन के पालक ! तू विघ्नकारी तथा अज्ञान का नाश करने हारा और नदी के समान उत्तम ज्ञानजल से सब को पवित्र करने हारा है ।

त्वमे॒वे सु॒भृत॑ उत्त॒मं वय॑स्तव॒ स्पार्हे॑ वर्ण॒ आ स॒न्दृशि॑ श्रियः ।

त्व वाजः॑ प्र॒तर॑णो बृ॒हन्न॑सि॒ त्वं र॒यिर्व॑हु॒लो वि॒श्वत॑स्पृथुः ॥१२॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् । तू सुख से धारण करने योग्य एवं अपने आश्रितों का उत्तम रीति से पोषक है । तेरे दर्शनीय चाहने योग्य वरण करने में ही उत्तम बल और उत्तम शोभाएं और लक्ष्मी प्राप्त होती हैं । तू ज्ञान और ऐश्वर्य का साधक और संग्रामों से पार उतारने वाला है । तू सदा बढ़ने वाला और प्रजा को बढ़ाने वाला है । तू द्रव्य-सम्पदा के समान अपने में सबको रमाने वाला है । तू बहुत से सुख ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला और सब प्रकारों से विस्तृत और अतिविस्तारवान् है ।

त्वाम॑ग्न आ॒दित्या॑स॒ आस्यं॑ त्वां जि॒ह्वां शुच॑यश्च॒क्रिरे॑ कवे ।

त्वा रा॑ति॒पाचो॑ अ॒ध्वरे॑षु स॒ध्विरे॑ त्वे दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तन् ॥१३॥

भा०—हे विद्वन् । पृथिवी माता के पुत्र प्रजागण, पृथिवी के स्वामी तेजस्वी राजा गण और अखण्ड ब्रह्म और अविनाशिनी वेदवाणी के उपासक जन तुम्हें अपना सुख बना लेते हैं, तुम्हें अपना प्रमुख, अपना प्रतिनिधि और आदेश देने वाला नियत कर लेते हैं । हे मेधाविन् ! शुद्धचित्त वाले जन, तुम्हें अपनी जिह्वा अर्थात् वाणी बना लेते हैं । अर्थात् तेरी ही वाणी उनके अनिप्राय को स्पष्ट करे यह उनको अनिमत होता है । राजा लोगों के मुख और वाणी विद्वान् दूत होते हैं । दान आदि सत्कर्मों

में स्थित लोग भी हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्यों में तुझको ही प्राप्त होते हैं । विद्वान् लोग तेरे अधीन रह कर ही सब प्रकार से प्राप्त अन्न धन ऐश्वर्यादि का ही भोग करते हैं ।

त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुति त्वं गर्भे वीरुघां जशिष्ठे
शुचिः ॥ १४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशवन् राजन् ! तेरे अधीन रहकर समस्त चिरंजीवी, परस्पर द्रोह न करते हुए, तुझ प्रमुख पुरुष के साथ या तुझ द्वारा प्राप्त हुए अन्नादि आद्य पदार्थों का भोग करते हैं । और तेरे द्वारा ही सब मनुष्य ऐश्वर्य का भोग करते हैं । तू ही बलवीर्य धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं का ग्रहण, स्वीकार और वश करने हारा होकर, पवित्र रूप में प्रकट हो ।

त्वं तान्तसं च प्रति चासि मज्जमनाग्ने सुजातु प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदन्नं महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥ १५ ॥

भा०—हे सब ज्ञानों के प्रकाशक ! तू उन सबके साथ मिलने पर भी सबके समान है, और प्रत्येक के भी बराबर है । और बल से हे उत्तम गुणों से प्रसिद्ध ! हे दानशील ! तू सबसे अधिक बढ़ जाता है । तू सबसे अधिक शक्तिशाली है । जो पृथ्वी पर अन्न आदि है वह भी तेरे महान् सामर्थ्य से ही विविध रूपों से उत्पन्न होता है । तेरे वश में ये दोनों एक दूसरे की मर्यादा को सीमित करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्ग या माता पिता और गुरु शिक्षक वर्ग हैं, वे तेरे ही अधीन तेरे से उतर कर पूज्य हैं । तू सब से अधिक पूज्य है ।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सुरयः ।
अस्मोश्च ताश्च प्र हि नेपि वस्य गा बृहददेम विदये
सुवीराः ॥ १६ ॥ १६ ॥

भा०—जो विद्या जल से ज्ञान करने के इच्छुक विद्यार्थी जन, और विद्वान् पुरुष स्तोता, नाना विद्याओं को उपदेश करने वाले विद्वानों के हित अपनी उत्तम वाणी वा चक्षु आदि इन्द्रियो को आगे किये, सावधान, आशुगामी मन के उत्तम रूप वाली, मनन क्रिया से युक्त, चित्त वृत्ति का दान गुरुओं के अति समीप आकर करते हैं उनके प्रति सब कुछ समर्पण करते हैं और जो विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष विद्वानों को उत्तम सत्कारयुक्त वाणी को आगे रखकर अश्व अर्थात् राजसी सम्पत्ति का दान करते हैं । हे विद्वन् प्रभो ! हमें और उन प्रतिग्रह देने और लेने वाले दोनों को निश्चय से उत्तम ऐश्वर्य, आवास आदि, प्रदान कर । हम सब उत्तम पर्यवान् वीर पुत्र आदि से सम्पन्न होकर ज्ञानयज्ञ अध्ययन, अध्यापन और सग्राम और यज्ञ के अवसर में भी बड़े महत्वपूर्ण, वृद्धिकारी वचन और वेदमन्त्र रूप बृहती वेदवाणी को भी कहे, उच्चारण करें । अभ्यास करें और उपदेश करें । एकोनविंशो वर्गः ॥

[२]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, १२ विराट् जगती । ४ जगती । ५, ६, ८, १३ निचृज्जगती । ३, ८, १०, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥
त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञेन वर्धत ज्ञातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तनां गिरा ।

समिधानं सुप्रयसं स्पर्णरं दृक्षं होतारं वृजनेषु धूर्पदम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ज्ञान और धनैश्वर्य में विख्यात, जातितेजस्वी, उत्तम अन्नसम्पदा से पूर्ण, सुख के मार्ग में ले जाने वाले, प्रकाशमान्, सबको अपनी शरण में लेने और सबको अन्न वेतदादि देने दारे, शत्रु को परजित करने में समर्थ सैन्यबलों के बीच में राष्ट्र धुरा के भार को उठाकर ले चलने वाले, और 'धूर्' अर्थात् मुख्य पद पर विराजने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, नायक पुरुष का, परस्पर प्रेम, सत्संग,

संगठन से, ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न और कर से, विस्तृत राष्ट्र और बाणी से सत्कार करो । (२) सर्वैश्वर्यमान् सर्वज्ञानमय होने से परमेश्वर 'जातवेदाः' है । प्रकाशस्वरूप होने से 'अग्नि,' सबका तृप्तिकारी होने से 'सुप्रया', सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष होने से 'स्वर्णर्', सब बलों और लोकों का धारक होने से 'धूर्पद्' है ।

अभि त्वा नक्तीरुपसो ववाशिरेऽग्ने वृत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार गोशालाओं में बछड़ों के प्रति प्रेम से बढ़ होकर हभारती है उसी प्रकार हे राजन् । प्रजाजन भी दिन रात तुझे लक्ष्य करके तेरे प्रति अपने निवेदन और प्रार्थनाएं किया करते हैं । हे बहुतों से वरण करने योग्य तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी अच्छी प्रकार बढ़ होकर मनुष्यों के जीवन के वर्षों तक दिनों के समान रात के समयों में भी चमकता है । राजा का प्रबन्ध दिन के समान रात्रि में भी बराबर रहे ।
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंसं दिवस्पृथिव्योरति न्येरिरे ।

रथामिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग लोकों के आश्रयभूत पृथिवी पर उत्तम गति करने वाले रथ को जिस प्रकार चलाते हैं, और जिस प्रकार वे उत्तम गति और क्रियाओं को उत्पन्न करने वाले, शीघ्र वेग के उत्पादक तेज से युक्त अग्नि को यन्त्रों से प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार उस क्रियाकुशल, राजा और प्रजाओं के बीच अतिमतिवान्, रथ के समान सन्मार्ग से ले जाने वाले, ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी, भूमि निवासी प्रजाओं के बीच मित्र के समान स्नेहवान्, सबसे श्रेष्ठ नायक को, सब लोकों के आश्रय-भूत परमपद पर नियत करते हैं, उसको उत्तम पद प्रदान करते हैं ।
(२) परमेश्वर समस्त उत्तम कर्मों का कर्ता होने से 'सुदंशा' है । व्यापक और सत्संग होने से 'अरति' है । रसमय होने से 'रथ' है । तेजस्वरूप होने से 'शुक्रशोचिः' है ।

तमुत्तमाणि रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं द्वार आ दधुः ।

पृथ्व्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः प्राथो न प्रायुं जनसी उभे अनु ४

भा०—जिस प्रकार बड़े भारों को दूर तक ढो ले जाने में समर्थ अग्नि को 'द्वार' अर्थात् गुप्त स्थान में रखते हैं, और पृथ्वी पर वेग से चलने वाले, नाना धुरों से गति देने वाले अग्नि को विद्वान् लोग यन्त्र में स्थापित करते हैं, उसी प्रकार उस राष्ट्र के कार्यभार को उठाने में समर्थ पुरुष को अपने गृह में प्रजाजनो के हितार्थ विद्वान् लोग स्थापित करते हैं । उसी प्रकार उत्तम कान्तिमान्, उत्तम रुचि वाले, उत्तम प्रकृति के, चन्द्र या सुवर्ण के समान सबके आल्हादक पुरुष को कुटिल कार्यों के दमन करने के लिये स्थापित करें । इसी प्रकार पृथ्वी को ऐश्वर्ययुक्त करने वाले, इन्द्रियों से ज्ञान करने वाले आत्मा के समान अध्यक्षों द्वारा प्रजाजन को सदा सावधान करने वाले, ऐश्वर्य के भोक्ता, राष्ट्रपालक, बल का पालन करने वाले उस नायक पुरुष को राजा और प्रजावर्ग के जनो के अनुकूल करके विद्वान् लोग स्थापित करें ।

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।

हिरिशिप्रो वृधस्रानासु जभुरद्वयौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ५।२०

भा०—होता नाम ऋत्विक् जिस प्रकार यज्ञ को सब प्रकार से सम्पादित करता है और उसको अन्य सहायकजन वाणी और चरुओं से सुशोणित करते हैं, उसी प्रकार वह परमेश्वर कभी नाश न होने वाले, अनादि काल से वर्तमान सनातन साक्षत विश्वरूप यज्ञ का सब प्रकार से सम्पादन कर रहा है । मननशील मनुष्य उस ही परमेश्वर को ग्रहण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों से तथा वेदवाणी या स्तुति द्वारा सुशोणित करते हैं । वह हरणशील, नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ों से युक्त पुरुष के समान समस्त जगत् को प्रलयकाल में परमाणु २ करके भस्म जाने वाला, बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजाओं में सवधा पालन

पोषण करता है । आकाश या सूर्य जिस प्रकार विस्तृत प्रकाशों से आकाश और पृथिवी दोनों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर स्वयं प्रकाशस्वरूप होकर आकाश और भूमि दोनों को मानो चेतना से युक्त कर रहा है, उनमें जान सी डाल देता है ।

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददृस्वानूयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव
वीतये ॥ ६ ॥

भा०—प्रदीप्त होता हुआ अग्नि जिस प्रकार हममें बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् । हे प्रभो ! अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ बहुत ऐश्वर्ययुक्त धनसम्पदा को हमारे कल्याण के लिये प्रदान करता हुआ, हमारे बीच प्रकाश कर । और आकाश और पृथ्वी, माता पिता तथा राजा प्रजावर्गों को हमारे उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने और जन्म-लाभ करने के लिये हमारे अनुकूल बना । और हे ज्ञानवन् ! प्रकाशक ! हे सब सुखों के देने वाले ! तू मनुष्यों को भक्ष्य और ग्राह्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये समर्थ कर ।

दा नो अग्ने वृद्धतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं धृत्या अपा-
वृधि । प्राची धावापृथिवी ब्राह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुपसो
वि दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! परमेश्वर ! एवं राजन् । तू हमें वृद्धि करने वाले बड़े २ अक्षय भोग्य पदार्थ प्रदान कर । तू हमें सहस्रों सुखों के देने वाले पदार्थ दे । श्रवण करने के लिये हे विद्वन् ! हमारे लिये द्वारा के समान ज्ञान के पट खोल दे । और ऐश्वर्य, धन ज्ञान और महान् सामर्थ्य से राजा प्रजा, गुरु, शिष्य, आकाश और भूमि इनको उत्तम प्रकाश से युक्त कर । शुद्ध सूर्य के प्रकाश को जिस प्रकार प्रभात वेलामें विशेष रूप से प्रकाशित करती है, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त प्रजापति भी विशेष तेजस्वी बनें ।

स इ॒ध्रान॑ उ॒पसो॑ रा॒म्या अनु॑ स्व॒र्णं दी॑दे॒दरु॑षे॒ण भानु॑ना ।
हो॒त्राभि॑रा॒ग्निर्मनु॑षः स्व॒ध्वरो॑ राजा॑ वि॒शाम॑ति॒धिश्चा॑रु॒राय॑वे ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशित होता हुआ रात्रियों के पीछे आने वाली उषा वलाओ को अति उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित करता है, और जिस प्रकार अग्नि दिन रात अपने उज्ज्वल प्रकाश से सब प्रकार सुखों को तथा ताप शक्ति को प्रकट करता या चमकाता है, वह विद्वान् पुरुष सब दिन और रात अपने क्रोध आदि कुटिल भाव से रहित ज्ञान के तेज से समस्त सुख तथा उत्तम उपदेश प्रकट करे । (२) इसी प्रकार तेजस्वी राजा अपने उज्ज्वल तेज से दिन रात प्रजा के सुख को चमकाता रहे, बराबर बढ़ाता रहे । उत्तम पूजनीय प्रजा को पालन करने द्वारा, प्रजा की हिंसा न करने वाला राजा समस्त प्रजाओं में अतिथि के समान पूजनीय, मनुष्यमात्र के लिये सञ्जालक, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष, वर आदि लेने के कार्य और उत्तम आज्ञावाणियों से मनुष्यों को उत्तम मार्ग पर ले चले ।

प॒वा नो॑ अ॒ग्ने अ॒मृते॑षु प॒र्व्यं धी॑प्पी॒पाय॑ बृ॒हद्वि॑वे॒षु मानु॑षा ।
दु॒हो॒ना धे॒नुर्वृ॑जने॒षु क॒ारवे॑ त्मना॑ श॒तिनै॑ पुरु॒रूप॑मि॒षणि॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्नि के समान विद्वन् ! हे पूर्व विद्वानों से विद्वान् हुए ! तु हमारे दर्घजीवी, बड़े भारी ज्ञान और प्रकाश से युक्त, और बलशाली जीवों में, मनुष्योचित नाना सुखों और ऐश्वर्यों और कर्मों और बुद्धियों की वृद्धि कर । स्वयं आत्मसामर्थ्य से दूध देने वाली गाय के समान तू पुरुषार्थ करने वाले पुरुष के हित के लिये, उसकी इच्छा होने पर, सैकड़ों सुखों वाले बहुत से रूपों के ऐश्वर्य की भी वृद्धि कर । (२) परमेश्वर सबसे पूर्व और पूर्ण होने से 'पूर्व्य' है । वह अविनाशी बड़ी कामना वाले जीवों में ज्ञान और कर्मों का उपदेश करता, पुरुषार्थों को उसकी वित्तैषणा, लोभैषणा आदि होने पर कर्त्ता के आत्म-सामर्थ्य के अनुसार नाना रूप ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

वयमग्ने अर्वाता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनुं अति ।

अस्माकं युष्ममधि पञ्च कृष्टिपूचा स्वर्णं शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १० ॥

भा०—हे नायक ! हम अश्वों और विद्वान् पुरुषों के बल से, अन्न धनैश्वर्य और ब्रह्म अर्थात् वेद-ज्ञान से, सब मनुष्यों को अतिक्रमण करके, बल, बुद्धि, ज्ञान, ऐश्वर्य में उनमें अधिक होकर, अपने अपने उत्तम बल, वीर्य, और ज्ञान का अन्यो को ज्ञान करावें, उसका अन्यो के उपकार में प्रयोग करें । हमारा तेज और बल तथा ऐश्वर्य, यश मनुष्यों के बीच अपार होकर, सूर्य के समान प्रकाशित हो । और पांचों जनों के ऊपर स्थित होकर नायक हमारे पांचों प्रकार के प्रजाजनो के बीच अपार अन्न, यश, बल को प्रकाशित करे ।

स नो वोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।

यमग्ने यज्ञमुष्यन्ति वाजिनो नित्ये लोके दीदृवांसं स्वे दमे ॥ ११ ॥

भा०—हे बलशालिन् परमेश्वर । ज्ञानवान् पुरुष, अक्षय तथा अति सूक्ष्म और अपने देह गृह में दीपक के समान चमकने वाले जिस परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, और जिसमें या जिसके अवीन रहकर शम, दम आदि उत्तम कर्मों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष नाना काम्य सुख प्राप्त करते हैं, वह नू हमें उस यज्ञ का उपदेश कर ।

उभयांसो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।

वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपुत्यस्य

शुग्धि नः ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् । हे ज्ञान में प्रसिद्ध । तेरी स्तुति करने वाले और अन्यो को सन्मार्ग पर ले जाने वाले हम लोग दोनों ही, तेरी शरण, तेरे सुखमय आश्रम में रहें । तू बहुत सुवर्णादि से युक्त, उत्तम प्रजा से युक्त, उत्तम सन्तानों से युक्त, तथा बसने योग्य गृह भूमि आदि ऐश्वर्य और दान देने योग्य धन को हमें प्रदान करने में समर्थ हो । (२) परमेश्वर

वेदों का ओर ज्ञानों का उद्भव होने से 'जातवेदाः' हे । हम सब उसकी शरण में या सुखमय परमानन्द स्वरूप में लीन रहे । वह हमें बहुतों को सुखी करने में समर्थ बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाले लोकों ऐश्वर्यों और धनो को देने वाला है ।

ये स्तोतृभ्यो गोमृशामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सुरयः ।

अस्मोश्च ताँश्च प्र हि नेपि वस्य आ बृहद्वेदेम विदधे सुवीराः ॥ १३ ॥ २१ ॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल २ । सू० १ । म० १६ ॥ इत्येक-विशो वर्गः ॥

[३]

गृत्माद ऋषि ॥ छन्द — १, २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६ मुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ६, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ७ जगती ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्यात् ।
होता पायकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरहन् ॥ १ ॥

भा०—अति प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष स्थापित होकर पृथिवी पर प्रत्येक पदार्थ पर अपना वश करता हुआ साक्षात् समस्त लोकों पर अध्यक्ष रूप में स्थित है । वह तेजस्वी पुरुष सबको अपने अधीन कर लेने और उनको इष्ट पदार्थ देने वाला, पापाचारों से पवित्र करने दारा, उत्तम ज्ञान, व्यवहार, तेज और रक्षा के साधनों से युक्त होकर, उत्तम प्रजावान्, उत्तम शत्रु हिसाकारी, विजयेच्छु होकर, अन्य विद्वानों का सत्कार करता हुआ उनको अपने साथ मिलावे ।

नराशंसः प्रति धामान्यजन् तिस्रो दिवः प्रति महा स्वर्चिः ।

यत्तुष्टुप मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यक्षस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सब स्थानों को प्रकाशित करता हुआ उत्तम ज्वाला वाला अग्नि अपने महान् सामर्थ्य से तीनों प्रकार की अग्नि, विद्युत्, सूर्य रूप अग्नियों को प्रकट करता हुआ, वृत्त से युक्त मन्त्र से चक्र को युक्त कर यज्ञ के मूर्धा भाग कुण्ड में उत्तम प्रकाशमान् किरणों को प्रकट करता है, और जिस प्रकार सबसे स्तुति किया गया सूर्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, और आकाश तीनों लोकों को और सब स्थानों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ और उदक को वर्षाने वाले स्तम्भक मेघ से अन्न उत्पन्न करने वाले क्षेत्र को सींचता हुआ महान् जगत् के मूर्धास्थान आकाश में दिव्य किरणों को प्रकट करता है, उसी प्रकार सब मनुष्यों से स्तुति करने योग्य विद्वान् पुरुष अपने धारण सामर्थ्यों और तीनों प्रकार के तेजों एषणाओं और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि व्यवस्थाओं को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ, उत्तम दीप्तिमान्, दीप्तियुक्त ज्ञान और मननकारी अन्तःकरण से ज्ञान के योग्य आत्म भूमि को आर्द्र करता हुआ, जगत् के प्रजापालक सर्वोच्च स्थान में स्थित होकर दिव्य गुणों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करे ।

ई॒ष्टि॒तो अ॒ग्ने मन॑सा नो अ॒र्हन्दे॒वान्य॑क्षि॒ मानु॑पा॒त्पूर्वो॑ अ॒द्य ।

स आ वह॑ म॒रुतां॑ श॒र्वो अ॒च्यु॑तमिन्द्रं॒ नरो॑ वह्नि॒षद् यज॑न्वम् ॥३॥

भा०—हे ज्ञानवन् तेजस्विन् ! तू सब मनुष्यों से पूर्व सबसे वन्दन करने योग्य है । तू मन से और ज्ञान से आज के समान सदा ही सब विद्वानों को सत्कार योग्य पदार्थ देता है । तू अन्यो का सत्कार करने हारा है । वह तू सब वीर पुरुषों के बल को और कभी परास्त न होने वाले ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति को धारण कर । हे नायक पुरुषो ! आप लोग उस उत्तमासन पर विराजे ऐश्वर्यवान् पुरुष की उपासना और आदर सत्कार करो ।

दे॒वो वह्नि॑र्वर्ध॒मानं॑ सु॒वीरं॑ स्तु॒तीर्णं॑ रा॒ये सु॒भरुं॑ वे॒द्यस्याम् ।

घृ॒तेना॒क्तं व॑सवः॒ सीद॑ते॒दं वि॒श्वे दे॒वा आ॒दित्या॑ यु॒भिया॑सः ॥४॥

भा०—हे कमनीय गुणों से युक्त तथा वृद्धिशील स्वामी को बढ़ाने हारे प्रजाजन ! तू बढ़ता हुआ उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर खूब विस्तृत इन सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली पृथ्वी में उत्तम रीति से सब का भरण पोषण करता हुआ ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये यत्नवान् हो । यज्ञ में बिठे हुए और जल से प्रोक्षित कुशासन पर जिस प्रकार वेदी में विद्वान्-जन विराजते हैं उसी प्रकार हे राष्ट्रनिवासीजनो ! हे सब विद्वान् पुरुषों ! और हे तेजस्वी राजागणों और ज्ञान धनैश्वर्यादि के दान प्रतिदान करने-हारो । 'अदिति' भूमि के शासको और अखण्ड ब्रह्म के उपासको ! और हे यज्ञ करने और यज्ञ अर्थात् प्रजापति राजा और परमेश्वर की सेवा करने हारो । आप सब लोग जल से सिंचे इस राष्ट्र में विराजो, तेज और अग्नादि पुष्टिकारक पदार्थों से सम्पन्न प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजो ।
 वि ध्र्यन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
 व्यर्चस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णै पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५।२२॥

भा०—जिस प्रकार बड़े २ द्वार सुख से आने जाने योग्य हों उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषों । आप लोग, सुख से गृहस्थ कार्य में प्रगति करने वाली, भूमि के समान उदार एवं सन्तति उत्पन्न करने में समर्थ, कमनीय अपने पुरुषों को चाहने वाली स्त्रियों को अन्न आदि सत्कारों सहित विशेष रूप से प्राप्त करो । विविध सुखों को प्राप्त करने कराने वाली, ज्वरादि रोगों से रहित रहती हुई, अपने वर्णों को, कीर्ति और अन्न को और उत्तम पुत्र से युक्त गृह को पवित्र करती हुई, स्त्रियों को विशेष उपाति स्नान कराओ और उन्हें आदर दो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

सुध्वपांसि सनता न उज्जिते उपासानक्षा वय्येव ररिवृते ।

तन्तुं तृतं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पर्यस्वती ॥६॥

भा०—दिन और रात्रि जिस प्रकार उत्तम कर्मों को करवाते हैं, अग्नादि से सींचते रहते हैं, नाना शब्दों से गुंजित रहते हैं, दोनों ही यज्ञ

का स्वरूप बनाते हुए पट धुनने वाली वरणी के समान चलते हैं, उसी प्रकार घर में स्त्री और पुरुष दोनों उपा काल के समान कान्तियुक्त और नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान एक दूसरे को सुप्त-निद्रा, रात्रि आदि देने वाले हो। वे दोनों हमें अच्छे विनययुक्त उत्तम कर्मों को भली प्रकार से करावें। वे दोनों सुखों के वर्णने वाले, एक दूसरे के प्रेम से सिक्त, हृष्टपुष्ट, निपेक करने और धारने में समर्थ हो। वे दोनों रमणीय मनोहर शब्दों को बोलते हुए एक दूसरे के प्रति आत्मदान एवं सुसगति-जनक गृहस्थ-यज्ञ के स्वरूप को और विस्तृत प्रजातंतु को भी धुनने के यन्त्र वरवाणियों के समान परस्पर मिलकर धुनते हुए, परस्पर की कामना और इच्छाओं को भली प्रकार से पूर्ण करते हुए, पुष्टिकारक अन्न और दुग्धादि से भरपूर होकर रहे।

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नामा पृथिव्या अधि सानुपु
त्रिपु ॥ ७ ॥

भा०—देवतुल्य पूज्य पुरुषों के प्रति उत्तम सत्कार करने में कुशल, एक दूसरे को इच्छापूर्वक स्वीकार करने वाले, उत्तम कोटि के अति-विद्वान्, सुन्दर शरीर वाले, रूप लावण्ययुक्त, एक दूसरे का सत्कार करने वाले होकर, सरल निष्पक्ष होकर, एक दूसरे के प्रति आत्मा को समर्पण करें और परस्पर संगत होंवे। वे दोनों स्त्री पुरुष ऋतु २, प्रत्येक उपयुक्त अवसर में, समय २ पर विद्वानों का सत्संगत करते हुए पृथिवी के बीच तीनों सेवने योग्य वर्म, अर्थ, और काम को प्राप्त करने के निमित्त परस्पर एक दूसरे की चाहना करें और सग करें।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इच्छा देवी मारती विश्वतूर्तिः ।

तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥

भा०—सरस्वती देवी हमारी बुद्धि और कर्म को मर्म में प्रवृत्त

कराती हुई, और अभिलषित सुख देने वाली इडा देवी, सब को अति-शीघ्र ले जाने या कार्य करने वाली और स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली भारती, ये तीनों देवियें स्वधा अर्थात् अन्न के द्वारा आश्रय को प्राप्त करके, दुरिहृत, सावधानता से इस वृद्धिशील गृहस्थ का अच्छी प्रकार पालन करें। 'सरस्वती'—उत्तम ज्ञान वाली विदुषी। 'इल' अन्नदात्री भूमि के समान सब सुखों को उत्पन्न करने वाली। 'भारती' मनुष्यों को सुख और आश्रय देने वाली। स्त्री ही के तीनों गुण हैं विदुषी, अन्न साधिका, और गृहस्थ सुख देने वाली। इन तीनों गुणों से युक्त स्त्रियां गृहस्थ बसा कर घर का पालन करें। राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्धकर्त्री सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा मन से सरस्वती (Legislative) इल (Revenue) भारती (Municipality) ये तीनों ही राष्ट्र में अपना स्थान पाकर दोपरहित कार्य सम्पदान करें और प्रजा की रक्षा करें।

प्रिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पार्थः ॥ ६ ॥

भा०—सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण का, वीर्य, बल और अन्न को धारण करने वाला, या उत्तम प्रजनन या सतानोत्पादन के सामर्थ्य को धारण वाला, विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करने हारा, वीर्यवान् पूर्ण युवापुरुष और सी अति शीघ्र ही उत्तम सन्तान रूप से उत्पन्न हों। जयवा—उक्त गुणविशिष्ट वीरपुत्र उत्पन्न हो। जगत्कर्त्ता परमेश्वर हमें तुल्य सन्तति को बाधने वाली उत्तम सन्तान प्रदान करे। और वह सन्तति देवों और अपने माता पिता आदि विद्वानों के लिये रक्षा करने वाले साधन अन्न आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

धनुस्पातिरवसजन्नुप स्थादृशिर्दिविः सृदयाति प्र धीभिः ।

त्रिपुा समकं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥

भा०—जलों का पालक मेघ जिस प्रकार वृष्टिरूप में जलधाराएँ छोड़ता हुआ उपस्थित होता है, और जिस प्रकार रश्मियों का पालक सूर्य रश्मियों द्वारा प्रकाश दान देता है, और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् सैन्यदल का पति शरवर्षण करता हुआ उपस्थित है, और जिस प्रकार ऋतु आदि महावृक्ष अपने फलों को दूसरों के उपकारार्थ प्रदान करता हुआ पड़ा रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ पुरुष जो कि नाना भोग और सविभाग करने योग्य दानधन का स्वामी है वह पुत्र पौत्रादि तथा ब्राह्मण, अतिथि आदि को अपना अन्न धन आदि त्याग करता हुआ सदा उपस्थित है। और अग्नि जिस प्रकार क्रियाओं से अन्न को अच्छी प्रकार पका देता और दूसरों के खाने योग्य बना देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानों और उत्तम कर्मों के द्वारा ग्रहण करने योग्य अन्न और गूढ़ ज्ञानों को भी अच्छी प्रकार अन्यो को प्रदान करे। वह अच्छी प्रकार स्वयं ज्ञानवान् होकर उस ज्ञान आदि पदार्थ को तीनों प्रकार से अर्थात् वाणी द्वारा, क्रिया द्वारा और उपयोग व व्यवहार द्वारा अच्छी प्रकार प्रकाशित करे। और विद्वानों का हितैषी दोषों को शान्त करने हारा विद्वानों के लिये भोग्य अन्नादि पदार्थ को प्राप्त करावे।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।

अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषमवति द्रव्यम् ॥११॥२३॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि में घृत का सेवन किया जाता है, और अग्नि के बढ़ाने का आधार घृत है, घृत अर्थात् क्षिग्ध पदार्थ पर ही वह आश्रित है, क्षिग्ध पदार्थ से उत्पन्न तेज ही अग्नि का तेज है, वह अन्न के साथ ही को प्राप्त कर तृप्ति करता है, उसी प्रकार यह मेघ जल को भूमि पर सेचन करता है, और इस मेघ का उद्भवस्थान भी जल ही है। वह मेघ भी जल के रूप में स्थित है। उसकी स्थिति, उत्पत्ति, जल ही है। हे मेघ ! तू अन्न का उत्पन्न करने के लिये जल को प्राप्त करा, और

समस्त प्रजावर्ग को हर्षित कर और उत्तम रूप से प्रदान किये इस प्रकार के अन्न को जल के रूप में तू हे वर्षणशील मेघ । सर्वत्र प्राप्त कराता है । तू धन्य है । इसी प्रकार हे वीर्य सेचन में और गृहस्थ धारण करने में बलवान् युवक पुरुष । तू सेचन करने योग्य वीर्य का सेचन कर । इस पुरुष का मूल उत्पादक कारण वीर्य ही है । यह पुरुष उस निपेक योग्य वीर्य ही के आश्रय में स्थित है । इस पुरुष शरीर का धारण करने वाला तेज, अज या जन्म, स्थिति और स्वरूप तीनों 'घृत' अर्थात् यह वीर्य ही है । तू उस वीर्य को उत्तम अनुकूल अन्न खाकर, अन्न के अनुरूप ही धारण कर, और अन्य सगिनी को भी तृप्त, सुप्रसन्न कर । हे वीर्य सेचन में समर्थ । तू उस धारण करने योग्य वीर्य को उत्तम रीति से प्रदान करने की विधि से यथाविधि धारण करा । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४]

मोनादुतिर्भागव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ स्वराट् पङ्क्तिः । २, ३, ५, ६, ७ आपी पङ्क्तिः । ४ ब्राह्मणुष्णिक । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्च सूक्तम् ॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृत्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।

मित्र इव यो दिधिपाय्यो भूदेव आदेष्टे जने जातवेदाः ॥ १ ॥

भा०—जो अल्प व्यवहारज्ञ, स्वल्प विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के हितार्थ सूर्य के समान या स्रेही सखा के समान सहायक, खूब उत्पन्न पदार्थों का जानने वाला, और उनको अपने आश्रय में धारण करने वाला, विद्या और ऐश्वर्य का देने वाला होता है, उस उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाले, पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार वर्जने और छुड़ाने हारे, अतिथि के समान पूज्य, उत्तम अग्नादि सामग्री और विद्या और प्रेमादि सद्गुणों से युक्त, प्रजाओं के बीच में अग्रणी आचार्य की आप के हित के लिये प्रशस्ता करता है । (२) विद्युत् उत्तम प्रकाशवान् होने से 'सुद्योत्मा' है । रोगहारी और तमोनाशक होने से 'सुवृत्ति' है । विद्वान्

पुरुषों के नाना प्रयोगों में आकर बहुत ऐश्वर्य के उत्पादक मित्र के समान सबका पालक पोषक है । (३) परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, पापहारी, पूज्य, आनन्दमय, मित्र, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब को धारण करने वाला है ।

इमं विधन्तो अ० पां सु० धस्ये द्विता दधुर्भृगवो विद्वान्त्रयोः ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निरतिर्जोराश्वः ॥ २ ॥

भा०—विद्युत्-विद्या के विद्वान् जिस प्रकार इस विद्युत् को विशेष उपाय करते हुए जलों के स्थान और वेगवान् पदार्थ इन दोनों स्थानों से ही प्रजाओं के हितार्थ प्राप्त करते हैं, यह विद्युत् बहुत से पदार्थों में व्यापक होकर विद्वान् पुरुषों के प्रायः सभी कार्यों में प्रयुक्त हो । वह प्रकाशमान् कार्यों में शक्तिस्वरूप, वेगवान् व्यापक गुणों वाला है । उसी प्रकार तपस्वी लोग प्रजाओं के बीच मनुष्यों के लिये इस विद्वान् की परिचर्या करते हुए इसको प्रजाओं के समीप दो रूपों में धारण करें । एक विद्यादाता का रूप दूसरा आचार शिक्षक का । वह बहुत सामर्थ्यवान् सब प्रकार की विपत्तियों और शत्रुओं का वारण करने में समर्थ हो । वह विद्वानों के बीच ऐश्वर्यवान्, जोर वेगवान् अथों से युक्त हो ।

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।

स दीदयदुशतीरुम्या आ दक्षाद्यो यो दास्यते दम् आ ॥ २ ॥

भा०—मुख से निवास करने की इच्छा करते हुए विद्वान् लोग, मननशील प्रजाओं में, नायक और ज्ञानवान् विद्वान् पुत्र को, प्राण जोर मित्र के समान अनिप्रिय बनाकर रखें, जो कि ज्ञानशील पुत्र के गृह में विपत्तियों का नाशकारी, विरोधियों को भस्म करने वाला, सब मष्टद्विया का बढ़ाने हारा है । वह रात्रियों को दीपक के समान कामना वाली प्रजाओं को प्रकाशित करता है (२) परमेश्वर को मित्र के समान प्रिय जानकर उसकी उपासना करें । वह रात्रियों को चन्द्र या अग्नि के समान अपने आत्मसम्पर्क के हृदय में सब शुभ कामनाओं को प्रकाशित कर देता है ।

अस्य रूपा स्वस्यैव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य द्वियानस्य दत्तोः ।

वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति
चारान् ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ओषधि वनस्पतियों में अपनी ज्वाला को पुष्ट करता है, और वालों को घोंड़े के समान ज्वालाओं को कंपाता है, उसी प्रकार जो नायक परसैन्य को भस्म करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले सैन्यों और प्रजाओं के बीच वाणी को विविध प्रकार से धारण करता है, विविध आज्ञाएं प्रदान करता है और घेरने वाले शत्रुओं को कपाता है, जिस प्रकार रथ में लगने योग्य अश्व उस नायक पुरुष का पोषण करना भी अपने देह के पोषण के समान सबको अतिप्रिय होना चाहिये । और जिस प्रकार जलती हुई और बढ़ती हुई अग्नि में अपने प्रकाश से अच्छी प्रकार मार्ग आदि दिखाने का विशेष गुण सबको प्रिय होता है इसी प्रकार अपने विरोधी जनों को भस्म करने वाले, बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ते हुए उस नायक पुरुष की सम्यक् दृष्टि ही सबको प्रिय लगती है ।

आ यन्मे अभवे चनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।

स चित्रेण चिकित्ते रंसु भासा जुजुर्वा यो मुहुरा युवा भूत् ॥ २४

भा०—जिस प्रकार यह जीव है जो कि एक शरीर में वृद्ध होकर भी बार २ युवा हो जाया करता है, जिस 'अहं' पदवाच्य जीव के अव्यक्त महान् रूप को ज्ञानप्रद गुरु या स्तोता लोग ज्ञान के जिज्ञासुओं को बराबर बतलाते हैं पर तो भी उसका स्वरूप नहीं प्रतीत होता, वह आत्मा अपने अतिमनोहर स्वरूप को आध्वर्यजनक या चित्रस्वरूप में रमण करने वाले तेज से जानता है, इसी प्रकार नायक की बढ़ाई को कविजन भोक्तृजनों के प्रति वर्णन करते हैं तो भी उसका गूढ़रूप नहीं पता चलता । वह अनुभवी वृद्ध होकर भी कार्य करने में सदा युवा रहता है,

वह अद्भुत तेज से अपने रम्य रूप अर्थात् प्रजामनोहारी रूप से प्रकट करता है, वही नायक होने योग्य है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

आ यो वनां तातृपाणो न भाति वारुणं पृथा रथ्यैव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रथवश्चिकेत द्यौरिव समयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

भा०—नायक संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों के प्रति प्यासे के समान अर्थलिप्सु होकर प्रकाशित हो । वह जलप्रवाह के समान अदम्य वेग से प्रयाण करे । वह स्वयं रथसेना का स्वामी होकर हर्षसूचक शब्द करता हुआ मार्ग से जावे । सूर्य के समान या नक्षत्रों से मण्डित आकाश के समान अपने बन्धुजनों से मुस्कराता तथा सुप्रसन्न होता रहे । वह चित्ताकर्षक, या शत्रु को काट गिरा देने वाले मार्ग पर चलता हुआ और शत्रुजनों को संतापजनक और स्वयं भी तपस्वी होकर अतिरम्यरूप में जाना जावे । नायक चित्ताकर्षक या शत्रु-निकृन्तन के मार्ग से जाने से 'कृष्णाध्वा' है ।

स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी प्रशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्मा अतसान्युष्णकृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७॥

भा०—जो उत्तम नायक पृथ्वी पर पराक्रम करता, शत्रु की बड़ी भारी सेना को भस्म कर दे, जो स्वयं प्रयाण करने हारा, अपने से अन्य किसी रक्षक की अपेक्षा न करता हुआ, स्वयं सबको भली प्रकार देखाता हुआ, विविध देशों में ठहरता, शत्रु पर अभियोक्ता या आक्रामक होकर चढ़ाई करता हुआ और जो सूर्य के समान तेजस्वी होकर निरन्तर आक्रमण करने वाले सैन्यों को अपने तेज से सतप्त करना हुआ, बड़े सामर्थ्य से अपने व्याधायी शत्रुओं को उच्छिन्न करता हुआ, बड़े नारी ऐश्वर्य या राज्य का मानो भोग करने में समय होता है, वही तेजस्वी पुरुष यथार्थ में 'अग्नि' कहाने योग्य है ।

नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।

अस्मे अग्ने संयच्छीरं बृहन्तं जुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् । अब पहिले से चले आए तेरे व्रत या रक्षणकार्य के अधीन, तृतीय सख्या के यज्ञ या सवन काल में तू हमें मनन करने योग्य ज्ञान का उपदेश कर । हमें संयमशील वीरों और पुत्रों शिष्यों से युक्त, बड़े भारी उत्तम अन्नादि समृद्धि से युक्त, बल ज्ञान और उत्तम सत्तान या उत्तराधिकारी से युक्त गृह, पशु, धनधान्य, सुवर्णादि स्थायी सम्पत्ति प्रदान कर । राजा आदि शासकवर्ग अपने तीसरे सवन अर्थात् नांकारी के काल के उपरान्त अपने पहले प्राप्त शासन के अनुभव अन्यो को दे । इसी प्रकार आचार्य आदि भी तीसरे वानप्रस्थकाल में अपने पूर्व के प्राप्त ज्ञान के अनुशीलन कार्य में नयो को मनन योग्य विज्ञान प्रदान करें ।

त्वया यथा गृत्समुदासो अग्ने गुहां बृन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।

सुवीरासो अभिमात्रिपाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धा. ६॥२५

भा०—हे विद्वन् ! जिस प्रकार आकाश में वायुगण या सूर्य की किरणें मेघों को और जलों को छिन्न-भिन्न करते हुए मेघों को निर्वल कर आप उनसे प्रवह हो जाते हैं, उसी प्रकार विद्वानों के समान ज्ञान और मनन में आनन्द लेने हारे उत्तम पुरुष अपनी बुद्धि में ज्ञानों का विभाग अर्थात् पृथक् विवेचन करते हुए अपने से पूर्व के जो लोग उस कार्य से उपरत हो चुके हैं उनसे भी अधिक विद्वान् हो । वे रथों पर आनन्द से युद्ध करने हारे वीरों के समान ही उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, अभिमानी शत्रुओं पराजित करने वाले हों । जो पुरुष उपदेश करते हैं उन विद्वान् पुरुषों को वह नाना प्रकार का वासना करने योग्य ऐश्वर्य व। दीर्घ जीवन् व प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५]

सामाहुतिभार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द — १, ३, ६ निचृदनुष्टुप् २,
४, ५ अनुष्टुप् । ८ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगुणिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

होता॑जनिष्ट॒ चेत॑नः पि॒ता पि॑तृभ्य॑ ऊ॒तये॑ ।

प्रय॑त्न॒ञ्जेन्यं॑ वसु॑ श॒केम॑ वा॒जिनो॑ यम॑म् ॥ १ ॥

भा०—ज्ञानवान् पुरुष अपने पालक मा बाप, गुरु, आचार्य आदि पितृतुल्य जनो से धनैश्वर्य और विद्या प्राप्त करके, स्वयं उनकी रक्षा करने के लिये उनका भी पिता हो जाता है, और स्वयं ज्ञानवान् पुरुष ज्ञानदान करने वाला होकर ज्ञान से तृप्त करने के कारण अपने पालक पितृतुल्य पुरुषों का भी पिता होता है, वह उनको सब दुःखों पर विजय करने वाला सर्वश्रेष्ठ धन को प्रदान करता है, इसी प्रकार हम लोग ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर इन्द्रियों और शत्रुओं पर सयम या वश करने में समर्थ होकर विजय करने वाले ऐश्वर्य और क्षात्रबल के दान देने में समर्थ हो ।

आ यस्मि॑न्त॒सप्त॑ र॒श्मय॑स्त॒ता य॒ज्ञस्य॑ ने॒तरि॑ ।

म॒नुष्व॑द्वै॒व्यम॑ष्ट॒मं पो॒ता वि॒श्वं तदि॑न्वति ॥ २ ॥

भा०—जिस यज्ञ के नायक में सात रश्मिष्ट गुड़ी है वह मनुष्यों के समान ही स्वयं आठवां, देवों में देव, परम देव है । वह सत्रको पवित्र करने और प्रेरने वाला होकर समस्त जगत् में व्यापक है । यज्ञ में सात ऋत्विजों पर जिस प्रकार एक 'होता', होता है उसी प्रकार देह में सात प्राणों पर उनका प्रेरक आत्मा या मन है । ससार में सात ऋतुओं पर एक सूर्य उसमें आठवां परमेश्वर परम पावन सर्वत्र व्याप्त है ।

द॒धन्वे॑ वा य॒दीम॑नु वो॒चद् ब्र॒ह्मा॑णि वे॒रुत॑त् ।

परि॑ वि॒श्वानि॑ का॒व्या ने॒मिश्च॑ क्रमि॒वाभ॑वत् ॥ ३ ॥

भा०—जो समस्त विश्व को धारण करता है, जो जो भी विद्वान् वेदादि सत्र शस्रोक्त ब्रह्मज्ञानों का उपदेश करता है वह उन सत्रको निर्व्यय

से व्यापता और जानता है । वह समस्त क्रान्तदर्शी पुरुषों के जानने और करने योग्य कार्यों और ज्ञातव्य ज्ञानों के ऊपर चक्र पर चढ़े हाल के के समान विद्यमान है ।

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशस्ता क्रतुनाजनि ।

पिद्धाँ अस्य व्रता ध्रुवा व्रया इवानु रोदते ॥ ४ ॥

भा०—जिस कारण पवित्र ज्ञान और कर्म के साथ वह सर्वश्रेष्ठ शासनकर्ता परमेश्वर सब प्रकार से पवित्र है, इसलिये उस परमेश्वर के सनातन से चले आये व्रतों-धर्मों को जानने और पालन करने वाला पुरुष, वृक्ष के शखाओं के समान, बराबर वृद्धि को प्राप्त होता और यथाक्रम से बराबर ऊँचे ही ऊँचे पड़ता है ।

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।

कुवित्तिस्त्र्यग्रा वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥

भा०—जो बहिनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, 'स्व' अर्थात् धनेश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएँ, भूमि, जल, पर्वत, या पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश तीनों से बहुत प्रकार के इस वर्णीय उत्तम धन को प्राप्त करती हैं वे मनुष्य प्रजाएँ, इस अपने नायक के ही स्वीकार्य धन को दुधार गौ के समान प्राप्त करती हैं । प्रजाएँ जो भी धन मिलकर प्राप्त करती हैं वह एक प्रकार से राजा का ही ऐश्वर्य है । (२) जो 'स्व' आत्मा की तरफ जाने वाली चित्तवृत्तियाँ कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से धेष्ट इस आत्मतत्त्व को प्राप्त करती हैं, या वेदत्रयी से इस धेष्ट आत्म-ज्ञान को प्राप्त करती हैं, वे आत्मा को प्राप्त होने वाली वाणियों या गौओं के समान, इस सर्वप्रणेतृ परमेश्वर के ही श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त करती और जन्मों को प्राप्त कराती हैं ।

यदा सातुरूप स्वसा पृत भरन्त्यस्थित ।

तासामध्वर्युरागतौ यवौ वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥

भा०—जल को धारण करती हुई मेघमाला को पृथ्वी के समीप आते देखकर जिस प्रकार कृपक प्रसन्न होता है, इसी प्रकार माता के समीप स्वयंपति को प्राप्त होने वाली स्वयंवरा कन्या ब्रह्मचर्य द्वारा तेज को धारती हुई प्राप्त हो । ऐसी कन्याओं में किसी के आ जाने पर गृहस्थयज्ञ का कर्त्ता वर्षा पाकर जो के समान अति प्रसन्न होता है । (२) आत्मा की तरफ जाने वाला चित्तवृत्ति जब प्रमाता आत्मा के समीप प्रीत्य या तेज को धारती हुई पहुँचाती है तो उन वृत्तियों के उदय होने पर अविनाशी आत्मा सब सग दोषों से दूर रहता हुआ, वृष्टि से यवक्षेत्र के समान खूब प्रसन्न हो आनन्द लाभ करता है ।

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।

स्तोमै यज्ञं चादरं वनेमा रणिमा वयम् ॥ ७ ॥

भा०—स्वय मनुष्य, ऋतु २ में यज्ञ करने वाले ऋत्विज के समान अपने ही धारण पोषण करने वाले की प्रतिसमय सत्संगति, उपासना और स्तुति करे । और अनन्तर हम उस स्तुतियोग्य सदा सगतियोग्य उपास्य परमेश्वर का खूब भजन करें, और उसके प्रति दान और अपने को समर्पण करें ।

यथा विद्वा ग्रं कर्द्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।

अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार यह विद्वान् पुत्रपुत्र सब उपासना सत्कार और दान करने योग्य आदरणीय पुत्रों के लिये खूब जन्म आदि प्रदान करता है, उसी प्रकार जिस भी यज्ञ-उपासना आदि कर्म को हम करते हैं, यह सब है परमेश्वर । तेरे ही निमित्त करते हैं । इति पट्विंशो नमः ॥

[६]

सोमाहुतिर्भागव ऋषिः ॥ अग्निर्दत्ता ॥ इन्द्रः १, ३, ४, ५ गानना । २,

६, ६ निचक्ष्मात्री । ७ विराड्गानना ॥ अष्ट ई मकर ॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनः ।

इमा ऊ पु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि समीप रखी हुई समिधा को प्रज्वलित कर देता है उसी प्रकार हे ज्ञानवन् ! गुरो ! ईश्वर ! आप भी इस अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली समिधा को जो शिष्य रूप से आप के समीप प्राप्त है उसे स्वीकार करें, प्रेमपूर्वक अपनावें, उसे ज्ञानाग्नि से प्रज्वलित करें । और हे शिष्य ! इन वेदवाणियों का तू उत्तम रीति से श्रवण कर ।

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे ।

पुना सुक्तेन सुजात ॥ २ ॥

भा०—हे शीघ्रगामी साधनो मे वेग देने वाली अग्नि ! तेरा इस जिया से यन्त्र बनावें । हे बलशक्ति को न गिरने देने वाली ! हे उत्तम णो मे प्रसिद्ध । तेरा हम इस सूक्त अर्थात् अग्निविद्या के उपदेश से सम्पादन, संचालन और प्रयोग करें ।

तं त्वा गीर्भिर्गिर्विणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः ।

सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥

भा०—हे द्रविण, ऐश्वर्य या जल को देने वाली अग्नि ! द्रुतगमन करने वाले, वाणी या विशेष शब्द के साथ सेवन योग्य तुझको हम उत्तम सेवा चाहने वाले, वेदवाणियों से प्राप्त करते हैं ।

स वोधि सुरिर्भघवा वसुपते वसुदावन् ।

युयोध्यस्मद् द्वेषसि ॥ ४ ॥

भा०—हैं अपने अधीन बसने वाले शिष्यों और प्रजाजनो के पालक ! हे उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले । वह तू उत्तम ऐश्वर्यवान् और विद्वान् होकर, ज्ञानसम्पादन कर ओर औरों को ज्ञान सम्पादन करा । हम ते द्वेषयुक्त व्यदहारों को पृथक् कर और करा ।

स नो वृष्टिं दिवस्पतिं स नो वाजमनुवर्णम् ।

स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् रूप अग्नि आकाश से वृष्टि देता है, और अश्व के बिना वेगवान् रथ देता है और सहस्रों सुखप्रद कामनाएँ पूर्ण करता है, इसी प्रकार वह विद्वान् हम पर अपने ज्ञानप्रकाश से सुखों का वर्षण करे, हिंसक योद्धा से रहित सप्राम पर विजय प्राप्त करावे, बिना अश्व के वेगवान् रथ को संचालित करे और हमारी ओर सहस्रों सुख देने वाली कामनाओं को प्रेरित करे ।

ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा ।

यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि और सूर्य तापमान होने से 'दूत' है, जल-कणों को पृथक् करने से 'यविष्ठ' है, वृष्टि अन्न जाति देने से 'यजिष्ठ', और प्रकाश आदि देने और जल आदि लेने से 'होता' है, वह इस अर्थात् अन्न के इच्छुक तथा अपनी रक्षा चाहने वाले को परजन्यवाणी के साथ प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे दुष्टों के संतापक । हे बलशालिन् ! हे दानशील ! हे अधिकार आदि देने वाले तू स्तुति करने वाले और रक्षा के चाहने वाले पुरुष को और हमको आज्ञावाणी सहित प्राप्त हो ।

अन्तर्हीम्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे ।

दूतो जन्येव मित्र्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे क्रान्तदर्शिन् । तू दुष्टों के लिये संतापकारी तथा सन्तानों के लिये हितकारी के समान, मित्रों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् होकर इहलोक और परलोक में इन दोनों जन्मों के सम्बन्ध में उपदेश कर ।

स विद्वां आ च पिप्रयो यन्ति चिकित्व आनुयक्ष् ।

आ चास्मिन्सन्ति बर्हिषि ॥ ८ ॥ २७ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वन् ! तथा ईश्वर ! सब कुछ जानता हुआ तू

सबको प्रसन्न और पूर्ण करता है, और सबके अनुकूल पदार्थ निरन्तर देता है । तू इस महान् ब्रह्माण्ड और पृथ्वीलोक में और उत्तमासन पर आकर विराजता है । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

सोमाहुनिर्नागव ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद् गायत्री । ४ त्रिचृद् गायत्री । ५ विराट् पिपीतिका नध्या । ६ विराड गायत्री ॥ षट्च सूक्तम् ॥

ध्रेष्ठं यविष्ठं भारताग्नें ह्युमन्तामा भर ।

वसो पुरुस्पृहं रुयिम् ॥ १ ॥

भा०—हे युवा ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे गृहस्थ में वसने और वसाने हारे । हे पालन पोषण करने हारे राजन् । तू सर्वोत्तम तथा बटुओं के चाहने योग्य ऐश्वर्य को सब तरफ से प्राप्त कर और ला ।

मा नो अरातिरोशत देवस्य मर्त्यस्य च ।

परि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! हमारे ज्ञानप्रकाश पुरुष तथा साधारण प्रजाजन पर शत्रु अपना स्वामित्व प्राप्त न करे । प्रत्युत तू ही उस शत्रु से हमें पार कर, उस पर विजयी बना ।

विश्वो उत त्वया वयं धारो उदन्वो इव ।

अति गाहेमाहि द्विषः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तेरे द्वारा हम लोग जल की धाराओं के समान सब शत्रुओं और अभियो को पार कर जावें, ।

शुचिं पावक वन्द्योऽन्नं बृहादि रोचसे ।

त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे पवित्र करने हारे ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! घृतों से आहुति दिये गये अग्नि के समान अति तेजों से युक्त होकर तू शुद्ध आभारवान्, स्तुतियोग्य, सत्कारयोग्य होकर बड़े रूप में विविध दिशाओं में प्रकाशित हो ।

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः ।

अष्टापर्दीभिराहुतः ॥ ५ ॥

भा०—राजा उत्तम पृथिवियों से, मेघों नदियों तथा नहरों से, आठ सचिव रूप पदाधिकारी लोगो से बनी राजसभाओं से सभापति रूप से स्वीकृत हो ।

द्रुनः सर्पिरासुतिः प्रज्ञो होता वरेण्यः ।

सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को अन्न के समान खाता है उसी प्रकार विद्वान् भी वृक्ष वनस्पति के ही अन्न वाला अर्थात् प्राणस्पतिक भोजन करने वाला हो । जिस प्रकार अग्नि घृत से सब प्रकार सींचा जाकर सूत्र बढ़ता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी घृत, दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन, सेवन करने वाला हो । वह अग्नि अति-पुरातन अविनाशी है तो विद्वान् भी दीर्घजीवी हो । अग्नि सब को भस्म करने वाला है, विद्वान् उत्तम पदार्थों को लेने और विद्यादि को देने वाला हो । अग्नि सदा स्वीकारने योग्य श्रेष्ठ है, विद्वान् सर्वश्रेष्ठ और श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाला हो । अग्नि बलवान् वायु से उत्पन्न होने और अरणियों द्वारा बलपूर्वक मयन करने पर उत्पन्न होने से बल का पुत्र है, विद्वान् बलवान् वीर्यवान् माता पिता का पुत्र हो । अग्नि अद्भुत गुणों वाला है, विद्वान् आश्चर्यकारी विद्या और चमत्कारी गुणों से युक्त ऐसा हो जैसा पहले कोई न हुआ हो । (२) इसी प्रकार परमेश्वर मसार वृक्ष को अन्न के समान प्रलयाम्नि में ला जाने से 'द्रु-अन्न' है । सर्वजन्तु सूर्य आदि लोकों को घेरने वाला है । शेष विशेषण स्पष्ट है । इत्यष्टाविंशोऽर्गः ॥

[८]

गृत्नमद ऋषिः ॥ अग्निदेवता द्रुनः—गायत्री २ । निचृद गायत्री ३ ।

गायत्री । ३, ५ निचृदगायत्री । ४ पिराड गायत्री । ६ निचृदगायत्री ॥

पठन् मुक्तम् ॥

वाज्रयन्निव नू रथान्योगा अग्रेरुप स्तुहि ।

यशस्तमस्य मीळहुषः ॥ १ ॥

भा०—जो अग्नि रथों के प्रति अश्व के समान आचरण करने वाला, तथा प्रचुर अन्न उत्पन्न कराने में समर्थ हो उस यशस्वी तथा जल बर्पाने वाले अग्नि के अनुकूल अवसरों का वर्णन कर ।

यः सृनीथो दंष्ट्राशुषेऽजुर्यो जुरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥

भा०—जो सूर्य दानशील मेघ को उत्तम रीति से लाने में समर्थ होता है वह स्वयं भी नाश न होकर तापता से जल को वाष्प के रूप में जाण करता हुआ, जठर में अन्न के समान वायु में विलीन करता हुआ, प्रदीप्त अग्नि के समान उत्तम पराक्रम वाला होता है । इसी प्रकार नायक और विद्वान् भी कर और वृत्ति आदि देने वाले या आत्मसमर्पक पुरुष को सन्मार्ग में ले जाने वाला हो, वह स्वयं युवा, शत्रु का नाश करता हुआ, आहुति से तीव्र अग्नि के समान उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों से उत्तम रीति से वार्त्थारम्भ करने वाला, उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हो ।

य उ ध्रिया दमेष्वा टोपोपसि प्रशस्यते ।

यस्य व्रतं न मीर्यते ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, सूर्य, विद्युत् आदि धरो में, गृहकार्यों में अपनी कान्ति से दिन रात उत्तम ही कश जाता है, जिसका व्रत, कर्म और स्वभाव, प्रकाश, दाह आदि कभी नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार जो पुरुष गृहों में, गृहस्थों में दिन और रात उत्तम लक्ष्मी, धनैश्वर्य सम्पदा से रहता है, जिसका व्रत, नित्य धर्माचरण कभी खण्डित नहीं होता है वह ही प्रशंसा के योग्य होता है । उसी प्रकार जो राजा प्रजा और शत्रुओं के दमन बापों में शोभा, शान या बड़ी राजलक्ष्मी सहित रहे और जिसकी आज्ञा या नियम, कानून न हूँ वह दिन रात प्रशंसनीय है ।

आ यः श्वर्णं भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।

अज्जानो अजरैरग्नि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि सूर्य के समान तेज से और ज्वाला से चमकता है, और अपने अविनाशी गुणों से चमकता रहता है, उसी प्रकार जो पुरुष सूर्य के समान ही अति आश्चर्यकारी तेज से और प्रकाश से अपने स्थायी गुणों से अपने को प्रकट और सब के प्रति प्रिय रूप में प्रकट करता हुआ सर्वत्र प्रकाशित होता है वह प्रशंसा योग्य है।

अत्रिमनुं स्वराज्यमग्निमुक्तयानि वावृधुः ।

विश्वे अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार आहुति के भक्षक अग्नि को लक्ष्य कर यज्ञादि में वैदिक सूक्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वह अग्नि शोभा कान्तियों को धारता है उसी प्रकार यह जो समस्त राज्य लक्ष्मियों को अपने वश में रखता है उस ही ऐश्वर्य के भोक्ता, अपनी राजसत्ता के स्वामी जगन्नायक को लक्ष्य करके नाना स्तुतिवचन बढ़ते हैं।

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य दवानाम्भुतिभिर्व्यम् ।

अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ध्याम पृतन्यत. ॥ ६ ॥ २६ ॥ ५ ॥

भा०—हम ज्ञानमय विद्वान् ऐश्वर्यवान्, व्यापारी तथा ग्रेष्क राजा इन दानशील तेज व्यक्तियों की रक्षाओं से कभी नाश को न प्राप्त होते हुए, संघ बना कर सब कार्यों में समर्थ हों। और मेना की इच्छा वाले शत्रुओं को भी हम पराजित कर लें। इत्येकोनविंशद्वर्गः ॥

[६]

गृत्सनद ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ इन्द्र.—१, ३ त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ।

५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । २ पक्ति ॥ ५ इव सूक्तम् ॥

नि होतां हातृपदने विद्वानस्त्वेषो दीदिवो असदत्सुदत्तः ।

अदध्वतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिर्निद्रो अग्निः ॥ १ ॥

भा०—होता आदि ऋत्विजों के वेदने के स्थान वेदा में चतुर्नादिका अहण करने वाला अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होकर विराजता है, उसी

प्रकार शासन के अधिकार देने और लेने वाले विद्वानों के विराजने के स्थान समानवन में सब राज्यभार को स्वीकार करने वाला ज्ञानी नायक तथा विद्वान् तेजस्वी पुरुष प्रकाश करता हुआ, उत्तम बल से युक्त, कार्यकुशल, अपने कर्त्तव्य कर्मों और उत्तम शील आचार के नाश न होने से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से युक्त, राष्ट्रवासियों में सब से श्रेष्ठ और अन्यो को सुख से बसाने वाला, सहस्रो का भरण पोषण करने में समर्थ, पवित्र सत्य वाणी बोलने द्वारा होकर, वेदी में होता या अग्नि के समान मुख्य आसन पर विराजे ।

त्वं द्रुतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।

अग्ने त्रोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीधद्वोधि गोपाः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सतापकारी, वर्षणशील, सब कार्यों का प्रवर्त्तक, दीपक के समान सन्मार्ग में ले जाने वाला, किरणों और भूमियों का रक्षक है, उसी प्रकार है नायक । तू ही हमारा परम पालन पोषण करने और रक्षा करने द्वारा है । हे समस्त सृष्टियों की मेघ के समान वर्षा करने वाले ! तू ही सब का बसाने द्वारा और सन्मार्ग में प्रजाओं को चलाने द्वारा है । हे अग्रणी । तू ही हमारे विस्तृत राष्ट्र में पालकों के और हमारे भी शरीरों का प्रमादरहित होकर रक्षक और प्रकाशक हो, और हमें ज्ञान प्रदान कर ।

विधेम ते परमे जन्मन्मग्ने विधेम स्तोमैरवरे सुधस्थे ।

यस्माद्योनेरुदारिद्र्या यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥

भा०—हे तेजस्विन् ! हम तेरे सर्वोत्कृष्ट विद्यासम्बन्धी जन्म के निमित्त तेरा विशेष आदर करें, और तेरे साथ रहते हुए सभा आदि स्थानों में तेरे उत्तम काम महत्व के जन्म अर्थात् माता पिता से हुए जन्म के सम्बन्ध की भी स्तुतियुक्त वचनों से चर्चा करें, उस सम्बन्ध में भी तेरी मान्यता न करें । तू जिस योनी अर्थात् गृह या मातृकुल से

उत्पन्न हो उसका भी आदर करें। खूब प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार चरु घृत आदि की आहुति देते हैं उसी प्रकार खूब तेजस्वी तुम में प्रजाजन अन्न और कर आदि उपादेय पदार्थ अच्छी प्रकार प्रदान करें।

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्जुषीं देवामभि गृणीहि राधः ।

त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचंसो मनोता ॥ ४ ॥

भा०—हे नायक ! तू दानशील होकर अन्न आदि देने और विद्वानों से स्वीकार करने योग्य पदार्थों का दान दे और उसके द्वारा अन्यों से मैत्रीभाव उत्पन्न कर। शीघ्र ही देने योग्य धन को देने का उपदेश कर। निश्चय तू ही ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू शीघ्र कार्य कराने में समर्थ अति तेजस्वी वाणी का आज्ञापक, प्रवक्ता है।

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवदिवे जायमानस्य दस्म ।

कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्न कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् नायक ! दर्शनीय ! हे प्रजा के दुर्गों का नाश करने वाले ! प्रतिदिन बढ़ते हुए तेरा दोनों प्रकार का, इस पृथिवी और आकाश का ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता है। तू विद्वान् उपदेशा पुरुष को अन्न आदि से युक्त कर और उसको उत्तम पुत्र वाले वन का स्वामी कर।

सैनानिकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवा आयजिष्ठः स्वस्ति ।

अदव्यो गोपा उत्त नः परस्पा अग्ने क्षुमदुत देवहिदीहि ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे सेनानायक ! तू वह इस सैन्यबल से उत्तम रीति से प्राप्त धन की रक्षा करने द्वारा, सत्र से सन्तुष्टि और मैत्रीभाव स्थापित हुआ, विद्वानों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों को मिलाता और वेतनादि देता हुआ, कहीं भी हिसित न होकर, हमारा रक्षक जोर सन्नाह आदि सध्या से पार करने वाला, एवं तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् होकर प्रकाशित हो जाए ऐश्वर्य का दान कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०]

गृत्तमद ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट् त्रिष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ।

४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ पङ्क्तिः ॥

जोह्वो अग्निः प्रथमः पितेवेलस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।

श्रिय वसानो अमृतो विचेता मर्मजेन्यः श्रुस्यः स वार्जा ॥ १ ॥

भा०—अग्रणी विद्वान्, नायक नाना ज्ञानो और ऐश्वर्यों का देने वाला, युद्ध में शत्रुओं को ललकारने वाला, विपत्ति-कालों में प्रजाओं द्वारा उत्सवों में मित्रों द्वारा पुकारे जाने और निमन्त्रित किये जाने योग्य, संप्रप्रेष्ट है । जब मननशील गुरु, या मनन करने योग्य सचिवादि के गुप्तमन्त्र द्वारा बल और ज्ञान में खूब प्रदीप्त होता है तब इस पृथिवी पर राजा, आर अन्नादि के लाभ में पिता, ओर वाणी विद्या से प्राप्त कराने में आचार्य, पालक पिता के समान हो जाता है । वह चिरजीवी राज्यलक्ष्मी का वरों के समान वायु शोभा रूप में धारण करता हुआ या लक्ष्मी को भय आन्तादन अर्थात् उसकी रक्षा करता हुआ, विविध ज्ञानों से युक्त, न्याय व्यवहारों द्वारा विवेकशाल, और दुष्टों से राष्ट्र को कण्टकशून्य करता हुआ, प्रवण करने योग्य, ज्ञानवान् और यश का पात्र और बलवान् हो ।
धिया अग्निष्टिभ्रमानुर्ह्वं मे विश्वाभिर्गोभिर्अमृतो विचेताः ।

श्यावा रथं वहतो रोहिता घोतारुपा हं चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् । तू मेरे ग्राह्य उपदेश का श्रवण कर । ज्ञानवान् पुरुष पितृदीप्ति वाले सूर्य या अग्नि के समान तेजस्वी होकर सब प्रकार की वाणियों से विविध ज्ञानों का देने वाला, शिष्य और पुत्र परम्परा से निर्य, सदा जगत् में जाता है । वह विविध ज्ञानों को धारण करने द्वारा वार्य सम्पादन करता है । उसके रमणीय उपदेशरूप 'रथ' की धारण करने वाले, दोष से रहित, आदित्य के समान तेजस्वी, वृद्धिशील या ज्ञानवान् या पुरुष धारण करते हैं ।

उ॒त्ता॒नाया॑म॒जन॒यन्त॑सु॒पूतं॑ भुव॑द॒ग्निः पु॑रु॒पेशा॑सु गर्भः ।

शि॒रि॒णायां॑ चि॒द॒क्नुना॑ म॒हो॒भिर॑प॒रीवृ॑तो वसति॑ प्रच॑ताः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग नायक को, ऊपर उठने वाली अर्थात् अभ्युदय-शालिनी प्रजा के बीच उत्तम रीति से ऐश्वर्ययुक्त और अभिषिक्त करते हैं । और वह बहुत से सुवर्ण वाली अर्थात् ऐश्वर्य से सम्पन्न प्रजाओं के बीच उनका भी वश करने हारा होकर रहे । शत्रुओं द्वारा पीड़ित हुए प्रजा में भी वह अपने तेज के कारण बहुत बड़े २ बलों और सहायकों से न घिरा रहकर भी स्वयं उत्तम चित्त या उत्तम ज्ञान वाला तथा अन्यो को उपाय बतलाने वाला होकर रहता है ।

जिघ॑र्ष्य॒ग्निं ह॒विषा॑ घृ॒तेन॑ प्रति॒क्षि॒यन्तं॑ भुव॑नानि वि॒श्वानि॑ ।

पृथुं॑ ति॒र॒श्वा व॒यसा॑ बृ॒हन्तं॑ व्यचि॒ष्टम॒न्नै र॒भसं॑ दृ॒शान॑म् ॥ ४ ॥

भा०—समस्त प्राणियों में रहने वाले, तिर्यग् योनि में भी जाने वाले, जीवन रूप से और भी अधिक विस्तृत, सदा बढ़ने वाले, निविध रूपों से व्यापक, अन्नों द्वारा कार्य करने वाले द्रष्टृशक्तिरूप जो मात्मारूप अग्नि को हम अन्न से और जल से पुष्ट करते हैं ।

आ वि॒श्वतः॑ प्र॒त्यञ्च॑ जिघ॑र्ष्य॒रक्ष॑सा म॒नसा॑ तज्जु॑गेत ।

म॒र्यथीः॑ स्पृ॒हय॑द्व॒र्णो अ॒ग्निर्ना॑भि॒मृशे॑ त॒न्वा ज॑भृ॒राण॑ ॥ ५ ॥

भा०—नायक अग्रणी पुरुष साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य, चाहने योग्य रूप रंग वाला, अपने शरीर से खूब दृष्ट पुष्ट शत्रु को कभी सह नहीं सकता । उस प्रतिदेश में व्याप्त शक्तिशाली को मन प्रकार से मैं प्रजाजन अभिषिक्त करता हूँ, और वह राक्षसों के निश्च उत्तम मद्रूप के से चित्त से उस मेरे दिये ऐश्वर्य का प्रेम से सेवन करे ।

ज्ञे॒या भ्रा॑गं स॒हस्रा॑नो वरे॑ण त्वा॒दृता॑सो म॒नुव॑द॒देम॑ ।

अ॒नू॒नम॑ग्निं जु॒हो व॑च॒स्या म॑धु॒पृचं॑ व॒नसा॑ नो॒दधी॑मि ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् नायक ! तू श्रेष्ठ एवं शत्रु के निवारण करने वाले बल से शत्रुओं का विजय करता हुआ अपने सेवनीय अश्व राष्ट्र को प्राप्त कर । हम दूतगण तुझको विचारने योग्य मन्त्र के समान यह हित उपदेश करते हैं । उत्तम वचनों से युक्त वाणी से मैं तुझको ऐश्वर्य का विभाग करने हारा, बहुत अधिक अन्न से सम्पर्क रखने हारे भोग्य पदार्थ का भागी स्वीकार करता हूँ । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[११]

गृत्तमन्त्र ऋषिः ॥ इन्द्रा देवता ॥ छन्दः—१, २, १०, १३, १६, २० पङ्क्तिः ।
२, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ६, ११, १२, १४, १८ निचृत् पङ्क्तिः । ७
विराट् पङ्क्तिः । ५, १६, १७ त्वराट् वृद्धी भुरिक् वृद्धी १५ वृद्धी ।
२१ त्रिष्टुप् ॥ एकोविशर्चं सूक्तम् ॥

पृथी हवमिन्द्र मा रिपयः स्याम ते ट्रावने वसूनाम् ।

इमा हि त्वामृजो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! तू हमारी पुकार या निवेदन को सुन । हम पीडा मत दे । हम तुझे ऐश्वर्यों के दान देने के लिये सदा उद्यत रहे । निद्रय से बसे प्रजाजन के बीच रहने वाले, अन्न और बल-पराक्रम से युक्त ये धनों के स्वामी बरते हुए महा नदों के समान तुझको बढ़ाते हैं ।

अृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

अमर्त्ये चिद्दासं मन्यमानमवामिनदुक्थैर्विवृधानः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! हे शूरवीर ! तू जिन पूर्व से विद्यमान और पूर्वजों से शासित भूमियों को प्राप्त हुआ, और जिनकी मेघ के समान सिंघाई करता रहा है, वे भूमिया यदि मुकाबले पर मारने योग्य शत्रु ने धेर ही हों तो उस न मरने हारे आत्मा के समान अपने को अमर अविनाशो मानता हुआ और विद्योपदेशों से बढ़ता हुआ तू शत्रु को अवश्य विध्वंस कर, निचे गिरा डाल ।

उक्थेऽपि ननु शूरं येषु चाकन्स्तोमैऽपि नृद्रुद्रियेषु च ।

तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिद्ध्यते न शुभ्रा ॥ ३ ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! जिन उत्तम वचनों में और उपदेशों के स्तुतिवचनों या उपदेशों में तू कामनावान् है, और जिन में तू रूप हर्ष लाभ करता है, वे शुभ फल देने वाले वायु के समान बलशाली तेरे उपकार के लिये ही प्रसृत होते हैं ।

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाहोर्दधानाः ।

शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सत्याः ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! तेरे अति तेजस्वी चमचमाते बल को बढ़ाते हुए और बाहुओं में शुभ्र चमचमाते शत्रुसमूह को वारण करने वाले शूरवीर पुरुष तुझे प्राप्त हों । और तू उनमें अतितेजस्वी सूर्य के समान बढ़ता हुआ हमारी प्रजाओं का नाश करने वाली शत्रुसेनाओं को सूर्य के समान संतापदायी नायक द्वारा पराजित कर । अथवा हमारी प्रजा जा और सेविका भृत्याओं को भी शत्रु बल को पराजित करने योग्य बना ।

गुहां द्वितं गुह्यं गृळहमप्यपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।

उतो अपो द्यां तस्तुभ्यां समदृच्छहि शूर वीर्येण ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे निर्भय वीर ! तू अपने बल पराक्रम से, गुहा अथवा छिपने के स्थान में स्थित, अपने को छिपा लेने में कुशल, गुह्य और प्रजाओं के बीच टके मायावी, और प्रजाओं को ही क्षीण करने हुए या प्रजाओं में वर किये हुए, दानशाली और व्यवहारशाली नाग ही स्तम्भित अर्थात् विघ्नों से कार्य करने में असमर्थ बनाने वाले अथवा कुलग्न शत्रु का विनाश कर ।

स्तवा नु तं इन्द्र पूज्यां महान्युत स्तवाम् नूनना कृतानि ।

स्तवा वज्रं बाहोर्दधन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य हेतू ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! तेरे पहले किये बड़े कार्यों की इस स्तुति में,

और नये किये गये कार्यों की भी स्तुति करें। बाहुओं में शस्त्रास्त्रसमूह धारण करना चाहते हुए आप की या बाहुओं में चमकते हुए शस्त्र की हम स्तुति करें। सूर्य की धारण और आकर्षण या ताप और प्रकाश दोनों प्रकार की किरणों के समान तेरे शौर्य को बतलाने वाले दोनों अश्वों की हम स्तुति करते हैं।

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्रुतं स्वारमस्वार्थम् ।

वि समना भूमिरप्रथिष्ठारस्तु पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्विन् ! संग्राम में प्रयाण करने की इच्छा वाले तेरे दोनों अश्व, प्रताप को दर्शाने वाले शब्द या गर्जन को करते हैं। तेरा राष्ट्र बड़े, वह खूब प्रसन्न हो। तू शत्रु पर चढ़ाई की इच्छा करता हुआ मेघ के समान प्रजापालन करने हारा संग्राम कर, और राष्ट्र में रमण कर, उसका सुख से उपभोग कर।

नि पर्वतः साधप्रगुच्छन्तसं मातृभिर्वाचशानो अक्रान् ।

दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेपितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥

भा०—पर्वत के समान अचल, मेघ के समान शत्रुओं पर और अपनी प्रजाओं पर शरों और ऐश्वर्यसुखों की वर्षा करने हारा, तथा पालन करने के साधनों में सम्पन्न पुरुष, सदा अप्रमादी रहता हुआ निरन्तर उच्च आसन पर बैठे। वह उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों से और माता के समान पालन पोषण करने वाली प्रजाओं और घोर गर्जन करने वाले तोप आदि साधनों से राष्ट्र को निरन्तर वश करता हुआ एक साथ अच्छे प्रकार आप्रमण करे। बहुत दूर तक वेदवाणी की वृद्धि करते हुए विद्वान् पुरुष, परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट वेदशास्त्र की वाणी का निरन्तर विस्तार करें। इन्द्रों यहां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।

अरेजेता रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् । ६॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राष्ट्रहन्ता राजा, बड़े भारी वेग से जाने वाले अश्व-

सैन्य का आश्रय लेकर, आलस्य प्रमाद में पड़े हुए, मायावी, छली, कपटी, बढ़ते हुए शत्रु का सर्वथा विनाश करे । और सिंहगर्जना करने वाले इस बलवान् पुरुष के वज्र या शस्त्रास्त्र बल से राजवर्ग और प्रजावर्ग स्वसैन्य और शत्रुसैन्य दोनों भय से कापें । (२) अभ्यात्म में सिन्धु और प्राणमय कोश में व्यापने वाला मायावी अर्थात् बुद्धि का स्वामी बलवान् मन पुन है । इसको अर्थात् आत्मा ही प्रेरित करता है । धर्ममेघ समाधि में आनन्दवर्षा करने वाले इस आत्मा के ज्ञानवज्र या चेतना से प्राण अपान दोनों चलते हैं ।

अरोरवीदृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषा निजूर्वीत् ।

नि मायिनो दानुवस्य माया अपादयत्पपिवान्तसुतस्य ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—इस बलवान्, शस्त्रवर्षणकारी पुरुष का शस्त्रास्त्रबल घोर गर्जन करे, और जो मननशील ज्ञानवान् है वह विनाश करे । दुष्टभाग्य करने वाले, व्रतादि का लण्डन करने वाले पुरुष की समस्त मायाओं को यह वीर विनष्ट करे, नीचे गिरावे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

पिवापिवेदिन्द्र शूरो सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।

पृणन्तस्ते ऋक्षी वर्धयन्तिवृथा सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥

भा०—हे शूरवीर ! जिस प्रकार सोम ओषधिरस या प्राणवायु का पान किया जाता है उसी प्रकार तू ऐश्वर्य का बराबर उपभोग कर । उत्पन्न अपने पुत्रों के समान अति हर्षजनक अभिषेक प्राप्त जन्यदा जन तुझे हर्षित करें । कोयें पूरने वाले मोजनों के समान वे जन्यदाजन तेरी कोखों को पूर्ण करें । अर्थात् दायें बायें रहकर तर बल को बढ़ावें । इस प्रकार अनिपिच्छ पुर का जन्यदा पुरुष राजा और समृद्ध राज्य दोनों की रक्षा करे ।

त्वे इन्द्राप्यमम विशा विदं वनेम ऋतया सगन्तः ।

अवस्यवो वीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते सायो द्रावने स्याम ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे अधीन रह कर हम विविध विद्या और धनों को पूर्ण करने वाले तथा सत्य वाणी से सम्बद्ध होते हुए रहे । उत्तम कर्म और ज्ञान का सेवन और आचरण करें । ज्ञान रक्षा और उत्तम आनन्द लाभ की इच्छा करते हुए हम तेरी उत्तम स्तुति को धारण करें और तेरे उत्तम शासन को बनाये रखें । हम प्रजाजन शीघ्र ही तेरे ऐश्वर्य दान के सत्पात्र हों ।

स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अ॒वस्य॒च ऊ॒र्जे॒ व॒र्धय॑न्तः ।

शु॒ष्मिन्त॑मं॒ यं चा॒कना॑म दे॒वास्मे॑ र॒यि रा॑सि वी॒रव॑न्तम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जो हम लोग तेरे पालन सामर्थ्य से रक्षा, ज्ञान, प्रीति, शत्रुनाश, वृद्धि आदि की कामना करते हुए बल पराक्रम को बढ़ाते रहते हैं, वे हम तेरे होकर रहे । जिस अधिक बल वाले, वीर्यवान् पुत्र भृत्य मित्रादि से युक्त ऐश्वर्य को हम चाहते हैं, हे राजन् ! तू वही हमें प्रदान करता है ।

रा॒सि क्ष॑थं रा॒सि मि॒त्रम॒स्मे रा॒सि श॑र्धे इन्द्र॒ मा॒रुतं॑ नः ।

स॒जोष॑सो॒ ये च॑ म॒न्दस॒ाना॒ प्र वा॒यवः॑ प॒ान्त्यग्र॑णीतिम् ॥ १४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् देव ! तू हमें निवास करने योग्य घर दे । हमें मित्र प्रदान कर, हमें वायुओं का सा प्रबल बल प्रदान कर । और जो सब को हर्षदायक, समान रूप से परस्पर प्रेम करने वाले हैं और जो सर्वधेनु नाति और युद्ध में आगे बढ़ती सेना की रक्षा करते हैं वे विज्ञानवान् और बलवान् होने से 'वायु' नाम से कहाने योग्य हैं ।

प्य॒न्ति॒वन्तु॑ ये॒षु म॒न्दस॒ानस्तृ॑प॒त्सोम॑ पा॒हि द्रु॒ह्यदि॑न्द्र ।

अ॒स्मान्त॑सु पृ॒त्स्वा त॑रु॒त्राव॑र्ध॒यो घा॑ वृ॒हद्भि॑र॒र्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस पूर्व यह विद्वानो और वीर पुरुषों के आश्रय होकर प्रजाजन ऐश्वर्य की कामना करते और उत्तको प्राप्त करते और भोग करते हैं, उन पर ही निर्भर रह कर हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी पूर्ण वृक्ष और

बढ़ होकर उस ऐश्वर्य की रक्षा कर । हे सकटों और अग्नि से पार उतारने हारे ! सूर्य जिस प्रकार बड़े २ प्रकाशों से और अन्नों से भूमि और आकाश को बढ़ाता, समृद्ध करता है, उसी प्रकार तू हमें संप्रामो के बीच बड़े उत्तम २ विचारों और तेजस्वी पूज्य वीर पुरुषों से बढ़ा । इति पञ्चमो वर्गः ॥

बृहन्तु इन्नु ये ते तरुत्रोकथेभिर्वा सुम्नसा विवासान् ।

स्तृणानासो बृहिः पस्त्या च त्वोताः इविन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे दु.लो से पार उतारने वाले ! जो पुरुष वेदोक्त वचनों से सुखस्वरूप तेरी सेवा करते, तेरी उपासना करते, तेरे सुख का आनन्द अनुभव करते हैं वे निश्चय से बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं । वे तेरी रक्षा में रहते हुए, गृह के समान वृद्धिशाल राष्ट्र को विस्तृत करते हैं । वे ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ।

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकन्दुकेषु पाट्वि सोममिन्द्र ।

प्र दोधुवच्छमश्रुषु प्रीणानो ग्राहि हरिभ्यां सुतस्य प्रीतिम् ॥ १७ ॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष ! तू तेजस्वी वीर पुरुषों के बीच अति प्रसन्न होता हुआ तीनों लोकों में सूर्य के समान, ऐश्वर्य का उपभोग कर । हे विद्वन् ! आचार्य ! तू तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों पर प्रसन्न होकर शरीर, आत्मा और मन तीनों की तपस्याओं, वा तेजस्विता, वेदवाणी और दीर्घ आयु इन तीनों के प्राप्त करने के लिये वीर्य की रक्षा कर, जवना 'सोम' अर्थात् विद्या के इच्छुक शिष्य की रक्षा कर । हे शूरवीर ! तू शरीर में स्थित वालों के समान अपने शरीर पर आश्रित जनों पर अति प्रसन्न होकर उनके ही बल पर अपने शत्रुओं को तूव जन्ती प्रकार हरा, भयभीत कर । और जनों के द्वारा राष्ट्र ही अपने पुत्र के समान पालन कर और अन्नरस के समान भोग को प्राप्त कर ।

विध्वा शवः शूर येन वृत्रप्रवानिनुदानुमोर्णवाम् ।

अपावृणोज्योतिरायानि सन्वृतः सादि इत्युविन्द्र ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र वायु जल देने वाले मेघ को आच्छादन करने वाले मकड़ी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर देता है, और मनुष्य के लिये सूर्य के प्रकाश को खोल देता है, और वह प्रकाशों का विघ्न-कारक मेघ एक ओर हट जाता है, उसी प्रकार हे वीर पुरुष ! जिस बल से अपने सैन्य आदि काटने वाले तथा बढ़ते हुए शत्रु को नाशकारी पुरुष मकड़ी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर नीचे गिरा देता है, तू उस बल को धारण कर । और तू श्रेष्ठ पुरुष के लिये प्रकाश को प्रकट कर । हे ऐश्वर्यवन् ! वह तू सकटों का नाश करने हारा होकर दक्षिण हाथ में विराज, अर्थात् सबका पूज्य होकर रह ।

सनेम ये तं कुतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।

अस्मभ्यं तत्त्वाष्टं विश्वरूपमरन्ध्रयः स्राख्यस्य त्रिताय ॥ १६ ॥

भा०—जो पुरुष तेरे रक्षा आदि साधनों से समस्त स्पर्धा करने वाली ललकारने वाली शत्रु-सेनाओं और दुष्ट-पुरुषों को पार कर जाते हैं, हम उनको प्राप्त करें । हे राजन् ! तू हमारे उपकार के लिये और तीनों पुरुषावों को प्राप्त करने वाले पुरुष के लिये, मित्रता के कारण, हमें वह उत्तम शिल्पी लोगों से प्राप्त होने योग्य रचिकर रूप प्राप्त करा ।

अस्य सुधानस्य मन्दिनास्त्रतस्य न्यवृद्धं वावृधानो अस्तः ।

अधर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद् पलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥

भा०—सूर्य जोर विद्युत् जिस प्रकार तेज ताप से युक्त होकर मेघ को छिन्न भिन्न करता है, विद्युत् यन्त्र के चक्र को चलाता है, तथा बढ़ता हुआ मेघ को उत्पन्न करता और फैलाता है, उसी प्रकार शत्रुनाशकारी पुरुष जगत् के समान दाहकारी घोर पुरुषों का स्वामी होकर, समस्त ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले तथा अतिहर्ष से युक्त, सघबल, सैन्यबल और धनबल तीनों प्रकार के साधनों से सम्पन्न राष्ट्र के हित के लिये, उसी सैन्य को बढ़ाता हुआ उसको खूब विस्तृत करे । वह सूर्य के

समान द्वादश राजचक्र को संचालित करे और घेरने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करे ।

नूनं सा ते प्रति वरं जारित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मवोनी ।

शिक्षां स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः २१।६।२

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! वह तेरी बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली प्रभात वेला प्रकाशमयी होकर स्तुतिकर्ता पुरुष को श्रेष्ठ ज्ञान प्रत्यक्षा में प्रदान करती है । हे ऐश्वर्यवान् ! तू हमारे बीच में ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति करने वाले विद्वान् उपदेशको को दान दे ओर उनको अतिक्रमण करके दुःखित मत कर । हम लोग उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान प्राप्त कराने के लिये बहुत उत्तम एवं बड़े ज्ञान वेद का उपदेश करें । इति सप्तमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१२]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १—५, १२—१५ त्रिष्टुप् । ३—८,

१०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ सुरिक् त्रिष्टुप् । पंचदशानं सूक्तम् ॥

यो ज्ञात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्कृतुना पर्यभूयत् ।

यस्य शुम्भाद्रोदसी अभ्यसेतां नृमणस्य मृता स जनासु इन्द्रः ॥१॥

भा०—जो अपनी शक्तियों से प्रकट होकर सबके आदि में नियमान, मननशील, सूर्य के समान सबका प्रकाशक, अपने ज्ञान और कर्म के बल से सनस्त पृथिवी आदि पदार्थों को सब प्रकार सुशोभित करता है, जिसके बल से आकाश और पृथिवी दोनों कापने ओर बल रहे हैं, हे मनुष्यो ! ऐश्वर्य की महत्ता से वह 'इन्द्र' कहलाता है ।

यः पृथिवीं व्ययमानामदृष्टयः पर्वतान्प्रकुपितो अरम्णान् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभुनस्त जनासु इन्द्रः ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो चलायमान, अति बिल्ल और तलछ पदार्थों से बर्ना, मृकण्यों से कापती हुई पृथिवी का दृढ़ धरता है,

रूप भडकते हुए, आग उगलते हुए पर्वतों को रम्य बनाता है, जो बहुत बड़े अन्तरिक्ष को बनाता है, जो सूर्य आदि लोको से मण्डित ऊपर के आकाश को थाम रहा है, वह परमैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर ही 'इन्द्र' कहा जाता है।

यो ह॒त्वाहि॑मरि॒णात्स॒प्त सि॒न्धन्यो॑ गा उ॒दाज॑द॒प॒धा ब॒लस्य॑ ।

यो अ॒शम॑नो॒रन्तर॑ग्निं ज॒जान॑ सं॒वृक्स॒मत्सु॑ स ज॒नासु॑ इन्द्रः ॥३॥

भा०—जो सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुमय स्वरूप को व्यापक कर, उनमें आघात या गति या प्रथम स्पन्दन उत्पन्न करके उनमें गति या क्रिया उत्पन्न करता है और जो निरन्तर गति करने वाले प्रकृति के त्सरेणुमय अवयवों को चलाता है, जो वेदवाणियों को उत्तम रीति से प्रकट करता है, या जो गो अर्थात् सूर्यों और पृथिवी आदि लोकों को ऊपर आकाश में चला रहा है, जो धरने वाले अज्ञान आवरण को दूर हटाता, जो परस्पर उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष, नर मादा दोनों के बीच अग्नि अर्थात् चेतना जीव को उत्पन्न करता है, जो हर्षावसरों में समस्त दुःखों को दूर करता है, हे विद्वान् जनो ! वह इस समस्त संसार का संचालक, द्रष्टा 'इन्द्र' है।

येने॑मा विश्वा च्यव॑न्ता क॒तानि॑ यो दासं॑ वर्णम॒धरं॑ गुहा कः ।

शृ॒ग्मीव॑ यो जि॒ग्मीवां॑ ल॒क्ष्माद॑द॒र्यः पु॒ष्टानि॑ स ज॒नासु॑ इन्द्रः ॥४॥

भा०—जिसने ये समस्त गतिशील सूर्य आदि लोक बनाये या जिसने इन सबको गतिमान् किया है, जो नीचे ले जाने वाले तथा नाश उत्पन्न करने वाले स्वीकृत रूपों को दया देता है, व्याध जिस प्रकार निशाने को नहीं छूँता उसी प्रकार सर्वविजयी, होकर पोषण योग्य प्राणी देते या स्वामी होकर अपने वश में रखता है, हे लोगो ! वही परमेश्वर है।

यं स्मो॑ पृ॒च्छन्ति॑ कु॒ह सेति॑ घोर॒मृते॑माहु॒र्नपो॑ अ॒स्तीत्ये॑नम् ।

सो अ॒र्घ्यं पु॒ष्टीर्विज॑ ह॒वा मि॑नाति ध॒र्दस्मै॑ ध॒त्त स ज॒नासु॑ इन्द्रः ॥५॥

भा०—जिस परमेश्वर के विषय में प्रायः लोग पूछा करते हैं कि बतलाओ वह कहा है ? और इस परमेश्वर को कुछ लोग घोर, सबका हनन करने वाला भयानक काल बतलाते हैं, और कुछ लोग इसके विषय में कहा करते हैं कि वह है ही नहीं, वह सबका स्वामी उद्देगकर्त्ता पुरुष के समान समस्त पदार्थों का विनाश करने में भी समर्थ है। इसके विषय में सत्यज्ञान प्राप्त करो, विश्वासपूर्वक यह सत्य जानो कि हे विद्वान् लोगो ! वही 'इन्द्र' सर्वेश्वर्यवान् परमेश्वर है। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो रुध्रस्य चोद्विता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्यो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनासु इन्द्रः ॥ ६ ॥

भा०—जो उत्तम रीति से आराधना करने वाले उपासक का सत् साधनानुकूल प्रेरणा करने वाला है, जो कृश, निर्बल और स्वल्प धन और शक्ति वाले को साहसपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करने वाला है, जो वेद और वेदज्ञ को प्रेरने वाला है, वेद का ऋषियों के हृदय में प्रकाश करने वाला, वेदज्ञ विद्वानों को उपदेश द्वारा अन्यो पर अनुग्रह करने के लिये प्रेरित करने वाला है, जो हृदय में पाप कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने वाले जो पुनः सन्मार्ग में सदाचार पूर्वक रहने की प्रेरणा करने वाला है, जो स्तुति करने वाले और उत्तम कार्य करने वाले को उत्तम कार्य की प्रेरणा करता है, जो उत्तम ज्ञानों वाला तथा उत्तम शक्तिशाली होकर, 'ग्रावा' अर्थात् उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों के सन्मुख करने वाले का रक्षक और उत्तम धैर्यों, ज्ञान और उत्तम शक्तियों को उपन्य करने वाले वेदय, विद्वान्, शिष्य और शिष्या इनका रक्षक, और उनकी इच्छापूर्ति करने और आनन्द देने वाला है, हे विद्वान् पुरुषो ! वस्तुतः वह ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' है।

यस्याभ्यासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे
रथासः । यः सूर्यं य उपसं ज्ञानं यो अथा नेता स जनासु
इन्द्रः ॥ ७ ॥

भा०—जिस परमेश्वर के निर्देश में अश्व तथा शीघ्रगामी और व्यापक पृथिवी सूर्य आदि और विद्युत्, आयु आदि हैं जिसके निर्देश में गौण वेद बाणियां, इन्द्रियां, उत्तम भूमियां और गतिमान् सभी लोक हैं, जिसके निर्देश में समस्त 'ग्राम' अर्थात् सघ है, जो परमेश्वर सबके प्रेरक सूर्य और उसके समान उत्पादक वीर्यवान् पुरुष को और जो कमनीय कान्तिवाली, प्रभात बेला को उत्पन्न करता है, जो समस्त नदियों, प्रकृति के परमाणु, कारण दशा में स्थित तत्वों, लिङ्ग, शरीरों, लोकों आदि का भी नायक, संचालक है, हे मनुष्यो ! वही 'इन्द्र' है ।

यं क्रन्दसी संयती विद्वेते परेऽवर उभया मित्राः ।

समानं विद्वेत्मातस्थिवासा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

भा०—जिस परमेश्वर को दुःखों के कारण रोने वाले तथा उत्तम मार्ग में यत्नशील स्त्री पुरुष विविध प्रकार से पुकारते हैं, जिसको उत्तम कोटि के और निकृष्ट कोटि के बड़े छोटे, ऊँचे नीचे सभी शत्रुगण भी विविध प्रकार से पुलाते हैं, और एक ही रथ पर बैठे हुए स्त्री पुरुष भी भिन्न २ नामों से याद करते हैं, हे मनुष्यो ! वह परमेश्वर 'इन्द्र' है ।

यस्मात्प्र व्रते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

भा०—जिस परमेश्वर के बिना मनुष्य काम आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं करते, देवासुर-संग्राम में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लोग भी जिसको अपनी रक्षा के लिये पुकारते हैं, जो समस्त विश्व का मापनेवाला है, एड़ से एड़ पदार्थों और दुर्गों और शत्रुगण को भी गिरा देने और भय से विमुक्त कर देनेवाला है, हे पुरुषो ! वह 'इन्द्र' है ! यः शर्वतो मध्येनो दधानानमन्यमानाञ्छवी जघान । यः शर्वते नानुददाति श्रुया यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—जो बड़ा नारी पाप करनेवालों को और शासन न मानने

और उत्तम मार्ग को न जानने वाले उच्छृङ्खलों और अज्ञानियों को सदा
वाणों और शासनरूप दण्ड से नष्ट करता है। जो कुत्सित वाणी बोलने
और निन्दित कर्म करनेवाले की निन्दित वाणी को कभी फलने नहीं
देता और नाशकारी दुष्ट पुरुष का नाशक है, है विद्वान् पुरुषो। वह
ऐश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' पद से कहाता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु जियन्तं चत्वारिंश्यां शरच्चन्वविन्दत् ।

ओजायमानं यो अहिं जवान् दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

भा०—४० वर्षों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, पर्वतों में
तपश्चर्या करते दुष्ट तथा शांति को वरने वाले व्यक्ति को जो परमेश्वर
प्राप्त होता है, अर्थात् ८ वर्ष की आयु से विद्याभ्यास आरम्भ कर ४८
वें वर्ष तक जो ब्रह्मचर्य तथा तपस्यापूर्वक विद्याभ्यास करता है परमेश्वर
उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है, और जो परमेश्वर बल पकड़नेवाले, सर्प
के समान कुटिल, मर्मच्छेदी, हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाले अज्ञान
को नष्ट करता है, है पुरुषो। वही सर्वेश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः सुतरश्मिर्बृषमस्तुविष्मान्वासृजत्सर्वे सुत सिन्धून् ।

यो रौद्विणमस्फुरद्वज्रवाहुर्धामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के समान सात रश्मियों वाला, मेघ के
समान समस्त सुखों का वर्णन करने वाला, वायु के समान बहुत बलवान्
होकर, सर्वत्र गति करने तथा सब जगत् के संचालन करने के लिये,
नदियों तथा प्राणों के समान सात प्रकृति-विकृतियों को रचना है। जो
सशस्त्र वीर पुरुष के समान आकाश में चट्ट के समान फैलते दुष्ट समार
को ज्ञानवज्र से विनष्ट कर देता है, है पुरुषो। ४१ परमेश्वर्यवान्
'इन्द्र' है।

द्यावां चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता मयन्ते ।

यः सोमपा निचिंतो वज्रवाहुर्धो वज्रदस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी दोनों लोक इसके आगे झुकते हैं, इसके बल से ही पर्वत ओर मेघ भी भयभीत से होकर कांपते हैं। जो नमस्त जगत् का पालक और समस्त ऐश्वर्यों का पालक, सर्वत्र व्यापक, वज्र के समान सब पापों को वर्जन करने में समर्थ, और उस वर्जनकारी बल से सबको दण्ड देने वाला है, हे मनुष्यो ! वही परमेश्वर्यवान् 'इन्द्र' परमेश्वर है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमुती ।

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येद राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

भा०—जो परमेश्वर सबन, अर्थात् यज्ञ, प्रार्थना, उपासना, ज्ञान-सम्पादन, ऐश्वर्य वृद्धि आदि करते हुए पुरुष की रक्षा करता है। जो परमेश्वर विद्या और बल परिपक्व करने और तपस्या से आत्मा को परिपक्व करने वाले की रक्षा करता है। अपनी रक्षाकारिणी शक्ति से स्तुति करने और अन्यो को ज्ञानोपदेश करने वाले की, और जो ऊँची गति करने वाले, अधर्म को लाघकर धर्ममार्ग में जाने वाले धर्मात्मा पुरुष की रक्षा करता है, जिसको वेद बढ़ाता, या जिसके गुणों का महान् स्वरूप प्रकट करता है, जिसकी महिमा को ओपधिवर्ग और वीर्य बढ़ा रहा है, जिसकी यह समस्त आराधना और ऐश्वर्य है, हे पुरुषो ! वही परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः सुन्वते पचते दुध आ चिद्धाजं दर्दपि स किलासि सत्यः ।

अयं ते इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदधमा वदेम ॥१५॥६॥

भा०—जो परमेश्वर दुर्धर्प और अजेय होकर भी सबन, यज्ञ, प्रार्थना, उपासना करने वाले के लिये और बल, ज्ञान, और वीर्य को प्रवर्धन और तपस्या से परिपक्व करने वाले पुरुष के लिये सब प्रकार का ज्ञान, धन, अन्न और बल प्रदान करता है, वह तू निश्चय से सत्य स्वरूप है, तेरी सत्ता में वस्तुतः कोई सन्देह नहीं। हे परमेश्वर ! प्रति

दिन, हम लोग तेरे प्रिय और उत्तम वीर्यवान् होकर तेरे विषयक ज्ञान का उपदेश करें । (अथर्ववेद भाष्य का० २० । सू० ३४।१-१८) इति नवमो वर्गः ॥

[१३]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, १०, ११, १२ भुरिह् ।
त्रिष्टुप् ७, ८ निचृत्तिष्टुप् । ६, १३ त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जती ।

५, ६ विराट् जगतो ॥ त्रयोदशर्व सूक्तम् ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मृक्षू जात आविशयासु वर्धते ।
तदाहिना अभवत्पिप्पुषी पयोऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्त्यम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ऋतुमती स्त्री पुत्र उत्पन्न करने वाली होती है, और उससे उत्पन्न हुआ पुत्र जिन जलों के भीतर लिपटा हुआ बढ़ता है वह उन जलों के भीतर प्रविष्ट होकर रहता है, वह प्रेममयी माता ही उस अपने से उत्पन्न पुत्र को दूध पिलाने वाली होती है । किरण के समान सुन्दर उस बालक के लिये सबसे प्रथम वह दुग्ध ही पान योग्य होने से 'पीयूष' है और वह अति उत्तम, प्रशसा-योग्य होता है । ठीक इसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों की वर्गी सभा ही राष्ट्र के भोक्ता या तेजस्वी उदीयमान राजा को उत्पन्न करने वाली है । उससे प्रकट होकर वह उन आस पुत्रों और प्रजाओं में प्रवेश करता है जिनमें कि वह जाता है । प्रेम से प्राप्त होकर वह उत्पादक मातारूप राष्ट्र प्रजा पुष्टिकारक पदार्थों का पान करा २ उसकी वृद्धि करती है । सूर्य के समान तेजस्वी राजा के लिये वह ही प्रजा का दिया पुष्टिकारक अन्न या भाग सर्वसे उत्तम है । सुधीमा यन्ति परि विभ्रतीः पयो विश्वस्न्याय प्र भवन्त भोजनम् । समानो अन्वा प्रवतामनुष्यदे वस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्त्यः ॥ २ ॥

भा०—दूध को स्तनों में वारण करती हुई, सन्ध्यामिना होकर

पत्नी सर्व प्रकार से इस पति को प्राप्त हो । प्रजा को पालने के लिये भोजन उपस्थित करे । अनुकूल होकर चलने में उत्तम आचार से रहने वालों का यही एक जैसा मार्ग है । जो उन नाना व्यवस्थाओं को, बालकों की जननियों या माताओं या देवियों को सबसे प्रथम या मुख्य-रूप से जानता है, वही प्रशसनीय है ।

अन्वेक्षां वदति यद्वदाति तद्रूपा मितन्तर्दृष्टा एक ईयते ।
विश्या एकस्य विनुदस्ति तित्तते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्यु-
कथ्यः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर समस्त पदार्थ प्रदान करता है वही एक समस्त पदार्थों के अनुकूलवेदनीय सुखकारी उपयोग का उपदेश करता है । वह नाना रूपों को मूर्तिमान् और रुचिकर बनाता है, और उन २ कर्मों को करने वाला भी वह अकेला ही जाना जाता है । उस अद्वितीय परमेश्वर की ही ये समस्त विविध प्रेरणाएँ हैं, वही एक सब ससार-सञ्चालन आदि का पीठाधीश्वर को सह रहा है । जो परमेश्वर उन सब क्रियाओं को पहले ही से कर रहा है और करता है वही सबसे अधिक स्तुतियोग्य है ।

प्रजाभ्यः पुष्टिं प्रिभजन्त आसते रुधिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायुते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्यु-
कथ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अपनी प्रजाओं के हित के लिये गृहपति जिस प्रकार पोषण-धारी पशु, अन्न, भूमि आदि समृद्धि का विभाग करते हुए राजा का आश्रय लेकर बैठते हैं, उसी प्रकार लोग जिस परमेश्वर को प्रजाओं के हित के लिये समृद्धिमय जानकर विविध प्रकार से भजन करते हैं, और जिस प्रकार आगामी काल के लिये लोग ऐश्वर्य को गाँठते हैं और जिस प्रकार लोग नविष्य के लिये अपनी पीठ या आधार को पक्का नजबूत बनाते हैं, उसी प्रकार जिस परमेश्वर को धन के समान विद्यमान तथा

देह से पीठ के समान संसार भर को थामने वाला, और प्रभावशाली जानकर उसके साथ प्रेम बनाकर उसको अपने से जोड़ते हैं। और मनुष्य जिस प्रकार अपनी दाढ़ों से भोजन चबाकर खाता है उसी प्रकार जो परमेश्वर सब संसार का पालक होकर भी दाढ़ों से भोजन के समान ही समस्तजगत् को प्रलय काल में ग्रास कर जाता है, और जो तू है परमेश्वर। उन नाना कर्मों को सबसे पहले से ही करता आ रहा है वह तू वेदों द्वारा प्रशंसा के योग्य है।

अधाकृणोः पृथिवीं सृष्टशे द्विवे यो धौतीनामहिद्विचारिणः ॥
तं त्वा स्तोमोभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्तसास्यु-
कथ्यः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे मेघ के नाशक सूर्य के समान अज्ञान-आवरण के नाशक परमेश्वर ! तू सूर्य के प्रकाश के द्वारा अच्छी प्रकार से देखने के लिये पृथिवी को बनाता है। और जो तू वेग से जाती हुई भूमियाँ, नदियाँ और लोकों के मार्गों को प्रकट और बेरोक कर देता है। जलों में सींच कर जिस प्रकार अन्न में युक्त दोष ओषधिवर्ग को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष उत्तम स्तुतियों से सर्वप्रकाश हैं, बलवान् तुझको प्रकट करते हैं वह तू वेदवाक्यों में स्तुति के योग्य है।

नि दशमो वर्गः ॥

या भोजनं च दयसे च वर्धनमाद्रादा शुक्रं मधुमदुरोद्विध ।
सः श्रेष्ठि नि दधिपे विवस्वति विश्वस्यैकं शिषिषे सास्यु-
कथ्यः ॥ ६ ॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के ऊपर निर्भर कर भोजन गार अन्न वृद्धि कर वन को प्रदान करता है, और जो परमेश्वर गीली ओषधियों में सूते और मधुर अन्न आदि को प्राप्त करता है, वही परमेश्वर सूर्य न दा अपार खजाना गुप्त ढाग में स्थापित करता है, और जो समस्त संसार में अकेला ही ईश्वर है वह तू प्रशाननीय वचनों के योग्य है।

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च घर्मणाधि दाने व्यवनीरधारयः ।

यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुर्वा अभितः सास्युकथ्यः ॥७॥

भा०—जो परमेश्वर अपने धारण सामर्थ्य या ईश्वरीय नियम से जगत् को पालन करने के हेतु फूलों वाली उत्तम फल उत्पन्न करने वाली और सब प्राणियों को रोगादि से बचाने वाली नाना ओषधि लताओं को धारण करता है और जो अन्तरिक्ष और पृथिवी में एक से एक भिन्न चमकने वाले पदार्थ उत्पन्न करता है और जो स्वयं महान् होकर नाना विनम्र पदार्थों को रचता है वह तू स्तुति करने योग्य है ।

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवैशाय चावहः ।

उर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमृतैवाद्य पुरुकृत्सास्युकथ्यः ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर बहुत पदार्थों और लोकों को बनाने द्वारा है, जो बसने वाले प्राणियों के साथ विद्यमान मनुष्यों को मारने वाले घातक कारण का विनाश करने, अन्नादि से प्राप्त करने, और प्राणनाशक पदार्थों के नाश करने के लिये अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि के मुख को सदा खुला रखता है वह ही तू स्तुति के योग्य है ।

शत वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।

अर्जो दस्युन्तसमुनद्धभितये सुप्राव्यो अभवः सास्युकथ्यः ॥९॥

भा०—जिस परमेश्वर के दश गुणा सौ अर्थात् सहस्रों साथी हैं । जिस अद्वितीय परमेश्वर के गुणध्रवण और आनन्दलाभ करने के लिये वेद को तूने प्रेरित किया है जो बिना रस्सी के ही गुप्त पुरुषों को अच्छी प्रकार बाध देता है, जो विनाश से बचाने के लिये उत्तम रीति से रक्षा करने में कुशल है, वह तू है परमेश्वर ! सबसे प्रशंसा करने योग्य है ।

विभ्येदनु रोधना अस्य पौस्यं ददुरस्मे दधिरे कृत्नवे घनम् ।

पल्लस्तभता विष्टिरः पञ्च उन्द्शः परि पुरो अभवः सास्यु-
कथ्यः ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—इस परमेश्वर के महान् पौरुष के अर्थात् ही सब प्रकार की नियम व्यवस्थाएँ हैं। वे उसके पुरुषत्व को हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य सब कर्मों को करने वाले विश्वत्प्रा की आराधना के निमित्त ही उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही सूर्य के समान उद्यो विस्तृत दिशाओं को या द्यौ, पृथिवी, दिन, राति और आपः, ओषधि इत छहों को, और पाच देखने वाली इन्द्रियों को धारण करता है, और जो तू पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है, वह तू सबसे श्रेष्ठ प्रशंसनीय है।
 सुप्रवाचनं तव वीर वीर्ययदेन कतुना विन्दसे वसु । ज्ञातु-
 ष्ठिरस्य प्र वयः सहस्रतो या चकथ्य सेन्द्र विश्वाःस्युक्त्यः ॥११॥

भा०—हे वीर परमेश्वर ! तेरा बल पराक्रम उत्तम रीति से गुरु जनों से उपदेश किये जाने योग्य है। तू एक ही महान् कर्म और ज्ञान के बल से समस्त वसे जगत् को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में कारणरूप में स्थिर रहने वाला जोर बलवान् जो तू है उस का ही ज्ञान और बल सर्वोत्कृष्ट है। वह तू जिन सब कार्यों को करता है वही तू प्रशंसनीय है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च द्युतिम् ।
 नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्साःस्युक्त्यः ॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू पापों से युक्त पुत्रों को इस संसार के कष्टमय महासागर में सुखपूर्वक तर जाने के लिये, कर्मबन्धनों का नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये जोर तन्त्र के समान शिष्यपरम्परा और पुत्रपरम्परा बनाये रखने के लिये भी ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग को रणनीय कर देता है। नीच पाप में रहत हुए को भी तू ऊपर उठाता है। दूर त्याग किये जिसको बन्धु बान्धव जन और घर चले गये ऐसे अनाथ को भी ऊपर उठाता है। अन्ये जनों के ज्ञानज्ञान और बढ़ते अर्थात् उपदेशविहीन पुत्रों को भी वेदज्ञान के उपदेश में युक्त करता है। वह तू प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यं तद्वसो वानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसुव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं ध्रुवस्या अनु द्यून्वृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे ऐश्वर्यवान् प्रभो । तेरा बहुत सा वसे प्राणिजनों और लोगों के हित के लिये धन है । जो बहुत ही अद्भुत धन है, हे सबको चत्ताने हारे । वह हमें दान देने के निमित्त दो । हम यज्ञ कीर्ति और ज्ञान में कुशल, उत्तम वीर्यवान् होकर, सब दिनों, यज्ञों, ज्ञानयोग्य शास्त्रों का बहुत गुण कथन करें, कहे । इति द्वादशो वग. ॥

[१४]

गृत्तमर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, ३, ४, ६, १०, १२
नि ७२ । २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्पङ्क्तिः ।

११ भुरिक पङ्क्तिः ॥ द्वादशार्च सूक्तम् ॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।

कामी हि वीरः सदर्भस्य पीति जहोत् वृष्णे तदिष्टेप वष्टि ॥१॥

भा०—हे अध्वर अर्थात् हितारहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों को इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषों । पात्रों से जिस प्रकार ओषधिरस निर्बलों को दिया जाता है और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य या भोग करने वाले सहयोगियों द्वारा ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ और हर्ष और वृष्टि को देने वाले अन्न को नहरों और वृष्टियों से खूब सींचो, अन्न की खूब खेती करो । वीर पुरुष सदा ही इतत ऐश्वर्य, उत्तम अन्न, भक्ष्य पेय सामग्री की कामना करता रहता है । वर्षणशील नेघ या सूर्य जिस प्रकार इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार राष्ट्र का प्रयत्न करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये इस ऐश्वर्य और अन्न का पान, उपभोग प्रदान करो । यही वह पारता है ।

भा०—इस परमेश्वर के महान् पौरुष के अर्थात् ही सब प्रकार की नियम व्यवस्थाएं हैं। वे उसके पुरुषत्व को हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य सब कर्मों को करने वाले विश्वस्रष्टा की आराधना के निमित्त ही उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही सूर्य के समान छहों विस्तृत दिशाओं को या द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि और आपः, ओषधि इन छहों को, और पांच देखने वाली इन्द्रियों को धारण करता है, और जो तू पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है, वह तू सबसे श्रेष्ठ प्रशंसनीय है।

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन कर्तुना विन्दसे वसु । ज्ञातृ-
ष्टिरस्य प्र वयः सहस्रतो या चकर्थं सेन्द्र विश्वास्युकथ्यः ॥११॥

भा०—हे वीर परमेश्वर। तेरा बल पराक्रम उत्तम रीति से गुरु जनों से उपदेश किये जाने योग्य है। तू एक ही महान् कर्म और ज्ञान के बल से समस्त वसे जगत् को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में कारणरूप से स्थिर रहने वाला और बलवान् जो तू है उस का ही ज्ञान और बल सर्वोत्कृष्ट है। वह तू जिन सब कार्यों को करता है वही तू प्रशंसनीय है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च द्युतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्तसास्युकथ्यः ॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पापों से युक्त पुरुषों को इस ससार के कष्टमय महासागर से सुखपूर्वक तर जाने के लिये, कर्मबन्धनों का नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये और तन्तु के समान शिष्यपरम्परा और पुत्रपरम्परा बनाये रखने के लिये भी ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग को रणनीय कर देता है। नीच पथ में रहने हुए को भी तू ऊपर उठाता है। दूर त्याग किये जिसको बन्धु बान्धव जन छोड़कर चले गये ऐसे अनाथ को भी ऊपर उठाता है। अन्धे अर्थात् ज्ञानहीन और बहरे अर्थात् उपदेशविहीन पुरुष को भी वेदज्ञान के उपदेश से युक्त करता है। वह तू प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु हून्वृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे ऐश्वर्यवान् प्रभो ! तेरा बहुत सा वसे प्राणिजनो और लोकों के हित के लिये धन है । जो बहुत ही अद्भुत धन है, हे सबको चत्ताने हारे । वह हमें दान देने के निमित्त दो । हम यज्ञ कीर्ति और ज्ञान में कुशल, उत्तम वीर्यवान् होकर, सब दिनों, यज्ञों, ज्ञानयोग्य शास्त्रों का बहुत गुण कथन करें, कहें । इति द्वादशो वगः ॥

[१४]

गृत्तमद अपिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, ३, ४, ६, १०, १२
त्रिष्टुप् । २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्पङ्क्तिः ।

११ तुरिक पङ्क्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।

क्रामी हि वीरः सदमस्य पीति जहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥

भा०—हे अध्वर अर्थात् हितारहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषो ! पात्रो से जिस प्रकार ओषधिरस निर्वलों को दिया जाता है और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करने वाले सहयोगियों द्वारा ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ और हर्ष और तृप्ति को देने वाले अन्न को नहरों और वृष्टियों से खूब सींचो, अन्न की खूब खेती करो । वीर पुरुष सदा ही इस ऐश्वर्य, उत्तम अन्न, भक्ष्य पेय सामग्री की कामना करता रहता है । वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार राष्ट्र का प्रबन्ध करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये इस ऐश्वर्य और अन्न का पान, उपभोग प्रदान करो । यही वह चाहता है ।

अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्यैव वृक्षम् ।

तस्मा एतं भरत तद्वशाय एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषो ! विद्युत् जिस प्रकार वृक्ष को भस्म कर देता है उसी प्रकार जो ज्ञान और प्रजा के कामों को धरने वाले शत्रु का नाश करता है, उन २ नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को चाहने वाले इसके लिये इस ऐश्वर्य को लाओ, पूर्ण करो । यह शत्रुहन्ता वीर पुरुष ही इस राष्ट्र का उपभोग करने के योग्य है ।

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।

तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥

भा०—हे हिसारहित प्रजापालन के कार्यों को चाहने वाले विद्वान् पुरुषो ! जो शत्रुहन्ता वीर पुरुष प्रजा को त्रास देने वाले का नाश करता है, जो गौओं को गोपाल के समान भूमियों और प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता है, नगर पुर आदि के घेर लेने वाले शत्रु को मेघ को वायु के समान छिन्न भिन्न कर दूर करता है, उस पुरुष के लिये अन्तरिक्ष में वायु के समान यह समस्त ऐश्वर्य है । उत्तम वस्त्रों से जिस प्रकार वृद्ध या विद्योपदेष्टा गुरु को आदरपूर्वक सुशोभित करते हैं उसी प्रकार उस शत्रुघातक ऐश्वर्यवान् पुरुष को अच्छी प्रकार उत्तम वस्त्रादि से ढाँटादित कलंकृत करो ।

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवृतिं च ब्राह्मन् ।

यो अर्बुदमव नीचा ववाघे तमिन्द्रं सोमस्य भूये हिंनोत ॥ ४ ॥

भा०—प्रजा का हिंसा कार्य न हो ऐसा प्रबन्ध करने वाले हे विद्वान् शासक पुरुषो ! जो वीर पुरुष दूसरे के माल को या सन्ध को छुपाने वाले और प्रतिघात करने वाले शत्रु का भी नाश करने में समर्थ है और जो सौ के बीच में अकेला रहकर भी दोष ९९ शस्त्रधारी दायों को रण में पछाड़ सके, जो अरबों शत्रुगण को नीचे दबाकर पीड़ित कर सके, उस

सेनापति को ऐश्वर्य के धारण और राष्ट्र के पालन करने के लिये आगे बढ़ाओ । उसको राज्य का सर्वोत्तम पद प्रदान करो ।

अध्वर्यवो स्वश्वं जुघान यः शुष्णमशुपं यो व्यसम् ।

यः पिपुं नमुञ्चि यो रुधिका तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥

भा०—प्रजा में परस्पर के नाश को न चाहने वाले हे व्यवस्थापक लोगो ! जो प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष को दण्डित करता है, जो प्रजा का रक्तशोषण करने वाले को और स्वयं किसी को शोषण या निर्दल न किया जा सकने योग्य अदम्य शत्रु को भी मार सके, जो विविध अशो अर्थात् प्रजापीडित उपायों वाले दुष्ट को दण्डित करता है, जो अपना ही पेट भरने वाले और अधर्म को न त्यागने वाले को दण्डित करे, जो रुधि अर्थात् प्रजाओं को पाप करने से रोकने वाली नियम मर्यादाओं को लाघ जाने वाले का नाश करे, उस शत्रुनाशक वीरपुरुष के लिये समस्त अन्न आदि नाना उपभोग योग्य पदार्थ प्रदान करो ।

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वोः ।

यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के सिद्ध करने में कुशल पुरुषो ! जो प्रजा की शान्ति और सुख को रोकने वाले दुष्ट पुरुषों की पहले से ही विद्यमान सैकड़ों नगरियों या पलने के स्थानों या अड्डों को पत्थर के ढेले के समान अपने शस्त्रबल से तोड़ डाले, और जो पुरुष अति तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रु के सैकड़ों नगर तोड़े और हजारों को दूरे से वालों के सन्मान बाट २ कर साफ कर दे, ऐसे बहादुर पुरुष के लिये राष्ट्र का ऐश्वर्य प्रदान करो । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।

कुत्सस्यायोरतिथिगवस्य वीरान्यवृणुभरता सोममस्मै ॥ ७ ॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के कर्त्ता और राष्ट्र की हिता न चाहने वाले

विद्वान् पुरुषो ! जो भूतल पर स्वयं शत्रुहन्ता होकर, निन्दित आचरण करने वाले, अतिथिवत् अपने से ऊँचे पद पर स्थित पूज्य पुरुषों पर आक्रमण करने वाले, मनुष्य के सैकड़ों, हजारों वीरों को एक दम दूर करे, यह ऐश्वर्य या अभिपेक्ष योग्य पद उसको प्रदान करो ।

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।

गर्भस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रजापालन आदि उत्तम काम करने के अभिलाषी जनो ! नायक पुरुषो ! आप लोग जो कुछ भी स्वयं प्राप्त करना चाहे, उसे शीघ्र धारण करते हुए, उस ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होकर रहो और उसे भी प्राप्त कराओ । और जगत् प्रसिद्ध सेनापति या राजा के लिये बाहुबल से पवित्र हुआ ऐश्वर्य लाओ । हे उसके साथ संगति और मैत्री करने या ऐश्वर्य देने वाले पुरुषो ! उसको उत्तम प्रकार का ऐश्वर्य निःस्वार्थ भाव से प्रदान करो ।

अध्वर्यवः कर्तृना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।

जुषाणो हस्त्यसभि वावशे च इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त प्रकार के विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उसके लिये पक्क अन्न और सुखकारी समृद्धि उत्पन्न करो । वन में अच्छी प्रकार पवित्र किये पदार्थ के समान सैन्यदल के आधार पर प्राप्त ऐश्वर्य सेवन करने के निमित्त उत्तम रीति से लाओ । वह प्रेम से सेवन करता हुआ तुम्हारे हाथों से तैयार किये ऐश्वर्य को सब प्रकार से चाहता है । इसलिये इन्द्र पद पर स्थित सभापति के लिये अतिहर्षजनक गोपधिरस के समान पुष्टिप्रद एवं स्वच्छ पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करो ।

अध्वर्यवः पयसोध्वर्यथा गोः सोमैभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

वेवाहमस्य निभृतं म पुतदित्सन्तुं भूयो यजुतश्चिकेत ॥ १० ॥

भा०—हे प्रजापालन रूप यज्ञ की इच्छा करने वाले शासक विद्वान्

पुरुषो ! जिस प्रकार दूध से गौ का धान पूर्ण रहता है उसी प्रकार
ऐश्वर्यों से पृथिवी के पालक राजा को खूब पूर्ण करो । मैं इस प्रजाजन
के भरण पोषण के सामर्थ्य को जानता हूँ । राष्ट्रयज्ञ का करने वाला
राजा भी इस देने वाले को जाने ।

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वसवो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।

तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमैभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रजापालन को चाहने और परस्पर हिंसा को न चाहने के
इच्छुक पुरुषो ! जो व्यवहारयोग्य व्यापार से प्राप्त धन का और जो
पृथिवी से प्राप्त होने वाले अन्न सुवर्ण आदि का और क्षमा अर्थात् भूमि
से प्राप्त होने वाले क्षेत्र, सेना, पशु हस्ति आदि का भी राजा है, उस ऐश्वर्य-
वान् पुरुष को, यव या अनाज से भड़ोले के समान, नाना ऐश्वर्यों से पूर्ण
करो । हे नायको ! नाना अध्यक्ष जनो ! तुम्हारा कर्म ही वह रहे ।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राघः समर्थयस्व बहु तै वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चिन्नं श्रवस्या अनुद्यन्वृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १३ । मन्त्र १३ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ।

[१५]

गृत्तमद ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द — १ उरिक् पक्ति. । ७ स्वराट्
पक्ति. । २, ४, ५, ६, ८, १० त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ।

= विराट् त्रिष्टुप् । पचदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र षा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।

त्रिवद्रुकेष्वपिवत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

भा०—उस महान् सत्यस्वरूप परमेश्वर के बडे २ तच्चे २ कार्यों
और साधनों का अच्छी प्रकार वर्णन करता है । वह परमेश्वर तीनों
लोको ने अथवा सूर्य आदि और पृथिवी आदि लोको और मनुष्य आदि
प्राणियो ने उत्पन्न जगत् सर्वप्रेरक बल, और प्राणों की रक्षा करता है ।

अपने अति आनन्दमय स्वरूप में प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म रूप को वह ऐश्वर्यवान् प्रभु विनष्ट करता अर्थात् विकृत करता है ।

अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणन्तरिक्षम् ।

स धारयत्पृथिवीं प्रथञ्च सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥

भा०—बांस या स्तम्भ के बिना ही जो शून्य में बड़े भारी नक्षत्र आदि से भरे द्युलोक को स्थिर कर रहा है । इसी प्रकार बिना आश्रय के ही सूर्य पृथिवी दोनों लोक, अन्तरिक्ष ओर पृथिवी को भी धारण कर रहा है । और पृथिवी को विस्तृत करता है । ऐश्वर्यवान् परमेश्वर यह सब जगत् के सञ्चालक बल के कारण ही करता है ।

सञ्ज्ञेयं प्राच्यो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यत्तृणन्दीनाम् ।

वृथासृजत्पृथिभिर्दीर्घयायैः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥

भा०—माप २ कर जिस प्रकार घर बनाया जाता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने निर्माणसाधनों से और विज्ञानयुक्त नियमों से अति वेग से चलने वाले या प्राचीन और वर्तमान के भी समस्त लोकों को विशेष रूप से रचता है । वह मानो वज्र से नदियों के खुदे मार्गों को काटता है । और दूर तक जाने वाले मार्गों से जाने के लिये उन नदियों को अनायास ही रचता है । वह सर्वग्रेरक और उत्पादक बल को अपने वश में रखने के कारण ही ये सब कर्म करता है ।

स प्रवोळ्हन्परिगत्या दृभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्वे यज्ञो ।

सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥

भा०—समस्त पदार्थों के संयोग और विभाग करने में समर्थ प्रकृति के परमाणु २ तक को छिन्न भिन्न करने द्वारा वह 'इन्द्र' परमेश्वर विनाश या प्रलय को अच्छी प्रकार लाने वाले अग्नि जलादि तत्वों को व्यापकर, अग्नितत्व के खूब प्रज्वलित हो जाने पर एक दूसरे पर आपात प्रतिघात करने वाले समस्त ससार को भस्म कर देता है । और वही

परमेश्वर्यवान् प्रभु इस जगत् को गौओं अश्वों और रथादि साधनों से रच देता है । उत्पन्न होने वाले जगत् के उन २ नाना कर्मों को वह परमेश्वर अति आनन्द में मग्न रहता ही करता है । अथवा उन २ कर्मों को वह प्रभु उत्पादक और प्रेरक बल के हर्ष या उत्कर्ष होने से ही करता है ।

स इ॑ म॒हो धु॒नि॒मेतो॑र॒रम्णा॑त्सो अ॒स्नातृ॑न॒पारय॑त्स्व॒स्ति ।

त उत्॒स्नाय॑ र॒यिम॒भि प्र॑ तस्थुः सोम॑स्य॒ ता म॒दृ इन्द्र॑श्चकार ५।१५

भा०—वह परमेश्वर चलने वाले जल और चलने वाली इस बड़ी भारी पृथ्वी को भी बराबर चलते रहने के लिये प्रहार करता है, उसको गति देता रहता है । ओर वह इस बड़ी भारी नदी के समान बराबर चलने वाले प्रवाह से अनादि ससार को या तृष्णा रूप नदी को पार होने के लिये इस नदी का नाश कर देता है । उस भोगतृष्णा से पूर्ण नदी में स्नान न करने वालों, उसमें न डूबने वालों को बड़े कल्याण और नृप के साथ पार कर देता है । वे उस नदी से पार निकल कर महान् ऐश्वर्य को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं । ऐश्वर्यवान् प्रभु ये सब कार्य अपने महान् उत्पादक सामर्थ्य के सवातिशायी होने के कारण करता है ।

सो॒द॒ज्जं॑ सि॒न्धुम॑रि॒णान्म॑हि॒त्वा वज्र॑णान् उप॒सः स पि॑प॒प ।

अ॒ज॒य॒सो ज॒विनी॑निर्वि॒षृध्नन्सो॑मस्य॒ ता म॒दृ इन्द्र॑श्चकार ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से बन्धन में पड़े तथा उन्नत मार्ग पर चलने वाले जीव को स्वयं प्राप्त करता, उस पर अनुग्रह करता है । अपने ज्ञानवज्र से प्रभात वेला के समान कान्तिमती चेतना के शङ्कम्भ इस देह को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है अर्थात् विदेह बुद्धि प्राप्त होता है । स्वयं वह प्रभु निर्वेग, निष्क्रिय रहकर भी वेग वाली ज्ञान प्रियाओं से देशों को काट डालता है । यह सब वह प्रभु सोम अर्थात् उत्पन्न होने वाले एव प्रभु के उपासना करने वाले जीव के आनन्द के निमित्त ही करता है ।

स विद्वाँ अपगोहं कृतीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।

प्रति श्रोणः स्थाद्वयननगचष्ट सोमस्य ता मट इन्द्रश्चकार ॥७॥

भा०—वह विद्वान् परमेश्वर दीप्ति वाले लोकों या प्रकाशों के आच्छादक घोर तम को दूर करता है । और प्रकट होकर उच्च पद पर स्थित होता है । वह परमेश्वर सबकी प्रार्थनाओं को सुनने वाला होकर प्रत्येक स्थान में विद्यमान है । वह विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होता है और विविध ज्ञानों को प्रकाशित करता है । वह विविध कर्मों का उपदेश करता है । महान् ऐश्वर्य के अति उत्कर्ष के कारण या उत्पन्न संसार और जीवगण के आनन्द लाभ के निमित्त परमेश्वर यह नाना कार्य करता है ।

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गुणानो वि पर्वतस्य दृढितान्यैरत् ।

रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मट इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

भा०—परमेश्वर विद्वान् ऋषियों द्वारा और तेजस्वी सूर्य आदि लोकों द्वारा, जगत् के ज्ञान को धरने वाले अज्ञान को और चक्षु आदि को धरने वाले अन्धकार को नष्ट करता है । वह स्तुति किया जाता है और वही पोरु पोरु से बने हुए देह के दृढ़ अंगों को विविध शक्तियों से संचालित करता है । इन प्राणियों की भिन्न २ निमित्तों से उत्पन्न रुकावटों को दूर कर देता है । वह प्रभु जीवों को आनन्द देने या सर्वेश्वर्यवान् होने से ये सब कार्य करता है ।

स्वप्ननाभ्युप्या चुमुरि धुनि च ज्वन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।

रग्भी चिदत्र विविडे हिरण्यं सोमस्य ता मट इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर आलस्य के द्वारा दूसरों के ऐश्वर्य पर मुह लगाने वाले और अन्यो को त्रास देने वाले दुष्ट पुत्रप को उन्माड़ कर नष्ट कर देता है । इसी प्रकार हिसक पुत्रप का भी नाश करता है । वह समस्त विद्वत् का बनाने वाला प्रभु इस लोक में हित और रमणीय

वस्तु को प्राप्त कराता है । सोमस्य मदे० इत्यादि पूर्ववत् ! 'प्रावः'—
अवधातुरत्र हितार्थः । भ्वादिः ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहियदिन्दु दक्षिणा मघोर्नी ।

शिक्षां स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः १०।१६

भा०—व्याख्या देखो सू० १ । १ । २९ ॥ हे ऐश्वर्यवान् ! तेरी वह
उत्साह उत्पन्न करने वाली धनैश्वर्यवती दानक्रिया उत्तम उपदेश करने
वाले विद्वान् को निश्चय से श्रेष्ठ अभिलषित फल प्राप्त करावे । तू हममें
ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानोपदेश लोगों को दान कर, उनका अतिक्रमण या
तिरस्कार करके उनको दग्ध या सतप्त न कर । हम उत्तम पुत्र और
भृत्यवान् होकर ज्ञानादि के अवसर पर वृद्धिकर वचन और स्तुति कहे
और उपदेश करें । इति षोडशो वर्गः ॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द — १, ७ जगती । विराड् जगती ४, ५,

६, ८ निचृजगती च । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः सुता ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने ढविर्भरे ।

इन्द्रमजुयं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

भा०—यज्ञ में अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर जिस प्रकार सर्वोपगि
स्तुतियोग्य परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति और अग्नि में अन्नादि चरु
दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! मैं आप समस्त सत्पुरुषों के
बीच में सबसे अधिक स्तुतियोग्य, विद्या, ऐश्वर्य और आयु में सबसे
बड़े के लिये यज्ञ में उत्तम स्तुति और उत्तम अन्नादि पदार्थ प्रस्तुत करूँ ।
कभी नाश न होने वाले, कभी जरावस्था को प्राप्त न होने वाले,
अपरिणामी, नित्य, कालक्रम से स्थावर और जगत् सबको जीर्ण करते
हुए, मेघ के समान सबके सेचक, सदा से युवा परमेश्वर को हम रक्षा
आदि कार्यों के लिये पुकारें ।

यस्मादिन्द्राद् बृहत्तः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्तसम्भृतार्वि
वीर्या । जुठरे सोमं तन्वीसिहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि
क्रतुम् ॥ २ ॥

भा०—जिस महान् 'इन्द्र', परमेश्वर से भिन्न कुछ भी अन्य पदार्थ
नहीं । इसके आश्रय में ही समस्त बल वीर्य एक स्थान पर एका हुण
है । वह परमेश्वर अपने पेट में ओषधिरस के समान समस्त जगत् और
ऐश्वर्य को धारण करता है । अपने विस्तृत व्यापक रूप में बड़े भारी
बल को धारण करता है । वह हाथ में खड्ग के समान ज्ञानवज्र को
धारण करता और शिर या मस्तक भागों में सर्वोपरि प्रज्ञा और उत्तम
विज्ञान धारण करता है ।

न क्षोणीभ्यां परिभवे त इन्द्रियं न समुद्रेः पर्वतरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्चोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र चलने वाले अश्वों द्वारा कोई पुरुष बहुत
से योजना तक चला जाता है उसी प्रकार है परमेश्वर । शीघ्रगति करने
वाले तन्वों से तू बहुत से योगों से बने पदार्थों में व्यापता वा उन्हें बनाने
में समर्थ है । तेरा ऐश्वर्य आकाश और पृथिवी दोनों से भी नहीं नापा जा
सकता । वह उन दोनों से कहीं अधिक है । और तेरा रथ अर्थात् रमण
करने योग्य आनन्दरस भी मेवों से कम नहीं, उनसे भी कहीं बढ़कर है ।
वह समुद्रों से भी कम नहीं है । समुद्रों और मेवों का जलरूप रस भी
उस आनन्दरस से कहीं न्यून है । तेरे बलवीर्य को कोई पा नहीं सकता ।
विश्वे ह्यस्मै यजुताय वृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्वते ।

वृषा यजस्व हविषा विदुष्टैः पिबेन्द्र सोमं वृषभान् आगुना ॥ ४ ॥

भा०—दानशील, आदर सत्कार, सत्संग, मान जार पूजा के योग्य,
सबको पराजित करने वाले, सुखों की वृष्टि करने वाले, सर्वत्र व्यापक
उस परमेश्वर के प्राप्त करने और जानने के लिये सब ही यज्ञ करने,

अपनी बुद्धि को दौड़ाते और यज्ञ करते हैं । हे प्रभो ! तू सब सुखों का वर्ण करने वाला, सबसे बड़ा विद्वान्, विशेष रूप से अलंघनीय, है । तू अज्ञादि पदार्थों से हमें समस्त सुख प्रदान कर । वर्षा करने वाले प्रकाशमान सूर्य और विष्णु द्वारा हे ऐश्वर्यवान् ! इस जगत् का पालन कर ।

वृष्णाः कोशः पवते मध्वं ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।

वृषणाध्वर्यु वृषभासो अद्र्यो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ५॥१७

भा०—वेदमय ज्ञानकोश, तथा सुखों और आनन्दों के वर्णक मधुर ज्ञान की दीप्ति, ये दोनों सुखों के वर्णक प्रभु के आनन्द को अन्न के समान उपयोग करने वाले बलवान् आत्मा के पालन करने के लिये हैं । यज्ञशील श्री पुरुष अखण्डित प्रज्ञाचर्य के पालक हों । लोग भी बलवान्, दृढ़ और ज्ञानजालों के वर्णक हों । वे पुष्टिकारक ओषधिरस को तथा ज्ञान और ऐश्वर्य को उत्पन्न करें और प्रदान करें ।

वृषां ते वज्रं उत ते वृषा रथो वृषणा हरीं वृषभाययायुधा ।

वृषणो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृणुहि ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् । तेरा वज्र सुखों का वर्णक और शत्रुओं की शक्ति का प्रतिबन्धक हो । तेरा रथों का बल शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रवर्षी हो । तेरे दोनों अश्व बलवान् हों । तेरे शस्त्रास्त्र दृढ़ हों । हे सर्वोत्तम ! बलवान् दमन का और सुखों के वर्णक ऐश्वर्य का तू स्वामी हो । उससे तू सदा लुप्त हो ।

प्र ते नावुं न समने वचस्युवं प्रहृणा यामि सर्वनेषु दार्धृपिः ।

पिबो अस्य वचसो निबोधिषिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥

भा०—ऐश्वर्यों या राजानवार्थों के बीच में प्रतिपक्षियों के पराजय करने में समर्थ होकर मैं, सग्रामों में तुझको नाव के समान तारक तथा आजायवन का स्वामी जानकर तुझको ही धन सहित प्राप्त होता हूँ । तू हमारे इस वचन को ही बहुत समझता है । हम ऐश्वर्यवान् तुझको जल

के कूप के समान ऐश्वर्य का अक्षय कूप जानकर रात दिन अपने क्षेत्र सींचते हैं, अपना कारवार पुष्ट करते हैं । परमेश्वर भी जीवन-संग्राम में नाव के समान है । वेदवचनों का स्वामी होने से 'वचस्यु' है । मैं काम क्रोध आदि को दबा कर उपासना के अवसरों में वेद मन्त्र से उसकी प्रार्थना करूँ । वह हमारे इस थोड़े से वचन को बहुत करके लेता है । उसको हम परमैश्वर्य का अक्षय कूप जानकर उससे अपने क्षेत्र आत्मा को निरन्तर सींचें ।

पुरा संम्राधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वृत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसी-
महि ॥ ८ ॥

भा०—वास चारे के ऊपर परिपुष्ट होने वाली गाय जिस प्रकार बछड़े के पास प्रेम से उस पर संकट आने के पूर्व जा आती है, उसी प्रकार पीड़ा या विपत्ति होने के पूर्व ही तु हमें प्राप्त हो । हे अपरमित ज्ञान और क्रियासामर्थ्य से युक्त । स्त्रियों से जिस प्रकार उनके इच्छुक पुरुष मिल जाते हैं उसी प्रकार तेरे उत्तम ज्ञानों से हम एक बार अच्छी प्रकार व्याप जावें ।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुह्यीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीरा । ६।१८

भा०—ख्याय्या दोखो सू० २ । १५ । १० ॥ अष्टादशो वर्ग ॥

[१७]

गृत्समद ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्र — १, ५, ६ विर ड् जगती । २, ४ निचृ उजगती । ३, ७ भुरिक् विष्टुप् । ८ निचृताक्तिः ॥ नवर्चं मूक्तम् ॥

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चतु शुष्मा यदस्य प्रज्ञयोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहस्रा परीवृता मदे सोमस्य दहितान्विरयत् २

भा०—हे विद्वान् पुरुषो । इस सूर्य की प्रेरकशक्ति के अंश जो कि पुरातन काल से वर्तमान रहते हुए उदय को प्राप्त होते हैं, प्रकट होते हैं, उनको और जो भी समस्त बीज भूमि में सुरक्षित रहते हैं वे जब एक साथ ही अकुर रूप में परिवर्तित होकर बाद में और भी पुष्ट हो जाते हैं उन सबको वह परमेश्वर आनन्द विकास के लिये, या जगत् के हर्ष के लिये बढ़ाता, प्रेरित करता है । इसलिये परमेश्वर के उस सामर्थ्य को प्राण के समान स्तुति या वर्णन योग्य जान कर उसकी उपासना करो ।

स भूतु यो ह प्रममाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षिणि धां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥

भा०—वह परमेश्वर ही होना सम्भव है जो निश्चय से सबसे प्रथम इस सत्तार के धारण पोषण करने के लिये बड़ा बल पराक्रम प्रकट करता हुआ अपने महान् सामर्थ्य और स्वरूप को सर्वत्र प्रकट करता है । युद्धों में शूरवीर जिस प्रकार अपने शरीर को सब तरफ से कवच आदि से सुरक्षित कर लेता है उसी प्रकार मानो जगत् में व्यापक परमेश्वर भी अपने आप को सब ओर से ढक सा लेता है । जिस प्रकार सिर पर बीर पुरष उजली पगड़ी या मुकटादि पहरता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से तेजस्वी सूर्य या नक्षत्रादि मण्डित आकाश को धारण किये हुए है ।

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।

रथेष्ठेन हयैश्चेन विच्युताः प्र जीरयः सिद्धते सधयक्
पृथक् ॥ ३ ॥

भा०—और हे परमेश्वर ! तू सबसे प्रथम सबसे आदि में, बड़े जगत् को उत्पन्न करने और चलाने में समर्थ बल वीर्य को प्रकट करता है, और जो तू इस जगत् के भी पूर्व अपने ज्ञान के अनुसार बल को प्रकट करता है तब जिस प्रकार रथ में स्थित तीव्र अश्वों के संचालक

सारथि द्वारा विशेष रीति से चलाए गये वेगवान् अश्व एक साथ और पृथक् २ भी वेग से दौड़ते हैं, उसी प्रकार सूर्यरथ में स्थित आरूपक व्यापक शक्ति से विविध दिशाओं में चलाये गये वेगवान् ग्रह एक स्थान आकाश में रहकर, पृथक् २ अपने २ गतिमार्गों या क्रान्तिमार्गों पर एक वेग से दौड़ लगा रहे हैं ।

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्जमनैशानुकृतप्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वहिरातनोत्सीव्यन्तमोसि दुर्विता
समव्ययत् ॥ ४ ॥

भा०—और जो समस्त उत्पन्न लोको और पदार्थों में भी व्याप कर अपने महान् बल से अपने को सबका ईश्वर प्रकट करता हुआ, सबसे उत्कृष्ट बलशाली होकर बहुत बड़ा हो जाता है, अग्नि जिस प्रकार तेज से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी अपने तेज से या सूर्यादि द्वारा आकाश और पृथिवी दोनों को दो पक्षों के समान मानो सीकर फैला देता या व्यापता है । और दूर २ तक स्थित अंधकारों को सूर्य के समान अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है ।

स प्राचीनान्पर्वतान् दृढदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।

अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभनान्मायया द्यामवृक्षसः ५।१६

भा०—वह परमेश्वर अति पुरातन, पर्व पर्व अर्थात् तह पर तह जमने में बने पर्वतों को काल क्रम में और भी दृढ़ करता है, और जलों के भी सार भाग अन्न को नीचे भूमि तल पर उत्पन्न करता है । वह समस्त जगत् का पोषण करने वाली पृथिवी को धारण कर रहा है । और अपनी निर्मात्री व्यापक शक्ति से आकाशमण्डल और उसमें स्थित ग्रह तारा सूर्य जगत् को नीचे गिरने या स्थानान्तरण होने से बचाने रहता है ।

सास्मा अरं ब्राहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेद-
सुस्पारि । येना पृथिव्यां नि क्रिवि शयभ्यै वज्रेण दृश्यवृणकु-
विध्वणिः ॥ ६ ॥

भा०—परमेश्वर जगत् के जन्म होने से लेकर इसे सब प्रकार से पुत्र को पिता के समान खूब अलंकृत करता है। वह परमेश्वर बहुत ऐश्वर्य के देने से 'तुविष्वनि' है। वह हिताकारी दुष्ट पुरुष को नीचे गिरा कर पृथक् करता है।

अ०मा०जूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसत्त्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दृद्धि भागं तन्वोध्येन मामहः ॥ ७ ॥

भा०—गृह में पृढ़ी हो जाने वाली कन्या जिस प्रकार माता पिता के साथ सदा रहती हुई एक ही घर से ऐश्वर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार हे प्रभो! तुझे अपना गृह जानकर तुझ में ही आश्रय पाकर जीर्ण होने वाला मैं, सर्वसाधारण में रहने सहने के स्थान से उठकर वहां से हटकर तुझ ऐश्वर्यवान् को प्राप्त होकर याचना करता हूँ। तू उत्तम ज्ञान प्रदान कर, प्रतिमास उत्तम वस्तुएं उपस्थित कर, जिससे सबको तू तृप्त करता है उस शरीर के सेवन करने योग्य भाग को हमें दे।

भोजं त्वामिन्द्र वय हुवेम दृदिष्ट्वामन्द्रापांसि वाजान्।

अविद्धीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान्! हम लोग तुझको ही सबका पालक और ऐश्वर्यों का भोक्ता कहते हैं, वैसा जान कर तुझको पुकारते हैं। हे ऐश्वर्यवान्! तू समस्त कर्मों का फल देने वाला और तू समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला है। हे ऐश्वर्यवान्! तू नाना प्रकार के रक्षा आदि कार्यों से हमारी रक्षा कर। हे ऐश्वर्यवान्! हे सब सुखों के वर्पक! तू हमें खूब ऐश्वर्यवान् कर।

नून सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।

शिष्टा स्तोत्रभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदधे सुवीराः ६।२०

भा०—आख्या देखो सू० १७।९ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[१८]

गृहममद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । ४, = मुरिक् पङ्क्तिः ।

५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ निचृत् पङ्क्तिः २, ३, ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राता रथो नवो योजि सस्तिश्चतुर्थ्युगल्लिकशः सत्तराशिमः ।

दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंथो भूत् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार नया रथ, ऐसा जोड़कर बनाया जाय जो कि सब सुखों का देने वाला हो जिसमें घोड़े के जोड़ने के चार स्थान हों, तेज मध्यम और मन्द तीनों प्रकारों की गति से चलने वाला, तीनों गतियों पर शासन या वश करने के मन्त्र से युक्त हो, घोड़ों के मुखों में लगाने वाली सात रासों के समान सात वश करने के साधन लगे हों, जिसमें दश थामने और चलाने के यन्त्र हों, जो सुख का देने वाला हो, ऐसा रथ जिस प्रकार साथ जुड़ी स्तम्भ करने वाली मुट्ठियों से प्रभात में वेग से चलाने योग्य होता है उसी प्रकार यह जीवात्मा प्रभात काल में इच्छाओं से और भजन क्रियाओं से रमण करने योग्य होता है । वह रमणकारी होने से 'रथ' है । सदा नित्य होने से 'नव' है । सगदोष से रहित है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों में सलग्न रहता है । अथवा चारों वेदों से सदेह समाधान करने वाला या चारों अन्तःकरणों से युक्त है । वह तीनों वेद वाणियों को वारण करने द्वारा, मन, वाणी, काया, तीनों पर शासन करने वाला, मूर्धागत सात प्राणों से सात रश्मि वाला है । ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दश साधन नाव में लगे चप्पुओं के समान जीवन यात्रा करने में साधन है, वह मनुष्य का आत्मा परम सुख का अभिलाषी होकर, यज्ञादि साधनों और उत्तम विचारयोग्य बुद्धियों से प्राप्त होता है । परमात्मा पक्ष में—परमात्मा रसरूप एवं रमण योग्य होने से 'रथ' है । स्तुति योग्य और अद्भुत होने से 'नव' है । शुद्ध होने से 'सच्चि' है । अन्तःकरण चतुष्टय से समाहित होकर जानने योग्य होने

से 'चतुर्युग' है । तीनों लोको पर शासक होने से या वेदत्रयी तीनों प्रकार की वाणियों को धारण करने वाला होने से 'त्रिकश' है । सप्तलोकों का शासक होने से 'सप्तरश्मि' है । दशो दिशाओं के स्वामी के समान त्राण करने वाला होने से 'दशारित्र' है । वह सुख देने वाला होने से 'स्वर्ष' है । वह यज्ञों और उत्तम मननो द्वारा प्राप्त करने योग्य है । वही योगाभ्यास द्वारा एकाम्रचित्त से प्राप्त किया और ध्यान किया जाता है ।

सास्त्रा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुष्यः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्तु सो अन्येभिः सचते जेन्यो
वृषा ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर पहले, दूसरे और तीसरे, भूमि, अन्तरिक्ष और सौ तीनों में समवेत है । वह मननशील एवम् मनुष्यों के इतिार्थों का देने वाला है । सबसे उत्कृष्ट, सबसे अधिक बलवान् होकर अपने से भिन्न प्रकृति के गर्भ, हिरण्यगर्भ या प्रल्लाण्ड आदि विकारों को उत्पन्न करता, धारण करता है, उस ससार को फिर अन्य अर्थात् उस परमेश्वर से भिन्न महत् आदि एव पृथ्वी आदि प्रकृति-विकृति पदार्थ ही प्रकट करते हैं, और वह परमेश्वर अपने से भिन्न उपासक जीवों से साक्षात् प्राप्त किया जाता है ।

हरौ नु कुं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।

मो पु त्वामत्र ब्रह्मो हि विशा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥

भा०—सदा वेदवचन या गुरु उपदिष्ट ज्ञान के अनुसार जिस प्रकार शिर्षीजन रथ में वेगवान् वायु अग्नि दोनों को वेग से जाने के लिये अश्वों के समान जोड़ लेता है उसी प्रकार मैं नये से नये स्तुति करने वाले उत्तम रीति से कथित वेदमन्त्र से उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के रमणयोग्य परमानन्दमय स्वरूप में आने या सुख को प्राप्त करने के लिये दुःखों के दूर करने वाले मन और आत्मा दोनों को योग द्वारा जोड़ दूँ । हे

परमेश्वर ! इस लोक में तुझे प्राप्त करके बहुत से विद्वान् जन रमण करते हैं, और दूसरे केवल यज्ञ करते हुए भी तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त न कर आनन्द लाभ नहीं कर पाते ।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्द्वयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमखु मा मृधस्कः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू स्तुति द्वारा अभ्यर्थना किया जाकर प्राण अपान रूप दो साधनों से, चार वेदों से, चार अन्तःकरणों और मन सहित इन्द्रियों से, आठों प्रमाणों और दश यमों और नियमों से हमारे ब्रह्मास्वाद में हमें प्राप्त हो । हे उत्तम धनैश्वर्य के स्वामिन् । समस्त प्राप्त ऐश्वर्य तुझे ही दिया जाता है । हमें संग्राम करने वाले न कर ।

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ्ग चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथैभिरिन्द्रा षष्ठ्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ २२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् । तू बीस, तीस, चालीस तीव्र बुद्धि वाले विद्वानों के द्वारा हमें प्राप्त हो । और इन्हीं प्रकार पचास, साठ और सत्तर रमण करने के सुख साधनों से ऐश्वर्य पालक के पद को प्राप्त हो । इत्येकविंशो वर्गः ॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङ्ग शतेन हरिभिर्ब्रह्ममानः ।
अयं हि ते शनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिपिक्तो मदाय ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ८०, ९०, १०० तीव्र बुद्धिमान् विद्वानों से धारण किया जाकर तू हमें साक्षात् प्राप्त हो । यह ऐश्वर्य सुख देने वाले कार्यों में तेरी ही कामना से हर्ष और आनन्द लाभ के लिये बढ़ाया गया है ।

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रयस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूवुस्मिञ्जूरु सर्वने मादयस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर । रमण

करने योग्य आनन्द के धारण करने के कार्य में स्त्री पुरुष को नियुक्त कर ।

न म इन्द्रेण सूर्यं वि योषट्समभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।

उष ज्येष्ठे वरुथे गर्भस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

भा०—मेरा ऐश्वर्यवान् परमेश्वर से मैत्री भाव कभी न टूटे । उसका दिया धन ज्ञान हमें गौ के समान नाना सुख प्रदान करे । सबसे महान्, दु.खों को दूर करने वाले, सूर्यरश्मि के समान प्रकाशक तथा बाहु के समान अवलम्बदायक, उत्तम २ फलदायक, उपास्य प्रभु के अधीन रहकर हम विजयशील होंगे ।

नूनं सा तु प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ६।२२

भा०—व्याख्या देखो सू० १७ । ९ ॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१६]

गुत्मन् २ पक्षिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चन्द्रः—१, २, ६, ८, विराट् त्रिष्टुप् ।

३ त्रिष्टुप् । ३ पक्षिः । ५, ७ भुरिक् पक्षिः । ५ निचृत् पक्षिः ॥

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।

यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥

भा०—हे मन को बश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! हे वेदज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के चाहने वाले नायक पुरुषो ! जिसके आश्रय में ऐश्वर्यवान् आत्मा शक्ति में बढ़ता हुआ उत्तम ज्ञानमय प्रकाश में स्थान प्राप्त करे, उस जीवन धारण करने वाले ज्ञान और शक्ति उत्पन्न करने या देने वाले ज्ञानमय प्रभु के आनन्द रस का आत्मसंतोष प्राप्त करने के लिये पान किया करो ।

अस्य मन्त्रानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृत्तं वि वृश्चत् ।

अ यज्यो न त्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

भा०—इस मधुर आनन्दरस को खूब प्राप्त करता हुआ, ज्ञानवज्र को धारण करता हुआ विद्वान् पुरुष, विरव के महासागर में विद्यमान, विघ्नकारी प्रबल अज्ञान रूप शत्रु को, विविध उपायों से कुठार से वृक्ष के समान काट गिरावे। तब समृद्ध और प्रसन्न और उत्साहित प्रजाओं के अन्नादि ऐश्वर्य, घांसलों के पक्षियों के समान और दिनों को सूर्य की किरणों के समान, आप से आप प्राप्त हो जाते हैं।

स माहि॑न् इन्द्रो॑ अ॒र्णो॑ अ॒पां प्रैर॑यदहि॒हाच्छा॑ समुद्रम् ।

अ॒र्जन॑यत्सूर्यो॑ वि॒दद्रा॑ अ॒क्रुना॑ह्ना॒ व॒युना॑नि साधत् ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर ऐश्वर्यवान्, गुणों और कर्मों में महान् होकर अव्यक्त तम, प्रलयदशा में अविकृत प्रकृतितत्त्व में व्याप्त होकर, आकाश में प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच में विशेष वेग या स्पन्दन को अच्छी प्रकार उत्पन्न करता है। तब वह महान् आकाश को और सूर्य या आकाश को प्रकट करता है। और सब पदार्थों को प्रकट करने वाले तेजस्त्व से सब किरणों को प्रदान करता, दिनों के समान नाश होकर भी पुनः उत्पन्न और अस्त होने वाले जीवों के ज्ञानों और कर्मों को साधता है।

सो अ॒प्र॒ती॒ति॒ म॒न॒वे॑ पु॒रु॒षा॒न्दि॒रो॑ दा॒श॒दा॒शु॒पे॒ ह॒न्ति॑ वृ॒त्रम् ।

स॒द्यो॑ यो नृ॒भ्यो॑ अ॒त॒सा॒य्यो॑ भू॒त्प॑स्पृ॒धाने॒भ्यः॑ सूर्य॑स्य स॒ता॒तौ ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर अपने को उसके अधीन सेवक और उपासक रूप में सौंप देने वाले मनुष्य को, अद्भुत् २ और अनुपम बहुत से ऐश्वर्य प्रदान करता है, वह सूर्यादि के समान जगत् के आन्ध्यादक अन्धकार और अज्ञान का नाश करता है। वह सूर्य के समान तेजस्वी पद या प्रकाशवान् आत्मस्वच्छ के प्राप्त करने के लिये, एक दूसरे से अधिक तेजस्वी होने में स्पर्धा करने वाले मनुष्यों के लिये जो सब दिन समान रूप से आश्रय करने योग्य और निरन्तर सहायक होता है।

स सुन्व॑त इन्द्रः सूर्य॑मा दे॒वो रि॑ण॒ष्ट् मर्त्या॑य स्त॒वान् ।

आ यद्र॑यि गृह॑दे॒वध॑मस्मै भर॑दं॒शं नैत॑शो द॒शस्य॑न् ॥५॥२३॥

भा०—परमेश्वर उपासक जन के लिये सूर्य के गुणों से भी बढ़कर तेजस्वी है। वह उपासक के दुर्गुणों को हटाकर निष्पाप धन प्राप्त करा देता है। जो पुरुष अपने धन का नाश कर ले वह उस व्यापक प्रभु को नहीं प्राप्त कर सकता। स्तुति किया गया प्रभु सूर्य से बढ़कर है। वह दानशील सूर्य या मेघ के समान उसको योग्य और पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त कराता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स र॑न्धयत्स॒दिवः॑ सार॑थ्ये शु॒ण्णम॑शु॒षं कुर्य॑वं कु॒त्सा॑य ।

दिवो॑दासाय नव॑र्ति च नवेन्द्रः॒ पुरो॑ व्यैर॒च्छम्ब॑रस्य ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार धान काट लाने वाले कृपक के हित के लिये न सूखे सामान्य जौ आदि को सूखा कर देता है, और प्रकाश देने के लिए आवरण करने वाले मेघ के ९९ खण्डों को विशेष रूप से संचालित करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर कामनावान् होकर, स्तुति करने वाले एवं समान रूप से 'रथ' अर्थात् रमण साधन आत्मा को तन्मय करने वाले उपासक के हित के लिए, सदा हरे भरे, कदन्न के समान पुत्सित आचरण वाले बलशाली कामवेग को विनष्ट कर देता है। और इन्द्रानुसार दानशील पुरुष के लिये वह परमेश्वर शान्ति के नाशक, आत्मा को धेरने वाले अज्ञान के पालन करने वाली वासनाओं या वासनाओं के उदय होने की नाड़ियों को विशेष रूप से छिन्न-भिन्न करता है।

शु॒वा त॑ इन्द्रो॒च॒थम॑हेम ध्रु॒वस्या॑ न त्मना॑ वा॒जय॑न्तः ।

अ॒श्याम॑ तत्सा॒क्षमा॑शु॒षाणा॑ न॒नमो॑ वध॒रदे॑वस्य प्री॒योः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! हम स्वयं अपने आत्मा से अपने आप को रक्षण और ज्ञानवान् करते हुए, तेरे ध्वनन करने योग्य गुणों

के समान ही तेरे कहने योग्य स्तुतिवचन को भी प्राप्त करें । और हम तेरे उस मैत्रीभाव का सुखपूर्वक उपभोग करें, और अग्रमादी रहकर हम अदानशील हिसक पुरुष के हिसाकारी कृत्य का विनाश करें ।

ए॒वा ते॑ गृत्स॒म॒दाः शूर॑ मन्वा॒व॒स्य॒वो न॑ व॒यु॒नानि॑ त॒क्षुः ।

ब्र॒ह्म॒ण्यन्त॑ इन्द्र॒ ते न॒वी॒य इ॒ष॒मूर्जे॑ सु॒क्षि॒ति सु॒स्म॒म॒श्रुः ॥ ८ ॥

भा०—गमन करने वाले जिस प्रकार मार्गों को बना लेते हैं, और जिस प्रकार अन्यो को ज्ञान देने की इच्छा करने वाले पुरुष नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे शूर पुरुष के समान सब सकटों से बचाने हारे प्रभो ! ज्ञान और शरण के इच्छुक, तथा आनन्द को चाहने वाले, सबकी आकांक्षा के पात्र परम मेधावी परमेश्वर ही में हर्ष प्राप्त करने वाले, योगिजन, तेरे ज्ञानमय स्वरूप और नाना ज्ञानों, कर्मों, उत्तम आचरणों का स्वयं आचरण करते, और उनका अन्यो को उपदेश करते हैं । वे ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करते हुए, हे परमेश्वर ! तेरी नई से नई अनुपम प्रेरणा, सर्वोत्तम बल, और तेरे में उत्तम निवास, और तेरे परम सुख को प्राप्त करते हैं ।

नू॒नं सा॑ ते॒ प्रति॑ वरं॒ जरि॑त्रे दु॒ह्यी॒यदिन्द्र॑ दक्षि॒णा म॒घोनी॑ ।

शि॒क्षां स्तो॒तृभ्यो॑ मा॒ति ध॒ग्भ॒गो नो॑ बृ॒हद्व॑दे॒म वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ९ ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १८ । ९ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२०]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् ।

९ त्रिष्टुप् । २ वृत्तिः । ३ पङ्क्तिः । ४, ५, ७ मुरिक् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं धृक् ॥

व॒यं ते॑ व॒यं इन्द्र॑ वि॒द्धि पु॒णः प्र॑ भ॒राम॑हे वा॒ज्र॒यु॒र्न रथ॑म् ।

वि॒प॒न्य॒वो दी॑व्य॒तो म॒नीषा॑ सु॒म्नमि॑य॒क्षन्त॑स्त्वा॒व॒तो नृ॒न् ॥ १ ॥

भा०—संग्राम की कामना करने वाला वीर पुरुष जिस प्रकार रथ

को शस्त्राक्षों से खूब पूर्ण कर लेता है, और अन्न को ढोना चाहने वाला मनुष्य जिस प्रकार शकटादि को भरता है, और वह वेग से या शीघ्रता से जाना चाहने वाला जिस प्रकार रथ का आश्रय लेता है, और ऐश्वर्य चाहने वाला जिस प्रकार 'रथ' अर्थात् युद्धविजयी रथ को चाहता है, उसी प्रकार हम लोग हे ऐश्वर्यवन् । तेरे स्तुतिकर्ता, प्रकाशित होते हुए और बुद्धि से तेरे जेमे या तुझे अपनाने वाले नायक पुरुषों से सुखयाचना करते हुए, तेरे ज्ञान ऐश्वर्य को पुष्ट करें । तू हमें भली प्रकार जान ।

त्वं न इन्द्र त्वाभिरुती त्वायुतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो द्रागुषो वरुते तथाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तू रक्षा, ज्ञान, बल आदि से हमारे बीच में विद्यमान अपने प्रेमी भक्तों को आने वाली विपत्तियों से बचाने वाला है । तू अपने को तेरे तईं समर्पण करने वाले को विपत्तियों से बचाने वाला, अपनी शरण में स्वीकार करने वाली, उसके प्रति सत्यबुद्धि और सत्यकर्म वाला है, जो कि सत्यबुद्धि होकर तुझे ही अपना एकमात्र जान तेरे पास आता है ।

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामेस्तु पाता ।

यः शंसन्त यः शशमानमृती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्र शेषत् ॥ ३ ॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा हमारे बीच उत्तम उपदेश करने वाले और स्तुति करने वाले की रक्षा के द्वारा उसे उत्तम भाग से ले जाता है । धर्म नर्यादाओं को लाघकर चलने वाले और अन्यो को सन्ताप देने वाले को दण्ड द्वारा उत्तम मार्ग में ले जाता है, अथवा जो पशुतगति अर्थात् सब धर्मों को लाघकर संन्यास मार्ग में जाने वाले और अपने आत्मबल को तपस्या द्वारा परिपक्व करने वाले को सन्मार्ग से जो आता है, यह तुझों से जोड़ने और तुझों से दूर करने वाला, नित्य वरण निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, अथवा भक्त प्रेमी जनो से नित्य

स्मरण किया और पुकारे जाने वाला, मित्र, कल्याणकारी है, वह हमारे पुरुषों और प्राणों का भी पालक और रक्षक हो ।

तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शशिशुश्च ।

स वस्वः कामै पीपरदियानो ब्रह्मण्यता नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू परम ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति कर, उसी की चर्चा कर, जिसकी शरण में रहकर पहले भी लोग वृद्धि पाते रहे, और कामादि शत्रुओं का नाश करते रहे हैं । वह ज्ञान, धन और वृद्धि की कामना करने वाले, नये शरण में आये, अपने आश्रय में बसे भक्त की कामना को स्वयं प्राप्त होकर पूर्ण करता है ।

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।

मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिन्नथत्पूर्याणि ॥५॥२५॥

भा०—वह परमेश्वर ज्ञानवान् पुरुषों को और तेजस्वी अग्नि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों और लोकों को, उनके उत्तम मार्ग में प्रेरणा करता हुआ उनके कथन योग्य बड़े २ ऐश्वर्यों और बलों को धारण करके, सूर्य के साथ प्रभातवेलाओं को और स्तुतियों को चाहता हुआ, सबको ला जाने वाले लोभ, मोह या अज्ञान सम्बन्धी पूर्वजन्म के बन्धनों को भी शिथिल कर देता है । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मत्तमः ।

अव प्रियमर्शसानस्य साक्षाच्छिरो भरद्वासस्य स्तुधावान् ॥६॥

भा०—वह श्रुति अर्थात् वेदों से श्रवण करने योग्य ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों का प्रकाशक है । वह मननशील ज्ञाना पुरुष के सब कष्टों का सर्वोत्तम नाश करने वाला और सबसे ऊपर, सबसे अधिक पूज्य और शक्तिशाली है । वह सब विघ्नों को परास्त करने द्वारा ससार भर को धारण पोषण करने वाले सामर्थ्य का स्वामी है । वह शरण में प्राप्त हुए सेवक के प्रिय शिर के समान पूजनीय, मिर आँवों पर रहकर अपने अर्चनस्थ का भरण पोषण करता, पालता है ।

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनिः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।

प्रजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार काले अन्धकार की उत्पादक रात्रियों को दूर करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर विघ्नों और आवरणकारी मोह आदि का नाशक, देहपुरी के बन्धन का तोड़ने वाला होकर, कृष्ण अर्थात् पापयुक्त कर्मों को उत्पन्न करने वाली लौकिक सुख के देने वाली और ज्ञान और पुण्य का नाश करने वाली चित्तवृत्तियों को तितिर बितिर करता है । जिस प्रकार सूर्य मनुष्य को भूमि और जल प्रदान करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी मननशील मनुष्य के भोग और उपकार के लिये भूमि और जल दोनों ही उत्पन्न करता है । और वह दानशील मनुष्य की स्तुति या कीर्ति को सत्य के बल से बढ़ाता है ।

तस्मै तवस्य मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरणीसातौ ।

प्रति यदस्य वज्र बाहोर्धुर्हृत्वी दस्युन्पुः आयसीर्नि तारीत् ॥ ८ ॥

भा०—जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार सत्र अर्थात् यज्ञ में जलप्रद भेघ की वृद्धि के लिये वृष्टिकारक बल को बढ़ाने वाला चरु ही निरन्तर दिया जाता है, उसी प्रकार अभीष्ट अर्थात् पाने योग्य फल प्राप्त करने के लिये सत्याचरण और मिथ्याचार से रहित सत्य उपासना द्वारा उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त विद्वान् पुरुषों द्वारा आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाला दान, स्तवन आदि कर्म फल निरन्तर देते या त्यागते रहना चाहिये । इस जीव के अज्ञान को बाधने वाले ज्ञान और कर्म रूप दोनों बाधकों से अज्ञान नाशक बल को धारण कर लेते हैं तब वह आत्मा के नाशकारी अन्त शत्रुओं का नाश करके आवागमन सम्बन्धी देहबन्धनों को पार कर जाता है । अध्यात्म में—आवागमन का बन्धन आत्मा के लिये आधसी पुर या फौलादा गढ़ है । वही यह भौतिक देह है । प्राणमय, बिजानमय मनोमय कोश तीनों 'राजसी पुर' है, और आनन्दमय कोश

हिरण्ययीपुर या हिरण्ययकोश है । सभी कोश प्राणों पर आश्रित होने से आसुर कहाते हैं ।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुह्यीयदिन्द्र दक्षिणा मुघोनी ।
शिखा स्तोतृभ्यो मार्ति घग्भर्गो नो बृहद्वदेम विदथे
सुवीराः ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त । म० ९ ॥ इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२१]

गृत्समद श्रपिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ६
त्रिष्टुप् । ४ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती ॥ षडृच सूक्तम् ॥

विश्वजिते घनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजिते उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अविजिते भरेन्द्राय सोमं यजुताय हर्यतम् ॥ १ ॥

भा०—जो समस्त विश्व को जीतने वाला, सबसे उत्कृष्ट है, जो धन, ऐश्वर्य द्वारा भी सबको जीतने वाला, सबसे अधिक धनी है, जो सुख में भी सबको जीतने वाला, आनन्दमय है, जो सत्य के बल से सबको जीतने वाला है, जो समस्त मनुष्यों को जीतने वाला सबसे बड़ा प्रधान नायक है, जो सत्यादि उत्पन्न करने में श्रेष्ठ भूमि को अपने वश करने वाला है, जो अश्व अर्थात् व्यापक पदार्थों और भोक्ता जीवों को भी अपने अधीन रखने वाला है, जो गमनशील पृथ्वी सूर्य आदि का भी जीतने वाला है, जो जलों, प्राणों, प्रजाओं और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का जेता है, ऐसे ऐश्वर्यवान् सर्वोपास्य दानशील परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये, अति कमनीय आत्मा को उसके समीप तक लेजा और अर्पित कर ।

अभिभुवेऽभिभुजाय चन्द्रतेऽपाव्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविमये वह्नये दुधारीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो सर्वत्र व्यापक, समस्त जगत् का भंग, नाश, प्रलय करने वाला समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाला, किसी से ओर कभी भी उल्लघन न करने योग्य, सबका सहन करने वाला, विश्व का विधाता, बहुत ज्ञानोपदेश करने वाला सब जगत् को उठाने वाला, जगत् का धारण और संचालन करने वाला, दुस्तर, अपार सान्ध्य वाला, सत्य से विजयशील है उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये सदा नमस्कारयुक्त वचन का प्रयोग करो ।

स॒त्रा॒स्रा॒हो ज॑न॒भ॒क्षो ज॑नं॒स॒ह॒श्च्य॑व॒नो यु॒ध्मो अ॒नु जो॑ष॒मु॒क्षितः॑ ।
वृ॒त॒ञ्च॒यः स॒हुरि॑र्वि॒द्वारि॑त इन्द्र॒स्य वो॒चं प्र॑ कृ॒तानि॑ वी॒र्या॑ ॥३॥

भा०—जो सत्य से शत्रु का पराजय करने वाला, सब मनुष्यों को सेवन करने योग्य या सब प्रजाजन का भोक्ता, सब जन्तुओं को अपने अधीन रखने में समर्थ, दुष्टों को च्युत करने वाला, दुष्टों पर वज्र का प्रहार करने वाला, प्रेम और सेवा को देखकर मेघ के समान वरसने वाला, ऋतु, सत्य का एकमात्र पुञ्ज, सहनशील, प्रजाओं में व्यापक शासन वाला है, मैं ऐसे परमेश्वर के किये गये बल पराक्रम आदि का अन्यो को उपदेश करू ।

अ॒नानु॑दो वृ॒ष॒भो दो॑ध॒तो वृ॒धो ग॑म्भीर ऋ॒ष्वो अ॒स॒म॒ष्टका॑व्यः ।
र॒ध्र॒चो॒दः श्र॑य॒नो वी॑लितस्पृ॒थुरिन्द्रः॑ सु॒य॒ज्ञ उ॒प॒सुः स्व॑र्जनत् ॥४॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर किसी अन्य से प्रेरित न होने वाला, वाभ्य सुषों की वर्षा करने वाला, हिंसको का हिंसक, गम्भीर, अपार सागर्यवान्, महान्, तथा ज्ञान्तदर्शिता और बुद्धिमत्ता में जिसका कोई पार नहीं पा सकता ऐसा वह है । हिंसको को दूर करने और उत्तम ऐश्वर्यवान् समुद्र पुरुषों को प्रेरणा करने वाला है, दुष्टों को शिथिल करने वाला है, बलवान् है, महान् और उत्तम उपास्य है । वह ही उपाओं को और सुयों को उत्पन्न करता है ।

यज्ञेन॑ गा॒तुम॒प्तुरो॑ वि॒विद्री॑रे घि॒यो हि॒न्वा॒ना उ॒शि॒जो॑ म॒नी॒
पि॒णः । अ॒भि॒स्व॒रा नि॒प॒ट्ठा॑ गा अ॒व॒स्य॒व इ॒न्द्रे हि॒न्वा॒ना द्रवि॑-
णान्या॒शत ॥ ५ ॥

भा०—उपासना, सत्सगति और दान आदि श्रेष्ठ कर्म से ओर
उपास्य परमेश्वर, कर्मों और बुद्धियों को प्राप्त करने वाले, कामनागन्,
मेधावी पुरुष, अपनी बुद्धियों और उत्तम कर्मों की वृद्धि और उन्नति
करते हुए उत्तम ज्ञानमार्ग को प्राप्त कर लेते हैं । ऐश्वर्यवान् के अधीन
अपनी वृद्धि और उन्नति करते हुए, सब प्रकार का उपदेश देने वाली
वेदवाणी को समीप बैठकर प्राप्त करने से अपनी रक्षा, ज्ञान, सद्गति,
आत्मवृत्ति आदि की आकाक्षा करते हुए, उत्तम वाणियों और उत्तम
ऐश्वर्यों बलों और ज्ञानों को करते हैं ।

इन्द्र॑ श्रेष्ठा॑नि द्रवि॑णानि धेहि॑ चित्ति॑ दक्ष॑स्य सुभ॑ग॒त्वम॒स्मे ।
पोष॑ र॒यि॒णाम॒रि॒ष्टिं त॒नूना॑ स्वा॒मानं॑ वा॒चः सु॑दि॒न॒त्वम॒ह्नाम् ॥ २७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् प्रभो । आप हम में सर्वोत्तम ज्ञान और धन
बल वीर्य धारण करो, प्रदान करो, बलवान् सामर्थ्यवान् पुरुष की
सुचित्तता, चेतना, सावधानता और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो । ऐश्वर्यों
की वृद्धि, शरीरों की रोगरहितता, और वाणी की मधुरता, दिनों का
सुदिनपन प्रदान करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[२२]

गृत्सम॑द ऋषिः ॥ इन्द्रो॑ देवता ॥ इन्द्र — १ अष्टिः । २ निचृदतिराक्षरी । ३

मुरिगतिराक्षरी । ३ स्वराट राक्षरी ॥ चतुष्टयं सृक्तम् ॥

त्रिक॑द्रुकेषु म॒हिषो॑ यवा॑शिरं तुवि॒शुष्म॑स्तृ॒पत्सोम॑मपि॒द्वि॒
ष्णु॑ना सु॒तं यथा॑व॒शत् । स ई॑ ममा॒ह म॒हि कर्म॑ कर्त॒वे म॒हामु॑दं
सैन॑ स॒श्वदे॒वो दे॒वं स॒त्यमिन्द्र॑ स॒त्य इन्द्रुः॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लेने

वाला महान् सूर्य बहुत बल वाला होकर, पृथिवी वायु और द्युलोक में स्थित और ओषधि अन्नादि प्राप्त होने वाले जल का व्यापक तेज से पान करता है, और वायुमण्डल को जल से तृप्त या पूर्ण कर देता है, उत्पन्न घर अचर जगत् को भली प्रकार बश करता है, उसी प्रकार महान् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक अपने सामर्थ्य से यवादि ओषधियों पर आश्रित रहने वाले जीव जगत् का पालन करता है, उसे खूब तृप्त कर देता है। और उत्पन्न हुए जगत् को भली प्रकार बश करता है। जिस प्रकार सूर्य जल से जगत् को हर्षित करता है उसी प्रकार परमेश्वर इस जीव ससार का पालन करके जीव जगत् को हर्षित और सुखी करता है और उसको बड़े २ भारी काम करने में समर्थ करता है। जिस प्रकार चन्द्र सूर्य को प्राप्त होता, उसी के आश्रय बढ़ता और गति करता है उसी प्रकार वह भक्त सत्याचरण करने वाला महान् होकर इस विशाल, सर्वैश्वर्यदाता सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है, उसी में समवेत या आश्रित होकर रहता है।

अथ त्विषीमो अभ्योजसा क्रिवि युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्जमना प्र वावृधे । अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैन सश्वदेवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

भा०—सब वान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर अपने बल से हिताशील को दया देता है। वह प्रभु द्यौ और पृथिवी दोनों को पूर्ण कर रहा है। उस परमेश्वर के बल से यह ससार बढ़ता है। वह परमेश्वर जगत् के एक अंश को अपने जठर में प्रलीन कर धर लेता है, एक अंश को व्यक्त रूप में उत्पन्न करता है। चन्द्र समान आह्लादक दिव्य गुणों वाला तथा सत्याचरण वाला व्यक्ति उस परमेश्वर को प्राप्त होता है।

सुक्ता ज्ञातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ सुकं बृद्धो वीर्यैः सासुहिर्मृषो विचर्षणिः । दाता राघः स्तुवते काम्यं वसु सैन सश्वदेवो देव सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू बल वीर्य, पराक्रम के साथ ही प्रसिद्ध है। जो कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति के साथ ही प्रकट हुआ है, बल, दीप्ति के साथ ही समस्त ससार को धारण कर रहा है। तू ससार के उत्पादक सामर्थ्यो सहित महान् है। सहनशील, सबका द्रष्टा, अभिलषित ऐश्वर्य धन स्तुतिशील पुरुष को देने हारा है। (सः एन० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

(१-३) देखो अथर्व० भाष्य का० २ । सू० ९५ । १-३ ॥

तव त्यन्नर्यै नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्य दिवि प्रवाच्यै कृतम् ।

यद्देवस्य शर्वसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

भुवद्विध्वंसभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिपम् ४।२८।२

भा०—हे परमेश्वर ! हे समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने हारे ! हे सर्वेश्वर्यवन् ! तेरा ही वह नरा का हितकारी, सर्वश्रेष्ठ, सब से पूर्व का कार्य है जो कि ज्ञान में अच्छी प्रकार वर्णन करने और प्रवचन द्वारा शिष्यों को उपदेश करने योग्य है। वह यह कि देदीप्यमान सूर्य या अग्नितत्व के बल से प्राण या वायुतत्व को गति देता हुआ तू जलतत्व में गति उत्पन्न करता है। तथा प्रकाशरहित समस्त संसार को अपने पराक्रम से व्याप लेता है। तू सैकड़ों कर्मों और ज्ञानों का स्वामी होकर बल देता और प्रेरणा भी प्रदान करता है। इत्यष्टाविशो वर्गः ॥

[२३]

गृत्समद ऋषिः ॥ देवताः—१, ५, ६, ११, १७, १६ ब्रह्मणस्पतिः । २-४, ६—८, १०, १२—१६, १८ बृहस्पतिश्च ॥ चन्द्रः—१, ४, ५, १०, ११, १२ जगती । २, ७, ८, ९, १३, १४ विराट् जगती । ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती । १५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । १६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

एकोनविंशर्चं सक्तम् ॥

गुणानां त्वा गुणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्र्वस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शश्वन्नृतिभिः सीद सादनम् । १

भा०—हे वेदज्ञान के पालक परमेश्वर ! गणनायोग्य प्रमुखों में सबसे प्रमुख और उनके पालक, कवियों में महाकवि और सर्वोपमायोग्य तथा ध्वज करने योग्य कीर्ति में सर्वश्रेष्ठ, बड़े २ के भी राजा तुझको हम पुकारते हैं । तू हमारी स्तुति ध्वज करता हुआ रक्षा आदि शक्तियों सहित विराजने योग्य प्रत्येक स्थान पर विराजमान है ।

देवाधिपति असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यशियं भागमानशुः ।

उच्चा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेपामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥

भा०—हे बलवानों में बलवान् ! हे बड़े २ लोको और वेदवाणी के पालक प्रभो ! सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् जन तेरे यज्ञसम्बन्धी अर्चान् उपासना करने योग्य, परम भजन करने योग्य स्वरूप को प्राप्त करते हैं । आप किरणों समेत सूर्य के समान परम ज्योति से तेज और समस्त बड़े २ लोको और वेदमय ज्ञानों के उत्पादक एवं प्रकट करने वाले हो । (२) राजा महान् राष्ट्र का पालक होने, से बड़े २ ऐश्वर्यों का स्वामी होने से 'बृहस्पति' और 'ब्रह्मणस्पति' है ।

आ विवाध्या परिराणस्तमासि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य
तिष्ठसि । बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रज्जोदणं गोत्रभिदं
रवर्षिदम् ॥ ३ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! पापों से पूर्ण कर्म को और अज्ञानमय अन्धकार को विविध उपायों से नष्ट करके, आप, ज्योतिर्मय सत्य के रथ में स्थित होते हो, जो कि दुष्ट पुरुषों को भय देने वाला, शत्रुओं का नाश करने वाला, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों का नाशक, दुर्गम पापों का नाश करने वाला, सुख देने वाला तथा प्रकाश स्वरूप है । (२) राजा पापों, अज्ञानों को दूर करे । तेजस्वी, भयंकर, शत्रुनाशक, दुष्टनाशक, प्रजा सुखकारक, सामान्य और धन के उत्पादक रथ पर विराजे ।

सु॒ती॒तिभिर्न॑यसि त्राय॑से ज॒नं यस्तु॑भ्यं दा॒शान्न॑ तमं॒हो अ॑श्नवत् ।
ब्र॒ह्म॒द्वि॒ष॒स्त॒प॒नो म॑न्युमीर॑सि बृह॑स्पते म॒हि त॑त्ते म॒हिट्व॑वम् ॥४॥

भा०—हे बड़े व्रतो और बड़े लोकों के पालक परमेश्वर । तू उत्तम न्याययुक्त मार्गों, नीतियों से सबको सन्मार्ग पर चलाता और उनकी रक्षा करता है । जो तेरे प्रति अपने को सौंप देता है उसको पाप, कष्ट, कभी नहीं व्यापता । तू वेद, वेदज्ञ और ईश्वर के विरोधी पुरुषों को तपाने वाला, और क्रोध आदि अन्त शत्रुओं और अभिमानियों का नाश करने हारा है । तेरा वह प्रसिद्ध बड़ा भारी महान् सामर्थ्य है ।

न तमं॒हो न दु॑रि॒तं कु॑तश्च॒न ना॑रा॒तय॑स्ति॒तिरु॑र्न द्र॒यावि॑नः ।

वि॒श्व॒ इ॒द॒स्माद्ध्व॑र॒सो वि॑ वा॒धसे॒ यं सु॑गो॒पा रक्ष॑सि ब्र॒ह्म॒णस्प॑ते ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे वेद और महान् विश्व के पालक परमेश्वर । तू उत्तम रक्षक होकर जिसकी रक्षा करता है उसको किसी भी प्रकार से न कोई पाप, न दुर्गति, न शत्रुजन और न दोनों पक्षों के भेदू लोग मार सकते हैं । तू उसके समीप सब नाशकारी कारणों को दूर कर देता है । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नो॑ गो॒पाः प॑थि॒कृद्वि॑चक्ष॒णस्त॑व व्र॒ताय॑ म॒तिभिर्ज॑रामहे ।

१ बृह॑स्पते यो नो॑ अ॒भि द्द॑रो॒ द्र॒धे स्वा॑ तं म॑मर्तुं दु॒च्छु॒ना हर॑स्वती ॥६॥

भा०—हे महान् विश्व के पालक प्रभो । तू हमारा रक्षक, उत्तम मार्ग बनाने वाला, विविध सत्योपदेशों का उपदेष्टा, सबका विशेष रूप से सर्वोपरि द्रष्टा है । तेरे महान् व्रत के लिये हम उत्तम मनन करने वाली बुद्धियों और मन्त्रों सहित तेरी स्तुति करते हैं । हम पर जो भी कोई कुटिलता या क्रोध आदि करे उसको उसकी अपनी दुःसदायिनी प्रकृति वेगवती तलवार होकर नष्ट करे । मनुष्य की अपनी कुटिलता ही उसकी नाशकारी होती है ।

उ॒त वा॒ यो नो॑ मु॒र्चया॑दना॒गसोऽरा॒तीवा॑ म॒र्तः सानु॑को वृ॒कः ।
बृ॒हस्प॑ते अ॒प तं॑ व॒र्तया॑ प॒थः सु॒गं नो॑ अ॒स्यै दे॒ववी॑तये कृ॒धि ॥७॥

भा०—हे परमात्मन् । जो पुरुष हम अपराध रहितों को पीड़ित करता है, और अदानशील पुरुषों का संगी है, पर्वत शिखरों में बिचरने वाले 'वृक' भेड़िये के समान हिंसक है, उसको हमारे मार्ग से दूर कर । विद्वानों और उत्तम गुणों को प्राप्त करने के लिये हमारे लिये सुख से गमन करने योग्य उपाय और मार्ग बना ।

त्रा॒तारं॑ त्वा त॒नूनां॑ ह॒वाम॒हेऽव॑स्प॒र्त॒रधि॒वृ॒त्तारं॑ म॒स्मयु॑म् ।
बृ॒हस्प॑ते दे॒वनि॒द्रो नि॑ व॒र्हय॑ मा दु॒रेवा॒ उत्त॑रं सु॒म्नमु॑न्न॒शन् ॥८॥

भा०—हे बड़े लोकों के रक्षक परमेश्वर । हम तुझको अपने शरीरों का पातक मानते हैं । हे अपने शत्रुनाशक बल से सकटों से पार उतारने वाले । हम तुझे तब पर अध्यक्ष रूप से आज्ञा देने वाला, हमें चाहने वाला न्यायी स्वीकार करते हैं । तू दिव्य गुणों और उत्तम विद्वानों और परमेश्वर का निन्दा करने वालों का विनाश करता है, जिससे दुष्ट आचरण वाले दुर्बुद्धि लोग भविष्य में प्राप्त होने वाले या उत्कृष्ट हमारे सुख को न विनष्ट करें ।

त्वया॑ व॒यं सु॒वृधा॑ ब्र॒ह्मण॑स्प॒ते स्पर्हा॑ वसु॑ मनु॒ष्या द॑दीमहि ।
या नो॑ दु॒रे त॒ल्लितो॑ या अ॒रा॒तयोऽभि॑ सन्ति॒ जम्भ॑या ता
अ॒नु॒त्त॒सः ॥ ६ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! उत्तम बुद्धि करने वाले तुझसहायक ते, हम मननशील पुरुषों के हितकारी लोग, चाहने योग्य धन को प्राप्त करें । आघात करने वाली, अदानशील तथा उत्तम कर्मों से रहित जो दुष्ट प्रजाएँ हमपर आक्रमण करती हैं उनका तू नाश कर ।

त्वया॑ ब्र॒ह्म॒मु॒त्त॒मं धो॑महे व॒यो बृ॒हस्प॑ते प॒त्रि॒णा स॑स्ति॒ना यु॒जा ।
भा नो॑ दु॒ शंसो॑ अभि॒दि॒प्सु॒री॒शत॑ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्ता॒रिषी॑-
महि ॥ १० ॥ ३० ॥

भा०—हे परमात्मन् ! पालन करने और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले, शुद्ध पवित्र आचारवान्, तथा सहायक से हम उत्तम ज्ञान, बल और दीर्घजीवन धारण करें । कुख्याति वाला, और दुष्ट शासन करने वाला, तुरे २ उपदेश देने वाला दुष्ट पुरुष, तथा सबको मारने और ठगने वाला वज्रक पुरुष हम पर कभी प्रभुता न करे । हम लोग उत्तम कीर्ति वाले, उत्तम उपदेश्य होकर उत्तम बुद्धियों से युक्त होकर स्वयं तैरें और अन्यो को संकटों से पार उतारें । इति त्रिंशो वर्गः ॥

अ० नानुदो वृषभो जग्मिराह्वं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिदमिता वीलुद्वर्षिणः ॥११॥

भा०—हे महान् वेदज्ञान के पालक । तू अनुपम दानशील है । तू बलवान्, पुकार पर पहुँचने वाला, कामादि शत्रु को खूब पीडित करने वाला, देवासुर संग्रामों में शत्रु को पराजित करने हारा, न्यायशील पितृ-ऋण आदि के चुकाने में सहायता देने वाला, और तीव्र स्वभाव के तथा अपनी वीरता में हर्ष अनुभव करने वाले गर्वाले शत्रुओं का भी दमन करने हारा है ।

अदेवेन मनसा यो रिपयति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वृधो नि कर्ममन्युं दुरेवस्य शर्वतः १२

भा०—जो व्यक्ति उत्तम भावनाओं से रहित चित्त से दूसरे की हिंसा करता है, और अन्य शासन करने वालों में या शत्रुओं हथियारों के कारण अतिभयंकर होकर प्रजा का उद्देजक तथा गर्वा होकर हनन करना चाहता है, हे वेदवाणी के पालक न्यायकारिन् । उसका हाथियार हमें स्पर्श न करे । उस दुःखदायक चेष्टा वाले बलवान् पुरुष के क्रोध और अभिमान को हम तुच्छ समझें और नहीं सा कर दें ।

भरैषु हव्यो नमसेपसव्यो गन्ता वाजैषु सन्ति धनधनम् ।

विश्वा इदृयो अभिदिप्स्वोमृधो बृहस्पतिर्वि ववर्ही रयो इव १३

भा०—यह बृहस्पति परमेश्वर प्रजा के पालन पोषण के कार्यों में सदा आदरपूर्वक स्तुति करने योग्य, विनय और आदर से प्राप्त करने योग्य, ज्ञानों और बलों में व्यापक, बहुत प्रकार के और बहुत से धनैश्वर्य को प्रजाओं में विभक्त करने वाला, प्रजाओं का स्वामी, नाश करने की इच्छा वाले समस्त देवासुर सग्राहों का शत्रु के रथों के समान संहार करे ।

तेजिष्ठया तपनी रुक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।

आविस्तत्कृण्वु यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय १४

भा०—हे बड़ों २ के मालिक ! जो दुष्ट पुरुष, प्रसिद्ध बल वाले तुझे निन्दा का पात्र बनाते हैं, अर्थात् तेरी निन्दा करते हैं तू उन विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को अति तेजस्विनी और सताप देने वाली व्यवस्था से पीड़ित कर । जो प्रशंसा करने योग्य ज्ञान और बल है उसको प्रकट कर । और पाप से परिपूर्ण पुरुष को विविध उपायों से पीड़ित कर ।

बृहस्पते अति यदर्थो अहीद्युमदिभाति क्रतुमज्जनेषु ।

यदीदयच्छर्वस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् १५।३१

भा०—हे बड़ों के भी पालक ! जिस तेज को सर्वधेष्ठ स्वामी पाने योग्य है, जो प्रकाशयुक्त, मनुष्यों के बीच कर्म और ज्ञान उत्पन्न करने द्वारा होकर विशेष रूप से प्रकाशित होता है, जो अन्य को भी समझाता है, हे वेदज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म में प्रसिद्ध ! तू हम में यही सर्वोत्तम अति अनुत्, अलौकिक ब्रह्मतेज, स्थापन कर ।

बृहस्पते ! अति यदर्थो अर्हात् इत्येतया ऋचा परिदध्यात्तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसवाम् । अतीव धा अन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति । द्युमदिति द्युमदिब वै ब्रह्मवर्चस विनाति । यद् दीदयत् शबस ऋत प्रजातेति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसम् । तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् इति । चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसम् । ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवतीति । ऐतरेय ब्राह्मणे ४।११ इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि बृहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु
जागृधुः । आ देवानामोहते वि वयो हृदि बृहस्पते न परः
साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे बड़ों के भी पालक प्रभो ! जो द्रोही, प्राप्त करने योग्य प्रत्येक स्थान में नित्य रमण करने वाले होकर अन्न आदि भोग्य पदार्थों में आक्रमण करके पदार्थ हर लेना चाहते हैं, उन चोर पुरुषों से हमें भय न हो । जो विद्वानों के बीच में भी त्याग, या विघ्नवर्जन के बल को हृदय में धारण करते हैं, हे बड़ों २ के भी पालक ! वे शान्तिमय, सुखकारी वचन से भिन्न दूसरे उपाय को नहीं जानते । वे त्यागशील जन 'साम' उपाय को ही सर्वश्रेष्ठ जानते हैं ।

विश्वेभ्या हि त्वा भुवनेभ्यस्परित्वष्टाजन्तसाम्नः साम्नः कृधिः ।
स ऋणचिदृण्या ब्रह्मणस्पतिद्रहो हन्ता सह ऋतस्य धूर्तरि ॥ १७ ॥

भा०—विषम दशाओं के उपस्थित रहने पर भी साम के ही उपाय को उत्तम कहने वाला जो प्रभु है वही सर्वोत्पादक तुष्टको समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ बना देता है । वही धनों को संग्रह करने वाला, वही धनों को लेने और देने में समर्थ है । वही बड़े राजैश्वर्य का पालक, वही द्रोही पुरुषों को नष्ट करने और दण्ड देने में समर्थ है । वही बड़ी न्याय व्यवस्था के धारण करने वाले के पद पर स्थित होने योग्य है ।

तव श्रिये व्यजिहीतु पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।

इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौञ्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे बड़े राष्ट्र के पालक ! हे तेजस्विन् । जिस प्रकार मेघ किरणों के समूह को प्रथम रोक लेता है और फिर छिन्न भिन्न होकर जल त्याग देता है तो यह सब सूर्य की शोभा के लिये ही होता है, इसी प्रकार पालन सामर्थ्य से युक्त शासक जो भूमियों के समूहों या क्षेत्रों को विशेष रूप से प्राप्त करता, और फिर तेरे लिये कर रूप से अन्न प्रदान करता

है, तो वह तेरी ही लक्ष्मी के वृद्धि के लिये हो । और विद्युत् के योग से
अन्धकार या श्यामपन में घिरे हुए जल के सागर अर्थात् प्रचुर जल को
जो बृहस्पति अर्थात् प्राणों का पालक वायु पुनः नीचे गिरा देता है, उसी
प्रकार राष्ट्र-पालक वीर सेनापति के साथ मिलकर दुःख शोकादि से घिरे
हुए, तैनिकों के महासागर के समान अपार सैन्यबल को नीचे गिरा देता,
मारकर भूमि में गिरा देता है ।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सुक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व । विश्वं
तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३२॥६॥

भा०—हे ब्रह्माण्ड, प्रकृति और ज्ञानमय वेद के पालक परमेश्वर !
हे बड़े राज्य के पालक राजन् ! तू इस संसार और राष्ट्र का नियामक है ।
तू हमें उत्तम वचनों अर्थात् वेदों का ज्ञान करा । हमारे पुत्र पौत्र आदि
को ज्ञान ऐश्वर्यादि ने तृप्त और पूर्ण कर । विद्वान् गण जो पदार्थ प्रदान
करते हैं वह सब कल्याणकारी होता है । हम उत्तम वीरपुरुषों से युक्त
होकर सम्मान में और ज्ञान सभाओं में बहुत उत्तम वचन कहे ।
इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इति पष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

[२४]

मूल-२ अधि. ॥ १—११, १३—१६ मण्डलस्यति. । १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रक्ष-
देवो ॥ ध्रुव.—१, ७, ६, ११ निचूज्जगती । १३ भुरिक् जगती । ६,
८, ११ जगती । १० त्वराट् जगती । २, ३ त्रिडुप् । ४, ५ त्वराट् त्रिडुप् ।
१२, १६ निचूर त्रिडुप् । १५ भुरिक् त्रिडुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सेमामविद्धि प्रभृति य ईशिपेऽथा विधेम नवया मुहा गिरा ।
यथा नो भीट्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीपधुः सोत नो
भूतेन ॥ १ ॥

भा०—बृहती नाम वेदवाणी के पालक हे विद्वन् ! तू इस नवीन अर्थात् शिष्यों ने जिसको पहले नहीं जाना ऐसी, या सदा नवीन सदा सत्य महावाणी द्वारा उत्तम आजीविका को प्राप्त करने में अधिकारी है । वह तू इस को प्राप्त कर और हम तेरी भरण पोषण की सेवा करें । जिससे तेरा मित्र, तेरे समान नाम वाला दूसरा अग्यापक भी मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला होकर, हमारी स्वल्पमति को बढ़ाता और सधाता है । उसी प्रकार तू भी हमारी बुद्धियों को सिद्ध, निश्चित, ज्ञानवान्, परिपक्व कर ।

यो नन्त्वान्यनमन्योजसोतादर्दमन्युना शम्बराणि वि ।

प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

भा०—जो दवाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रुओं को बल पराक्रम से दबा लेता है, जो क्रोध या ज्ञान से शान्तिनाशक शत्रुओं के विघ्नों को मेघों के जलों को सूर्य या विद्युत् या वायु के समान छिन्न भिन्न कर देता है, जो स्थिर अविद्यादि शत्रुओं को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है, वही 'ब्रह्मणस्पति' वेद का पालक है, और वही वसु अर्थात् २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के पालक शिष्य के भीतर भी प्रवेश करता है ।

तद्देवानां देवतमाय कर्त्तुमश्रथनन्दृब्हाव्रदन्त वीळिता ।

उद्गा आजुदभिन्द ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥३॥

भा०—तेजस्वियों में जो सबसे अधिक तेजस्वी होता है उसका यह अलौकिक कर्म होता है कि उसके समक्ष दृढ पदार्थ भी क्षियित हो जाते हैं, और बलशाली भी कोमल होकर झुक जाते हैं । वह विद्वान् और राजा बड़े बल से भूमियों और भूमिवासी प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता और उत्तम २ ज्ञानवाणियों का उपदेश करता है । आत्मा पर आवरण डालने वाले को भेद डालता और अज्ञानान्धकार को छिपा देता, और प्रकाश के समान सूर्य और तेज को प्रकट करता है ।

अश्मास्यमवृतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोज्जसात्तरात् ।

तमेव विश्वे पपिरं स्वर्दशो ब्रह्म साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥

भा०—बड़े भारी बल का पालक सूर्य जिस प्रकार जल के भार से नीचे को झुके हुए, मीठे जल को धारण करने वाले, व्यापक विद्युत् को फैकने वाले मेघ का बल से आघात करता है, उस मेघ को सब आदित्य के किरण पान किया करते हैं, और वे किरण जल से भरे कूप के समान जल से पूर्ण मेघ को एक साथ ही बहुत सा सींच लेते हैं, इसी प्रकार बड़े बल का पालक शक्तिमान् पुरुष अपने आगे झुके हुए, शस्त्र-बल से गिराये हुए, अज्ञादि सुखजनक भोग्य पदार्थों को धारण करने वाले जिस परराष्ट्र को अपने बल से छिन्न भिन्न कर देता है, उसका सब सुख प्रकाश के देखने वाले विद्वान् जन उपभोग और पालन करें । जल वाले कूप के समान बहुत बार सींचें ।

सनाता का चिद्ब्रवन्ता भवीत्वा मद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।

अथतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकारं वयुन्ता ब्रह्मणस्पतिः ५।१

भा०—वेदविद्या रूप धन का पालक परमेश्वर या विद्वान् पुरुष, जिन ज्ञानों और कर्मों का प्रकाश करता है, वे सब सनातन हैं । उनसे से वस्तुओं के द्वार वर्तमान में खुल जाते हैं, कईयों के भविष्य में, कईयों के सम्बन्ध में महीनों लग जाते हैं, और कईयों के सम्बन्ध में वर्ष लग जाते हैं । कई बार सी पुरुष विशेष प्रयत्न न करते हुए भी, अनायास नाना फलों का उपभोग करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

अभिनतन्तो अभि ये तमानुशुनिधि पृथ्वीनां परमं गुहा हितम् ।

ते विद्रासः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनर्यतं तु आयन्ततदुदीयुरावि-
शम् ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानबल से पहुँचते हुए जो विद्याभिलाषी पुरुष गुप्त स्थान में रखे व्यापारी-धनार्यों के धन के समान बुद्धि में रखे विद्योपदेष्टा

पुरुषों के उस सर्वोत्कृष्ट ज्ञानकोश को प्राप्त कर लेते हैं, वे लोग अनृत अर्थात् असत्य बातों का परित्याग करके फिर वे जहां से उस गुरुगृह में आए थे उसी अपने पितृगृह में चले जाते हैं ।

ऋतावानः प्रलिचदयानृता पुनरातु आ तस्थुः कुचयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्या धमितमग्निमश्मन्ति नक्रिःषो अस्त्यरणो जुहुर्हि तम् ॥७॥

भा०—सत्यज्ञान अर्थात् वेद का सेवन करने वाले क्रान्तदर्शी ज्ञानी लोग, ऋत अर्थात् सत्यज्ञान से अविद्या के कार्यों को विवेकपूर्वक त्याग करके, फिर इस लोक से बड़े मार्गों को प्रस्थान करते हैं । वे बाहुओं के बल से जलाई गई तथा पथरों में रहने वाली संमुख में स्थापित और अग्नि का परित्याग कर देते हैं, यह जानकर कि यह कुछ नहीं है, यह रमण के योग्य नहीं है ।

ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥

भा०—बड़े राष्ट्र का पालक राजा, वेदविद्या का पालक विद्वान् पुरुष जिस प्रदेश या पदार्थ को भी चाहता है उस प्रदेश को या उस पदार्थ को वह सत्यवचन और व्यवहाररूप डोरी से कसे, बिना विलम्ब के कार्य करने वाले ज्ञानरूप धनुष से, उस २ अभिलपित पदार्थ को प्राप्त कर लेता है । वहां उसकी उत्तम इच्छाएं ही उत्तम वाण के समान हैं । जिनसे वह अपने सब संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकता है । वे कान में स्थान प्राप्त करके अर्थात् वे दूसरे के कर्णगोचर होकर मनुष्यों को उत्तम उपदेश कहते हुए उनको सन्मार्ग दिखाने के लिये होते हैं ।

स सन्नयः स विन्नयः पुरोहितः ससुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्षमो यद्वाजं भरते मृती घनादित्तूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥

भा०—जो बड़े राष्ट्र का पालक, बड़े विद्याविज्ञान का पालक विद्वान् है वह उत्तम मार्ग से प्रजा को ले जाने वाला, उत्तम नीतिमान् ही । वह

विनीत, विनयशील हो। वह यज्ञ में पुरोहित के समान सबके सामने
अप्रक्ष मार्गदर्शक हो। वह उत्तम स्तुतियुक्त, सुशिक्षित हो। वह युद्ध
में भी कुशल हो। वह सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, उत्तम वाणी से
उपदेश देने वाला जब अपनी मनन शक्ति से ज्ञानयज्ञ करता है तब वह
सूर्य के समान तेजस्वी होकर निष्प्रयोजनों को सन्तप्त करने हारा होकर
तपता है।

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जेता उभये भुञ्जते
विशं ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—सब सुखों की वृष्टि और वृद्धि करने वाले बड़े बल और
ज्ञान के स्वामी के प्रदान किये उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान सब कार्यों
को सिद्ध करने वाले होते हैं। सबके चाहने योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के स्वामी
प्रभु के ये सब दिये दान हैं, और उसका ऐश्वर्य भी व्यापक, सर्वोपरि
सामर्थ्यवान् सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध है, जिससे दोनों प्रकार के विद्वान् जन
नाना धनो का भोग करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

योऽपरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु ररावः शर्वसा वृवक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति प्रपथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर। जो तू बाद में उत्पन्न अनित्य कार्यजगत् में
सब प्रकार से व्यापक सामर्थ्य वाला होकर सर्वत्र रमनेहारा अपने बल
से इस भूतल संसार को धारण कर रहा है, वह तू सबका प्रकाशक,
सर्वव्यापक, ब्रह्माण्ड का पालक है। वह तू ही सब प्रकारमान सूर्यादि
को जोर उन समस्त बड़े २ लोकों को प्रत्यक्ष में वितरित करता है और
प्रवृत्त करता है।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र भिनन्ति वृतं वाम् ।
अग्नेन्द्राग्रस्यस्यती हविर्नोऽन्नं युजैव वाजिनो जिगातम् ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम धन वाले तथा ऐश्वर्यवान् और बृहत् राज्य के पालक राजा और सभापति ! तुम दोनों का सब कुछ सत्य होना चाहिये । और तुम दोनों के कर्त्तव्य और नियम को सभी आस प्रजाएँ कभी नष्ट नहीं करती । रथ में लगे दोनों वेगवान् अश्व जिस प्रकार देशान्तर में पहुँचाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी हमारे स्वीकार करने योग्य अन्न को प्राप्त करो ।

उ॒ताशि॑ष्टा अनु॑ शृ॒ण्वन्ति॒ ब्रह्म॑यः स॒भेयो॑ विप्रो॑ भर॒ते म॒ती ध॒ना ।
व्री॒ळि॒द्वेषा॑ अनु॑ वश॑ ऋ॒णमा॑ट्टि॒दिः स॒ ह॑ वा॒जी स॑मि॒थे ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥ १३ ॥

भा०—और शीघ्र वेग से जाने वाले, रथ को ढो ले जाने वाले घोड़ों के समान राज्यकार्य को धारण करने वाले उत्तम २ शासक भी जिसकी आज्ञा को विनय से श्रवण करते हैं, जो सभा में उत्तम पद पर स्थित, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला होकर, उत्तम बुद्धि से नाना ऐश्वर्यों को धारण करता और प्राप्त करता है, जो बलवान् शत्रुओं को भी दवाने वाला होकर अपने वश हुई पृथ्वी के अनुसार ही ऋण या कर लेता है, वह निश्चय से बलवान् और ऐश्वर्यवान् होकर सग्राम में भी बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान का या बड़े भारी सेनावल का पालक होता है ।

ब्रह्म॑णस्पते॒रभव॑द्यथाव॒शं स॒तस्यो॑ म॒न्युर्म॑हि॒ कर्मा॑ करिष्य॒तः ।
यो गा॑ उ॒दाज॑त्स॒ दिवे॑ वि॒ चा॒भज॑न्म॒हीव॑ गी॒तिः श॑व॒सासर॑-
त्पृ॒थक् ॥ १४ ॥

भा०—बड़ा काम करने की इच्छा करते हुए तथा बड़े भारी धन, जन, राष्ट्र के स्वामी का क्रोध भी उसके अपने वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ही सत्य अर्थात् उचित फलदायक हुआ करता है । जो पुरुष किरणों से सूर्य के समान अपनी वाणियों या आज्ञाओं को अन्यो के ऊपर चलाता है या जो भूमियों पर शासन करता है वह उन

अर्धानों को ज्ञानप्रकाश और व्यवहारज्ञान, विजय के लिये विभक्त करता या प्रदान करता है । और उसकी रीति, गति या नीति या आज्ञा बड़ी भारी रहती नदी के समान बड़े अदम्य बल से स्वतन्त्र ही निकलती है ।

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्योऽवयस्वतः ।

वीरेषु वीरा उप पृद्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेपि मे हवम् १५

भा०—हे बड़े ऐश्वर्य के पालक ! उत्तम नियमव्यवस्था के करने वाले हम दीर्घजीवन और बल के उत्पादक ऐश्वर्य के सब दिनों स्वामी हों । तू हम वीर पुरुषों को वीर पुरुषों के बीच में जोड़ कर रख । तू सबका स्वामी होकर वेदज्ञान के अनुसार मेरे आवेदन को प्राप्त कर ।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य युन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिव्व ।

विश्वं तद्भद्र यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३॥

भा०—हे ज्ञान और ऐश्वर्य के पालक । तू उत्तम नियामक, व्यवस्थापक है । तू इस वेद का ज्ञान कर और पुत्र और शिष्य को सुखी कर, जिसकी विद्वान् जन रक्षा करते हैं वह समस्त जगत् सुखकारक होता है । उत्तम वीर्यवान् होकर यज्ञ और संग्रामादि में हम बहुत उत्तम उपदेश करें । इति तृतीयो वर्ग ॥

[२५]

उत्तर तपि. ब्रह्मणस्पतिदेवता ॥ छन्द — १, २ जगती । ३ निचृजगती

४, ५ विराट् जगती ॥ ५ चर्च सकृन्

इन्वीतो अग्नि वनवदनुष्यतः कृतब्रह्मा शशुवद्रातहव्य इत् ।

जातेन जातमति स प्र संसृते ययं युजं कणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

भा०—वेद का ज्ञाता पुरुष जिस २ को अपना शिष्य बनाता है उस २ शिष्य द्वारा वह दूसरे शिष्य को प्राप्त करके शिष्य परम्परा से जाने बढ़ता है । उस समय वह अग्नि को जलाने वाले के समान ही होता है । जैसे मनुष्य न चमकते हुए काष्ठ को प्रज्वलित करता है उसी

प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अंग २ में विनयशील शिष्य को विद्या की दीप्ति में चमकाता हुआ, वेदज्ञान का संस्कार करके, याचनाशील शिष्य को उत्तम ब्रह्मज्ञान का दान करके स्वयं ही बढ़ता है । इस प्रकार वह पुनः से पौत्र के समान शिष्य प्रशिष्य को विद्यावान् करके गुरुपरम्परा और वंशपरम्परा से आगे बढ़ता है ।

धीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्वोधाति तमना ।

लोकं च तस्य तनयं च वर्धते यं यं युजै कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥

भा०—समृद्ध-राष्ट्र का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी या नियुक्त भृत्य बना लेता है उसके पुत्र और पौत्र को भी बढ़ाता है । और हिंसाकारी शत्रु की भूमियों से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, अथवा याचनाशील प्रजाजन के ऐश्वर्य की भूमियों से बढ़ाता है । और स्वयं सबका ज्ञान रखता है । स्वयं भी प्रसिद्ध होता है, स्वयं भी बढ़ता है ।

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वर्धिरभि वृष्ट्योजसा ।

अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यं यं युजै कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

भा०—वनैश्वर्य का पालक राजा, जिस २ को अपना सारथी बना लेता है, आग की ज्वाला के समान उस अग्रणी नायक पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति फिर निवारण करने या टूटने योग्य नहीं होती । वह स्थिरता से नियुक्त कर दिया जाता है । नदी या समुद्र जिस प्रकार जल को अपने भीतर ले लेना चाहता है, और जिस प्रकार बलवान् साँड़ निर्वाय वविया बैलों को बर दवाता है, उसी प्रकार वह उत्तम कार्य-कुशल पुरुष अपने पराक्रम से सन्त्य के हनन करने वाले, या शत्रु से आघात करने वाले शत्रुजनों को भी मुकाबला करके अपने वश कर लेता है । (२) अथवा नकारोऽत्रैवायंस्तदनुवादी । वेदविज्ञानी जिसको अपना शिष्य बनाता है उसका गार्हपत्य अग्नि के ज्वाला के समान ही गुरुशिष्य

का बन्धन भी स्थिर बनाये रखने के लिये ही होता है । वह कर्मनिष्ठ विद्वान् जलों को नदी के समान, निर्वलों को बली के समान, सत्यज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पुरुषों को सब प्रकार से चाहता है ।

तस्मा॑ अर्पन्ति दि॒व्या अ॑सृश्चतुः स सत्त्व॑भिः प्रथ॒मो गो॑पु गच्छति ।
अनि॑भृष्टवि॒पिर्हन्त्यो॑जसा यं यं युजं॑ कृणुते ब्रह्म॑णस्पतिः ॥ ४ ॥

भा०—महान् राज्य का पालक राजा जिस २ को राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसे कामनायोग्य अन्यो से अप्राप्त विभूतियां प्राप्त होती हैं । वह वीर पुरुषों और बलों सहित सबसे श्रेष्ठ होकर सबकी भूमियों में भ्रमण करता है, वह सेना से कभी च्युत नहीं होकर पराक्रम से शत्रु का नाश करता है । (२) इसी प्रकार आचार्य जिसको शिष्य बनाता है उसे अन्य मूर्खों से अप्राप्य वेदवाणिया प्राप्त होती हैं, वह वीर्यों से युक्त होकर वेदवाणियों से विचरता है । बल से कभी भ्रष्ट न होकर ओज से पापों का नाश करता है ।

तस्मा॑ इद्वि॒श्वे धु॑नयन्त॒ सिन्धु॑वोऽच्छि॒द्रा शर्म॑ दधिरे पुरु॒णि ।
दे॒वानां॑ त॒प्ते सु॑भग॒ स प॑धते यं यं युजं॑ कृणुते ब्रह्म॑णस्पतिः ॥ ५ ॥

भा०—महान् ऐश्वर्य और बल का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी बना लेता और राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसके लिये जनस्त समुद्र, नदी, जल आदि चलते हैं । वे सब नदी आदि उसे बहुत से निर्दोष सुख प्रदान करते हैं । वह विद्वानो और विजयी पुरुषों के योग्य सुख में उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर बढ़ता है । इसी प्रकार गुरु का जिस पर अनुग्रह होता है उस पर प्राणगण सुख वरसाते हैं । वह दिव्य पुरुष इन्द्रियों के सुख में भी सौभाग्यवान् होकर सवित् आदि सिद्धियों में वृद्धि को प्राप्त होता है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२६]

१ जगद ऋषिः ॥ ५ कृणुते इति देवता ॥ चन्द्र.—१, ३ जगतो २, ४ निचृजगतो ॥

चतुर्थं च सूक्तम् ॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।

सुग्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

भा०—सरल, कार्यों के साधन करने में कुशल, कर्मण्य, उपदेश पुरुष कार्य के नाशक विघ्नों को, अन्धकार को किरणों के समान, या वन को कुठार के समान दूर करे । देवतुल्य उत्तम गुणों का इच्छुक पुरुष उत्तम गुणों के विरोधियों का तिरस्कार करे । उत्तम रक्षक, सग्रामों में दुःख से विजय करने योग्य कठिन शत्रु का विनाश करे । और यज्ञशील, दानशील, और सत्संतगशील पुरुष अदानी असंगति के योग्य कुसंगी पुरुष के भोग्य ऐश्वर्य को विविध रूपों में विभक्त कर दे ।

यजस्व वीर प्रविहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्यै ।

हविष्कृणुष्व सुभगो यथासंसि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥

भा०—हे वीर तथा विविध विद्याओं को कथन करने हारे विद्वन् । तू उत्तम सत्संग कर, विद्या आदि दान दे । मननशील पुरुष से उत्तम गुण और ज्ञान प्राप्त कर । विघ्न का नाश करने के लिये अपने चित्त को कल्याण विचार वाला बना । उत्तम अन्नादि उपादेय पदार्थ उत्पन्न कर । जिससे तू उत्तम ऐश्वर्यवान् हो । हम सब महान् यज्ञ के पालक प्रभु और आचार्य की रक्षा, को प्राप्त करें ।

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजै भरते धना नृभिः ।

देवानां यः पितरमाविवांसति श्रद्धमना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

भा०—जो पुरुष श्रद्धा से युक्त मन वाला होकर, देने योग्य अन्न रत्नादि और ग्रहण करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्यादि के हेतु, विद्या के अभिलाषी शिष्यों के पिता के तुल्य आचार्य की, और वेद के पालक प्रभु की, सव प्रकार से सेवा करता है वह ही जन से, वही प्रजा से, वही उत्तम जन्म जन्म से, वह पुत्रों और भृत्यादि और नायक पुरुषों से शक्ति को प्राप्त करता और नाना धनों को प्राप्त करता है ।

यो अस्मै हव्यैघृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुप्यतीमंहसो रक्षती रिपोऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४॥५॥

भा०—जो मनुष्य धन का स्वामी होकर, घृतो से युक्त अन्नो से उस प्रभु की सेवा करता है उसको वह ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु ले जाता है, उसको पाप से बचाता, महापातक तथा हिंसाओं से भी बचाता है । वह परमेश्वर बड़ा भारी कारीगर अद्भुत तथा आश्चर्यजनक है ।
इति पञ्चमो वर्गः ॥

[२७]

कुंजो गार्त्तनदो गृत्सनदो वा ऋषि ॥ आदित्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६,
१३, १४, १५, निचृष्ट त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । ११,
१६ त्रिष्टुप् । ७ तुरिक् पङ्क्तिः । ६, १० त्वराट् पङ्क्तिः ॥

सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सुनाद्राजभ्यो जुहो जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भर्गो नस्तुविज्ञातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य की किरणों के लिये जिस प्रकार 'जुहु' नाम चमत्कार के द्वारा घृत चुआते हैं, अर्थात् जल वर्षाने वाली आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैं तेजोमय ज्ञान और बल वीर्य प्रदान करने वाली वेदवाणियों का, तेज से चमकने वाले तथा वीर्यरस को ग्रहण करने वाले उत्तम विद्यार्थियों के लिये, वाणी द्वारा कथन करता हूँ । सही मित्र, दुष्टों को बाधने वाला न्यायकारी, ऐश्वर्यवान् आश्रयजन, हमने ते जो बहुत से गुणों ने प्रतिद, व्यवहार कुशल, क्रियावान् और शत्रुनाशक, इनमें ते प्रत्येक हमारी शिक्षाप्रद वाणियों का ध्वनि करें ।

इमं स्तोमं सकृत्तवो मे श्रुय मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।

आदित्यासुः शुच्यो धारपूता अनुजिना अनवद्या अरिंशः ॥२॥

भा०—स्नेह करने वाला, न्यायकारी और श्रेष्ठ, ये सब उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले होकर, तथा सूर्य की किरणों के समान प्रकाशक और बारहों मासों के समान नाना सुखों का देने वाले होकर, शुद्ध पवित्र आचार वाले होकर वाणी से पवित्र होकर, वेद त्याज्य पाप कर्मों से रहित तथा अनन्दित आचार वाले होकर, अन्यो की हिसा न करने वाले होकर, मेरे इस स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक सुनें ।

त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अमृतः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३॥

भा०—जो पुरुष सूर्य की किरणों या स्वतः सूर्य के समान प्रकाशमान, प्रजाओं से जलों के समान करों को लेने वाले महान् सामर्थ्य वाले, गम्भीर स्वभाव वाले, अखण्ड शासन करने वाले शत्रुओं से न मारे जाने वाले, स्वयं दुष्टों को दण्ड देने वाले, बहुत से दूतादि रूप चक्षुओं वाले, या बहुत से अव्यक्तों के स्वामी होते हैं । वे पापों और साधु कर्मों को अपने भीतर ही देख लेते हैं, उन प्रकाशमान तेजस्वी पुरुषों के लिये दूर २ की वस्तुएं भी सब समीप के समान ही हो जाती हैं ।

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य
गोपाः । दीर्घाघियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना
ऋणानि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की किरणों के समान प्रजाओं से कर लेने वाले उनके हित के लिये करों को पुनः उन पर बरसा देने वाले, अत एव समस्त भुवन के रक्षक, जंगम और स्थावर सबका धारण पोषण करते हुए, दीर्घदर्शी, प्राणों के समान रमण करने योग्य उत्तम अन्न, जल तथा धन की रक्षा करते हुए, सत्य ज्ञान, सत्य आचरण, धन और जल अन्न आदि से सम्पन्न होकर, जलों को मेघों के समान ऐश्वर्यों और कर आदि का शनैः २ संग्रह करते हुए, अपने भीतर ही सब पाप और पुण्य का विवेक कर लेते हैं ।

प्रियामादित्या अर्वसो वा अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।

युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रैव दुरितानि वृज्याम् ॥ ६ ॥

भा०—हे सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश करने वाले और राष्ट्र में कर आदि लेने वाले अध्यक्ष पुरुषो ! और हे श्रेष्ठ पुरुषों के मान करने और दुष्टों का नियमन करने वाले न्यायकारिन् । आप लोगों के इस पालन और करादान का जो भी सुखकारी परिणाम हो उसे मैं भय या संकट के अवसर पर अवश्य प्राप्त करूँ ! हे प्रजा को मरण से बचाने और दुष्टों के निवारण करने वाले अध्यक्षो ! तुम्हारे उत्तम न्याय-शासन में दुराचारों और दुःखदायी संकटों को गढ़ों के समान दूर से ही त्याग दूँ । इति पष्ठो. वग. ॥

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।

तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥

भा०—हे न्यायकारिन् ! हे दुष्टों के वारण करने हारे ! हे उत्तम ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! और कर आदि लेने वाले राजगणो ! आप लोगों का मार्ग सुख से जाने योग्य, कष्टकरहित, उत्तम और कार्य साधने वाला है । उसी मार्ग से हमें अध्यक्ष रूप से आज्ञा दो । हमें कभी नाश न होने वाला सुख प्रदान करो ।

पिपर्तु नो अदिति राजपुत्राति द्वेषास्यर्यमा सुगेभिः ।

वृद्धन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥

भा०—राजा के पुत्र के समान अपने अधीन रखने वाली राजसभा, न्यायसभा और जनसभा, अक्षण्ड शासन शक्ति वाली और न्यायकारी सुगम रूपायों से हमें परस्पर के द्वेष के भावों और द्वेषकारी पुरुषों से पार करें । सत्ता के समान प्रजा के ओही, और रात्रि के समान सब दुःखों के वारण करने वाले शासक का सुखदायी शरण भी बहुत बड़ा और प्रजा का

वर्धक हो । हम भी बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त होकर रोगों और शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए, सुखी रहे ।

तिस्रो भूमिर्धारयन् ब्रूत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरैषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥

भा०—आदित्यगण तीनों भूमियों को और तीनों आकाशों को सत्यबल के द्वारा धारण कर रहे हैं । अर्थात् अग्नि, वायु, और सूर्य भूमि अन्तरिक्ष और आकाश को धारण करते हैं । इन तीनों लोकों में इनके तीन ही प्रकार के मुख्य २ कार्य हैं । हे तेजस्वी पुरुषो ! उनके समान ही आप लोगों का भी ज्ञानव्यवहार और परस्पर के लेन देन के व्यवहार में सत्य के बल से ही महान् सामर्थ्य है । हे न्यायकारिन् ! हे दुष्टनाशक ! हे सखे ! वह सामर्थ्य उत्तम रीति से बना रहे ।

ग्री रोचिना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुच्यो धारपूताः ।

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥

भा०—ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाले मनुष्य के हित के लिये, हित और प्रिय वचन बोलने वाले, सूर्य के समान ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध आचार-व्यवहार और अन्तःकरण वाले, अभियेक जलों से पवित्र, स्वप्न अर्थात् निद्रा आदि में न फसे हुए सावधान, अल्प न सपकने वाले अर्थात् दृष्टिदोष से रहित, शत्रु से न मारे जाने योग्य, बहुत प्रशसनीय तथा बहुश्रुत विद्वान् पुण्य, दिव्य तथा प्रकाशमान ज्ञान, कामना और व्यवहार इन तीनों को धारण करते हैं ।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।

शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूषि सुवितानि पूर्वा ॥ १० ॥ ७॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ ! दुःखाँ और दुष्टों के नाशक ! हे मुरा आदि मादक पदार्थों से रहित, वृत्तनों से मुक्त ! जो दानशील, ज्ञानप्रकाशक सूर्यादि के समान उपकारी जन है, और जो सामान्य मनुष्य हैं उन

ब्रह्मा तू राजा हे । हे विद्वन् ! हमें विविध विद्याओं के दर्शन करने के लिये सौ बरस की आयु प्रदान कर । हम सुखपूर्वक धारण करने योग्य पूर्ण आयुष्ट प्राप्त करें, भोगें । इति सप्तमो वर्गः ॥

न दक्षिणा वि चिकित्ते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥

भा०—अदिति अर्थात् अखण्ड ब्रह्म के उपासक ब्रह्मज्ञानी पुरुष, न दायें न दक्षिण दिशा में, न बायें न उत्तर दिशा में, न आगे न पूर्व दिशा में, न पीछे न पश्चिम दिशा में कभी विचिकित्सा या सदेह को प्राप्त होते हैं । वे कभी और कहीं भी भ्रम में नहीं पड़ते हैं, उनका ज्ञान सर्वगामी होता है । हे प्रजाओं और शिष्यों को बसाने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषों । मैं परिपक्व ज्ञानवाला और धीर होकर दक्षिणादि दिशाओं में कभी सदेह में न पड़ूँ प्रत्युत् आप लोगों से सन्मार्ग में ले जाया जाकर भयरहित परम ज्योति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करूँ और उसका परम आनन्द प्राप्त करूँ ।

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो दृदाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।

स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेपु प्रशस्तः ॥ १२ ॥

भा०—जो राजाओं और सत्यमार्ग में ले जाने वाले उत्तम नायकों को ज्ञानोपदेश प्रदान करता है, जिसको सदा स्थिर रहने वाली ज्ञान-नीतियाँ और समृद्धियाँ भी बढ़ाती हैं, वह ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों का देने वाला, शान्ति, यश और सन्मार्ग में प्रशंसित, धनसम्पन्न होकर रथ से रथी के समान अपने रमणीय कार्य से सबसे प्रथम आगे बढ़ता है ।

शुचिरूपः स्रयवसा अर्दध्य उप क्षेति वृद्धवयाः सुधीरः ।

नक्षिष्टं प्लुत्यन्तितो न दूराद्य प्रादित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥

भा०—जो पवित्र जागरवान् व्यक्ति कभी हिंसित और हिंसक न रहकर, उत्तम अन्नोत्पादक जलो का सेवन करता है, वह दीर्घजीवी और

उत्तम वीर्यवान् होता है । जो तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के उत्तम शासन में रहता है उसको शत्रुगण और विपत्तियां न समीप से और न दूर से ही नष्ट कर सकती हैं ।

अदिते मित्रं वरुणोत मृच्छ यद्वो वयं चक्रुमा कच्चिदागः ।

उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥ १३ ॥

भा०—हे शासन करने वाली विदुषि ! हे मरण से रक्षा करने वाले सुहृत् ! हे श्रेष्ठपुरुष ! हम जब भी कोई आप लोगों के प्रति अपराध करें तो भी हमें सुखी करो । मैं बहुत बड़ा भयरहित प्रकाश प्राप्त करूँ । हमें लम्बी चौड़ी अन्धकारमय दशाएं प्राप्त होकर हमारा नाश न करें । हम तामसी दशाओं में न पड़े रहें ।

उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।

उभा क्षयावाजयन्त्याति पृत्सुभावधौ भवतः साधू अस्मै ॥ १४ ॥

भा०—इस राजा के लिये शासकवर्ग और शास्यवर्ग दोनों अच्छी तरह एक दूसरे को प्राप्त होकर बढ़ाते हैं । उत्तम ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार आकाश से वृष्टि प्रदान करके सब अन्न को पुष्ट करता है इसी प्रकार राजा भी उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानवान् पुरुषों से उत्तम सुखवृष्टि प्रदान करता और प्रजा को पुष्ट करता है । वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का संग्रामों में विजय करता हुआ प्रयाण करता है । और राजावर्ग प्रजावर्ग समृद्ध होकर इसके लिये उत्तम कर्म साधने वाले होते हैं ।

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।

अश्वीव तौ अति येष रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १५ ॥

भा०—हे तेजस्वी ज्ञानवानो ! हे पूजनीय सत्संग योग्य पुरुषो ! आप लोगों की जो अद्भुत बुद्धियां और बुद्धियों द्वारा किये गये कार्य हैं, जो द्रोह बुद्धि वाले शत्रु के लिये गठे हुए पाशों के समान हैं, मैं उनको

इस से भस्त्र के स्वामी के समान पार कर जाऊँ । हम लोग कुशलतापूर्वक बड़े सुखमय गृह में सदा रहे ।

माह मघोर्नो वरुण प्रियस्य भूरिदान् आ विढं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्सुयमाद्वं स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥

भा०—हे राजन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं सर्वप्रिय, उत्तम ऐश्वर्यवान् तथा बहुत दान देने वाले, बन्धु के समान सदा प्राप्त होने वाले पुरुष की सुख समृद्धि को कभी स्पर्धा से न लूँ । हे राजन् ! उत्तम नियन्त्रण से युक्त ऐश्वर्य से मैं वञ्चित न रहूँ । हम उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर तेरे शासन के बहुत २ गुण कहे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२८]

बृमो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७, ११ त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक त्रिष्टुप् । २,

१० भुरिक पङ्क्तिः ॥ एकादशचं सूक्तम् ॥

इदं ऋवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मद्वा ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरः ॥१॥

भा०—यह समस्त जगत् क्रान्तदर्शी, सूर्य के समान तेजस्वी, स्वयं प्रकाशित होने वाले परमेश्वर से ही प्रकट होता है । इसी प्रकार विद्वान् से सब ज्ञान प्रकट होता है । वह अपने महान् सामर्थ्य से समस्त सब पदार्थों को प्राप्त होता है ।

तव व्रते सुभगांसः स्याम स्वाध्वो वरुण तुष्टवांसः ।

उपायन उवसा गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥

भा०—किरणों वाली प्रभात वेलों के आने पर जिस प्रकार जलिया जीर्ण या जल्पप्रकाश हो जाती है, उसी प्रकार हम लोग दिनोदिन वेदवागियों से युक्त वृद्धावस्था की आयु विवेक प्रज्ञाओं के उपाकालों के सन्नाह प्राप्त होने पर व्यतीत करें । हे परमेश्वर ! हम उत्तम बुद्धि से

युक्त होकर तेरी स्तुति करते हुए तेरे उपदेश किये धर्मकार्य में रहकर
उत्तम ऐश्वर्यवान् हों ।,

तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशसस्य वरुण प्रणेतः ।

युयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ राजन् ! हे उत्तम नायक । हम लोग बहुत से
वीर पुरुषों के स्वामी तथा बहुतों से प्रशंसित जो तू हे उसकी शरण में
रहे । हे विजयेच्छुक पुरुषो ! आप सब लोग हमारे बीच कभी पीड़ित न
होकर, अखण्ड परमेश्वर या राजा के या राष्ट्रभूमि के पुत्र के समान होकर,
परस्पर के सहायक होने के लिये सब प्रकार से समर्थ, सहनशील हो ।
प्र सीमादित्या असृजद्विधृता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिजमन् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विविध रश्मियों से जल को धारण करने वाला
सूर्य जल को वृष्टिरूप में उत्पन्न करता है, उत्तम रूप से अन्न को उत्पन्न
करता है, और मेघ की जलधाराएँ बहती हैं और समुद्र को जाने वाली
जल की नदियाँ बहती हैं, वे कभी न थकती हैं न चलने से रुकती हैं,
इसी प्रकार समस्त ससार को अपने भीतर ले लेने वाला परमेश्वर 'ऋत'
अर्थात् इस गतिशील, व्यक्त संसार को बहुत ही खूबी से बनाता है, वह
स्वयं इसको विशेष रूप से और विविध उपायों से धारण कर रहा है ।
सर्वश्रेष्ठ उस प्रभु के शासन में ये जलधाराओं के समान बन्धन में बंधे
जीवगण अन्न और जीवन प्राप्त करते हैं । ये जन्म तथा मरण से कभी
नहीं थकते । कभी पूर्ण मुक्त नहीं होते अर्थात् मुक्ति का सुखभोग कर
फिर जन्म धारण करते हैं । वे वेग से जाने वाले पक्षियों के समान इस
भूलोक पर ऊपर नीचे विचरते रहते हैं ।

वि मच्छ्रथाय रशनामिवागं ऋव्याम ते वरुण क्षामृतस्य ।

मा तन्तुश्लेष्टि वयतो धियं मे मा मात्रा शर्यपसः पुर ऋतोः ॥५॥

भा०—हे श्रेष्ठ प्रभो ! बंधी रस्सी के समान पाप और अपराध को आप मुझसे विशेषरूप से ढीला कर दो । मेघ के जल से जिस प्रकार नदी या खुदे हुए तालाब को खूब भर देते हैं उसी प्रकार हम तेरे धनैश्वर्य और सत्यन्याय के कारण खूब समृद्ध और सम्पन्न हो । बुनने वाले जिस प्रकार तागा न टूटना चाहिये उसी प्रकार प्रजातन्तु और यज्ञतन्तु के कर्म को विस्तारते हुए यज्ञतन्तु और प्रजातन्तु न टूटें । ऋतु के पूर्व जिस प्रकार अन्न की मात्रा न समाप्त होनी चाहिये उसी प्रकार ठीक प्रयाण काल या मृत्युगति के पूर्व मेरे कार्यों की मात्रा, अर्णात् कर्मों द्वारा बना शरीर नष्ट न हो । इति नवमो वर्गः ॥

अप्रो सुभ्यं क्ष वरुण भियस्मं मत्सस्त्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामिव प्रत्साद्धि मुमुग्ध्यं हो नहि त्वद्वारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! मुझसे आप भय दूर करें । हे सत्य व्यवहार के स्वामिन् ! तू अच्छी प्रकार प्रकाशमान है । तू मुझ पर अनुग्रह कर । बड़ड़े से रस्सी को जिस प्रकार खोलकर पृथक् कर दिया जाता है उसी प्रकार हे प्रभो ! तू मुझसे पापबन्धन को छुड़ा दे । तेरे सर्भाप या दूर तुझसे निज कोई आत्म के क्षणिक के काल के लिये भी ईश्वर या सत्तार का चलाने हारा नहीं है ।

भा नो प्रधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृणवन्तमसुर घ्नीरन्ति ।

भा ज्यातिपः प्रवसुयानि गन्म वि पू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! हे वायु के समान प्राणों के देने वाले ! ये जो तेरे पाप पगने वाले का नाश कर देते हैं, तेरी सगत मैत्री और उपासना ने रहते हुए एभे उन शत्रुओं से मत पीडित होने दे । हम लोग प्रवसु ते दूर के स्थानों को न जायें । और हमारे जीवन की वृद्धि के लिये शिश्रथारियों का विनाश कर ।

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।

त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळम वृतानि ॥ ८ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ ! हे बहुतों में प्रसिद्ध ! बहुत से गुणों, बलों में प्रसिद्ध प्रभो ! तेरे लिये हम पहले भी नमस्कार और सत्करादि वचन कहते रहे हैं, और निश्चय से बाद में भी तेरे लिये नमस्कार आदि सत्कार-योग्य वचन कहेंगे । पर्वत के समान अचल तुझमें ही सर्वश्रेष्ठ कर्म दृढ़ता से स्थिर हैं ।

परं ऋणा सावीरघु मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।

अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषासु आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! जिन ऋणों को मैंने किया या जो मुझ पर अन्यों द्वारा किये हुए प्रमाणित किये गये हों उनको मुझसे दूर कर, उनको उतरवाने की व्यवस्था कर । मैं प्रजाजन दूसरे के किये से, दूसरे की कमाई से भोग न करूं । क्योंकि हमारी बहुत सी प्रभात वेलाएं ऋण की चिन्ता से ऐसी होती है जैसी मानो प्रभात वेलाएं हुई ही न हों । हे सर्वश्रेष्ठ ! उन दुःख चिन्ताओं की घड़ियों में हम जीवों को शिक्षित कर । प्रजा में राजा ऐसी व्यवस्था करे कि कोई किसी का ऋणी न हो । सब अपने परिश्रम का भोग प्राप्त करें । ऋण की चिन्ता में दिनों का सुख नष्ट न करें । राजा ऋणापहारियों को दण्डित करके शिक्षा दे ।

यो मे राजन्न्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भोरवे मह्यमाह ।

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! जो मेरा सहयोगी या मित्र होकर मुझ जीव पुरुष को सोते समय में भय बतलावे, या जो चोर या डाकू हम प्रजाजन को मारता, पीड़ित करता है, हे दुष्टनिवारक राजन् ! तू उस भयकारी साथी, मित्र, चोर या डाकू से हमें बचा ।

माहं म॒घो॒नो वरु॑ण प्रि॒यस्य॑ भूरि॒दा॒वन् आ वि॑ट् शून॑मा॒पेः ।

मा रा॒यो रा॑जन्त्सुयमा॒दव॑ स्थां बृ॒हद्व॑दे॒म वि॒दथे॑ स॒वीराः॑ ११॥१०

भा०—व्याख्या देखो सू० २७ । मं० १७ ॥ इति दशमो वर्गः ॥

[२६]

क॒नो गा॑र्त्त॒नरो गृ॑त्म॒नरो वा ऋ॑षि ॥ वि॒श्वेदे॒वा दे॒वता ॥ छन्दः १, ४, ५

निचृ॒त् त्रि॒डुप् । २, ६, ७ त्रि॒डुप् । ३ वि॒राट् त्रि॒डुप् ॥ सप्त॑र्चं सूक्तम् ॥

धृ॒त॒म॒ता आ॑दि॒त्या इ॒षि॒रा आ॒रे म॑त्कर्त॒रह॑सू॒रि॒वागः॑ ।

शृ॒ण्व॒तो वो॒ वरु॑ण मि॒त्र दे॒वा भ॒द्रस्य॑ वि॒द्वो अ॒वसे॑ हुवे वः ॥१॥

भा०—हे नियम व्यवस्थाओं के स्थिर करने और प्रजा के रक्षक शिक्षण आदि के प्रतों को धारण करने हारे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रबल इच्छा, ज्ञान और कर्म वाले होकर, एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान पाप आदि अपराध को मुझ प्रजाजन से दूर करो । हे सर्वश्रेष्ठ राजन् ! हे मित्रवद् गुरो ! हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के सुनते हुए मैं ज्ञानवान् पुरुष, प्रजा के सुख और कल्याण की रक्षा करने के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ ।

यू॒य दे॒वाः प्र॑म॒तिर्यु॒यमो॒जो यू॒यं द्वे॒पांसि॑ स॒नुत॑र्यु॒योत॑ ।

अ॒भि॒ज॒त्ता॒रो अ॒भि च॒ क्षम॑ध्वम॒था च॑ नो मृ॒ळ्य॑ता॒परं॑ च ॥२॥

भा०—हे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र में उत्तम ज्ञान स्वरूप और आप लोग ही ओज, बल, पराक्रमस्वरूप हो । आप लोग परस्पर के द्वेष और अर्पति के कारणों को सदा दूर करते रहो । आप लोग मुकाबले पर दुष्टों को पीस जलने में समर्थ होकर सब कुछ कर सकते हो । आप ही लोग हमें वर्तमान में और भविष्य में भी सुखी करो । किमु नु वेः कृणु॒यामा॑प॒रेण॑ किं स॒नेन॑ वस॒व आ॑प्ये॒न ।

यू॒य नो॑ मि॒त्रा॒वरु॑णादि॒ते च॑ स्व॒स्तिमि॑न्द्रा॒मरु॑तो द॒धात॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे सबको बसाने और राष्ट्र में बसने वाले प्रजा जनो ! हे

वसु नाम के विद्वान् ब्रह्मचारी जनो । कहो, आप लोगों की क्या प्रिय सेवा हम लोग करें ? प्राप्त होने योग्य या बन्धुजनों के योग्य तथा विभागयोग्य धनादि पदार्थ से भी आप लोगों का क्या आदर सत्कार करें । हे स्नेही पुरुष ! हे सर्वश्रेष्ठ ! हे अखण्ड शासन के कर्त्तः । ऐश्वर्यवन् सेनापते ! आप लोग हमें सुख समृद्धि धारण कराओ ।

हये देवा यूयमिष्टापयः स्थ ते मृळत नाघमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥३॥

भा०—हे दिव्य पुरुषो ! आप लोग ही विद्या आदि गुणों में व्यापक और धन आदि प्राप्त कराने हारे होकर रहो । मुझे ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाले राष्ट्रजन को सुखी करो । आप लोगों का रमण योग्य साधन बीच ही में रह जाने वाला न हो, प्रत्युत सत्य व्यवहार में सिद्धि तक पहुँचावे । और आप लोगों जैसे बन्धुजनों में हम लोग कभी थके माँदे दुःखित और पीडित न हों ।

प्र वृ एको मिमय भूर्यागो यन्मा पिते व कितुवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि दवा मा मघि पुत्रे विभिव ग्रभीष्ट ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों में से एक उत्तम शासक ही बहुत से अपराधों को अच्छी प्रकार विनष्ट करने में समर्थ हो, जो वह पिता के समान द्यूत के व्यसनी अर्थात् अनायास दूसरे के वन को उल-पूर्वक हरने वाले पर शासन करे, पाश-बन्धन दूर रहे और पाप भी हमसे दूर रहे । पुत्र आदि के रहते मुझे पिता को, पक्षी को व्याध के समान, निर्दयतापूर्वक मत पकड़ो । ऋणादि रहने पर भी पुत्र ऋण चुका सकता है । अतः मुझे दण्ड न देकर पुत्रादि से ऋण लेने की व्यवस्था करो ।

अर्वाञ्चो अथा भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्यये-
यम् । नाध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य नाध्वं कृत्तादिवपदे
यजत्राः ॥ ६ ॥

भा०—आज आप लोग हमारे प्रति आदरणीय और अभय आदि देने और सत्संग करने वाले होयों। आप लोगों के हृदय के प्रेम या अनिप्राय को मैं जानूँ। क्योंकि सम्भव है कि भयभीत होकर मैं नष्ट हो जाऊँ। हे विद्वान् पुरुषो ! अतिहिंसक नेडिये के स्वभाव वाले, जोर डकू पुरुष के लिये छेदन हिंसन आदि कार्य से हमें बचाओ। हे दानशीलो ! आप लोग हमारी आपत्तिकाल से भी रक्षा करो।

माहं भूधोनों वरुण प्रियस्य भूरिदावन् आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्सुयमादव स्था बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥११॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २७ । १७ ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[३०]

गूत्तनद अपि ॥ १—५, ७, ८, १० इन्द्रः । ६ इन्द्रामोनी । ९ बृहस्पतिः ।

११ भरता दयता ॥ धन्द्र.—१, ३ भुरिक् पक्तिः । २, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ।

४, ५, ६, ७, ९ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

एकादशर्च सकल ॥

सुत दे शाय वृत्तवृते सवित्र इन्द्रायाहिधे न रमन्तु आपः ।

अहरहर्थात्यक्षुरपा क्रियात्या प्रथमः सर्गः प्रासाम् ॥ १ ॥

भा०—जलों के उत्पादक तथा मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले, सूर्य के लिये ये जलसीआए नहीं करते। दिनोदिन इन जलों का सबसे प्रथम प्रवट हुआ मेघ जला कितने देश में जा जाता है यह विचारना चाहिये जवान् नद्य आदि का स्थान बहुत स्थल्य है, उत्पादक सूर्य बहुत दूर है, पृथ्वी के स्वार्थ के लिये ये मेघादि नहीं उत्पन्न होते प्रयुत प्राणियों के उपकार के हा लिये होते हैं। उसी प्रकार सत्यज्ञान वेद और सत्य जगत् के प्रवट करने वाले, सर्वोत्पादक, प्रकृति के व्यापक स्वरूप में परमाणु २ में आघात या त्यन्द उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के स्वार्थ के लिये सत्य प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु सृष्टिरूप होकर क्रीड़ा नहीं कर

रहे हैं। इन प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का प्रथम सर्ग अर्थात् प्रथम विकार जो प्रतिदिन विकृत होता चला जा रहा है भला कितने थोड़े स्थान में परिमित है।

यो वृत्राय॒ सिन्म॒त्राभ॑रिष्य॒त्प्र तं॑ जनि॑त्री वि॒तुष॑ उयाच ।

प॒थो रद॑न्तीरनु जोष॑मस्मै दि॒वेदि॑वे धुन॑यो य॒न्त्यर्थ॑म् ॥ २ ॥

भा०—जो तेजस्वी राजा इस राष्ट्र में उत्तम राष्ट्रप्रबन्ध और अत्रादि ऐश्वर्य को पुष्ट करता है यह भूमि और भूमिवासिनी प्रजा उस राजा को दो कार्यों के लिये कहती है। एक विघ्नकारी बढ़ते हुए शत्रु के हनन के लिये, दूसरे विद्वान् पुरुषों की वृद्धि के लिये। उसके पश्चात् राष्ट्र में भी दो ही कार्य प्रारम्भ होते हैं। उस राजा की प्रीति या मनोकामना के अनुकूल दिन-प्रतिदिन मार्गों को काटती हुई नदियों के समान मार्ग लांघती हुई तथा शत्रु को कंपाती हुई सेनाएं यातव्य शत्रु पर जा चढ़ती हैं।

ऊ॒र्ध्वो ह्य॒स्थाद॑ध्य॒न्तरि॑क्षेऽघा॑ वृ॒त्राय॒ प्र व॒धं ज॑भार ।

मि॒हं वसा॑न् उप॒ हीम॑दुद्रो॒त्तिग्मा॑यु॒धो अज॑य॒च्छत्रु॑मिन्द्रः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य तीक्ष्ण ग्रहार के समान तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त होकर आकाश में ऊपर ठहरता है और मेघ के लिये हननकारी विद्युत् को प्राप्त करता है। मेघ को आच्छादित करता हुआ जल को द्रवित कर देता है। उसी प्रकार शत्रुहन्ता राजा तीक्ष्ण शस्त्राघ्रों से बलवान् होकर, अन्तरिक्ष अर्थात् दोनों सेनाओं के बीच में या ऊँचे आकाश में सर्वसे ऊँचे पद या स्थान पर स्थित हो। और बढ़ते शत्रु के विनाश के लिये जात्रातकारी ग्रहार करे। शस्त्रवृष्टि करने वाले सैन्य पर अधिकार करता हुआ शत्रु को भगा दे। इस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा शत्रु पर विजय करे।

बृ॒हस्प॑ते॒ तपु॑रा॒श्चैव॑ वि॒ध्य वृ॒क॑द्वर॒सो अ॑सुर॒स्य श्री॑रान् ।

यथा॑ ज॒घन्य॑ धृ॒षता॑ पु॒रा चि॑दे॒वा ज॑हि॒ शत्रु॑म॒स्माक॑मिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जल देने वाले मेघ के विशेष जलमय तथा
छिन्न निम्न द्वारों को, तापकारी व्यापक विद्युत् से आघात करता है, उसी
प्रकार हे यद्वे सैन्य के स्वामिन् ! बलवान् तथा शस्त्रास्त्र बल के मुख्य
गृह-द्वारों पर स्थित वीर पुरुषों को बिजली के समान तापकारी अस्त्र से
ताड़ित कर । पूर्व विजेताओं के समान ही शत्रु को धर्षण करने वाले
अस्त्र-शस्त्र बल से ठीक २ प्रकार शत्रु सैन्य का हनन कर । हे शत्रुहन्तः !
तु इस प्रकार हमारे शत्रु का अवश्य विनाश किया कर ।

अथ क्षिप त्रिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रु मन्दसानो निजूर्वाः ।

लोकस्य सातौ तनयस्य भूररस्मौ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोताम् ५।१२

भा०—हे राजन् ! आकाश से बिजली के समान ऊँचे से शस्त्रास्त्र
नाचें की ओर फेंक । जिससे तु उत्तम स्तुतियुक्त होकर शत्रु को विनष्ट
कर सके । यच्चों और सन्तानों को बहुत सा ऐश्वर्य देने के लिये हमको
गा जादि पशु और उत्तम भूमियों से समृद्ध कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

प्र हि क्रतुं पृथ्व्यो य वनूथो रधस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।

इन्द्रासोमा युवमस्मौ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६॥

भा०—हे इन्द्र अर्थात् सेनापति या राजन् ! हे सोम अर्थात् ऐश्वर्य-
वन् वेदयवर्ग । आप लोग जिस काम को चाहते हो उसको और उस
ज्ञानयुक्त बुद्धिशील को प्राप्त करने के लिये उद्यम करो । आप दोनों
मित्रवर आराधना या साधना करने वाले दानशील पुरुष को चोदना
अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने हारे होकर रहो । तुम दोनों हम
सामान्य प्रजाओं की रक्षा करो और इस भय के स्थान में प्रकाश,
आलोक, करो ।

न मा तमज धमजोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।

यो मे पूणापो दृष्टो त्रिवोधापो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥

भा०—हे मनुष्यो ! जो मेरे शरीर को पुष्ट करे, जो मुझे बल भोजन,

शान्ति और सुख प्रदान करे, जो मुझे दान दे, विशेष रूप से जागृत रगो, जो ओषधिरस निकालते हुए मुझको उत्तम इन्द्रियो से युक्त करता हुआ प्राप्त हो अर्थात् जिसे बनाते २ आख, नाक, मुख आदि की शक्ति बडे, ऐसी ओषधि आदि पदार्थों का रस प्राप्त कर सेवन करो और जो ओषधि मुझे आकर्षित न करे, मुझमें उसके प्रति अभिलाषा को न जगावे, जो ओषधि मुझमें तप, सहनशक्ति, वीर्य उत्पन्न न करे और जो सुग्न उत्पन्न न करे, और जिसके बनाने में निषेध कह दें ऐसी ओषधियों को मत तैयार करो ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविद्धि मरुत्वती वृषती जेपि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् या वायु वपेणशील मेघ पर आघात करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा सेना से आक्रमण करने वाले, शान्ति को भंग करने वाली सेनाओं के बीच में बलवान्, उत्साहवान् उस शत्रु को भी मारे । उसी प्रकार हे विदुषि श्री । तू हमारे बीच में आ, प्रवेश कर और प्राण के बल से बलवती वाणी और वायु के वेग से बलवती विद्युत् के समान शत्रुओं का धर्पण करती हुई शत्रुओं का विजय कर ।

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्सु रभिर्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेपि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

भा०—हे बड़े राज्य के पालक । हमारे बीच में जो चुपा हुआ और जो हिंसा करने वाला आततायी हो उसको सब में दण्डनीय रूप में अपराधी घोषित करके तीक्ष्ण शस्त्र से बध, दण्डित कर । हे राजन् ! तू हथियारों से शत्रुओं का विजय कर । हे राजन् । तू द्रोह के कारण नी प्रजा में एक दूसरे के मारने वाले को भी पकड़ और कैद में रख ।

अस्माकेभिः सत्त्वमिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्तव्यानि ।
ज्योगंभूवन्ननुधूपितासो हृत्वा तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! हमारे शूरवीर पुरुषों से मिलकर जो २
बल पराक्रम के कार्य करने योग्य हो उनको कर । शत्रु सदा तुझसे
कापते रहें, उनको मारकर उनके धन हमें प्रदान कर ।

त वृः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रायि सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं द्विवेदिवै ॥ ११ ॥ १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मैं सुख का इच्छुक प्रजाजन तुम्हारे वीर-
पुरुषों के मन्यवल् को और विजयेच्छुक पुरुषों में श्रेष्ठ जनो को अन्न आदि
सत्कार द्वारा उपदेश करता हूँ । जिससे हम लोग समस्त वीर पुरुषों
सहित तथा उत्तम पुत्र, पौत्रादि सन्तानों से युक्त, श्रवणयोग्य ऐश्वर्य को
दिनादिन प्राप्त करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३१]

गृत्तमद गृध्रिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ ध्रुवः—१, २, ४ जगता । ३ विराट्
जगता । ५ निचृजगती । ६ त्रिष्टुप् । ७ पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं स्रक्तम् ॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रेर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पत्तन्वस्मन्स्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनस्पदः ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र । और हे वरुण । सदा साथ रहने वाले आप दोनों
आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारियों, दुष्टों को रूलाने
वाले ३६ वर्ष के ब्रह्मचारियों, और २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों सहित, हमारे
रमणसाधन यानों की रक्षा कीजिये । जिससे अन्न और यश के इच्छुक,
रूप के अनित्यार्थी और जलो या वनों में विहार करने वाले प्रजागण
पत्तियों के समान गृहों के भी ऊपर वेग से उड़ा करें ।

अथ स्मा न उद्वता सजोषसो रथं देवासो अभि वित्तु
प्राजयुन् । यदाश्वः पथाभिस्तिन्नतो रजः पृथिव्याः सानौ
अहन्त प्राणिभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रीतियुक्त होकर हमारे वेगवान् रथ को प्रजाओं के बीच ऊपर २ चलाया करो । और जो आप शीघ्रगामी हो तो आप लोग जाने योग्य गतियों से लोकों को पार करते हुए पृथिवी के उच्च प्रदेश में भी हाथों से यन्त्रों को सञ्चालित किया करें ।

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।

अनु नु स्थात्यवृकाभिर्छतिभिरथ महे सनये वाजसातय ॥ ३ ॥

भा०—वह हमारा राजा ज्ञानप्रकाश से सबका देखने वाला, मनुष्यों के बल से सब उत्तम काम करने में समर्थ होता है । वह चौर आदि से रहित रक्षादि साधनों से बड़े दान, भृति, वृत्ति आदि देने और ऐश्वर्य के स्वयं प्राप्त करने के लिये, रथ पर सवार होता है ।

उत स्य देवो भुवन्तस्य सक्षणिस्त्वष्टा आभिः सजोषा जूजुव-
द्रथम् । इच्छा भर्गो बृहद्विवोत रोदसी पुषा पुरन्विरश्विना-
वधा पती ॥ ४ ॥

भा०—और वह सर्वप्रकाशक सुखदाता परमेश्वर उत्पन्न हुए इस संसार का रचने वाला, शिल्पी के समान इसको बनाने वाला, स्तुति योग्य, अन्न के समान चाहने और शक्ति उत्पन्न करने वाला, वाणी के समान सब अर्थों का प्रकाशक, भूमि के समान सर्वाधार ऐश्वर्यवान्, सबके सेवने योग्य, बड़ी भारी कामना अर्थात् संसार रचने के प्रबल स्वरूप से युक्त, सूर्य और पृथिवी, माता और पिता, गुरु और जनक के समान समस्त लोकों का धारक पालक और ज्ञानदाता, अन्न और पृथिवी के समान पुष्टि करने वाला, गुरु की छाँ के समान और पुर के स्वामी राजा के समान ब्रह्माण्ड को व्यवस्थित रखने वाला और गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पतिपत्नी के समान जीव संसार के प्रति अति प्रेममय, और सूर्य-चन्द्र के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला, समान रूप से सब पर प्रेमयुक्त होकर, गमनशील प्रजाओं से रथ के

समान इस रमण करने योग्य देह और वेग से चलने वाले समस्त संसार को गति देने वाली महा शक्तियों से चल रहा है ।

उत त्वे देवी सु भर्गे मिथुदृशोपासान्ता जगतामपीजुवा ।

स्तुपे यद्वा पृथिवि नद्यंसा वचः रथातुश्च वयस्त्रिवया
उपस्तिरे ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों दिन और रात्रि के समान उत्तम वर्याण आर ऐश्वर्य सुख से युक्त, एक दूसरे को स्नेह से देखने वाले और एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले, परमेश्वर की कामना करने वाले, अगम प्राणियों और स्थावर ओपधि वनस्पति और पापाण आदि को उत्तम रूप से कार्य व्यवहारों में लाने वाले होकर रहो । हे पृथ्वी के समान एक दूसरे का आश्रय होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो ! मैं जो आप दोनों को नित्य नूतन वचन द्वारा उपदेश करूँ और मानस कायिक वाचिक तीनों प्रकार के बलों और बाल यौवन वार्धक्य तीनों अवस्थाओं और ऋग्, यजु, साम, तथा मन्त्र, कर्म, और उपासना इन तीनों ज्ञानों से सम्पन्न तुम दोनों को आयु को मैं सुरक्षित और परिवर्धित करता हूँ ।

उत वः शंसमुशिजामिव शस्यहिर्वृध्न्योज एकपादुत ।
ध्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया
शर्मि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग, हमारी शुभकामना करने वाले प्रेमी सज्जनों के समान, आप लोगों के उपदेश की सदा कामना धिया करें । वह परमेश्वर नेप के समान फैला हुआ, आकाश के समान अति सूक्ष्म या सब सत्तार के आश्रय में स्थित होकर सबको नियम में आदने वाला, आनन्दमय एकमात्र स्वरूप से विद्यमान, तीनों लोकों में व्यापक, नष्टाकारोषा न नी व्यापक तथा सबका उत्पादक है, वही समस्त प्राणी और प्राण बालों का पाटक अन्न प्रदान करता, वही शीघ्र

गति में चलने वाले सूर्य विद्युत् आदि लोको और पदार्थों का प्रेरक होकर बुद्धिपूर्वक समस्त कार्यों को धारता है ।

एता वो व॒श्म्युद्य॑ता यज॒त्रा अत॑क्षन्नायवो नव्य॑से सम् ।

अव॒स्यवो वाजं॑ चक्रानाः स॒प्तिर्न॑ रथ्यो अहं धी॑तिम॒श्याः ॥७।१४॥

भा०—जिस प्रकार परस्पर मिलकर काम करने वाले शिल्पी लोग, स्तुतियोग्य स्वामी के लिये उत्तम कोटि के प्रयत्नसाध्य पदार्थ बनाते हैं और वे उसमें धन अन्न और यश की इच्छा करते और ऐश्वर्य या पल अधिकार की कामना करते हैं, इसी प्रकार यज्ञ, उपासना और दान करने वाले ज्ञानी लोग, अतिस्तुत्य परमेश्वर के लिये उत्तम रूप में हृदय से उठे भावपूर्ण स्तुति वचनों को प्रकट करते हैं । वे ज्ञान की ओर ऋ३ की कामना करते हैं । हे विद्वान् पुरुषो । मैं आप लोगों के इन उत्तम वचनों को निश्चय चाहता और स्वीकार करता हूँ । रथ में लगा अश्व जिस प्रकार बड़े वेग को प्राप्त करके मार्ग व्यापता है, उसी प्रकार निश्चय से तुम जीवगण रमण योग्य देह से विद्यमान देह से देहान्तर में जाने वाले होकर नाना ऐश्वर्य और अन्नादि कर्म फल को भोगा करो ।

[३२]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, द्यावापृथिव्यो । २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा । ४, ५ राका । ६, ७ सिनीवालो । ८ लिङ्गोक्ता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । ३ निचृजगती । ४, ५ विराड् जगती । २ त्रिष्टुप् । ६ अनुष्टुप् । ७ पिराउनुष्टुप् । ८ निचृदनुष्टुप् ॥

अष्टचं सूक्तम् ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायुतो भूतमवित्री वचंसि सिर्वासतः ।
ययोरायुः प्रतुरं ते इदं पुर उपस्तुते वसुयुवो मृदो दधे ॥ १ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी जिस प्रकार जल प्रदान करती, उत्पन्न हुए ससार की रक्षा करती हुए नाना पदार्थ करते हैं, जिनमें बहुत अधिक जीवन प्राप्त होता है, वे स्तुति योग्य हैं । ऐश्वर्य का इच्छुक पुरुष

उन्ने सुख प्राप्त करता है। उसी प्रकार हे सूर्य और भूमि के समान माता पिताओं। आप दोनों सत्यधर्मानुकूल सुख की कामना करने वाले दत्त सुख पुत्र के लिये मेरा वचन ग्रहण करते हो। आप दोनों मेरी रक्षा करने हारें हावों। जिस आप दोनों की बड़ी आयु है वे आप दोनों मेरे मनक्ष प्रशंसा करने और आदर करने योग्य हैं। आप दोनों के अधीन आप के वसु, धनैश्वर्य आदि का इच्छुक और स्वामी मैं पुत्र इस आदर को धारण करूँ।

मा नो गुह्या रिपे आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छु-
नाभ्यः। मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता
मनसा तत्त्वमहे ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर। हे राजन्। हे विद्वन्। मनुष्य के लिये पाप हम किसी दिन नो पीडित न करें। तू इन दुःखदायी विपत्तियों द्वारा हमें पीडित न कर। हमारे परस्पर के मैत्रीभावों को मत दूटने दे, प्रजा में फूट मत पैदा कर। प्रत्युत हमारे उस मैत्रीभाव को तू भी जान और प्राप्त कर। सुख की इच्छा वाले चित्त से तुझसे हम याचना प्रार्थना करते हैं।
अहेलता मनसा धृष्टिमावह दुहाना धेनुं पिप्युपीमसश्चतम्।
पथाभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३॥

भा०—हे विद्वन्। हे प्रभो। तू क्रोध और अनादर के भाव से रहित मन से, ज्ञान धराने वाली उत्तम स्त्रियाओं से और उत्तम वचन से, प्रत्येक अवयव, वर्ण २, और पद २ पृथक् २ रूप से प्रकट करने वाली, स्वयं परिपुष्ट, गो के समान रस पिलाने वाली, ज्ञान, बल और चारों पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली, ध्वज योग्य वेदवाणी को शीघ्र ही स्वयं धारण कर और जन्मों को धारण करा। हे बहुतों से प्रशंसित विद्वन्। तुझ ज्ञानवान् को न सब दिन प्रेरित करता, दान आदि से बढ़ाता और प्रेम से प्राप्त होता है।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शुणोतु नः सुभगा वोचतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छ्लिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्त्यम् ॥३॥

भा०—मैं उत्तम नाम वाली, तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा से युक्त राति के समान मनोरम स्त्री की उत्तम स्तुति द्वारा प्रशंसा करूँ और उसे अपने समीप आदर से बुलाऊँ । वह हमारे वचन सुने । वह उत्तम भाग्यवती होकर स्वयं हमारे वचनों को समझे, हमारा अभिप्राय जाने । न दूटने वाली सुई से जिस प्रकार वस्त्र सिये जाते हैं उसी प्रकार वह अपनी अखण्डित बुद्धि से गृहस्थ के कर्मों को सम्पादित करती रहे अर्थात् वह उत्तम २ कर्मों का तांता लगाये रखे । और वही प्रशंसा योग्य, बहुत ऐश्वर्य देने वाले और बहुत से धनो के स्वामी वीर्यवान् पुत्रों को उत्पन्न करे ।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुपे वसूनि ।
ताभिर्नो अथ सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥

भा०—हे चांदनी के समान मनोरमे । जो उत्तम तेरे उत्तम शिल्प-कार्य और शुभ संकल्पमय मतियाँ हैं, जिनसे तू सर्वस्व देने वाले पति के लिये वसने योग्य नाना द्रव्य और अन्नादि सुख-सामग्री प्रदान करती है, उनसे हमें सदा ही उत्तम चित्त वाली होकर प्राप्त हो । हे सुभगे । उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यमयी ! तू असंख्य समृद्धियों को देती और उनमें रमती और रमाती हुई हमें प्राप्त हो ।

सिनीवालि पृथुपुक्के या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिद्द नः ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रेम-वन्धन से वरण करने वाली, पति द्वारा वरण करने योग्य ! हे बहुत सुन्दर केशपाश वाली ! जो तू विद्वान् पुरुषों के बीच में से स्वयं अपनी इच्छानुसार एक को प्राप्त होने वाली है, तू प्रवृण करने

योग्य तथा आदर सम्मान से दिये गये द्रव्य को प्रेम से स्वीकार कर ।
हे उत्तम स्त्री ! हमें उत्तम सन्तान प्रदान कर ।

या सु॒बाहुः स्व॑ङ्गुरिः सु॒पूमा॑ बहुसू॒वरी ।

तस्यै॑ वि॒श्वत्स्यै॑ ह॒विः सि॑नीवा॒त्यै जु॑होतन ॥ ७ ॥

भा०—जो स्त्री उत्तम बाहुओं वाली, उत्तम अंगुलियों वाली, सुख-
पूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली, बहुत से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ
हो, उस प्रजाओं की पाटक तथा अन्नादि के बन्धन से बरण करने वाली
स्त्री को खान-पान का सामग्री प्रदान करो ।

या गु॒ह्यया॑ सि॒नीवा॒ली या रा॒का या सर॑स्वती ।

इन्द्रा॑णिमि॒द ऊ॒तये॑ वरु॒णानी॑ स्व॒स्तये॑ ॥ ८ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—जो प्रेमवश अव्यक्त अस्फुट शब्द कहने वाली, अतिलज्जाशील,
जो अति प्रेम वाली, जो सुख देने वाली, चादनी रात्रि के समान मनोहर
और जो उत्तम ज्ञानवाली हो ऐसी ऐश्वर्य वाली और ससस्त दुःख वारने
वाली स्त्री को आत्मसुख, तृप्ति और कल्याण सुख प्राप्त करने के लिए
अपने समीप बुलाओ । ऐसी स्त्री को स्वीकार करूं । इति पञ्चदशो वर्गः ॥
इति तृतीयोऽनुवाक ॥

[३३]

उत्तर भाष्य ॥ रक्षा देवता ॥ अन्द्रः—१, ५, ६, १३, १४, १५ निचूव
निष्ठुर । ३, ४, ६, १०, ११ विराट् निष्ठुप् । ४, ८ निष्ठुप् । २, ७
पक्ति । १२. गुरिक पक्तिः ॥ पचदशचं चकन् ॥

आ ते॑ पि॒त॒म॒रुता॑ सु॒मन॑मेतु मा नृ॒ः सूर्य॑स्य सु॒न्दरी॑ यु॒योथाः ।

अ॒नि नो॑ वी॒रो ध॑र्वति क्षमेत प्र जा॒येम॑हि रुद्र प्र॒जाभिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे पुण्यो जो रक्षाने वाले ! हे वीर पुरुषो, वैश्यो तथा उत्तम
क्षत्रियो के पाटन करने वाले सेनानादक । राजन् । आचार्य । सूर्य के समान
तथा अच्छी प्रकार तब्य को देखने और अन्यो को दिखाने वाले तुझसे

उत्तम मनन योग्य सुख, ज्ञान आदि हमें प्राप्त हो । तू हमसे कभी न पृथक् हो । हमारे राष्ट्र का वीर पुरुष अश्व पर सवार होकर सब प्रकार से समर्थ हो । हमारा पुत्र ज्ञानवान् पुरुष के अधीन रहकर सब प्रकार से समर्थ बने । हम उत्तम सन्तानों से सन्तानवान् होकर प्रसिद्ध हो ।

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमां अशीय भेषजेभिः ।

व्यस्मद्वेषो वितुरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्या विपूचीः ॥ २ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के रूलाने वाले प्रभो ! राजन् । दुष्ट रोगों को भगाने वाले वैद्य ! हम लोग तेरे से दिये अति शान्तिदायक तथा रोग-नाशक ओषधियों से सौ बरसों तक जीवन का भोग करें । पदार्थों, रोगों और शत्रुजनों को हमसे दूर कर । पाप को भी सर्वथा नाश कर । नाना प्रकारों से आने और सब अंगों में व्यापने वाले दुःखदायी रोगों को विशेष रूप से नष्ट कर ।

श्रेष्ठो ज्ञातस्य रुद्र श्रियासि त्वस्तमस्तुवसां वज्रवाहो ।

पर्विणः पारमंहंसः स्वति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥

भा०—हे दुष्टों को रूलाने वाले ! दुःखों को भगाने वाले ! तू उत्पन्न हुए ससार के बीच में क्रान्ति से सबसे अधिक प्रशसायोग्य है । हे शम्भु मे सज्जित बाहु वाले पुरुष ! तू सब बल वालों में सबसे अधिक बलवान् है । हमें पाप से कत्याणपूर्वक पार कर । और सब प्रकार की पाप के कारण आने वाली अपत्तियों को दूर कर ।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहती ।

उन्नो वीर्यो अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजो शृणोमि ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों को भगाने वाले वैद्य । तुझे हम कभी क्रुद्ध न करें । हे सर्वश्रेष्ठ । हम तुझे बुरी निन्दा और समान स्पर्धा और बराबरी पर बुलाने से कभी कुपित न करें । प्रत्युत नमस्कार और आदरवचनों से सदा सत्कार करें । हमारे वीरों और पुत्रों को उत्तम रोगनाशक उपायों और

ओषधियो ते उत्तम सुख प्रदान कर । मैं तुझे व्याधिनाशकों में से सबसे
श्रेष्ठ चिकित्सक नुनता हूँ ।

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमैर्भी रुद्रं दिषीय ।

ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरघन्मनायै ॥५॥१६॥

भा०—जो पुरुष ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न आदि ओषधियों से
उत्तम सुख देता और उत्तम उपदेशों से ज्ञान प्रदान करता है, उस को
उत्तम स्तुति वचनों से मैं धारण करूँ या उसके अधीन रहूँ । वह कोमल
हृदय वाला, उत्तम ज्ञान देने वाला और उत्तम मुखाकृति से युक्त
हसमुख सर्वपालक होकर इस मननकारिणी शक्ति और सर्वज्ञान करने
में समर्थ बुद्धि के बल से हमें कष्ट और पीडा न दे । इति षोडशो वर्गः ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।

पृथीव ल्यामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु से युक्त वर्षण करने वाला मेघ खूब
उज्ज्वल अन्न से याचनाशील कृपक जन को खूब तृप्त कर देता है, उसी
प्रकार मनुष्यों का स्वामी, बलवान् पुरुष शत्रुओं को टुकड़े २ कर देने
वाले बल से ऐश्वर्य की वामना करने वाले मुक्ष राष्ट्रजन को खूब प्रसन्न
जोर हर्षित करे । सूर्य के ताप से सन्तप्त पुरुष जिस प्रकार छाया का
सेवन करता है उसी प्रकार है राजन् । मैं निष्पाप होकर सब दुष्टों को
दूर जगाने वाले तेरा सुखमय शरण का सेवन करूँ ।

अवस्थ ते रुद्र मृलयाकुर्हस्तो यो अस्मि भेषजो जतापः ।

अप्रभर्ता रपसो देव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीधाः ॥ ७ ॥

भा०—हे रुद्रों को खलाने और प्राणियों के दुख दूर करने हारे !
तेरा सबको सुख शान्ति देने हारा वह हाथ कहा है ० जो स्वयं सब रोगों
और अशुखों को दूर करत वाला, सन्तप्त पुरुष के ताप की शान्ति करने
वाले अन्न के सन्तान सुखदायक है और जो काम्य लोगों से प्राप्त होने

वाले व्याधि आदि पीड़ाओं को दूर करता है । हे सुखों की वर्षा करने
हारे बलवान् ! मुझको सदा क्षमा कर वा सब प्रकार से सहनशील, स्व-
बलवान् बना ।

प्र ब्रभ्रवै वृषभाय श्वित्नीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।

नमस्या कलमलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेपं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥

भा०—सबको पालने पोपने वाले, काम्य सुखों और ऐश्वर्यों की
वृष्टि करने वाले, उज्ज्वल कान्ति को धारने वाले उस महान् परमेश्वर की
में बड़ी भारी उत्तम स्तुति करूं । हे विद्वान् पुरुष । तू भी नमस्कारों से
उस मलों को शोषने वाले की वन्दना कर । हम उस दुःखहारी के अति-
तेजस्वी स्वरूप की स्तुति करते हैं ।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो ब्रभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योपद्रुद्रादस्यैम् ॥ ९ ॥

भा०—नाना रूपवान् पदार्थों का स्वामी, बलवान् और सबकुछ
पालक पोपक होकर, तेजोयुक्त सूर्यों और सुवर्ण आदि सम्पत्ति द्वारा
स्थायी जगत् के अंग प्रत्यंगों में सुशोभित हो रहा है । ससार के वशकर्ता
तथा भरण पोषणकारी और दुष्टों को हलाने हारे उस परमेश्वर से प्राणों
में रमण करने वाला परमानन्द तथा महान् विश्वसञ्चालन ब्रह्म कर्मा भी
नहीं पृथक् होता ।

अर्हन्विभर्षिं सायकान्ति घन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।

अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १०। १०॥

भा०—परमेश्वर सर्वपूजनीय होने से 'अर्हन्' है । वही जगत् के
अन्त करने वाले प्रलयकारी सावनों को आर अन्तरिक्ष या जल को,
वही सम्पूर्ण सम्पत् को, वही उपास्य विराट् रूप को या 'विश्वरूप'
अर्थात् जीव जगत् को वारण करता है । वही इस महान् विश्व की रक्षा
करता है । उससे अधिक बलशाली दूसरा नहीं है । इति सप्तमोऽङ्गः ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहृत्नुमुग्रम् ।

मृच्छा जरित्र रुद्र रतवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

भा०—हे विद्वन् । तू रथ पर विराजने वाले, प्रसिद्ध और ज्ञानवान्, युवा और बलवान्, सिंह के नमान शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाले, धीर शत्रुनाशक पुरुष की स्तुति कर । हे दुष्टों को हलाने वाले ! तू स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को सदा सुखी कर । तेरी सेनाएं शत्रुजन को हमन दूर ही लिज्ज निज्ज करें ।

कुमारश्चिगत्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।

भूरर्दीनार सत्पति गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार कुमार वन्दना करने योग्य तथा समीप आते हुए पिता को प्रति दिन नमस्कार करता आगे झुकता है, इसी प्रकार हे गुणों से सज्जन वाले पुरुष ! तू भी वन्दनीय और अज्ञादि सुखदायी पद्मों को दन वाले, तथा उपासनीय, सच्चे पालक परमेश्वर को आदर-पूर्वक नमस्कार किया कर । स्तुति पाकर हे परमेश्वर ! तू हमें मार्ग का उपदेश करता है और अपने इस सम्पुत्र रिधत को रोगों और दुःखों के निवारक जाप्यों और उपायों का प्रदान करता है ।

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु
यानि ननुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वशिम् ॥१३॥

भा०—नव्यो या वृष्टि करने वाले प्राणों और वायुओं के समान हे पिता पुरुषों ! जो रोगनिवारक औषधियाँ अतिशुद्ध, जो अति अधिक शक्ति से शनन करने वाली, जो सुख कल्याणजनक हैं, जिनको हमारा परिपालन प्राप्त आदि जन मननशील होकर सबसे उत्तम प्राण जानकर सेवा दें, वे हमारे और तुम्हारे लिये शान्तिकर और हलाने वाले रोगों को दूर करने वाली हैं । उनको मैं भी प्राप्त करना चाहूँ ।

परि॑ णो॒ द्वेती॑ रु॒द्रस्य॑ वृ॒ज्याः परि॑ त्वे॒षस्य॑ दु॒र्मति॑र्मही गा॒त् ।
अव॑ स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनु॒ष्व मी॑द्भ्यस्तोका॒य तन॑याय मृ॒ळ ॥१३॥

भा०—हे शान्तिजल से स्नान कराने वाले ! रुलाने वाले दुष्ट पुरुष की या दुःखकारी रोग की पीड़ा और वर्जने योग्य पीड़ाएँ और अति तीक्ष्ण शस्त्र तथा ज्वरादि की बड़ी भारी पीड़ा और दुर्मति आदि हमसे परे ही रहे । ऐश्वर्यवान् पुरुषों के पुत्रों और पौत्रों के लिये उक्त कष्टों को दूरकर और सबको सुखी कर ।

ए॒वा ब्र॑भ्रो वृषभ चे॒कितान् यथा॑ दे॒व न ह॑णी॒षे न ह॑ंसि ।

ह॒वन्श्रु॒न्नो रु॒द्रेह वो॑धि बृ॒हद्व॑दे॒म वि॒दथे॑ सु॒वीरा॑ ॥ १५ ॥ १= ॥

भा०—हे जगत् के भरण पोषण करने वाले । हे सर्वश्रेष्ठ सुगों के वर्पक । हे ज्ञान देने वाले ! जिस कारण तू न किसी का कोई पदार्थ हर, न कोप या अनादर कर, न किसी का दण्ड ववादि कर, प्रत्युत् हमारा वचन, पुकार सुनता हुआ, और उत्तम ज्ञान का श्रवण करता हुआ, हमें ज्ञान करा । हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान-प्राप्ति और धन-प्राप्ति के संग्राम आदि काम में बहुत उत्तम वचन कहे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३४]

गृत्स॒मद॑ ऋ॒षिः ॥ म॒रुतो॑ दे॒वता ॥ द्य॒न्द — १, ३, ८, १ निचृज्जगता २,
१०, ११, १२, १३ विराड्जगती । ४, ५, ६, ७, १४ जगती । १५ निचृप्
त्रिष्टुप् ॥ पचदशच सूक्तम् ॥

घा॒राव॒रा म॒रुतो॑ धृ॒षण्वो॑ज॒सो मृ॒गा न भी॑मास्तवि॒षीभि॑रर्चि॒तः ।
अ॒ग्नयो॑ न शु॒शुचा॑ना ऋ॒ज्जी॑पि॒णो भूमि॑ ध॒मन्तो॑ अ॒प गा
अ॒वृण्व॑त ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु-गण मेघ की जल-वारा को आवृत करने के, उसी प्रकार विद्वान् भी वारा अर्थात् वाणी को प्रारण करने वाले या वाणियों की प्रीति के लिये अपने अर्वाचन 'अवर' अर्थात् नव शिष्यों को

धारण करने वाले, तथा वीर पुरुष भी 'धारा' अर्थात् नायक की आज्ञा के अधीन रहने वाले हों। वीर पुरुष वायुओं के समान पराक्रम वाले हों। वे तिहों के समान भयकर, शक्तियों और सेनाओं सहित सबका आदर नत्कार करने वाले, अग्निओं के समान दीप्तियुक्त हों। वायुएँ जिस प्रकार जलों के सहित होती हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी ऋजु अर्थात् धर्मानुगुल सन्मार्ग पर स्वयं चलने और अन्यो को चलाने हारे हों। वायु-गण जिन प्रकार मेघ को वेग से दूर ले जाते हुए सूर्यरश्मियों को प्रकट करत हैं उसी प्रकार विद्वान्-जन भ्रम या सशय रूप से मेघ को दूर करते हुए, नाना वाणियों को प्रकट करें।

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभिधिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजन्ति पृश्न्याः शुक्र ऊर्ध्वनि ॥२॥

भा०—आकाश के नाना भाग किस प्रकार नक्षत्रों से जगमगाते हैं, उसी प्रकार वीर और विद्वान् पुरुष भी तेजस्वी होकर, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बला से और आच्छादन या रक्षा करने वाले शरणप्रद उपायों से अन्यो को धेतावें। विद्वान् पुरुष उत्तम अज्ञ के खाने वाले हों और वीर पुरुष 'धारा' अर्थात् सशस्त्र सेनादल के स्वामी हों। वे मेघ से उत्पन्न वृष्टि के समान विशेष रूप से चमकें। उपदेश गुरु वाणी के पवित्र गुरुपद पर स्थित होकर पुरुषों को प्रकाशवान् हृदय वाला ज्ञानी बनावे। गर्जनवाली वरसता मेघ अन्तरिक्ष के जलमय अन्तरिक्ष के भाग में वायु-गण को धमकती विजुती धारण करने वाला बनाता है, उसी प्रकार रुद्र जगत् पृथिवी के अतिदीप्तियुक्त उच्च पद स्थित होकर, तुम लोगों को सुवर्ण पदों की छाती पर धारण करने वाला करता है। तब वे सैनिक ना विभुत वाली मेघ की वर्षाओं के समान जगमगाते हैं।

अपान्ते अश्वि प्रतवो इवाजिपु नृदस्थ कौस्तुरयन्त आशुभिः ।

इदं रवाशेषा मरुतो दविध्वतः पुक्षं याधु पृषतीभिः समन्वयः ॥३॥

भा०—सग्राम आदि प्रतिस्पर्धा के कार्यों के अनन्तर जिस प्रकार वायु के समान प्रबल वेग से जाने वाले सवार लोग निरन्तर वेग से चलने वाले अश्वों को सींचते हैं, उनको जल से निहलाते हैं और जिस प्रकार वायु गण मेघों में क्षेपण आदि के कार्यों में व्यापक या विस्तृत देशों को सींचते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वेगवान् पशुओं और पुरुषों को सींचे, उनकी वृद्धि करें, और उनको पुष्ट करें । जिस प्रकार वायुगण नदी के बीच वेगवान् साधन पाल पतवार आदि से नौका को चलाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग नदी के बीच वेगवान् यानों और रथों से वेगवान् यन्त्रों से वेग से जाते और नाव तथा वेग से चलाते हैं । वायु गण जिस प्रकार सुवर्ण के समान चमकने वाले तेज से युक्त होकर मेघों और वनों को कपित करते हुए वर्षण करने वाली मेघमालाओं से सेचन करने योग्य अन्न से युक्त क्षेत्र को प्राप्त होते, उसी प्रकार हे विद्वान् व्यापारी जनो ! और हे शत्रुगण को मारने वाले वीर पुरुषो ! आप लोग भी सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख वाले, एव लोहमय शिरस्त्राण, शस्त्रास्त्र पहन कर शत्रुओं को कंपाते हुए, क्रोध से पूर्ण वीर जन और ज्ञान से युक्त विद्वान् होकर, शस्त्रवर्षी सेनाओं और दृष्ट पुष्ट अश्वों से, धाराओं से जल सेचने योग्य क्षेत्र के समान शस्त्र वर्षण करने योग्य परराष्ट्र पर प्रयाण करो ।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्ररधस ऋजिष्यासो न वयुनेषु धूर्धदः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार जीवन देने वाले वायुगण अन्न या जलवृष्टि के आवार पर समस्त लोकों को धारण करते हैं, और मिन के समान प्रिय के स्थान को धारण करते हैं, उसी प्रकार जन्यों को जीवन देने वाले विद्वान् पुरुष परस्पर सम्पर्क और प्रेम के आश्रय पर नाना प्रकार के लोकों और प्राणियों को धारण करते, सबका भार अपने पर लेते हैं, और

जहाँ मित्र के स्थान को सदा धारण करते हैं, वे सत्रके मित्र बने रहते हैं। वे ऋषि पुष्ट इन्द्रियरूपी अश्वों वाले, नाशरहित धन सम्पदा वाले, ऋजु अर्थात् उमानुकूल मार्ग को प्राप्त होते हुए, सब ज्ञानों में धुरन्धर हों।
 इन्धन्त्रभिर्धेनुभी रृषादूधभिरध्वस्मभिः पृथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
 आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन् मधोर्मदाय मरुतः सम-
 न्यवः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे धनचमाते शस्त्रों वाले वीरों ! और देदीप्यान ज्ञान से युक्त विद्वानों ! हे क्रोध से युक्त वीरों और हे ज्ञान से युक्त ज्ञानवान् पुरुषों ! हे शत्रु को मारने वाले वीरों और वायुवेग से जाने वाले विद्वान् पुरुषों ! जिन प्रकार वायुगण गर्जते अन्तरिक्षों वाले, प्रकाश करने वाले, गर्जना मध्यम बाणी वाले अविनाशी आकाश भागों में जाते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषों तुम दूध से भरे धनों वाली गौओं के समान ध्येय उपदेश करने वाली वाणियों से युक्त होकर, विनाशरहित धर्मभागों में, आकाश से जाने वाले हंसों के समान वन्यनमुक्त या परम हंसों के समान, परम मधुर आनन्दमय प्रभु के परमानन्द प्राप्ति के लिये, रात दिन, निरन्तर उच्च यत्न किया करो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

आ लो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नृणां न शंसः सर्वनानि
 गन्तन् । अध्वानिव पिप्यत धेनुमूधन्ति कर्त्ता धियं जरित्रे
 वाजपेशसम् ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञान से युक्त विद्वानों ! और क्रोध से युक्त वीर पुरुषों ! जिन प्रकार वायु गण मेघ के आधार पर जलों को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग भी ज्ञानप्रदान करने वाले विद्वान् पुरुष के आज्ञा से होकर उत्तम ज्ञानों और धनैश्वर्य को उत्पन्न करो। और रूतिवधनों के समान भद्रुष्यों को उपदेश और शासन करने वाले होकर ऐश्वर्यों और अनिषेधयोग्य पदों को प्राप्त होवो। और हे वीर पुरुषों !

तुम अश्वों की सेना को या राष्ट्र के व्यापक शक्ति को बढ़ाओ, तथा दूर देने वाले धन को लक्ष्य कर अर्थात् बहुत अधिक दूर पाने के लिये गोसम्पदा को बढ़ाओ । हे विद्वान् पुरुषो ! तुम लोग भी ज्ञानरस देने वाली वेदवाणी को वृद्धि करो, उसका मनन और पाठ करो । हे विद्वानो ! वीर पुरुषो ! आप लोग उपदेश करने वाले विद्वान् की और शत्रु की हानि करने वाले वीर पुरुष की वृद्धि के लिये विज्ञान से युक्त बुद्धि को और सुवर्णादि से युक्त धारण शक्ति को बढ़ाओ ।

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथं आपानं ब्रह्म चितयद्विवेदिने ।
इयं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनि मेघामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥

भा०—हे वीरो ! और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमें रथ में लगे बलवान् अश्व के समान वेग कार्य में बलवान् उत्तम पुरुष प्रदान करो । दिन प्रति दिन पान करने योग्य ब्रह्मज्ञान का हमें ज्ञान कराओ । स्तुतिशील पुरुषों को इच्छानुसार धन अन्नादि प्रदान करो । बलयुक्त कर्मों में कर्म करने वाले शिल्पी उत्तम वेतन, उत्तम बुद्धि, समययुक्त सुख, और परायों से न लांघने योग्य बल प्रदान करो ।

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवत्सोऽश्वात्रयेषु भग्न आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिब्वते जानाय रातहविषे महीमिषम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार दीप्तिमान् विद्युत् को वारण करने वाले वायुगण उत्तम जल देने वाले होकर क्षेत्र में अन्न डालने वाले कृषक के लिये बड़ी वृष्टि का सेचन करते और बहुत अन्न को वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित बक्षःस्थल वाले और वायु के समान वेग वाले वीर, उत्तम दानशील होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये रथों में वेगवान् साधनों को जब जोड़ते हैं, तब वे अन्नादि कर देने वाले प्रजाजन को बढ़ाने के लिये, बछड़े को दुधार गाय के समान, बड़ी भारी अन्नादि सम्पदा को उनके घरों में साँचते हैं ।

यो नो मरुतो प्रकृताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिपः ।

वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥६॥

भा०—हे वीर और विद्वान् पुरुषो ! जो मनुष्य भेड़िये या चोर के समान प्रजाघातक होकर हम प्रजाओं का शत्रु होकर हमें पकड़े या दबाये रखता है, हे राष्ट्र में बने ओर राष्ट्र में बसाने वाले, 'वसु' नाम विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमें हिसक राजा या चोर पुरुष से बचाओ और उस पर सतापजनक क्रोध आदि या सैन्यचक्र में चढ़ाई करो । हे दुष्टों को रूढ़ाने वाले ! तुम लोग प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष के हनन करने योग्य माधनो को और उन घातकों को मार गिराओ ।

विप्र तद्वो मरुतो याम चेकिते पृथ्वा यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वो निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामंदा-
भ्याः ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—आयु के समान बलवान् वीरो ! और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग का यह आश्चर्यजनक नियम-व्यवस्थापन का कार्य जाना जाता है जिससे कि आस वन्धुवर्ग और मित्रवर्ग, पृथिवी के जलादि के आश्रय मानों को, गो के स्तनमण्डल के समान दोहते हैं । जो आप का अनुत्तम स्तुतिशील विद्वान् पुरुष की निन्दा करने वाले का विनाशक होता है । हे अहिमनीय तथा दुष्टों के रूढ़ाने के पदों पर स्थित पुरुषो ! आप लोग का यह अनुत्तम कार्य अपनी आयु को क्रम से व्यतीत करने वाले आर्ष प्राणियों के आयु पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिये बाल, यौवन, पार्ष्ण्य तीनों अवस्थाओं से पार पहुँचा देने वाला होता है ।

तान्वां अरो मरुतं पृथ्वा नो विष्णोरेषस्य प्रभूधे हवामहे ।

हिरण्यवर्णान्वकुक्षान्यतस्त्रचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

भा०—हे वीरो ! और विद्वान् पुरुषो ! ज्ञानपूर्वक गन्त करने वाले, आपका शक्ति वाले, अर्थ और यश के चाहने वाले राजा के उत्तम रीति

से भरण-पोषण और प्रजापालन के कार्य में, हम लोग, अधिक सामर्थ्य वाले, सुवर्ण के समान कान्तिमान् स्वरूप वाले, यज्ञपात्रों को नियम में रखने वाले ऋत्विजों के समान राज्य के प्रजाजनो के और अपने प्राणों और वीर्य आदि को नियम में रखने और पालन करने वाले उन सब आप लोगों को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करें। और अन्न की अकांक्षा करने वाले किसान जिस प्रकार मेघ के लाने वाले मरुतो को चाहते हैं और उसमें उत्तम जल और अन्न चाहते हैं, जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान के इच्छुक जन उत्तम आराधनीय ज्ञानप्रवचन चाहते, और उसके लिये उत्तम निष्ठानों को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी गृहत् ऐश्वर्य की चाहना करते हुए प्रशसनीय धन और उत्तम कार्यसाधक बल चाहते हैं।

ते दशग्वाः प्रथमा यशमूहिरे ते नो हिन्वन्तूपसो व्युष्टिषु ।

उषा न रामीररुणैरपोरुते सहो ज्योतिषा शुचता गोअरुसा ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार उषाएं रात्रियों को उज्ज्वल प्रकाशों से दूर कर देती हैं, उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष अति देदीप्यमान बड़े ज्ञानप्रकाश से युक्त और किरणों तथा जलों से युक्त सूर्य और मेघ के समान पारन और शान्तिदायक, हमारी अन्वकारमय अर्थात् रमण-विलास आदि युक्त अज्ञानरात्रियों को दूर करते हैं, वे दश इन्द्रियों को वश करने हारे, उच्च कोटि के विद्वान् पुरुष उपासना करते और उपास्य परमेश्वर का मनन द्वारा साक्षात् ज्ञान करते हैं। वे उषाकाल के प्रादुर्भावों के अवसरों और विशेष प्रज्ञा के उदय होने के कालों में हम उत्तम रीति से बढ़ावें, अपना अनुभव हमें बतलावें।

ते क्षोणीभिररुणेभिर्ताम्रिभी रुद्रा ऋतस्य सदेनेषु वावृधुः ।

निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥

भा०—घोर गर्जन करने वाले मेघ या प्रबल वायुगण जिस प्रकार शब्दकारिणी विद्युतों और अदृश अर्थात् सब तरफ चमकने वाले प्रकाशों

मे बल के स्थानों अर्थात् मेघों में बल प्रकट करते हैं, और उत्तम रूपवान् वरण करने योग्य भस्त्र आदि सम्पदा को पुष्ट करते और प्रदान करते हैं, ठसी प्रकार उपदेश देने वाले विद्वान् गण और दुष्टों को हलाने और प्रजाओं को सद्-व्यवस्था द्वारा पाप में गिरने से रोकने वाले शासक और दार जन, शब्द करने वाली वाणियों और आज्ञाओं से, या भूमियों और ठमने रहने वाली प्रजाओं सहित, और प्रजाओं को जीवनमार्ग दर्शाने वाले उत्तम गुणों से, वेद ज्ञान, सत्य, धर्म-व्यवस्था और राष्ट्र और ऐश्वर्य के भयन अर्थात् स्थानों, विद्या के आश्रमों, राजसभाओं और शासकपदों पर वृद्धि का प्राप्त हो। वे बलवान् अश्व सैन्य से, या सवने बड़े बड़े सर्वाति-दाया बल और ज्ञान से मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञान की, और शत्रुओं पर शरों की, और प्रजाओं पर उत्तम ऐश्वर्यों और नत्यवचनों की वर्षा करत हुए, सबको जलहादजनक सुवर्ण रजतादि धातुमय, उत्तम रूप से दक्ष सुवर्णादि, तथा वरण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम शोभा, और पद का धारण करें।

ताँ रयानो महि वरूथमृतय उप धेडेना नमसा गृणीमसि ।

त्रितो न यान्पञ्च होतुनमिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार शरीर, वाणी और मन तीनों को वश करने वाला यजमान अपने काम्ययज्ञ को करने के लिये होता आदि पाच क्षीपिजा को बँठाता है, और अपने अग्नि मुख बैठे हुआ को यज्ञरूप रथ के चक्र के समान यज्ञ-निर्वाह के लिये सज्जालित या प्रेरित करता है, और जिस प्रकार उपर्युक्त तीनों पर सयम करने वाला पुरुष शरीर को धारण करने वाले पाच प्राणों को अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने और रक्षण, गति, व्यापार आदि करने के लिये अपने अर्थात् प्राणों को करके रखे या चरने लगे चक्रों के समान यथेष्ट पुनाता और चलाता है, उसी प्रकार धन, तेज और मन तीनों प्रकार के बलों का प्राप्त होकर जिन

यया र॒ध्रं प॒रय॒थात्यं॑हो यया नि॒दो मुञ्च॑थ वन्दि॒तार॑म् ।

अ॒र्वा॒क्षी॒ सा म॑रु॒तो या व॑ ऊ॒तिरो॒ षु वा॒श्रेव॑ सु॒म॒तिर्जि॑गातु १५।२१

भा०—हे विद्वान् लोगो ! जो आप लोगों की रक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति और सबको तृप और प्रसन्न करने की शक्ति है, जिसमें साधक और आराधक को पाप से पार कर देने में समर्थ होते हो, और जिसमें समस्त निन्दनीय कार्यों को दूर करते, या निन्दक जन से प्रार्थी पुरुष को मुक्त करते हो, अर्थात् उसको निन्दकों के जाल में नहीं पड़ने देते, वह आप लोगों की ज्ञान और मन्त्रमयी पालनकारिणी शक्ति हमें प्राप्त हो, और आप की उत्तम ज्ञानमयी प्रज्ञा बटुड़े के प्रति हमारी भी के समान प्रेमवती होकर, हमें भली प्रकार सभी कार्यों में प्राप्त हो ।
इत्येकविंशो वर्गः ॥

[效]

गृह्यसूत्रम् ॥ अथान्नभक्षितम् ॥ दण्डः—१, ४, ३, ७, २, १०, १२, १६,
१५ निचृत् त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् । २, ३, न भक्ति
पक्ति । ५ हाराट् पक्तिः ॥ पञ्चदशार्धं सक्तम् ॥

उपे॑मसृ॒द्धिं वा॒ज्र॒युर्वच॑स्यां च॒नो॑ द॒धीत॑ न॒त्राया॑ गि॒रौ मे॑ ।

अपां नपादाशुहेमां कुवित्स सुपेशसस्करति गोपिषुद्धि ॥ १ ॥

भा०—जो पुन्य अन्न को प्राप्त करना चाहता है वह जिस प्रकार

जल को उत्पन्न और प्राप्त करने की क्रिया को करता, और जल को उपाय द्वारा प्राप्त करना है, और वह पुरुष नदी के जल को वश करके अन्न को गूँथ करता और प्राप्त करता है, उसी प्रकार ज्ञान और बल की इच्छा करने वाला पुरुष वेदवाणी और गुरुप्रवचन के योग्य अध्ययन-अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया का अभ्यास करे। और वह उपदेश मुक्त गुरु का प्रिय हितैषी होकर मेरी वाणियों के उपदेश को धारण करे। जिस प्रकार अज्ञातों के रूपक जलों के न गिरने देता हुआ शीघ्र क्रिया करता हुआ अज्ञादि की कृपि को बहुत उत्तम बना लेता है, उसका सेवन भी कर लेता है, उसी प्रकार अपने प्राणों और चीयों को न पतित होने देने वाला बर्बरक्षक महाचारी शीघ्र ही ज्ञान और बल की वृद्धि करता हुआ, बहुत उत्तम ज्ञान और शारीरिक बल को प्राप्त करता है, और उसका वह उत्तम रीति से सेवन भी करता है।

इमं स्वस्मं हृद् आ सुतष्टुं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।

अपां नपादसुर्यस्य मद्भा विश्वान्युर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥

भा०—समस्त ससार या चलाने वाला, उसने व्यापक और उसका आसी परमेश्वर, जलों के बीच पादरहित नाव के समान सबको पार उतारने वाला, अपनी महाप्राण शक्ति के महान् सामर्थ्य से समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों और प्राणियों और ससार के समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है। वह ही इस महान् प्राणबल को बहुत रूपों में जानता, धारता और वश करता है। उसी परमेश्वर के वर्णन करने के लिये हम लोग इस अपने हृदय में स्थित सुप्रजनक और उत्तम रीति से सु-विचारित विचार को वाणी द्वारा प्रकट करें।

समन्था यन्तुर्प यन्त्यन्याः संस्तान्मूर्ध्व नृधः पृणन्ति ।

तमु शुचिं शुच्यो दीष्टिवास्तसुवा नपातुं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कुछ नदियाएँ एक साथ मिलकर चलती हैं, और

दूसरी नदियां अकेली ही चलती हैं, और वे सब मिलकर एक महान् समुद्र को पूरती हैं, और सब उसके चारों ओर से ननियें आ मिलतीं और चारों ओर उड़ी रहती हैं। उसी प्रकार कई प्रार्थना और स्तुतिशोक प्रजाएँ एक साथ मिलकर प्रभु की उपासना करती हैं और कई अलग २ दूसरी श्रद्धायुक्त प्रजाएँ वे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को स्तुतिया से पूर्ण करती हैं, उसकी महिमा बढ़ाती हैं। तथा उस अति पवित्र, देदीप्यमान, प्रकृति के परमाणुओं, लोको और प्रजाओं के बीच स्वयं नष्ट न होने वाले परमेश्वर को, पवित्र चित्त होकर उपासव प्रजाएँ उसके आश्रय पर स्थित हों, उसकी उपासना करें। इसी प्रकार गुणों से समृद्ध स्त्रिया गुणों में समान पतियों को पूर्ण करें। पुरुष स्वयं आधे हैं स्त्रिया मिलकर उसको पूर्ण करती हैं। स्त्रिया दो प्रकार से प्राप्त होती है। कुछ स्त्रिया स्वयं इच्छापूर्वक स्वयंवर कर लेती हैं। दूसरी स्त्रिया पिता आदि द्वारा पतियों को प्राप्त होती है दोनों दशाओं में वे मान आदर सहित, एवं समान कोटि के विद्या बल गुणों से अनुरूप पतियों को ही वे प्राप्त हों। पुरुष भी शुचि अर्थात् पवित्र, धर्मात्मा, ईमानदार, उज्ज्वल रूप यश वाले, वीर्य और प्राणों का नाश न करने वाले ब्रह्मचारी, और जानों के पालक हों। ऐसे पुरुषों को ही स्त्रिया सब प्रकार से अपना आश्रय बनाया करें।

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मज्यमानाः परि युन्त्यापः ।

सशुक्रेभिः शिक्रेभी रेवदस्मे दीदायानिदमो धृतनिर्णिगृष्टु ॥३॥

भा०—शुद्धजल बाष्प जिस प्रकार मंत्र में स्थित विद्युत् को प्राप्त होते हैं, और विद्युत् रूप जग्नि काष्ठों के बिना भी स्वयं प्रकाशमान, तथा दीप्तियुक्त स्वल्प बाला होकर मेचन करने वाले जलों सहित चमकता है, उसी प्रकार आस पतियों को प्राप्त करने वाली, विनयशील, तथा अच्छी प्रकार अपने देहों पर अलङ्कार वारण करती हुई और रजोवर्मादि के अनन्तर स्नानादि से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर स्त्रिया, उन अपने ब्रह्म

पुरुषों को प्राप्त हों। वे पति दाराओं में सेचन करने योग्य वीर्य को पुष्ट करने हारे, परिपक्व-वीर्यवान् सेचन करने योग्य शुद्ध वीर्यों सहित बिना किसी उपायों के ही स्वभाव से तेजस्वी होकर हमारे बीच ऐश्वर्ययुक्त होकर बसकें और हमें भी उज्ज्वल करें।

अस्मै तिस्रो अंग्यथया नारीर्देवाय देवीर्दिधिपन्त्यमम् ।

कृता इवोप हि प्रसर्त्तुं अप्सु स प्रीपुषं घयति पूर्वसूनाम् ॥५॥२२॥

भा०—इस व्यथान न देने योग्य दिव्य पुरुष के लिये, तीन प्रकार की दिव्य गुणों वाली नारियाँ अन्न अर्थात् उरभोग्य पदार्थों को धारण करती हैं, वे विवाहेच्छु नर स्त्रियाँ कृतार्थ अर्थात् पूर्व विवाहित अन्य स्त्रियों के समान ही समान गुणों के पुरुषों को प्राप्त हो। वह नर उत्पन्न सन्तान को पहले सन्तान उत्पन्न कर चुकी हो ऐसी धारियों के भी पुष्टिकारक दूध वा पान करे। कामशास्त्र की दृष्टि से भिन्न २ शक्तियों के आधार पर पुरुषों तथा स्त्रियों के तीन २ प्रकार हैं। उन्हीं तीन प्रकारों का यहाँ वर्णन है। इति डाविशो वर्ग ॥

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रोहि रिपः सम्पृचः पाहि सूरान् ।

आमासुं पुरुं पुरो प्रप्रमृष्यं नारीतयो वि नश्नानृतानि ॥ ६ ॥

भा०—इस गृहस्थ में अश्व के समान बलवान् सन्तान का जन्म हो, और उसको उत्तम सुख प्राप्त हो। हे गृहपति नृद्रोह करने वाले हिंसक पुरुष से सत्संग करन योग्य उत्तम विद्वान् पुरुषों की रक्षा कर किन्ना। पुरियों या वीर्यों ने राजा के समान नृभी नारियों में और गृहस्वरूप किलों में सर्वोत्पृष्ट होकर रह। क्योंकि शत्रुजन जिसे गिरा न सकें ऐसे दृढ़ घर का शत्रु भी नाश नहीं कर सकते। इस घर में अस्तव्याचरण और अस्तव्यभाषादि पुरे कार्य न हुआ करें।

स प्रा दम सुदुष्टा प्रस्यं धेनुः स्वधां पीषाय सुभ्वन्नमत्ति ।

सो अषा नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदयाय विधत्ते वि भाति ॥ ७ ॥

भा०—जिस गृहस्थ के अपने घर में उत्तम दूध दोहने वाली गो हो वह गोदुग्ध को पीता है, और उत्तम तथा पाक आदि सस्कारों से संस्कृत अन्न का भोग करता है। वह दुग्ध का नाश न करने वाला पुरुष दूर की धाराओं में बल की वृद्धि करता हुआ, विशेष सेवाकार्य करने वाले, वास योग्य धन देने योग्य भृत्यादि के लिये भी विशेष रूप से अच्छा प्रतीत होता है, उनको भी प्रिय मालूम होता है।

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।

वया इदं न्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजामिः ॥ ८ ॥

भा०—जो गृहस्थ पुरुष दुग्ध आदि पेय पदार्थों के होते सत्य निष्ठ होता और निरन्तर विद्वानों से उपदेश किये गए पवित्र कर्तव्यों और तेजादि से अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, उसके ही अन्य उत्पन्न होने वाली सन्तानें शाखाओं के समान फैलती हैं और उत्तम सन्ततियाँ सहित इसके गृह में नाना प्रकार की वेलें तथा बगीचे आदि होते हैं।

श्रुपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।

तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति युद्धीः ॥ ९ ॥

भा०—अपने शरीरों में स्थित प्राणों और वीर्यों को विनष्ट न होने देने वाले वीर्यपालक ब्रह्मचारी गृहपति, उपस्थेन्द्रिय का सयम करें। वे कुटिल प्रवृत्तियों के ऊपर होकर, उनका त्याग करके विशेष तेज को धारण करें। बड़े उत्तम स्वभाव और गुणों वाली सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण और रूप वाली सन्तानें उस प्रकार के ब्रह्मचारियों के सर्वोत्तम बड़े भारी सामर्थ्य को स्वयं भी धारण करती हुई उन्हें प्राप्त हों।

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृग्पां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।

हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार सुवर्ण के देने वाले या हितकारी आर जानन्द-दायक रमणीय पदार्थ देने वाले दानी होते हैं वे इस प्रजाजन को अन्न

प्रदान करते हैं, और जैसे हित और रमणीय सुख देने वाले अग्नि, जल, मेघ, विद्युत् आदि पदार्थ इस प्रत्यक्ष बसे लोक को अक्षय अन्नादि भोग्य पदार्थ देते हैं, और वे तेजोमय सर्वाश्रय सूर्य के आश्रय पर स्थित रहकर यह दान का कार्य करते हैं। वह सूर्य भी स्वयं सुवर्ण के समान कान्ति वाला, तेजःस्वरूप, जलों को किरणों द्वारा आकाश में बाधने वाला, वह ही सुवर्ण के समान वर्ण वाला है, उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी गृहपति भी हो। वह हित रमणीय स्वरूप हो, उत्तम रमणीय पदार्थों के देने वाला या साम्य दृष्टि हो, प्राणों का रक्षक तेजस्वी हो। सुवर्णादि पृथ्वी ने पूर्ण गृह में रहकर प्रकट हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नष्टुरपाम् ।

यमिन्धने युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमघ्नमस्य ॥ ११ ॥

भा०—प्राणों और वीर्यों का न विनाश करने वाले ब्रह्मचारी का जल जार सुख शोभा, और नाम स्थिर होकर बढ़ता है। जिस तेजस्वी स्वरूप को इस प्रकार से सद्गुण और भी अधिक प्रदीप्त करते हैं उसका पाल्य पदार्थ अग्नि के समान ही घृत से युक्त बल तथा पुष्टिकारक हो।

अस्म वहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः । सं सानु मार्जिम दिधिषामि विलम्बेर्दधाम्यन्नेः परि वन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥

भा०—हम लोग बहुतों के बीच में सबका रक्षा करने वाले, सबके मित्र, इस अनु की दानों, उत्तम सत्सगों, और अज्ञों से, और नमस्कार द्वारा सेवा करें। गिरि शिखर के समान उन्नत उत्तम पद को अच्छी प्रकार आरोपित करें। धारने योग्य वाद्यों से अग्नि के समान इसको अज्ञों से हुए पर और अर्चना करने योग्य गुणों और सत्कारों और उत्तम वचनों से उसका स्तुति और अभिवादन करें।

स ई वृषाजयन्तासु गर्भं स ई शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।

सो अथा नपादनमिभलातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विदेव ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वर्षा करने वाला सूर्य उन दिशाओं में 'गर्भ' अर्थात् जल में पूर्ण वायुमण्डल को उत्पन्न करता है, और वही छोटे बालक के समान समुद्रादि से रस का पान करता है, उसको समस्त दिशाएं अपना २ जलरस पिलाती हैं, वह सूर्य वर्षाजलों का उत्पादक होकर, क्षीण तेज न होकर, मानों अग्नि और विष्णु का प्रकाशरूप में इस जगत् में व्यापता है, इसी प्रकार वे वीर्यमेचक पुरुष भी उन वरण करने वाली सहधर्मचारिणी द्वाराओं में गर्भ को उत्पन्न करें। वे भी प्रथम बालक रूप में दुग्ध पान करते रहे हैं। उन्हें उनकी माताएं, ब्रह्मदेव को गौओं के समान, दुग्ध रस पिलाती रही हैं। वे फिर पोत्र आदि होकर, अक्षीण तेज वाले होकर, दूसरे ० देहों में उस लोक में आते जाते रहे हैं।

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीष्टिवांसम् ।

आपो नप्त्रे वृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्क्रैः परिदीयन्ति युद्धीः ॥२४॥

भा०—सबसे उत्कृष्ट पद पर स्थित, अक्षय और अमोघ वीर्यों से सय दिनों सूर्य के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुष को स्वयवरण करने वाली सहधर्मिणी जलस्वभाव होकर, उत्तम रूपों से सुसज्जित होकर, आप से आप गुणों में उत्कृष्ट महान् होकर प्राप्त करती है। विवाह बधन से बांधने वाले उसके लिये वृतयुक्त पुष्टिकारक अन्न को प्राप्त कराती है।

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मधवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२५॥२४॥

भा०—हे अग्रणी। नायक। ज्ञानवान् पुरुष। जनो के कल्याण करने और सन्तान को उत्पन्न करने के लिये उत्तम भूमि को प्राप्त होने वाले कृषक के समान और ऐश्वर्यवान्, गुणवान् पुत्रों को प्राप्त करने के लिये उत्तम पापनिवृत्ति के व्रत ब्रह्मचर्यादि को प्राप्त हुए तुझको जो विद्वान्, गुरु आदि पालने और ज्ञान से पूर्ण करते हैं, वह तेरे लिये वही कल्याण और सुव्यजनक है। हम उत्तम पुत्रों से युक्त गृहस्थ ब्रह्म

नी ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुझे बहुत उत्तम उपदेश करें ।
इति ऋग्विंशो वर्गः ॥

[३६]

गृ० नद ऋषिः ॥ १ इन्द्रो मधुश्च । २ भरुनो माधवश्च । ३ त्वष्टा रुक्मश्च । ४
अग्निः शुचिश्च । ५ इन्द्रो नभश्च । ६ नित्रावरुणौ नभस्यश्च देवताः ॥ छन्दः—१,
४ स्वात् त्रिष्टुप् । ५, ६ नुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३ जगतां ॥ पठ्य च सूक्तम् ॥

तुभ्यं हिन्वितानो वसिष्ठ गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पित्रेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक ! शासन किया जाता हुआ और बढ़ता
हुआ प्रजाजन तेरी वृद्धि के लिये ही भूमियों को बसावे, उनमें बसे ।
मेता लोग प्रजा के रक्षक मेघों के समान जलधाराओं और झरनों के
बहाने वाले पर्वतों द्वारा जलों को प्राप्त करें । हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! जो
तू सबसे प्रथम, मुख्य रूप होकर सबका स्वामी है वह तू उत्तम रीति
से प्रदान किये वा उः हिम्सो में किये गये पष्ठाश कर को उत्तम रीति से
या वेदाज्ञा के अनुसार कर लेने वाले अधिकारी या कर देने वाले प्रजा-
जन से प्राप्त करके, ऐश्वर्य को ओषधिरस के समान प्राप्त कर, उपभोग
कर, और राष्ट्र का पालन कर ।

यज्ञः सम्मिश्रता पृषतीभिर्त्र्यष्टिभिर्यामिञ्जुधासो अत्रिषु प्रिया
उत । प्रासता धूर्हिर्भरतस्य सूनवः प्रोत्रादा सोमं पिवता दिवो
नरः ॥ २ ॥

भा०—जित प्रकार समस्त तत्सार का भरण पोषण करने वाले सूर्य
तत्त्व वायुगण, सबको पवित्र करने वाले प्रकाश के बल से जल का
पान करते हैं, और वे यज्ञों से अच्छी प्रकार मिलकर भूमि को सेचन
करने वाले । जलधाराओं और वेग से जाने वाली विजुलियों से अपने जाने
के उत्तरिदामार्ग में शोभायमान होते हुए, चाहने वाले रूपको के निमित्त

उनके अतिप्रिय होते हैं, इसी प्रकार हे उत्तम पुरुषो ! हे नायको ! आप लोग भी सबका धारण पोषण करने वाले राष्ट्र के पति राजा के पुर के समान होकर राष्ट्र के सञ्चालक होओ । आप लोग उत्तम आमन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर साधिकार विराज कर, पवित्र व्यवहार से ऐश्वर्य का उपभोग करो, और ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करो । और आप लोग दान, मान, सत्कार, परम्पर सत्सगों से अच्छी प्रकार मिल जुलकर, नाना शस्त्रवर्षिणी और शत्रुनाश करने वाली सेनाओं सहित अति शोभायुक्त होकर और प्रतिष्ठा सूचक चिन्हों, पदकों के बीच अतिप्रिय होकर रहो ।

अमेव नः सुहृदा आ हि गन्तव्यं नि बृहर्षि सदतन्त्रा रणिष्ठन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्ट्रदेवेभिर्जनिभिः सुमर्दणः ॥ ३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम नाम, ख्याति और प्रशंसा से युक्त होकर अपने आश्रयगृह के समान निर्भय होकर, हमारे पास आओ । उत्तम शासन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर अ यश और उपदेश रूप से विराजो, और उत्तम उपदेश, आज्ञाएं प्रदान करो । हे सूर्य के समान तेजस्विन् । अज्ञान के विच्छेदक । तू भी सुय और उत्तम गुणवान् सहयोगी जनो, और उत्पादक विदुषी स्त्रिया, और व्यवहार कुशल विद्वान् तेजस्वी पुरुषों सहित, अन्धों का सेवन करता हुआ तृप्त, मृगमन होकर रह ।

आ ब्रूहि देवा इह विप्र यन्नि चोशन्हीतुर्नि पदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्य मधु पिवाशीघ्रात्तव भागस्य
तृष्णुहि ॥ ४ ॥

भा०—हे मेवाविन ! हे उत्तम २ पुन, यश, और ऐश्वर्य यदि पदार्थों की कामनाओं को करने हारे । हे दानशील ! तू सुय देने वाले उत्तम गुणों को धारण कर । और उनका सम्भोग कर । तू तीन योनियों

ज्यारू माता, पिता, और आचार्य उनकी शिक्षा से शिक्षित होकर मातृ-
मान्, पितृमान्, और आचार्यवान् हो । अपने से उत्कृष्ट पद पर स्थित
माननीय पुरुष के समीप जा, उसके सत्संग से ओपधिरसों से युक्त मधु
रु नमन भव-रोगहारी उत्तम ज्ञानरूप मधुर उपदेश का पान कर,
आर अग्नि के धरने के स्थान चूहे से जिस प्रकार अन्न पकाकर उससे
नृस होने ह उसी प्रकार प्रति अग से चुकने वाले शिष्य को धारण करने
वाले आचार्य ने तेरे अपने सेवन योग्य मेवा सुपूषा, और ज्ञानाश से तू
नृस हो । (२) इसी प्रकार राजा विविध ऐश्वर्यों से प्रजा-राष्ट्र को भरने
में विप्र ह । वह विजयेच्छुक वीरों को आज्ञा दे, वेतनादि दे । शत्रु, मित्र,
उदात्ताना के ऊपर विराजे । चढ़ कर आने वाले का मुकाबला करे ।
पूर्व रूप मधुर फल को भोगे या ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करे । अग्नि
रु समान तेजस्वी तथा सेना को धारण करने वाले वीर पुरुष ने अपना
गौरव प्राप्त करके नृस हो ।

एव स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह श्रोजः प्रदिवि व्राद्धोर्दितः ।

तुभ्यं तुतो मध्वन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य व्राह्मणादा तृपत्पिव ॥५॥

भा०—उत्पन्न पुत्र जिस प्रकार अपने शरीर से उत्पन्न होता, धनैश्वर्य
या बढ़ाने वाला, बल पराक्रम स्वरूप होकर माता पिता के बाहुओं में या
गाद में लिया जाता है, वह पिता के द्वारा पालित पोषित होता है, उसी
प्रकार है उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् । यह पुत्र के समान अनिषेक द्वारा
प्राप्त प्रजाजन तेरे शरीर के समान विस्तृत राष्ट्र से उत्पन्न होकर तेरे धनै-
श्वर्य को बढ़ाने वाला है । वह शत्रुओं का पराजय करने वाला बल
पराक्रम स्वरूप होकर सब दिनों तेरी बाहुओं पर पालनीय पुत्र के समान
ले रखा जाता है । वह प्रजाजन माता द्वारा जाने गये पुत्र के समान तेरी
रा उड़ि के लिये हो, और तेरी ही बुद्धि के लिये इसका सब प्रकार भरण
पालन किया जाय । और तू ही इसके 'मम' अर्थात् धन-और-विज्ञान से

उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य और विज्ञान के स्वामी पुरुषवर्ग से इसका पालन और उपभोग कर, ताकि यह प्रजाजन तृप्त सन्तुष्ट होकर रहे ।

जुषेथौ यज्ञं योधतुं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्या मनु ।
अच्छा राजाना नम पत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु
॥ ६ ॥ २५ ॥ ७ ॥

भा०—हे उत्तम गुणों से चमकने वाले राजा रानी के समान गी पुरुषो ! आप लोग मेरे ग्रहण करने योग्य ज्ञान के सत्सग योग्य दान का प्रेम से सेवन किया करो । जब ज्ञान का देने वाला विद्वान् अच्छी प्रकार विराजे तब आप दोनों विनयपूर्वक उसके समक्ष आकर उत्तम प्रवचन करने वाले विद्वान् से पूर्व विद्वानों से सेवन की और प्रवचन की गयी वेदवाणियों का अच्छी प्रकार ज्ञान करो । और शान्तिदायक, अन्न के समान मधुर, अप्रकट, शिष्यों के योग्य 'मनु' अर्थात् ब्रह्मज्ञान का अच्छी प्रकार ग्रहण करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[३०]

गृत्सनद ऋषिः ॥ १—४ द्रविणोदाः ५ अश्विनो । ६ अश्विन देवता ।

छन्द — १, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ३ त्रिष्टुप् जगती ४, ६ मृगि

त्रिष्टुप् ॥ पठ्य च सूक्तम् ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णा वप्यासिचम् ।

तस्मा एतं भरत तदशो दृदिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिबे ऋतुभिः ।

भा०—हे धनों और ज्ञानों के देने हारे ! तू दानशील से प्रीति से दिये दान से अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करके तृप्त और आनन्दित हुआ कर । हे अपना हिमा न चाहने वाले और प्रजा के पीड़नादि भी न चाहने वाले प्रजास्य पुरुषो ! वह ज्ञानैश्वर्य का देने वाला पुरुष, धन को

०१।१०३।३] ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयं मण्डलम्

साधने वाला अग्नि के समान पूर्ण आसंचन या पुष्टि और दान चाहता है।
 है प्रजाजनो। उसको उसके अभिलषित कामना योग्य पदार्थ प्राप्त
 करके सब अधिकार देने वाले विद्वान् से ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करके
 राजसभा के सदस्यों सहित ऋतुओंनुसार ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का
 पान, उपभोग और पालन कर।
 यमु पूर्वमहं तमिदं हवे सेटु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते।
 अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्य मधु पोत्रात्सोमै द्रविणोदः पिबं
 सतभिः ॥ २ ॥

भा०—जिसको मैं प्रजाजन पहले उत्तम रूप में स्वीकार करूं उसको
 यह सब घर आदि प्रदान करूँ। यह ही दानशील पुरुष स्तुति करने
 योग्य है। जो प्रसिद्ध रूप में ऐश्वर्यवान् या पालक बनता है। हे धन
 और ज्ञान दान हार। अपना और प्रजा का विनाश न चाहने वाले प्रजा-
 जना में उत्तम रूप में प्रत्युत और नियम किये, अभिषिक्त राजपद के
 योग्य, तथा मधु के समान प्रजागण से संगृहीत ऐश्वर्य और अन्नादि रस
 का, राजसभा के सदस्यों सहित, पवित्र प्रतिष्ठ पुरुष के ग्रहण करके
 उसका उपभोग और पालन कर।

मयन्तु ते वक्ष्यो मेभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळ्यस्वा वनस्पते।
 प्रागृयां पृथो अभिगृयां त्वं नेष्ट्रात्सोमै द्रविणोदः पिबं
 सतभिः ॥ २ ॥

भा०—हे वना और सन्ध गणों का पालन करने हारे! तेरे राज्य के
 कार्यन्तार के उठाने वाले पार्यक्ता लोग हृदय में राजा और प्रजा दोनों
 का प्रतिष्ठ को धारण करें। जिन से तू प्रजाओं का नाश न करता हुआ
 आसन युक्त हो लके। तू इस प्रकार से बराबर दद हो। हे शत्रुओं के
 पराज करने में तनय। तू तपस्से नेत्र करके और सब प्रकार से उद्य

करके, राज्य-कार्यभार को अपने ऊपर उठाकर, नेता या नायक के रूप में ज्ञानवान् राजसभा के सदस्यों सहित ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करे।

अपाद्भोत्रादुत प्रोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।

तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्य द्रविणोदाः पिवतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र को ऐश्वर्य देने और राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं के वेतन देने और राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करने वाला पुरुष, दान देने और कर आदि लेने के कार्य से राष्ट्र का भोग और पालन करे। कण्टकशोषण और धर्म-पालन की पवित्र व्यवस्था से स्वयं सुप्रसन्न रहे अन्यो को प्रमत्त करे। और नायक बनकर इष्ट पदार्थ प्राप्त कराकर, हितकारी अन्न आदि पदार्थ का स्नेह से सेवन करे। ऐश्वर्य और ज्ञान के देने वालों का प्रेमपात्र होकर वह चतुर्थांश का, जो कि सबसे अधिक शुद्ध और सदा बने रहने वाला है, और जो राजा का पालन और त्राण कर सकने के योग्य है, उस चतुर्थ अंश का स्वयं भोग करे।

अर्वाञ्चमथ यय्य नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वा विमोचनम् ।

पृङ्क्तं दृवीषि मधुना हि कै गतमथा सोमं पिवतं वाजिनी-
वसू ॥ ५ ॥

भा०—हे 'वाज' अर्थात् वेग, बल, ऐश्वर्य और सम्राज्य आदि करने की शक्ति या सेना को बसाने वाले स्वामी जनों। आप दोनों जान वेगवान् अर्थात् सहित जाने वाले, दूर देश में जाने और पहुँचा देने वाले, नायक पुरुषों को ढो ले जाने वाले उत्तम वेगवान् रथ को जोड़ा करो इसमें ही आप दोनों का विविध प्रकार के कष्टों से मुक्त होना सम्भव है। आप दोनों लेने देने योग्य पदार्थों और अन्नों को मधुर पदार्थ से संयुक्त करो। इसीलिये इस प्रकार सुगन्ध स्थान को जाया करो। और इस प्रकार उत्तम ओषधि रस और ऐश्वर्य का सेवन करो।

जोष्रेसमिधं जोप्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
 विश्वेभिर्विष्वा ऋतुना वसो मह उशन्देवा उशतः पायया
 हविः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् अग्रणी नायक ! जिस प्रकार अग्नि समिधा
 अर्धातु काष्ठ को गुप्त ले लेता, उसको जला देता है, उसी प्रकार तू भी
 उत्तम अग्नि या यान्ति के उत्पादक साधन या क्रिया का सेवन कर ।
 अग्नि जिन प्रकार पृत आदि का आहुति चाहता है उसी प्रकार तू भी
 आशुपूर्वक सत्कार और दान को स्वीकार कर । तू जनों के हितकारी
 उत्तम अज्ञ और वेदज्ञान का सेवन कर । और तू उत्तम स्तुतिवचन का
 सेवन कर । हे प्रजा के बसाने वाले ! तू समस्त गुणों और व्यवहारों की
 कामना करता हुआ, सब अधिकारियों सहित, कामना करने वाले, तथा
 अपने वे गुणों और अनुभवों में बड़ों को ऋतु अनुसार उत्तम अज्ञादि
 पद्यों या उपनोग करा । इति प्रथमो वर्गः ॥

स्वयं उस जगत् को अपनी रक्षा में स्वीकार करके उसे कुशल-क्षेम युक्त दशा में रखता है ।

विश्वस्य हि श्रुष्ट्यै देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृशा अयं चिद्वातो रमते परिजमन् ॥ २ ॥

भा०—सबसे ऊपर विराजने वाला सर्वाध्यक्ष परमेश्वर समस्त जगत् के शीघ्र सञ्चालन और सुख के लिये, अति विस्तृत हाथों वाला होकर, मानो अपनी बाहुओं को दूर २ तक फैला रहा है । इसी कारण जल-धाराएं उसके शासन में रहकर सर्वत्र अति शुद्ध करने वाले होकर सब ओर क्रीड़ा कर रहे हैं, और उसी के शासन में यह गतिमान् गायु भी आकाश में क्रीड़ा कर रहा है ।

आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।

अह्यर्षूणां चिन्त्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर जिन पुरुषों को व्यापनशील सब प्रकार से शुद्ध उपायों से मुक्त कर देता है, उनमें से निश्चय से अपने समीप आने आले पुरुष को आत्मा को खूब आनन्दित और हर्षित करता है । और साक्षात् मेघ के समान दयालु आनन्दघन प्रभु स्वरूप को प्राप्त होने वाले पुरुषों की प्रभु को प्राप्त करने की इच्छा को भी यह नियम से पूर्ण करता है । और उस सर्वोत्पादक प्रभु के व्रत उपासना आदि अनुष्ठान करने के अनन्तर ही सब बन्धनों से छुड़ाने वाली मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है ।

पुनः समन्वद्विततं वयन्ती मध्या कर्तुर्ग्यथाच्छ्रुम धीरः ।

उत्संहायास्थाद्वृयत्तूरद्वररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

भा०—विस्तृत जगत् को व्यापने वाला प्रकृति वार २ इस विस्तृत जगत् को अच्छी प्रकार व्यापती है, और जगत् को सृजती और महागती है, और उस जगत् के बीच वारण करने में समर्थ परमेश्वर शक्ति से करने योग्य कर्मचाल को सब प्रकार से वारण किये रहता है । ४६

प्रलयान्धकार को दूर करके समस्त प्रकृतिजन्य संसार के ऊपर शासक रूप से स्थित रहता है। वही ऋतुओं को भी विविध विभागों में बांटता और धारण करता है। ही सयका प्रकाशक और सर्वोत्पादक तथा भक्ति अधिक ज्ञानवान् होकर सर्वत्र व्यापक होकर रहता है।

नानाकौंसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।

उपेष्टु माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिपितं सवित्रा ॥५॥२॥

भा०—जिस प्रकार द्वारों में प्रवेश करने वाला अग्नि अर्थात् सूर्य का प्रभावशाली तेज नाना घरों में और समस्त प्राणियों को विशेष रूप से व्यापता है, उसी प्रकार अग्नि के समान चमकने वाला, समस्त जगत् का उत्पत्तिस्थान, तेजस्वरूप, सब द्वारों अर्थात् मार्गों में व्यापक परमेश्वर नाना लक्षों और समस्त जीवसंसार को वश करता है। जिस प्रकार माता अपने पुत्र को सबसे उत्तम पदार्थ देती है और उत्पादक पिता द्वारा इस पुत्र का ज्ञान-शिक्षण आदि कार्य उसके बाद देना अभीष्ट होता है, उसी प्रकार सब जगत् की माता परमेश्वर उत्पन्न जीव संसार को सबसे उत्तम सेवने योग्य प्रेम्य प्रदान करता है और उस सर्वोत्पादक परमेश्वर द्वारा ही इस जीवसंसार को ज्ञान भी निरन्तर अनुकूल रूप से प्रेरित करता है।

समावर्तन्ति विष्टितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत्।

शश्वो अपो विकृतं हित्व्यागादनु ब्रत सवितुर्देव्यस्य ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष संसार के विषम मार्गों पर विजय करता हुआ, विजय के दृष्टिकोण वीर राजा के समान, विशेष मान आदरपूर्वक स्थित होकर, शिक्षा प्राप्त करके समावर्तन द्वारा लौट आता है। वह समस्त विचरने वाले प्राणियों और सेवकादि का प्रेमपात्र होकर घर में आकर रहे। वह नित्य नियमपूर्वक कार्य करने द्वारा होकर धर्म के विपरीत कर्म नष्ट करके, विगत जल के समान त्याग कर प्रकाश रूप में स्थित समस्त सूर्य के प्रसन्न का अनुकरण करे।

त्वया^१ हितमप्य^२मप्सु भागं घन्वान्वा मृगयसो वि तस्युः ।

वंतानि विभ्यो न किरस्य तानि वृता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥

भा०—हे विद्वन् ! तू समीप प्राप्त प्रजाजनों में प्राप्त करने योग्य सेवनीय अंश को स्थापित कर, मृगगण मरुदेश में जिस प्रकार जल को ढूँढते २ फिरा करते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्य और ज्ञान की रोज लगाने वाले जिज्ञासु लोग ज्ञान-जल से युक्त पुरुष को विविध प्रकार से प्राप्त हों, और खोजी लोग अपने प्राणों के लिये सेवनीय ज्ञानों और प्रकाशों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त हों । ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता, ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष के उन नाना व्रतों, नियमों का कोई कभी नाश न करे, नहीं तो ।

याद्राध्यं^१चरुणो^२ योनिमप्यमनिशितं^३ निमिपि जभुराणः ।

विश्वो^४ मातर्ण्डो^५ व्रजमा^६ पशुर्गात्स्थशो^७ जन्मानि सविता^८
व्याकः^९ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार जगत् को घेर लेने वाला रात्रिकाल का अन्धकार, सूर्यास्त होने पर, शीतल तथा सेवनीय, जलमय समुद्र को और भूभाग को घेर लेता है, और अण्डों से उत्पन्न समस्त पक्षिगण, तथा पशुगण भी अपने गन्तव्य गृहों या वाडों में लौट आते हैं, फिर बाद में प्रातःकाल सूर्य सब स्थानों और सब प्राणियों को विशेष रूप से प्रकट कर देता है, उसी प्रकार अज्ञानों का वारक आचार्य ज्ञानमय अन्धकार काल में पालन करता हुआ, शरण में आने वाले शिष्यों से ज्ञान प्रदान करने योग्य होकर, सुखदायी तथा प्राणों के लिये हितकर शरण को प्रदान करे । तब 'मातर्ण्ड' अर्थात् सूर्य के आश्रय पर जीने वाले समस्त जन और चक्षुषों से देखने वाले विवेकी पुरुष अपने गन्तव्य शरण को प्राप्त होते हैं । और वह सबका आज्ञापक तेजस्वी पुरुष सब स्थानों और सब उत्पन्न होने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करे । इसी प्रकार परमेश्वर भी प्रलय में सबकी रक्षा करता हुआ सर्गारम्भ में विध को प्रकट करता है ।

न यस्येन्द्रो वर्कणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।

नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ६ ॥

भा०—जिसकी नियम-व्यवस्था को न विद्युत्, न जल, न मेघ, न समुद्र, न वायु और न नियामक सूर्य; न जीवगण और न शत्रुगण ही तोड़ सकने हैं, उस इस साक्षान् सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की हम नमस्कारों से अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करें ।

भगु धियं वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो आस्पतिर्नो अब्याः ।

आये वामस्य सङ्गुथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ १० ॥

भा०—ऐश्वर्यमय, सुख कल्याण के दाता, ध्यान करने योग्य, समस्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर का हम स्वयं ज्ञान प्राप्त करें और अन्यो को उसका ज्ञान देने वाले हों । वह सब मनुष्यों से स्तुति किया जाने योग्य पालक प्रभु हम जीवों की ओर वेदवाणियों की रक्षा करता है । और उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर और समस्त पशु आदि सम्पदाओं के प्राप्त होने पर हम सर्वोत्पादक सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद परमेश्वर के प्रिय होकर रहें ।

अरमभ्यं तद्विवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राघ आगात् । शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवित-
र्जिबे ॥ ११ ॥ ३ ॥

भा०—हे सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर ! तूरे हमने आकाश से अन्तरिक्ष के और पृथिवी से वह चाहने योग्य जल, अन्न, सुवर्ण रत्नादि अनर्थ दिया है, वह हमने प्राप्त हो । जो विद्वानों को शान्तिदायक और कल्याणकारी हो, जास विद्वान् एवं मनुज के लिये शान्तिदायक हो, वृत्त से प्रस्तुत विधोपदेश करने वाले गुरुजन को शान्ति सुख देने वाला हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[३६]

गृत्समद ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचूत् त्रिष्टुप् । २ तिराट् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८ त्रिष्टुप् । २ मुरिक् पङ्क्तिः । ५, ३ स्वराट् पङ्क्तिः ॥

अष्टर्च सूक्तम्

ग्रावाणेषु तदिदं जरेथे गृध्रेषु बृक्षं निधिमन्तमवल्ह ।

ब्रह्माणैव विदथे उक्थशासा दूतेषु हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ २ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उत्तम दो उपदेशकों की न्याईं उसी अर्थ अर्थात् प्राप्त करने योग्य परम तत्त्व ब्रह्म का उपदेश करो । जिस प्रकार गीधों का जोड़ा वृक्ष का आश्रय लेता है उसी प्रकार तुम दोनों वृक्ष के समान आश्रयरूप सजाने के स्वामी को सदा प्राप्त करो । यज्ञ में जिस प्रकार दो ब्राह्मण वेदों के सूक्तों के कहने वाले होकर वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों ज्ञान उपदेश करने के अवसर में वेद के उत्तम वचनों के कहने वाले होकर उपदेश करो । और जिस प्रकार युद्धों के अवसरों में सन्निविष्ट कराने में कुशल और जनों के हितकारक तथा बहुत से पुरुषों के त्राण करने वाले दो दूत अपना सदेश कहते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों उत्तम वचनां द्वारा पुकारे जाये योग्य होकर, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले और बहुत पदार्थों के रक्षक एवं बहुत पदार्थों के स्वामी होकर जीवन यापन करो ।

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेषु यमा वरमा सचेथे ।

मेने इव तन्वाः शुभमाने दम्पतीव क्रतुविडा जनेषु ॥ २ ॥

भा०—हे वर और ववृ ! रथ में लगने योग्य दो अर्धों के समान या रथ में लगने वाले चक्रों के समान एक साथ सिलकर प्रातःकाल से ही कार्यों में व्याप्त होकर, वीर्यवान् वीर होकर, न उत्पन्न अनादि दो आत्माओं के समान परस्पर एक दूसरे के ऊपर प्रेमयुक्त होकर, यम नियम जितेन्द्रिय होकर, श्रेष्ठ कार्य और धन को प्राप्त करो । और तुम

दोनों एक दूसरे का मान आदर करने वाले दो स्त्री पुरुषों के समान या मेरा नामक दो पक्षियों के समान शरीर से शोभायमान और आदर्श पति-पत्नी के समान दाम्पत्य सम्बन्ध का पालन करने वाले होकर, सब मनुष्यों के बीच यज्ञ आदि उत्तम कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ करके परस्पर मिलकर रहो ।

शृङ्गं नः प्रथमा गन्तमर्वाक् लुफाविष्व जभुराणा तरोभिः ।

चक्रवाकेषु प्रति वस्तोरुस्त्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥

भा०—दो सौंग जिस प्रकार सबसे आगे बढ़कर विरोधी को मारते या आगे बढ़े रहते हैं उसी प्रकार हे वर वधुओ । तुम दोनों भी गिरि-शिखरों के समान हमारे बीच में प्रथम, उत्तम, अग्रगण्य होकर जीवन व्यतीत करो । दो खुर या दो पैर जिस प्रकार शरीर के नीचे दृढ़तर वेगों से जाने वाले होते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी परस्पर मिलकर, एक दूसरे का आश्रय होकर, तु.ए.ओं के पार जाने के साधनों से जाते हुए और सबका पालन पोषण करते हुए आगे बढ़ो । और प्रतिदिन चकवा-चकवी के समान ही उत्तम सुन्दर वचन गोलने हारे और रथ में जुड़ने वाले उत्तम बेलों के समान शक्तिमान् बलवान् होकर आगे की तरफ बढ़ते जाओ ।

नापेव नः पारयतं युगेऽ नभ्येव न उपधोव प्रधोव । श्वानेव नो अरिपण्या तनूनां खर्गलेव विस्त्रसः पातमुस्मान् ॥ ४ ॥

भा०—हे वर-वधुओ । आप दोनों मिलकर दो नावों के समान हमारे दोनों कुलों को तु.ए. और कर्तव्य सागर से पार करो । रथ में हथौड़े के समान या जूतों में जुड़े जश्यों के समान, रथचक्र के केन्द्र या बाला ने लगे हुए छपों के समान, रथ के बीच भाग में नार के सहने वाले बगलों में लगे दो खण्डों के समान और रथ के ऊपर लगे लोहे के दो छपों के समान होने तकड़ों से पार करो । और दोनों दावे बावे चलने

वाले दो कुत्तों के समान रक्षक रहकर हमारे शरीरों का कभी हिंसन न करते हुए, कन्धों पर लगे कवचों के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देते हुए हमें विविध प्रकार के नाशकारी विपदा से बचाओ ।

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् । हस्ता-
विव तन्वेऽशम्भविष्ठा पादेव नो नयतुं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों उत्तर-दक्षिण की या पूर्व-पश्चिम की दो समान जरा से रहित होओ । दो नदियों के समान वेग से जाने या परस्पर मिलकर रहने वाले होओ । दो आँवों के समान एक पदार्थ को एक रूप से देखने वाले, प्रेममय होकर, दर्शनशक्ति से युक्त अर्थात् विवेकी होकर आगे जाओ और हमें आगे ले चलो ! और आप दोनों दो हाथों के समान और दो पैरों के समान शरीर के लिये शान्ति कल्याण उत्पन्न करने वाले होकर हमें उत्तम २ धनों ऐश्वर्यों को प्राप्त कराओ । इति चतुर्यो वर्गः ॥

ओष्ठाविव मध्वास्त्रे वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव तस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥

भा०—मुख के ओठों के समान मँडुर वचन बोलते हुए, वक्त्रों की स्तनों के समान हमें जीवनवृद्धि के लिये पुष्ट करो । दोनों नाकों के समान हमारे शरीर की रक्षा करने हारे और दो कानों के समान हमारे जीव उत्तम रीति से श्रवण करने वाले होकर रहो ।

हस्तैव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजसि ।

इमा गिरी अश्विना युष्मयन्तीः क्षणेवैषेव स्वविति सं
शिशानिम् ॥ ७ ॥

भा०—तुम दोनों हमारे बीच में दो हाथों के समान शक्ति की धारण करने वाले रहो । और जिस प्रकार आकाश और भूमि अपने बीच समस्त लोकों या वृलकणों या जल को धारते हैं उसी प्रकार आप दोनों ऐश्वर्यों और बल वीर्य को अच्छे प्रकार प्राप्त करो और प्राप्त कराओ ।

हे वायु-अग्नि के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो । आप दोनों के कर्तव्यों को बतलाने वाली इन वागियों को, हथियार के शरण के समान अधिक उज्ज्वल करने वाले गुण और कार्य में आप लोग और अधिक साधन और उज्ज्वल करो ।

एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासौ अक्रन् ।

तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥५॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो । एव अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वाभियान् ! उत्तम हर्षों और सुखों को चाहने वाले या उत्तम प्रवचनों में दर्शित होने वाले विद्वान् पुरुष, तुम दोनों की शक्तियाँ और बलों को बढ़ाने वाले साधनों को, वेदोपदेश और ऐश्वर्य को, तथा स्तुति वचन को करें । उनको हे नायक नायिके । तुम दोनों प्रेमपूर्वक सेवन करने हुए परस्पर समाप रहकर आगे बढ़ो । हम लोग उत्तम वीरों और वीर्यवान् पुत्र सन्तानादि से युक्त होकर बहुत उत्तम ज्ञान विज्ञान का उपदेश, कर्मोपबन्धन और तुम्हारे गुण वर्णन करें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४०]

गृत्समद अग्निः ॥ १—६ सोमापूषणापरितिश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३ निडुर् । २ पिराट् निडुप् । ५, ६ निभृत् निडुप् । ४ स्वराट् पक्तिः ॥

५७५ युक्तम् ॥

सोमापूषणा जनना रथीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।

जाता विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृणवन्मृतस्य नाभिम् ॥१॥

भा०—सोम जर्मात् उत्पादक पिता और 'पूषा' पोषक माता दोनों नाना प्रकार की पशु-सम्पदाओं के और नाना ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले होते हैं । और वे दोनों सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और पृथिवी के समान विस्तृत पर का आधार और उसके समान बीज को धारण कर उत्पन्न करने वाली मातृ शक्ति के भी उत्पन्न करने वाले होते हैं । वे

दोनों समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों के रक्षा करने वाले होते हैं । उन दोनों को विद्वान् लोग कभी नाश न होने वाले सन्तान रूप 'अमृत' का केन्द्र या उत्पत्तिस्थान बनावें, मानें और जानें । प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

सोमः—(१) स्वा वै म एषा इति तस्मात् सोमो नाम । शत० ३।९।४।२२॥ वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है । ऐसा कहने वाला पुरुष सोम है ।

(२) सोमः राज्यम् आदत्त ११।४।३।३॥ राजा वै सोमः ॥ शत० ११।४।३।३॥ सोमो राजा राजपतिः ॥ १४।१।३।१२॥ स यदाह सत्राड् इति सोमं वा एतदाह । गो० पू० ५।१३॥ क्षत्रं सोमः ॥ ऐ० २।३८॥ प्राणः सोमः रा० ७।३।१।२॥ रेतः सोमः कौ० १३।७॥ सोमो रेतोऽदधात् ॥ तै० १।६।२॥ सोमो वै ब्राह्मणः । ता० २२।२६।५॥

पूषा—इयं वै पूषा । इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च । शत० १४।४।२।२५॥ इयं वै पृथिवी पूषा । शत० २।५।४।७॥ प्रजननं वै पूषा श० ५।२।५।८॥ पशवः पूषा ऐ० २।२४॥ पूषा भागदुघः २।३।९।४।३॥

सोम राजा है, वीर्य है, वीर्यवान् पुरुष है, ब्राह्मण है । इसी प्रकार पूषा पृथिवी है, माता है, पशु-सम्पदा है, और राष्ट्र में करसंग्रही अधिकारी भी पूषा है । देह में—प्राण और अपान सोम-पूषा हैं, शरीर के और पृथिवी में सुवर्णादि के समान रयि हैं । शुक्रबीज और डिम्ब दिव और पृथिवी हैं । उत्पन्न गर्भ भुवन है । कामनाशील स्त्री पुरुष या उत्पादक तत्व 'देव' हैं ।

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमोसि गूहतामजुंश ।

आभ्यामिन्द्रः पृक्त्रमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुन्निर्यासु ॥२३॥

भा०—ये दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे की कामना करते हुए, एक दूसरे के गुणों को प्रकाशित करने वाले सन्तति रूप से उत्पन्न होकर रहें तो सभी विद्वान् जन उनको भी प्रेम करते हैं । वे दोनों अभीष्टजनक

अन्धकारों अर्थात् शोक दुःखजनक कारणों और काले कर्मों का विनाश करें। इन दोनों नाम और पूषा अर्थात् उत्पादक और पोषक पति पत्नी रूप गृहस्थों के साथ मिलकर, इनके द्वारा ही अज्ञान विपत्तिमय अन्धकार का नाश करने वाला विद्वान् पुरुष और ऐश्वर्यवान् राजा, गृह बनाने वाली भूमि स्वरूप कन्याओं में परिपक्व वीर्य को उत्पन्न होने की व्यवस्था करें। बालविवाहों को सर्वथा रोक दें।

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।

विप्रवृत्तं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥

भा०—पुरुष और स्त्री दोनों वीर्य और रज दोनों के आश्रय पर विश्राम रूप में बसने वाले, सात धानुओं के चक्रों वाले, विश्व अर्थात् जीव के रहन जिसका नाश नहीं होता ऐसे, योनियों और लोकों में आने जाने वाले, मन के द्वारा संचालित होने वाले, प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान इन पांच प्रकार की रासों या प्रवर्तक शक्तियों से युक्त, या नाक, श्रोत्र, त्वचा, जाल्ज और रसना इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंरूप किरणों से युक्त रमण करने योग्य देह को पुष्ट करें।

इत्यन्यः सदनं चक्र उद्या पृथिव्यामन्यो अन्तरिक्षे ।

तापुस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोष विप्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

भा०—उन पूर्व वहे सोम और पूषा अर्थात् पुरुष और स्त्री दोनों में से एक ज्ञान, ऐपणा, कामना और लोक व्यवहार ऊँचा स्थान करता है, और दूसरा भागा अर्थात् स्त्री पृथिवी में जन्म के समान या अन्तरिक्ष में विष्णु के समान अपनी स्थिति करें। यह गृहस्थ का सर्वाध्य होने से पृथिवी के समान और पालक पोषक होने से अन्तरिक्षगत वायु के समान रहे। वह पति के जन्त करण से निरास करने से भी 'अन्तरिक्ष' में रहता है। वे दोनों हमारे लिये स्वीकार करने योग्य बहुत से धनादि बहुत भूत के अन्तर्दि से पूर्ण, ऐश्वर्य की पुष्टि या वृद्धि करने वाले

मुख्य केन्द्र-गृह को हमारे उपकार के लिये बाँधें । (२) देह में एक प्राण मूर्धा में रहता है, दूसरा अपान नितम्ब या नाभि से नीचे रहता है, तीसरा 'अन्तरिक्ष' अर्थात् देह के बीच के खोखले भाग में समान रूप से रहता है । वे दोनों इन्द्रियों की रक्षा करने वाले, उत्तम अन्नपाचक, कान्ति के पोषक नाभि भाग को बाँधते हैं । उसको ढढ़ करें ।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण पति ।

सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों में से एक पृथिवी सब पदार्थों को उत्पन्न करने से 'सोम' है, वह सब प्रकार के भूतों और प्राणियों को उत्पन्न करती है और दूसरा सबको प्रकाश द्वारा दिमाता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री दोनों में से माता उत्पादक होने से 'सोम' है, वह समस्त सन्तानों को उत्पन्न करे, और दूसरा पुरुष सब गृहस्थ के कार्य को देखता, उस पर निगरानी रखता हुआ आवे । ऐसे दोनों उत्पादक और पोषक माता पिता मुझ पुरुष के धारण करने योग्य कर्मों की रक्षा करें । हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों के द्वारा हम लोग सब मनुष्यों पर विजय करें, सबसे ऊँचे होकर रहें । (२) अपान सब रसों को उत्पन्न करता, प्राण ज्ञानेन्द्रियों से देखता और वाणी से बोलता है । मेरे देह के कर्म या व्यापार को दोनों चलाते, सब देहों पर उन दोनों के बल से हम ऊँचे रहते हैं ।

धियं पूषा जिवन्तु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।

अवतु देव्यदितिरनुर्वा बृहद्वदेम विदये सुवीराः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—पोषणकर्त्ता पुरुष सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाला होकर गृहस्थ के धारण पोषण कर्त्तव्य को बढ़ावे । उत्पादक माता ऐश्वर्य की पालिका होकर ऐश्वर्य को धारण करे । कामना करने वाली, उत्तम गुणों से युक्त स्त्री माता होकर पुत्रों का पालन

करे और वह विरोधी जन से रहित हो । हम उत्तम वीर्यवान् होकर
ज्ञानतन्त्रदा में और युद्धों और यज्ञों में बड़े ज्ञान और वेदादि का उपदेश
करें । (२) अपान धारण शक्ति बढ़ाता है, और वीर्य 'रयि' इस जड़
देह का पालक होकर इसका धारण करता है । 'अदिति' अर्थात् अखण्ड
चतुर्भाशक्ति तेजोमयी होने से 'देवी' है, वह निर्याध, सर्वोपरि स्वतन्त्र
होकर सबको पालती है । हम उसी की खूब चर्चा करें ।
इति पटो बर्गः ॥

[४१]

गान्धर्वः अपिः ॥ १, २ वायुः । ३ इन्द्रव्यू । ४—६ मित्रावरुणौ । ७—९
भार्गवा । १०—१२ इन्द्रः १३—१५ विश्वदेवाः । १६—१८ सरस्वती ।
१९—२१ पावापृथिव्या इतिर्धाने वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०,
११, १३, १५, १६, २०, २१ गायत्री । २, ५, ८, १२, १४ निबृह
गायत्री । ७ त्रिपदगायत्री । ८ पिराउ गायत्री । १६ अनुष्टुप् । १७ उच्छिक् ।

१८ वृद्धी ॥ एकाविंशत्यच सूक्तम् ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासुस्तेभिरा गृहि ।

निपुत्वान्तसोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—हे वायु के समान बलशालिन् ! जो तेरे सहस्रों सेनिकों तथा
सहस्र पेश्वों के स्वामी महारथी पुरुष हैं तू उनके सहित, खूब युद्ध
करने वाले सेनिकों या रथों में नियुक्त जन्मों का स्वामी होकर, पेश्वों के
पावन और उपभोग के लिये जा, प्राप्त हो ।

निपुत्वान्वायवा गृह्यं शुक्रो ग्रयामि ते ।

गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम योद्धाजो ते युक्त सेनापते ! वा उत्तम दमन-नियमों
से युक्त उनके पावन करने वाले जितेन्द्रिय । बलवान् और ज्ञानवान्
पुरुष । आप जानो । यह मेरी कार्य करने से कुशल सेनिक और

शुद्धचित्त और तेजस्वी शिष्य होकर तेरे द्वार को पास होता हूँ । और आप भी ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजन तथा ज्ञान करने वाले ज्ञातक के गृह को प्राप्त हों । समावर्त्तन काल में ज्ञातक गुरु को गृह पर तुलाकर आचार्य की पूजा, आदर सत्कार करता है ।

शुक्रस्याद्य गवांशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।

आ यातुं पितृं नरा ॥ ३ ॥

भा०—मेघ और वायु दोनों जिस प्रकार लक्षों किरणों से युक्त तथा किरणों के आश्रय रूप तेजस्वी सूर्य को प्राप्त होकर भूमि पर आश्रित जल का पान करते हैं, उसी प्रकार हे मेघ और वायु के समान दानशील और बलवान् पुरुषो ! आप दोनों, नियम-व्यवस्था वाले प्रबन्धक और वाणी के प्रधान आश्रय अर्थात् आज्ञापक, तेजस्वी पुरुष के समीप आओ । हे नायक नेता पुरुषो ! आप पृथ्वी पर स्थित या गौओं से प्राप्त होने वाले शुद्ध बलवर्धक दुग्ध आदि और ओषधिरसों का पान करो ।

अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा ।

ममेविह श्रुतं हवाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे मित्र के समान सखी पुरुष ! और वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्रीजन ! आप दोनों सत्य को बढ़ाने वाले, सत्य से बढ़ने वाले, जल और धन की वृद्धि करने वाले होवो । हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों का यह उत्पन्न सौम्य पुत्र हो । और आप दोनों मेरा ग्रहण करने योग्य वचन श्रवण करें ।

राजान्नावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रजाओं के रंजन करने वाले, गुणों से शोभा पाने वाले उत्तम राजा रानी, राजा सचिव, गुरु शिष्यो ! एवं स्त्री पुरुषो ! आप दोनों परस्पर द्रोह न करते हुए, उत्तम स्थायी तथा सहस्रों स्तम्भों वाले घर तथा समा-भवन में, विराजो, रहो, आश्रय लो । इति सप्तमो वर्गः ॥

ता सुम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।

सचेते अनवहरम् ॥ ६ ॥

भा०—वे दोनों स्त्री पुरुष सूर्य-चन्द्र या सूर्य-विद्युत् के समान तेजस्वी एवं सम्राट् अर्थात् अक्रुर्ती, राजा के समान सबके शास्ता हों । घृतयुक्त अन्न का सेवन करें । अदिति अर्थात् पुत्र के लिये हितकारी एवं एक दूसरे को स्वीकार करने वाले, दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक पति-पत्नी कुटिलता या चोरी, लुका छिपी के भावों से रहित होकर परस्पर किसी प्रकार छल कपट न रखते हुए संगत हों ।

गोमदं पु नसुत्याश्वावघातमश्विना ।

वृती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले, दुष्टों को रक्ताने और भयादनों को पाटने वाले होकर, बहुत सी गौवों से युक्त, अश्वों से युक्त तथा मनुष्यों के पाटन करने योग्य व्यापार को किया करो ।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वयवसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

भा०—हे धनैश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, वर्षणशील उदार पुरुषों का वसाने वाले, बलवान् पुरुषों के बीच में स्वयं रहने वाले धीर पुरुषों ! आप दाना । ऐसे मार्ग पर चलें जिस पर न दूर रहने वाला और न बीच न रहने वाला दुष्कीर्तियुक्त शत्रु जाग्रमण कर सके ।

ता नृ आ वोळहमश्विना गृधि पिशङ्गसन्दशम् ।

धिषण्यां परिवोविदम् ॥ ९ ॥

भा०—हे जम्बादि के आरोही पुरुषों के स्वानियों उत्तम स्त्री पुरुषों ! हे आदित्यगो ! उत्तम जासनों के योग्य । वे आप दोनों उत्तम सेवा और जन को प्राप्त कराने वाले सुवर्ण के समान दिवलाई देने वाले ऐश्वर्य को देने प्राप्त कराने ।

इन्द्रो॑ अ॒ङ्गं म॒हद्भ॒यम॒भीष॑द॒पं च॒च्य॑व॒त् ।

स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, सर्व-
मार्गप्रकाशक होकर बड़े भारी विद्यमान भय को मुकाबला करके दूर
कर देता है। क्योंकि वह ही स्थिर, अन्त तक ठहरने में समर्थ, विविध
उपायों को देखने और दिखाने वाला, और विविध प्रजाओं का स्वामी
है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्र॑श्च मृ॒ळया॑ति नो न नः प॒श्चाद्द॒घं न॑शत् ।

भ॒द्रं भ॑वाति नः पुरः ॥ ११ ॥

भा०—और जब ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर राजा, अपना आत्मा
और प्रभु परमेश्वर हमें सुखी करता है, तब हमें पीछे और आगे से भी
पाप नहीं लगता, पापाचरण हम तक नहीं पहुँचता और साथ ही हमारे
आगे पीछे सर्वत्र सुख कल्याण होता है।

इन्द्र॑ आशा॑भ्य॒स्पृ॒षि सर्वा॑भ्यो अभयं॑ करत् ।

जेता॑ शत्रु॒न्विच॑र्षणिः ॥ १२ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् सबका द्रष्टा परमेश्वर और और विविध
विद्वान् मनुष्यों का राजा सब भीतरी और बाहरी शत्रुओं को जीतने
हारा है। वही समस्त दिशाओं से अभय करे।

विश्वे॑ दे॒वास॒ आ ग॑त शृ॒णु॒ता म॑ इ॒मं ह॑व॒म् ॥

ए॒दं व॒र्हिर्नि॑र्षा॒दत ॥ १३ ॥

भा०—हे समस्त विद्वान् पुरुषो ! उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने
वाले पूज्य पुरुषो ! आप लोग आइये। यह उत्तम आसन है इस पर
आकर विराजिये। हे अध्यक्ष पुरुषो ! यह वृद्धिशील प्रजाजनों का राष्ट्र
है इस पर आप अध्यक्ष रूप से रहे। मेरे उत्तम वचन का श्रवण करें !

तृतीयो यो मधुमो अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।

एत पिबत काम्यम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विठान् पुरुषो ! आप लोगों का यह हर्ष को उत्पन्न करने वाला आनन्द ज्ञानविज्ञान से युक्त है । और विज्ञान और सुखों के देने वाले विज्ञान बृद्ध और धनसम्पन्न पुरुषों के बीच में है । इस कामना धान्य का पान करो, भोगो ।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासुः पूषरातयः ।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे विठान् मनुष्यो । हे वीर बलवान् पुरुषगण । आप लोग ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को अपने में सबश्रेष्ठ बनाकर धारण करने वाले, दानशील और स्वयं पुष्ट या सम्पन्न होने पर दान देने वाले, या पोषक राजा, पिता, आचार्य आदि को अन्न, वस्त्र आदि देने वाले या भूमि के अनुसार दान देने वाले और भूमि से द्रव्य प्राप्त करने वाले दायी । आप मेरे वचन का ध्रुवण करो । इति नवमो वर्गः ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव रमसि प्रशस्तिमम्य नस्तुति ॥ १६ ॥

भा०—हे शिक्षा देने वाली आचार्याणि और हे मातृ ! हे अध्यापन करने वाली न सबसे श्रेष्ठ । हे उपदेश करने वाली में सबसे अधिक पूज्य ! हे विद्यादि दान करने वाली दियो में सर्वश्रेष्ठ ! हे उत्तम ज्ञान वाली । हन उत्तम ज्ञानोपदेश और प्रवचन से रहित अपुराल, नूर्ख, शत्रु को समान है । हने उत्तम ज्ञानोपदेश कर ।

ये विश्वा सरस्वति त्रितयूषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मास्व प्रजा देवि दिदिङ्ङि नः ॥ १७ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञानवाला विदुषा दि । तुल्य विदुषों के आश्रय पर ही हमारा तनस्त आशु और जीवनतुल्य आश्रित है । तू तुल्य और ज्ञान

देने वाले ज्ञानी पुरुषों के बीच में आनन्दित हो और हमारी सन्तान को उपदेश कर ।

इमा ब्रह्मा सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुहति ॥ १८ ॥

भा — हे उत्तम विज्ञानयुक्त विदुषो त्रि ! हे ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान और बल युक्त ! हे सत्याचरण, उत्तम ज्ञान, धनैश्वर्य अन्नादि को स्वीकार करने वाली ! तू ये उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कर, सेवन कर । जिन मनन करने योग्य, मन के प्रिय पदार्थों को, विद्वान् होकर आनन्द प्रसन्न रहने वाले विद्वान् जन, विद्वानों में प्रदान करते और स्वयं लेते हैं ।

प्रेतां यज्ञस्य शुभ्रुवा युवामिदा वृणीमहे ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

भा०—हे सूर्य और भूमि के समान प्रकाशको, सेचको, और उत्पादको ! आप दोनों सत्संग, दान, उपासना आदि उत्तम कर्म और गृस्थादि यज्ञ के कार्य के लिये आगे बढ़ो । आप दोनों को ही हम इस निमित्त अच्छी प्रकार वरण करते हैं और इसी कार्य के लिये अग्रणी नायक का और ग्राह्य ज्ञान और उत्तम अन्न आदि पदार्थ को वारण करने वाले विद्वान् पुरुष का हम वरण किया करते हैं ।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिधमद्य दिविरुपृशम् ।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥

भा०—सूर्य के समान दोनों ही तेजस्वी और पृथिवी के समान विशाल और सर्वाश्रय होकर, उत्तम ज्ञान और शुभकामना में एक दूसरे का स्पर्श या प्राप्ति या दान प्रतिदान करने वाले, इस नाना सुखों के साधक उत्तम गृहस्थ, सत्संग, उपासना आदि उत्तम कर्म को विद्वान् पुरुषों के बीच में स्थापित करो ।

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।

इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनों के समीप ही आप की इस उपस्थिति या गृह में, परस्पर द्रोह न करने वाले, परस्पर सत्संग में विराजित वाले या सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक, वा विद्यादि दान करने में कुशल पुरुष आपधि अन्न और ऐश्वर्य के पान या उपभोग के लिये आदरपूर्वक विराजें । इति दशमो वर्गः ॥

[४२]

गृह्णन्तः अपिः ॥ कविज्जल श्वेन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ त्रिष्टुप् ॥

वृच सूक्तम् ॥

कर्मिकदज्जनुपै प्रमुखाण इयंति वाचमरितेन नावम् । सुमन्त्र-
लेध शकुने भवामि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥

भा०—इ क्षत्रिणास्मिन् ! वा पक्षी के समान निःसशय होकर दूर २ तक प्रवृत्ति करनेहार विद्वन् । या पक्षी के समान आकाशवत् सर्वोपरि मार्ग त्र जाने में समर्थ । खेवट जिस प्रकार नाव को धरता है, उसी प्रकार आप भी उपदेश करते हुए या आज्ञा प्रदान करते हुए, अधीन शिष्या के प्रति विद्या का प्रवचन या अध्यापन करते हुए, शिष्य को विद्या में उत्पन्न या निष्णात करने वाली उसे विद्या-सम्बन्ध से नया जन्म देने वाला पाणा का प्रदान करें और आप उसके प्रति शुभ नगलजनक दया । कोई बिना प्रकार का भी तिरस्कार सर्वसामान्य से आने वाला पुत्र प्राप्त न हो । (२) परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—परमेश्वर ही द्वारा अवस्थापक पाणा को प्रकट करता है एवं वेद का उपदेश करता है, वह क्षत्रिणाश्च क्षान्तिदायक होने से 'शत्रु' है । पापनाशक कृपाणजनक होने से 'शत्रु' है । कोई भी 'अग्निना' तिरस्कार या अग्नि आदि उस तक नहीं पहुँचता । पर सबसे परे और ऊँचा है । जोशाना जन्म को लेता है ।

वाणी बोलता है । अंग देह से युक्त होने से 'सुमङ्गल' है । कोई बाहरी ज्योति या नाशकारी शक्ति या आवरण उस तक नहीं पहुँचता ।

'शकुनिः'—शक्नोत्युन्नेतुमात्मानम्, शक्नोति नदितुम् इति वा, शक्नोति तक्रितुम् इति वा, सर्वतः शंकरोस्त्विति वा शक्नोतेर्वा ।

'मङ्गलः'—मङ्गलं गिरतेः, गृणात्यर्थे, गिरत्यर्थान् इति वा, मङ्गल-मङ्गवत् । मज्जयति पापमिति नैरुक्ताः । मां गच्छत्विति वा ।

मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विदुदिपुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्कदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! प्रजाओं को शान्तिदायक पुरुष ! बाज और गरुड़ जिस प्रकार निर्वल पक्षियों को मार डालता है उसी प्रकार बाज के समान आक्रमण करने वाला वेगवान् अश्वारोही शत्रु तुझको न मारे । वेग से जाने वाला रथी भी तुझे न मार सके । बाणादि शस्त्रों से सुसज्जित शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और शस्त्रों को फेंकने में कुशल शत्रु तुझे न पकड़ सके । तू बाप दादो से चली आई सनातन दिशा का अनुसरण करता हुआ, उत्तम आज्ञा और उपदेश करता हुआ, उत्तम कल्याणजनक और सेवन करने योग्य वचन कहता हुआ इस लोक में उत्तम वचन कह ।

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणा सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशते माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥११॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! शान्तिकर ! आप वरों के बीच दायें ओर से हमारे बीच विराजकर उपदेश करो । आप उत्तम कल्याणकारी और हितकारी वचन कहने वाले हो । चोर-स्वभाव का पुरुष हम पर शक्तिशाली न हो । पाप की बात कहने या सिखाने वाला पापाचार से शासन करने वाला घोर, क्रूर, हत्यारा हम पर शासन न करे । हम लोग उत्तम वीर्यवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और ज्ञान में तुम्हारा बड़ा यश गान करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[४३]

मृतमनसः ऋषिः ॥ कापिञ्जल इन्द्रेन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१ जगती । ३ निचृज्जगती ।

२ भुरिगतिराश्वरी ॥ तृच सूक्तम् ॥

प्रष्टृजिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।

उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

भा०—जिस प्रकार पक्षीगण आकाश में चकर लगाते हुए ऋतु २ के अनुसार अपनी २ बोली बोलते हैं, उसी प्रकार शक्तिशाली वीर पुरुष जो शान्तिकारक विद्वान् जन शिर्षीजन और कर्मनिष्ठ ज्ञानोपदेश करने वाले उत्तम जन, दक्षिण हाथ या आदरणीय स्थान पर विराजकर, ज्ञान और पदाधिकार के अनुसार आज्ञा आदि वचन करते हुए उपदेश दिया करें । वे सान्त्वना देने वाले या साम [उपाय के वक्ता दूतों और समन्वय का उपदेश करने वाले और साम गायन करने वाले विद्वानों के समान, क्षात्र प्रभार की जगत् ऐहिक और पारमायिक, स्वपक्ष और परपक्ष क्षात्र के अनुकूल या सन्धि और विग्रहयुक्त वाणियों के समान सुख-दुःख क्षात्र की जनक वाणियों को विवेकपूर्वक कहें । और साम गायन करने वाला पुरुष जिस प्रकार गायत्री और त्रैष्टुभ छन्दों से उत्पन्न साम को गान करके उत्तम शोभा पाता और श्रोताओं का मन अनुरजित करता है, उसी प्रकार राजदूत 'गायत्र' जगत् प्रार्थना स्तुतिकर्ता का दायित्व करने वाले, और 'ऋतुग' जगत् उत्साहादि विविध शक्तियों से शत्रु का नाश करने वाले राष्ट्रवत् जो प्राप्त करके, सूर्य के समान चमकता है । इसी प्रकार विद्वान् उपदेश ब्राह्मणवर्ग को और क्षात्रवर्ग को अपने वश करके प्रभावित हो या उनको अनुरजित करें ।

प्रष्टृजिणिदभि गायन्ति साम गायन्ति ब्रह्मपुत्र इव सर्वनेषु शंसन्ति ।

इवैव प्राजा शिष्टुमतीरपीत्यां सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विभ्यतो नः शकुने पुरप्रमा वद ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन् । हे शान्ति करने हारे । विद्वन् ! राजदूत ! उद्गाता जिस प्रकार साम का गान करता है उसी प्रकार तू उत्तम पद से आज्ञा देने वाला होकर समता को उत्पन्न करने वाले तथा शान्तिकारक वचन का उपदेश कर । ब्रह्मा अर्थात् चतुर्वेदवेत्ता का पुत्र या शिष्य जिस प्रकार यज्ञों में वेदमन्त्रों और सूक्तों का उच्चारण और प्रवचन करता है उसी प्रकार तू भी महान् राष्ट्र का सच्चा पुत्र उसको दुःखों से त्राण करने वाला होकर, ऐश्वर्यों के निमित्त और अभिषेक कालों में शासन कर, उत्तम वचन कह । जिस प्रकार वृष्टिकर्त्ता मेघ प्रजायुक्त भूमियों पर आकर गज्जता है उसी प्रकार तू भी सन्तानों से युक्त प्रजाओं और गृहस्थ स्त्रियों को प्राप्त होकर घरों में जाकर, हमें सद्यः प्रकार कल्याणकारी वचन का उपदेश किया कर । हे शक्तिशालिन् । शान्तिकारक ! तू हमें सब प्रकार से धर्मानुकूल पुण्य वचन कहा कर ।

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तुष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः । यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ३।१२।४।२

भा०—हे शान्तिदायक । शक्तिशालिन् ! तू जब भी बोले तब २ दूसरों के कल्याणकारी वचन ही कहा कर । और जब तू मौन बैठे तब भी हमारे लिये शुभ सकल्प किया कर । कद्दू का फल जब जल में तैरने वाला हो जाता है, अर्थात् सूख जाता है, तभी वह वाद्य में लग कर सुरीला शब्द करता है, उसी प्रकार तू भी जब उत्तम पद पर आरुढ़ होकर और प्रधान कार्यकर्त्ता होकर बोले तब शुभ ही वचन कह । मदमत्त या गर्वी होकर कुवाच्य मत कर । हम उत्तम वीर और बलवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और यज्ञ में तेरे बड़े यश का वर्णन करें । इति द्वितीये मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः ॥ इति गात्समदं द्वितीयं मण्डलम् ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

इति द्वितीयं मण्डलम्

अथ तृतीयं मण्डलम्

[१]

गामिनो विश्वानित्र अपि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द — १, ३, ४, ५, ६, ११,
१२, १५, १७, १६, २० निचृत् श्रिष्टुप् । २, ६, ७, १३, १४ श्रिष्टुप् ।
१०, २१ पिगद् श्रिष्टुप् । २२ ज्योतिष्मती श्रिष्टुप् । ८, १६, २३ न्वराट्
पक्तिः । १८ नुरिक पक्तिः ॥ त्रयोदशार्चं मृगान् ॥

सोमस्य मा त्वसं वक्ष्ये वह्निं चक्र्यं विदथे यजध्वे ।

देवा अच्छा दीर्घशृङ्गे अर्द्धि शमाये अग्ने तन्व्यं जुपस्व ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! सोम अर्वात् वीर्य के बल का मुक्तको उपदेश
कर । ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने तथा सग्राम के कार्य में सग करने
के लिये मुझे कार्यनार उठान में समर्थ बना । मे साक्षात् तेजस्वी होकर
उत्तम गुणा और शक्तिया को प्राप्त कर । मे मेव के समान तुझे
सन्ताप को दान्त करने वाले को प्राप्त होकर शान्ति प्राप्त कर । हे
विद्वन् ! तू अपने द्वार को प्रेम से रख ।

प्राञ्चं यक्षं चतुर्ध्वं वर्धता गीः समिद्धिरग्निं नमस्ता दुवस्यन् ।

दिवः शशासुर्विदधा वक्षीना गृत्साय चित्रवसे शतुमीषः ॥ २ ॥

भा०—हम लोग परस्पर के सन और विद्या आदि दान को उद्यति
की ओर ले जाने वाला बनायें । जिससे ज्ञान की वाणी बढ़े । अग्नि को
जिस प्रकार समिधाया द्वारा अधिक तीव्र किया जाता है उसी प्रकार
सत्तमा और उत्साहजनक वचनों से और नमस्कार और विजय व्यवहार
से नेता पुरुष का सब लोग सेवा कर । आकाश से जिस प्रकार नेत्र जल
झरते हैं और तेजस्वी हृदय से जिस प्रकार विद्ये प्रकाश होता है

उसी प्रकार प्रकाशमय प्रभु या उत्कृष्ट आचार्य से शिक्षा प्राप्त मेधावी, विद्वान् पुरुषों में से विद्वान् लोग नाना ज्ञानों का उपदेश करें। वे उत्तम बुद्धिमान् और बलवान् पुरुष को ज्ञान मार्ग दें।

मयो दधे मेधिरः पुतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषां पृथिव्याः ।

अविन्दन्नु दर्शतमस्वन्तर्देवासो अग्निसपसि स्वसृणाम् ॥ ३ ॥

भा०—उत्तम बुद्धि से युक्त, ज्ञान और कर्म में पवित्र और उत्तम बलवान्, सबका उत्तम बन्धु के समान प्रेमी विद्वान्, अपने जन्म से, सूर्य के समान तेजस्वी राजा और पृथिवी के निवासी प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है। विद्वान् लोग जलों के बीच प्रकाशक विद्युत् के समान प्रजाओं के बीच गुणों और तेज से दर्शनीय एवं प्रजा के व्यवहारों के देखने वाले पुरुष को अवश्य प्राप्त करें। और उसी को स्वयं आगे बढ़ने वाली प्रजाओं के काम में भी अग्रणी नायक रूप से प्राप्त करें।

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त युद्धीः श्वेतं जज्ञानमरुपं महित्वा ।

शिशुं न ज्ञातमभ्याहुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र की सात बड़ी शक्तियां अर्थात् स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य, उत्तम ऐश्वर्य शील, युद्ध में शीघ्रगामी तथा शुभ कर्मों वाले, रोपरहित उज्ज्वल पुरुष को बड़े सामर्थ्य से बढ़ाती है। जिनको अपने पुत्र न हों ऐसी भगिनियां जैसे नवजात शिशु को लेने पुचकारने के लिये प्राप्त होती है, उसी प्रकार विद्याओं में व्याप्त विद्वान् जन और अध्वारोही वीर पुरुष और उनकी सेनाएं तथा विजयेच्छुक राजपुरुष और विद्वान् पुरुष उस प्रसिद्ध अग्रणी नायक पुरुष को सब ओर से प्राप्त होते हैं। और जन्म होने पर जिस प्रकार धाइया बालक का सुन्दर रूप बनाती है उसी प्रकार वे राजा बनने पर उसके तेज को बढ़ाते हैं।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततुन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।

शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—विद्वान् और बलवान् पुरुष, शीघ्रता से कार्य करने में समर्थ शरीर और राष्ट्र के जंगों से ऐश्वर्य को सब प्रकार से बढ़ाता हुआ और शुद्ध आचार विचार और चाणी वाले क्रान्तदर्शी विद्वानों से अपनी बुद्धि और कर्म को पवित्र करता हुआ, जलो के बीच में तेज और जीवन को धारण करने वाले विद्युन् के समान आस प्रजाओं के बीच तेज को वन के समान धारण करता हुआ, उनके जीवनो को और बड़ी अक्षय सम्पदाओं का उत्पन्न करता और बढ़ाता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्रजाजां सीमनदतीरद्वधा द्विवो यद्धीरवसाना अनशाः ।

सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वार्षीः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार न गर्जने वाली तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न जलवाराजा को विद्युन् व्यापता है, उसी प्रकार राजा भी सब प्रकार से स्वयं ऐश्वर्य का भोग न करने वाली, नाश न करने योग्य, उनकी वामना धरने वाली, उसके पुत्रतुल्य, उसके शरण में आई हुई, उत्तम वन आनूपण में आच्छादित प्रजाओं को प्राप्त हो । और वे सनातन से विद्यमान, चार वर्ण और पूर्व के तीन आश्रमों से युक्त, तथा उसको लेबने वाला प्रजाण, सुन्दर बालक को एक ही गृह में रहने वाली स्त्रियों के समान, एक ही ग्रहण करने योग्य वरणीय नायक का धारण पोषण करें । स्त्रीणां प्रसूय सहतो विश्वरूपा घृतस्थ योनेः स्रवधे मधूनाम् । अस्थुरघ्नं घेनत् । पिन्वमाना मही दस्मस्य मातराः समीची ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार घृत अर्थात् वर्षा रूप में सरने योग्य जल के आश्रयभूत अन्तरिक्ष न सपुर जलो के बहाने में, इस सूर्य के ७ क्षिरण तप बना कर कार्य करते हैं, और वे ही नाना रूप वाली अति विल्लुत शून्यों का लेपन करते रहते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष के घर पर लघु रूप में बहुत सी सख्या न एक १, हर २ तक चोली हुई, नाना वर्णों वाली,

दुग्धादि सेचन करती हुई गौर्वें घी और नाना मधुर पदार्थों के वहाने के लिये विद्यमान हो । और उस घर में दर्शनीय गृहपति के माता और पिता दोनों उत्तम आचारों वाले हों ।

बभ्राणः सूतो सहस्रो व्यष्टौ दधानः शुक्रा रभसा वपूषि ।

श्रोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥

भा०—हे बल से उत्पन्न और बल के प्रेरक ! जिस प्रकार अग्नि तेजस्वी और बलवान् रूपों को धारण कर चमकता है उसी प्रकार तू भी उज्ज्वल दृढ़ शरीरों को धारण करता हुआ, और पुष्ट करता हुआ विशेष रूप से प्रकाशित हो । तथा जहां क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान और उद्योग से बलवान् पुरुष बढ़ता है वहां मधु और घी आदि सुखकारी पुष्टिकारक पदार्थों की समृद्धियां झरती हैं, अनायास प्राप्त होती हैं ।

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि घेनाः ।

गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यद्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥

भा०—पालक सूर्य से जिस प्रकार जन्म लेकर मेघ उत्पन्न होता है, और वही सूर्य जिस प्रकार इसकी जलधाराओं को उत्पन्न करता है, और नाना गर्जनाएँ भी उत्पन्न करता है, उसी प्रकार यह जीव भी जन्म से ही अपनी पालिका माता के दुग्ध से भरे स्तन को प्राप्त करता है, वह स्वयं इस स्तन की धाराओं को उत्पन्न करता है, नाना चीत्कार आदि को भी उत्पन्न करता है । वह कल्याणकारी मित्रों सहित पहले अपने घर में विचरता है, और बड़ा होने पर दिव्य मित्रों सहित घर से बाहर भी विचरता है । (२) पुत्र के समान शिष्य पालक आचार्य से जन्म लाभ करके ज्ञानरस के धारक वेद को प्राप्त करे । उसके उपदेश की नाग वाणियों का विविध प्रकार से अभ्यास करे । विविध विद्याओं को ग्रहण करे । उत्तम मित्रों सहित बुद्धि मार्ग में विचरते हुए, बुद्धि द्वारा विद्या की दीप्ति को प्राप्त कर, बड़ी शक्तियों से भी कोई उसे परास्त नहीं करे ।

पितुश्च गर्भे जनिषुश्च वम्भे पूर्वारेको अधयत्पीप्यानाः ।

तृप्ते सपन्तो शुचये सर्वन्धू उभे अस्मै मनुष्ये उ नि पाहि १०।१४

भा०—पुत्र बड़ा होकर अकेला ही पिता के और उत्पन्न करने वाली माता के ना पेट को भरता है । वह पुष्टियों से पूर्ण और पुष्ट करने वाली दूध के धाराओं का पान करे । पति पत्नी होकर रहने वाले और समान रूप से एक दूसरे को प्रेमपाश में बाधने वाले होकर दोनों इस बलवान् तथा शुद्ध पवित्र मन्तान के लिये हा होते हैं । हे पुत्र । तू भी मननशील पुण्या के लिये हितकारी होकर उन दोनों का निरन्तर पालन कर । इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

सुग मृदा अनित्राधे ववर्धापो अग्नि यशसः सं हि पूर्वोः ।

प्रातरथ योनां वशयद्मृना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ॥११॥

भा०—शिष्य धैर्य से दण्डित या पीडित न करने वाले अति विमृत्त ज्ञानवान् गुरु के अधीन रहकर बड़े और पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरिष्कृत ज्ञान विद्या आगे बढ़ने वाले शिष्य को बल और कीर्ति से अत्यन्त बढ़ाती है । वह क्षम क्षम आदि से जितेन्द्रिय चित्त होकर, सर्वज्ञान के आश्रय परम प्रभु से सोंपे, उसी में रहे । वह स्वयं अज्ञादि गुरु के वा ज्ञान करने वाली, स्वयं अपने २ मार्ग या व्यवसाय उद्योग में जान पाया प्रजाज के पार्वज्यवहार के आश्रय पर बड़े ।

अतो न प्राध्रः संभिचे मृदीनां दिदृक्षेयः सुनवे भाक्त्रजिकः ।

उदप्रिया जनिता यो जजानापा गर्भो नृतेमो यद्धो अग्निः ॥१२॥

भा०—अग्नि के समान तेजस्वी, जन्मों को मार्ग बतलाने द्वारा अज्ञान नाशक पिता से जो जोर किसी प्रकार भी आक्रमण न करने योग्य राजा समस्त प्रजा का नरण पोषण करने द्वारा हो । वह बड़ी २ जेमा और पूज्य प्रजाओं के समूहों तथा सगतिस्थानों और सन्तानों से भी प्रेरित करने योग्य, अपने को सन्तानों से प्रेरणा करने वाले गुरु के हित के

लिये, तथा अपत्य के समान प्रजाजन के लिये, विद्या और दीप्ति से प्रकाश-मान् होकर और ऋजु स्वभाव वाला हो। जो पिता के समान उत्पादक होकर किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार मेघ से जलवाराण उत्पन्न करता है उसी प्रकार समस्त प्रजाओं के ऊपर प्रकट हो। वह प्रजाओं को अपने आश्रय में धारण करने में समर्थ सर्वश्रेष्ठ नायक और महान् हो।

श्रुपां गर्भं दर्शयन्तमोषधीनां वनां जजान सुभगा विरूपम् ।

देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पतिष्ठं ज्ञातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥

भा०—जो वीर विद्वान् पुरुष उत्तम ऐश्वर्य से युक्त शत्रु को सताप देने की शक्ति को धारण करने वाले वीर पुरुषों के जल्ये के जल्ये उत्पन्न कर देता है, विजय के इच्छुक लोग अपने चित्त से उसको ही प्राप्त प्रजाओं को वश करने हारा, दर्शनीय, विशेष तेजस्वी, रूपवान् जानकर उससे संगत होते हैं, उससे मिल जाते हैं और उस अग्नि के समान सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी, गुणों में प्रसिद्ध और बड़े बलवान् की ही पूजा करते हैं। (२) अथवा—वरण करने वाली नवयुवती, सौभाग्यवती होकर जलों के बीच विद्युत् के समान प्राणों के बीच मुख्य, दर्शनीय, विशेष रूपवान् भव्य पुत्र को उत्पन्न करे। जिसको विद्वान् पुरुष चित्त से या ज्ञान से संयुक्त रहे।

बृहन्त इन्द्रानवो भास्वर्जाकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।

गुहेव वृद्धं सदासि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहाना ॥१४॥

भा०—बड़ी दीप्तियां तथा अति शुक्र वर्ण वाली विविध कान्तियां जिस प्रकार दीप्तियुक्त अग्नि को प्राप्त हैं, उसी प्रकार बड़े तेजस्वी, वीर्यवान्, विविध विद्याओं से चमकने वाले पुरुष भी, नाना दीप्तियों वाले धर्मात्मा, तथा ज्ञानवान् अग्रणीनायक को एवं परमेश्वर को प्राप्त हों। और जल भरने वाले लोग जिस प्रकार अपनी गुफा में अग्नि का सेवन करते हैं, उसी प्रकार अपने अपार बड़े भारी राष्ट्र में अन्न पूर्ण करने हुए

योग अपनी राजसभा के बीच में ज्ञानवृद्ध अग्रणी नायक को प्राप्त करें, उनका सम्मन करें । (२) इसी प्रकार अमृत आत्मा का रस दोहन करने वाले 'गुहा' अर्थात् बुद्धि में अपने अपार महान्, समुद्र के समान गम्भीर, सर्वाश्रय अन्तरात्मा में ही उन महान् ज्ञानमय प्रभु को प्राप्त करें ।

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।

देवयो मिमीहि सं जरित्रे रक्षां च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥१५॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! मैं तुझे प्राप्त होने और कर आदि देने वाला प्रजाजन तुझको स्वीकार करने योग्य नाना ऐश्वर्यों सहित आदर करना और मान पद प्रदान करता हूँ । तुझे मृत्यु चाहता हुआ, तुझमें शुभ मति, उत्तम ज्ञान, और तेरी मित्रता चाहता हूँ । तू स्तुतिकर्ता विद्वान् जन के हितार्थ, विद्वान् पुरुषों और विजयेच्छुक और पुरुषों द्वारा, रक्षा जादि उपाय अच्छी प्रकार कर । और दमन करने योग्य गेन्वों से हमारा रक्षा कर । इति पञ्चदशा वर्गः ॥

प्रपद्यन्तारतव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।

अरेतसा श्रवसा तुज्जमाना अभिष्याम पृतनायूरदेवान् ॥ १६ ॥

भा०—हे उत्तम और प्रवर्षयुक्त नीति वाले राजन् ! उत्तम मार्ग से तू जान वाले विद्वन् । हम लोग तेरे अर्जान या तेरे समीप स्थित और सुखपूर्व से रहने वाले और सब प्रकार के धन प्राप्त कराने वाले उत्तम साधना की धारण करते हुए, उत्तम वीर्य और अज्ञ ज्ञान और वरा से बलवान् और दानशील होकर, विद्वानों के विरोधी अदानशील पुरुषों को जीता लेंगे ।

आ देवानामनव केतुरग्ने सुन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।

आज नतो प्रवास्यो दर्शना अनु देवाप्रपिरो वासि साधन् ॥१७॥

भा०—हे ज्ञानवान् ! तू सगुण वेदार्थी काव्यों को जानकर, विद्वानों से शपथ ले लिये जो आनन्द देने वाला और सबको ज्ञान देने वाला सब

प्रकार से हो और मन आदि इन्द्रियों को दमन कर जितेन्द्रिय होकर, साधारण प्रजाजनों को वसा और महारथियों के बीच रमण करने वाला महारथी होकर तू सबको वश करता हुआ विजयेच्छु वीरों और दानशील तेजस्वी पुरुषों का अनुसरण कर ।

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन ।

घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

भा०—घी से प्रज्वलित होने वाले अग्नि या तेज से चमकने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजा विद्वानों के द्वारा ज्ञात सभी ज्ञानों को जानता हुआ, और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों संग्रामों और यज्ञों को साधता हुआ, मनुष्यों के बीच विशाल घर में अमृत अर्थात् मृत्यु-धर्म से रहित, दीर्घायु होकर विराजे और पृथिवी में विशेष रूप से सूर्य के समान प्रकाशित हो ।

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरुतिभिः सरण्यन् ।

अस्मे रयि बहुलं सन्तरुच सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

भा०—हे विद्वन् । राजन् । प्रभो । तू हमें मद्गलमय मित्रताओं, सौहार्दों सहित प्राप्त हो । और तू सबसे बड़ा, बड़ी पूजनीय ज्ञान और ज्ञान और रक्षाओं से प्राप्त होता हुआ, हमें बहुत सा दुःखों से भली प्रकार तारने वाला, उत्तम वाणी से युक्त, सेवने योग्य, हमारा कीर्तिजनक ऐश्वर्य उत्पन्न कर ।

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पुढ्याय नूतनानि वोचम् ।

महान्ति वृष्णे सर्वनो कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो ज्ञातवेदाः ॥२०॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! इन सेवन करने योग्य और अद्भुत कर्मों को मैं विद्वानों से उत्पन्न तेरे हित के लिये उपदेश करता हूँ । ये बड़े २ ऐश्वर्य सब बलवान् पुरुष के लिये बने हैं । सब जनों में विद्वान् पुरुष ही उत्तम पद पर स्थिर किया जाता है । (२) अध्यात्म में—हे जीव !

पूर्वकाल से आए हुए तुझको तेरे पुराने और नये जन्मों को मैं अच्छी प्रकार बतलाता हूँ । ये सब बड़े २ जन्म उसी देहादि के प्रबन्धक आत्मा के भोग के लिये बने हैं । प्रत्येक जन्म या उत्पन्न देह में उत्पन्न बुद्धि का स्वामी आत्मा निबद्ध होता है ।

जन्मजन्मन् निहितो ज्ञातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

भा०—प्रत्येक जन्म में या प्रत्येक उत्पन्न होने वाले देह में कभी नाश न होने वाला नित्य आत्मा ही, सबके सेही या आत्मा के सेही विद्वान् पुरुषो ने प्रकाशित किया, जाना और अनुभव किया और जगाया है । उस पूजनीय आत्मा के ही उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने के निमित्त हम सब कल्याणकारक उत्तम चित्त के भाव में रहा करें । (२) राजा, विद्वान् पक्ष में—प्रत्येक कार्य तथा प्रत्येक पदार्थ पर विद्वान् को अधिष्ठाता रूप से स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मति के अधीन रहकर हम उत्तम चित्तभाव में रहा करें ।

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा घैहि सुक्रतो रराणः ।

प्र यैसि होतवृहतीरिपो नोऽग्रे महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥

भा०—हे बलवान् पुरुष ! हे उत्तम ज्ञान और कर्म वाले ! तू हमारे इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र को विद्वान् वीर और दानशील पुरुषों के अधीन कर । हे दानशील ! तू सदा आनन्द प्रसन्न रहता हुआ, हमारी बड़ी २ सेनाओं को अच्छी प्रकार नियम में रख । हे तेजस्विन् ! हम प्रजाओं को बड़ा धन और बल दे, प्राप्त करा । (२) हे सर्वशक्तिमन् प्रभो ! हमारी इस आत्मा को प्राणों के बीच सुरक्षित रख । तू हम में रमता रह । हमारी बड़ी २ कामनाएं पूर्ण कर । बड़ा भारी ऐश्वर्य तथा ज्ञान दे ।

इन्द्रोमग्रे पुरुदंसं सुनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावाग्रे सा ते सुमतिभूत्वस्मे ॥२३॥१६॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! राजन् ! तू स्तुति करने योग्य वाणी और भूमि को और बहुत से कर्म करने के आश्रय भूत गवादि पशुओं के दान को, दाता के लिये सिद्ध कर । हमारा पुत्र और पौत्र भी विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध हो । हे अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! तेरी वह शुभ मति और ज्ञान हमारे कल्याण के लिये हो । इति षोडशो वर्गः ॥

[२]

विश्वामित्रः ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १० जगती । २, ४, ८, ६, ९, ११ विराट् जगती । ५, ७, १२, १३, १४, १५, निचृज्जगती च ॥

वैश्वानराय धिषणांमृतावृधे घृतं न पूतमग्रये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति २

भा०—अग्नि के बढ़ाने के लिये जिस प्रकार पवित्र घृत को तैयार करते हैं उसी प्रकार सत्य न्यायाचरण को बढ़ाने वाले सब मनुष्यों के बीच में सबके नायक रूप से विराजमान होने योग्य अग्रणी प्रजात पुरुष को बढ़ाने और उत्पन्न करने के लिये, हम उत्तम प्रगल्भ बुद्धि को और अधिष्ठातृरूप से भोगने योग्य पदवी को उत्पन्न करें । साधारण मनुष्य और विद्वान् पुरुष दोनों वर्ग उस राष्ट्रपति पद को स्वीकार करने वाले नायक को, रथ को औजार के समान, अच्छी प्रकार तैयार करें ।
स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।

दृव्यवाळिगिरजरश्चनोहितो दुळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥

भा०—वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष सूर्य और अग्नि के समान ही अपने जन्म या प्रादुर्भाव से ही आकाश और भूमि के समान पालक एवं उपदेश करने वाले माता और पिता या आचार्य कुल दोनों को प्रकाशित करे । वह माता और पिता या मान करने वाली माता और मान जर्थात् ज्ञानदाता आचार्य दोनों का ही स्मृति योग्य और अनिलपित प्रेम पात्र

पुत्र हो । वह अग्नि के समान तेजस्वी होकर 'हव्य' अर्थात् दान और प्रतिग्रह करने योग्य अन्न, द्रव्य रत्नादि को वहन करने हारा, जरारहित, युवा, अन्न से परिपुष्ट, रोग, आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, विशेष दीप्ति को अपने में बसाने वाला, कान्तिमान्, प्रजाओं के बीच विद्यादि गुणों में सबसे ऊपर रहने से अतिथि के समान पूज्य हो ।

क्रत्वा दत्तस्य तरुणो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुच्रानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सन्निप्यन्नुपब्रुवे ॥३॥

भा०—दानशील, स्वर्गादि सुखों वा काम्यफलों के चाहने वाले जिस प्रकार बलवान्, सबको पार उतारने वाले परमेश्वर के विविध कर्मों को धारण करने वाले यज्ञ या उपासना कार्य में नाना चयन आदि क्रियाओं से दीप्तिमान् अग्नि को उत्पन्न कर लेते हैं, उसी प्रकार क्रिया और प्रज्ञा के सामर्थ्य से बलवान् और ज्ञानवान्, संकट से पार उतारने वाले, प्रधानपद को विशेष रूप से धारण करने वाले शासनकार्य में विद्वान् तथा व्यवहारकुशल पुरुष, नाना ज्ञानोत्पादक विधियों और नाना संज्ञापक पदवियों और घोषणाओं से अग्रणी नायक रूप में दीप्ति से युक्त तेज से चमकने वाले पुरुष को, उत्पन्न करते हैं । और जिस प्रकार युद्ध में जाने वाला योद्धा बड़े वेगवान् अश्व को तैयार करता है उसी प्रकार ऐश्वर्य का सेवन करने की इच्छा वाला मैं प्रजाजन बल से महान् सबको अति-क्रमण करने वाले पुरुष की याचना करता हूँ, ऐसे पुरुष को प्राप्त करूँ ।

आ मन्द्रस्य सन्निप्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्वयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कुविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ऐश्वर्य का विभाग करने के इच्छुक या उसको चाहने वाले लोग ज्ञानी पुरुष को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सबको आनन्द देने वाले पुरुष के सर्वश्रेष्ठ, लज्जा न दिलाने वाले परम ज्ञान को स्वयं सेवन करने और अन्यो को प्रवचन द्वारा दान करने वाले हम लोग,

सदा पाप मल आदि के भस्म करने वाले तेजस्वी पुरुषों के बीच में दानशील, तेजस्वी और हृदय से शिष्य को चाहने वाले, दिव्य कान्ति से प्रकाशमान, क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से युक्त, ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को आचार्य, गुरु और उपास्य रूप से वरण करें ।

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तवर्हिषः ।

यतस्तुचः सुरुवं विश्वदैव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ५।१७

भा०—जिस प्रकार यज्ञवेदी में कुशाएँ बिठाने हारे याज्ञिक लोग, सुख प्राप्त करने के लिये अपने आगे अग्नि का आधान या स्थापन करते हैं, उसी प्रकार विस्तृत प्रजाओं के स्वामी प्रजास्थ जन, सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये, बल और ऐश्वर्यों को अन्न के समान भोगने वाले अथवा युद्धों में कीर्तिमान्, उत्तम दीप्ति और रुचि वाले, विजयेच्छुक सैनिकों के हितकारी, दुष्टों को रूलाने वाले, दान देने और सत्संग करने वाले लोगों की और कर्म करने वाले उद्यमी लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले, अग्रणी नायक को, सबसे पूर्व या सबके समक्ष अध्यक्ष रूप से स्थापित करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

पार्वकशोचे तव हि क्षयं परि होतय्यशेषु वृक्तवर्हिषो नरः ।

अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं घेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे नायक ! हे पवित्र करने वाले तेज को धारण करने वाले, हे सुख ऐश्वर्य्यादि के देने वाले ! पृथिवीराज्य को बढ़ाने वाले नेताजन, संगत होने योग्य अवसरों, युद्धों और सभा भवनों में तेरी सेवा करने की इच्छा करते हुए, प्राप्त करने योग्य तेरे ही निवास गृह की शरण लेते हैं । तू उनको धन आदि प्रदान कर ।

आ रोदसी अपृणदा स्वमर्हज्जातं यदेतमपसो अधारयन् ।

सो अध्वराय परिणीयते कुविरत्यो न वाजसातये चनोदितः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो रहा है,

और महान् तथा उत्पन्न और प्रकाशस्वरूप को क्रिया वाले जीव धारण करते हैं, वही अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर जीवन को नाश न होने देने का यज्ञ के लिये प्राप्त किया जाता है, वह रथ में लगे अश्व के समान देह में अन्न को अग्न २ में विभक्त कर देने के लिये पाचन करने के लिये उपयुक्त है, उसी प्रकार प्रजावान् पुरुष माता और पिता दोनों का अच्छी प्रकार पालन करे। बड़े भारी उत्पन्न सुख को पूर्ण करे। कर्मनिष्ठ, श्रमी, उद्योगी लोग उसका धारण पोषण करें। वह परपीड़ारहित पालनादि कार्य के लिये प्राप्त किया जाय। वही सग्राम और वेग के लिये अश्व के समान ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने और विभाग करने या दान देने के लिये, प्रवचन कार्य में, शासन और उपदेश के कार्य में नियुक्त किया जाय।

नमस्यत हव्यदार्तिं स्वध्वरं दुवस्यतु दम्यं ज्ञातवेदसम् ।

रथीर्जतस्य वृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ग्रहण करने और खाने योग्य अन्नां को देने वाले, उत्तम पालक और अहिंसक स्वामी को सदा आदर से नमस्कार करो और दानशील दमन करने में समर्थ और सब गृहों, गृहस्थित प्रजाजनो के हितकर, ज्ञानवान् और ऐश्वर्य की सेवा परिचर्या करो। वह उत्तम महारथी, बड़े भारी राष्ट्र और सत्य ज्ञान और न्याय का देखने-हारा, स्वयं अग्नि के समान तेजस्वी, सब दानशील एवं तेजस्वी पुरुषों में सबसे आगे अध्यक्ष रूप से स्थापित करने योग्य है।

तिस्रो यदस्य समिधः परिज्मन्तोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।

तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजं लोकेषु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सर्वव्यापक महान् अक्षितत्व की तीन दीप्ति युक्त ज्वालाएँ हैं। वे तीनों कान्तियुक्त और मृत्युभय से रहित होकर सबको पवित्र करती हैं। अथवा उन तीनों को कामना करने हारे निर्भय विद्वान्

प्राप्त होते और साधते हैं । अग्नि के उन तीनों में से एक प्रकार की दीप्ति को मरणधर्मा जीवों में अन्नादि के भोक्ता जाठराग्नि और स्थूलाग्नि रूप से पुष्ट करते हैं और शेष दोनों विद्युत् और सौर-अग्नि सर्वोत्पादक लोह अर्थात् अन्तरिक्ष और सूर्य में प्राप्त होते हैं । उसी प्रकार महान् तथा युद्धादि में सर्वत्र जाने वाले तेजस्वी पुरुष की तीन शक्तियाँ अविनाशी और तेजोयुक्त होकर राष्ट्र को शुद्ध पवित्र करें । अथवा मृत्युभय से रहित, कामना वाले प्रजागण उन तीनों को प्राप्त हो । उनमें से एक को मरण-शील प्रजाजन में पालन करने वाली अर्थात् राष्ट्रपालक और रक्षक रूप से रखें । और दो समीप के पड़ोसी राष्ट्र को प्राप्त हो अर्थात् उनके मुकाबले पर हों । राजा की शक्ति के तीन भागों में से एक राष्ट्र की रक्षा करे, दो भाग उदासीन और शत्रु राष्ट्रों का मुकाबला कर सकें ।

विशां क॒र्विं वि॒श॒पतिं॑ मा॒नु॒षी॒रिषः॑ सं सी॒म॒कृ॒ण्वन्त॒स्वधि॑तिं न तेज॑से । स उ॒द्व॒तो॑ नि॒व॒तो॑ या॒ति वे॒वि॒प॒त्स गर्भ॑मेषु भुव॑नेषु दी॒ध॒रत् ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्यों की सेनाएं तेज की वृद्धि करने के लिये शस्त्र को अच्छी प्रकार चमकाती हैं, उसी प्रकार धनैश्वर्यादि के इच्छुक प्रजागण प्रजागणों के तेज को बढ़ाने के लिये प्रजाओं के 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण और पालन करने में समर्थ, क्रान्तदर्शी, समस्त प्रजाओं के पालक पुरुष को सब प्रकार संस्कृत करें । वह ऊपर के और नीचे के सब स्थानों पदों को प्राप्त करे । अथवा उत्तम बलशाली और अधीन सामन्तों को भी प्रयाण द्वारा वश करे । वह इन सब भुवनों या प्रदेशों के बीच में भीतरी रहस्य भाग को व्याप ले और उसको धारण करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स जि॒न्वते॑ जु॒ठरे॑षु प्रज॒जि॒वान्वृ॑षां चि॒त्रेषु॑ ना॒न॒द॒न्न सि॒ंहः ।

वै॒श॒वा॒न॒रः पृ॑थु॒पा॒ज्ञा अ॒म॒र्त्यो॑ वसु॒ रत्ना॑ द॒य॒मानो॑ वि द्रा॒शु॒रे ॥ ११ ॥

भा०—वह बलवान् जठरों में उत्पन्न जाठराग्नि के समान प्रमुख होकर, नाना प्रकार के ऐश्वर्यों के आधार पर सबका पालन करे और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो और सिंह के समान गर्जे । वह सब मनुष्यों का नायक तथा साधारण मनुष्यों से ऊँचा और बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर, कर-प्रदानशील प्रजा को नाना धन और राष्ट्र में वसने का अधिकार और रमणीय हीरा मुक्ता आदि और रमण करने योग्य उत्तम भोग्य पदार्थ विविध रूपों में देता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ।

वैश्वानरः प्रत्नथा नाक्रमारुहद्विवस्पृष्टं मन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जन्तयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृवि ॥१२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अनादि काल से आकाश के ऊपर चढ़ जाता है, उत्तम किरणों से सबको सुखी करता, प्राणिमात्र के लिये पुष्ट करता और समान रूप से अपना मार्ग तय कर लेता है, उसी प्रकार सबका नेता पुरुष, सनातन से चले आये दुःखरहित तेज के सर्वोपरि पद को प्राप्त करे और अपने उत्तम विचारों और उत्तम विचारवान् पुरुषों द्वारा प्रजा का कल्याण करता हुआ, तेज और विजय के सर्वोपरि दुःखरहित पद को प्राप्त करे । और प्राणिमात्र के लिये पूर्व के समान या अपने से पूर्व विद्यमान पिता आचार्यादि के समान पोषक अब्रादि ऐश्वर्य उत्पन्न करता हुआ, जागरणशील, सदा सावधान होकर, समान अर्थात् निष्पक्षपात मार्ग या मान आदर से युक्त मार्ग पर चले ।

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुकथ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि
क्षयम् । तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुचिताय
नव्यसे ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार सत् कारणस्वरूप, यज्ञ के योग्य, विशेष रूप से सर्वत्र पूर्ण प्रशंसा के योग्य, ध्रुलोक में विद्यमान विद्युत् को वायु धारण करता है, उस अनुत् वेग से जाने वाले, उत्तम दीप्ति युक्त, पीली रश्मियों

वाले अग्निरूप विद्युत् को नये से नये प्रयोगों के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको भूमि पर वेग से जाने वाला वायु के समान बलवान् वीर पुरुष स्थापित करता है उस, सत्य न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, दानशील प्रजापति के योग्य, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में निवास करने वाले, अनुत् मार्गों से जाने वाले, पीत वर्ण के वालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी वा प्रजाओं के कुशों को दूर करने वाले, उत्तम दीप्ति या संहारशक्ति से युक्त नायक को नई २ प्रेरणाओं के लिये प्रार्थना करें, वरें ।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतु दिवो रोचनस्थामुपवुधम् ।

अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १४

भा०—स्वयं शुद्ध, अन्यो को भी पवित्र करने वाले, जाने योग्य मार्ग में अति आवश्यक रूप से अपेक्षित या सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले, सुख को या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, प्रकाश का ज्ञान कराने वाले, स्वयं प्रकाश में विद्यमान, उपा काल में सूर्य और यज्ञादि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यो को जगाने वाले, आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के बीच भी सबके शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, अन्य प्रतिद्वन्द्वी से कभी स्पर्धा में न पराजित होने वाले अद्वितीय, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त उस महान् पुरुष को हम लोग आदर सत्कार पूर्वक प्राप्त हो और प्रार्थना करें ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।

रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१६॥

भा०—आनन्ददायक, ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, शुद्ध पवित्र स्वभाव के, दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, जितेन्द्रिय और दानशील, प्रशंसनीय, सब पदार्थों के स्वयं देखने और

दिखाने वाले, मनुष्यों के हितकारी रूप में दर्शनीय, रथ के समान अद्भुत, गृह के समान सबके शरण योग्य पुरुष को, धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करें । (२) परमेश्वर पक्ष में—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' है । विश्वदंष्ट्रा होने से 'विश्वचर्पणि' है । गृह के समान शरण योग्य, सर्वहितकारी, रस रूप होने और रमणयोग्य होने से रथ के समान, चित्र रूप होने से 'चित्र' है । हम उसकी प्रार्थना करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

विश्वामित्र ऋषि ॥ अग्निवैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ४, ६, ८, ९ जगती । ७, १० विराट् जगती । ११ भुरिक पङ्क्तिः ॥

एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विप्रो रत्ना विधन्त ध्रुवेषु गातवे ।

अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुपत् ॥ १ ॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, बड़े बलवान्, शिक्षा का उपदेश करने वाले पुरुष के हितार्थ धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोको में नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को तैयार करें । अग्रणी, ज्ञानी, विनीत पुरुष कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर विद्वानों की सेवा करे और सन्मार्ग से चलता हुआ सनातन से चले आये धर्मानुकूल कर्तव्यों को कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे ।

अन्तर्दुतो रोदसी द्रुस्म ईयते होता निर्वृत्तो मनुषः पुरोहितः ।

सूर्य बृहन्तं परि भूपति शुभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥

भा०—आकाश और भूमि के बीच सत्तापकारी, अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य गति करता है, उसी प्रकार अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला, सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ

वाले अग्निरूप विद्युत् को नये से नये प्रयोगों के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको भूमि पर वेग से जाने वाला वायु के समान बलवान् वीर पुरुष स्थापित करता है उस, सत्य न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, दानशील प्रजापति के योग्य, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में निवास करने वाले, अद्भुत मार्गों से जाने वाले, पीत वर्ण के वालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी वा प्रजाओं के क्लेशों को दूर करने वाले, उत्तम दीप्ति या संहारशक्ति से युक्त नायक को नई २ प्रेरणाओं के लिये प्रार्थना करें, वरें ।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतु दिवो रोचनस्थामुपवुधम् ।

अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १४

भा०—स्वयं शुद्ध, अन्यो को भी पवित्र करने वाले, जाने योग्य मार्ग में अति आवश्यक रूप से अपेक्षित या सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले, सुख को या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, प्रकाश का ज्ञान कराने वाले, स्वयं प्रकाश में विद्यमान, उषा काल में सूर्य और यज्ञादि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यो को जगाने वाले, आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के बीच भी सबके शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, अन्य प्रतिद्वन्द्वी से कभी स्पर्धा में न पराजित होने वाले अद्वितीय, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त उस महान् पुरुष को हम लोग आदर सत्कार पूर्वक प्राप्त हों और प्रार्थना करें ।

सुन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।

रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१६॥

भा०—आनन्ददायक, ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, शुद्ध पवित्र स्वभाव के, दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, जितेन्द्रिय और दानशील, प्रशंसनीय, सब पदार्थों के स्वयं देखने और

दिखाने वाले, मनुष्यों के हितकारी रूप में दर्शनीय, रथ के समान अद्भुत, गृह के समान सबके शरण योग्य पुरुष को, धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करें । (२) परमेश्वर पक्ष में—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' है । विश्वदष्टा होने से 'विश्वचर्पणि' है । गृह के समान शरण योग्य, सर्वहितकारी, रत्न रूप होने और रमणयोग्य होने से रथ के समान, चित्र रूप होने से 'चित्र' है । हम उसकी प्रार्थना करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

विश्वामित्र ऋषि ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ४, ६, ८, ९ जगती । ७, १० विराट् जगती । ११ भुरिक पक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विप्रो रत्ना विघन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवो अमृतो दुवस्यत्यथा घर्माणि सनता न दूदुपत् ॥१॥

भा०—उद्धिमान् पुरुष सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, बड़े बलवान्, शिक्षा का उपदेश करने वाले पुरुष के हितार्थ धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोकों में नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को तैयार करें । अग्रणी, ज्ञानी, विनीत पुरुष कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर विद्वानों की सेवा करे और सन्मार्ग से चलता हुआ सनातन से चले आये धर्मानुकूल कर्तव्यों को कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे ।

अन्तर्दूतो रोदसी द्रुम ईयते होता निवृत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूपति शुभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥

भा०—आकाश और भूमि के बीच संतापकारी, अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य गति करता है, उसी प्रकार अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला, सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ

मननशील पुरुष भी आसन पर विराजकर, राजवर्ग और प्रजावर्ग या वादी-प्रतिवादी या मित्रवर्ग-शत्रुवर्ग दोनों के बीच में दूत के समान सबका कार्य साधने हारा, और दुष्टों का संतापजनक और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारा होकर प्राप्त हो । और जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि बड़े भारी महल को अपने प्रकाशमान किरणों से जगमगा देता है, उसी प्रकार प्रेरित या प्रार्थित बुद्धि और कर्तव्यों को अपने में धारण करने वाला अग्रणी मुख्य पुरुष, विद्वानों द्वारा और अपने उत्तम गुणों से, बड़े भारी निवासयोग्य सभाभवन और राष्ट्र को भी अलंकृत करता और अपने वश करता है ।

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रसो अग्निं महयन्त
चित्तिभिः । अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्सुम्नानि
यजमान आ चके ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस प्रकार काष्ठसञ्चयादि द्वारा और नाना कर्मकाण्ड द्वारा, यज्ञो को बतलाने वाले और यज्ञ को साधने वाले अग्नि को आदर और श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित करते हैं, उसके आश्रय पर सब कार्य करते और उसके आश्रय यज्ञशील पुरुष सब सुखों की कामना करते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष परस्पर के सत्सगो, मैत्रीभावों, व्यवहारों और लेने देने के कार्यों के संज्ञापक, और यज्ञ, ऐश्वर्य लाभ और संग्राम के साधने वाले ज्ञानवान् नायक राजा को, अपने २ ज्ञानों और कर्मों के द्वारा आदरपूर्वक सेवा करें, उसका मान करें । जिसके आश्रय रहकर ज्ञान, कर्म और वाणियों को सभी लोग अच्छी प्रकार धारण करते हैं उसी के आश्रय दानशील और मित्रभाव से रहने वाला पुरुष भी नाना सुखों को चाहता है ।

पिता यज्ञानामसुरो विप्रश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघतामि ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्षसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः

भा०—वह परमेश्वर अग्नि के समान स्वयंप्रकाश, सब श्रेष्ठ कर्मों, सद्ब्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता है। वह महान् शक्तिमान् संसार के समस्त भूगोलों को गति देने वाला, सब प्राणियों के प्राणों में भी रमण करने वाला, प्राणों का प्राण, विद्वानों को विज्ञान से युक्त करने से विमान के समान संसार महासागर से पार करने वाला और विद्वान् पुरुषों के लिये ज्ञानमय है। वह नाना रूपों से सूर्य पृथिवी के समान चेतन और अचेतन, प्रकाशवान् अप्रकाशवान्, सत्-स्यत्, प्राण रयि आदि में प्रविष्ट है, व्यापक है। वह बहुतों को प्रिय लगने हारा, क्रान्तदर्शी, नाना तेजों और लोकों से जीवों का कल्याण करता और सुखी बनाता है। (२) इसी प्रकार बलवान् पुरुष भी सब सत्संगों, सद्ब्यवहारों, मैत्री भावों का पालक, विद्वानों के मान का पात्र, ज्ञानवान् होकर, प्रजा और शासकवर्ग दोनों में मध्यस्थ होकर सर्वप्रिय हो और अपने पराक्रम से भी सबको सुखी करे।

चन्द्रसग्निं चन्द्ररथं हरिं व्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।

विगाहं तूष्णिं तविंषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः । ५।२०

भा०—विद्वान् पुरुष सबको आनन्द देने वाले, सुवर्ण के समान आल्हादजनक, सुवर्ण के बने रथ वाले वा चन्द्र के समान रमणीय रूप वा चन्द्रवत् सर्वाल्हादक एवं शान्तिकारक गुणों से युक्त, वेगवान् अश्वों और विद्वानों के वरण करने वाला, सब नायकों के अग्रणी, विद्युत् के समान प्रजाओं में अध्यक्ष पद पर विराजने वाले, सबको प्राप्त करने सबको सुख देने वाले, युद्ध में परसैन्यों का मथन करने हारे, अति वेगवान्, बलवती सेनाओं से घिरे हुए, सबके पालक, उत्तम लक्ष्मी और शान्ति से युक्त पुरुष को नायक रूप से इस राष्ट्र में धारण करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—यह प्रभु सर्वाल्हादक होने से 'चन्द्र' है। आनन्दमय रस होने से 'चन्द्ररथ' है। दुःखहारी शीलवान् होने से 'हरिव्रत' है।

सर्वव्यापक होने से 'विगाह' है । वह बलवती समस्त शक्तियों से युक्त सर्वपालक सर्व सम्पदाओं का स्वामी है । उसको सब देव, सूर्यादि तथा विद्वान् जन अपने में धारण करते हैं । इति विशो वर्गः ॥

अग्निर्देवेभिर्मनुष्यश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुषेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जोरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥

भा०—वह अग्रणी नायक पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर, बुद्धि और कर्म के द्वारा दानशील, तेजस्वी, कामनावान् मनुष्यों से, मननशील पुरुषों के नाना रूपों का परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव विस्तृत करता हुआ, रथों का स्वामी, उत्तम उपदेशों को साधने वाले पुरुष के साथ मिलकर विजयी, दमनशील, हिंसाकारी शत्रुओं का नाश करने वाला राष्ट्र के भीतर प्रवेश करे ।

अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्युर्जा पिन्वस्व समिधो दिदीहि नः ।
वयांसि जिव्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥

भा०—हे विद्वन् तेजस्वी पुरुष ! तू उत्तम सन्तान के प्राप्त होने पर उसमें उत्तम उपदेश कर । और उत्तम अन्नरस से हमें तृप्त कर । हमें सन्मार्ग में चला, अथवा हमें प्रेम से चाह । उत्तम अन्नो और बलों को दे और स्वयं प्राप्त कर । अपने से बड़ों को अन्नादि से तृप्त प्रसन्न किया कर । हे जागरणशील, सदा सावधान जितेन्द्रिय ! तू ज्ञानादि के दाता पुरुषों के बीच में उनको चाहने वाला और विद्वानों के बीच उनके उत्तम ज्ञान और कर्म को धारण करने वाला हो । (२) वह परमेश्वर पुत्र रूप मनुष्यों को उपदेश करता, अन्न से पालता, वृष्टियां प्रदान करता, सब बलों और जन्तुओं को बढ़ाता, सबको धारण करता है, वह सब में तेजस्वी, विद्वानों में भी सर्वोत्तम, ज्ञानवान् है । सदा जागृत प्राणरूप रहने से 'जागृवि' है ।

विश्वपतिं यद्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाध-
ताम् । अध्वराणां चेतनं ज्ञातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूति-
भिर्वृधे ॥ ८ ॥

भा०—श्रेष्ठ पुरुष, समस्त प्रजाओं के पालक, महान्, अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, सबको नियम में रखने वाले, उत्तम कर्मों और बुद्धियों के बीच में आत्मा के समान उनका नियन्ता और विद्वानों और हिंसा न करने वाले बलवान् पुरुषों के बीच में स्थित होकर उनको भी नियम में रखने वाले, देह में चेतन आत्मा के समान स्वयं भी चित्-स्वरूप व अन्यो को ज्ञान देने वाले, सब पदार्थों के ज्ञाता वा सब पेश्वों और ज्ञानों के स्वामी परमेश्वर और राजा की सभी लोग अपनी वृद्धि करने के लिये उसके सेवनीय गुणों द्वारा स्तुति करते हैं ।

विभावा देवः सुरणः परि त्रितीरग्निर्वभूव शवसा सुमद्रथः ।

तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूपेस दस आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥

भा०—ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष, विशेष दीप्ति से युक्त, दानशील, तेजस्वी, विजयेच्छुक, उत्तम रणशील और बल से उत्तम शोभायुक्त रथसैन्य का स्वामी होकर, भूमियों पर विजय करता है । दमन के कार्य में बहुत से प्रजाजनो का पोषण करने वाले उस नायक के कर्तव्यों और नियमों का हम गृह में बहुत सी सन्तानों का पोषण करने वाले होकर, उत्तम व्यवहारों और पापादि बुरे कार्यों के त्याग से सब प्रकार से पालन करें ।

वैश्वानरं तव धामान्या चक्रे येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।

ज्ञात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि
त्मता ॥ १० ॥

भा०—हे समस्त लोकों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे प्रधान

नायक ! और परमेश्वर मैं तेरे उन धारण करने योग्य तेजो, उत्तम गुणों और चरित्रों को जानना चाहता हूँ । हे विशेष रूप से सबके देखने हारे ! जिनसे तू सर्वत्र या स्वयं समस्त सुखों को प्राप्त करने और अन्यो को भी सुख प्राप्त कराने और शत्रुओं को ताप देने और अधीनों को उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ है । तू ही अधीनों को उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ है । तू ही सूर्य या अग्नि के समान प्रकट और प्रसिद्ध होकर समस्त लोकों और प्राणियों को और आकाश और पृथिवी को पालता और पूर्ण करता है । हे विद्वन् ! तू स्वपक्ष और परपक्ष, एवं शासकवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को पूर्ण करता है । हे ज्ञानवन् ! तू स्वयं अपने महान् सामर्थ्य से उन सब लोकों को व्याप रहा है, सबको अपने अधीन कर रहा है ।

वैश्वानरस्य दंसताभ्यो बृहदरिणादेकः स्वप्स्यया कविः ।

उभा पितरा सहयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥२१॥

भा०—सबके सञ्चालक, सर्वहितकारी, प्रधान पुरुष का दुःख नाश करने वाली क्रियाओं से बड़ा भारी ऐश्वर्य प्राप्त होता है । तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार बड़े भारी तेज.सामर्थ्य से आकाश और भूमि को बहुत जल से पूर्ण करता है, उसी प्रकार अकेला ज्ञानवान् पुरुष अपने शुभ कर्म करने की इच्छा और संकल्प से बहुत वीर्यवान् माता और पिता या पिता और गुरु दोनों पालकों का मान आदर करता हुआ प्रसिद्ध होता है । (२) परमेश्वर अपनी महान् शक्तियों से महान् ब्रह्माण्ड को गति देता है । वही सबका कर्त्ता, अपनी ज्ञान और कर्मशक्ति से एक अद्वितीय, बड़े भारी उत्पादक वीर्य और बल से सब जगत् के पालक सूर्य और पृथिवी दोनों को महान् बनाता हुआ प्रकट होता है । इति एकविंशो वर्गः ॥

[४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ स्वराट् पक्तिः ।

२, ३, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

सामित्संभित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।

आ देव देवान्यजथाय वज्रि सखा सखीन्त्सुमना यद्यग्ने ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी पुरुष ! जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक समिधा पाकर प्रज्वलित होता है उसी प्रकार तू भी शुभ चित्त और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर, प्रत्येक ज्ञानदीप्ति से स्वयं ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर । प्रत्येक कान्ति और पवित्र कार्य से हमें शुभ ज्ञान और नाना ऐश्वर्य प्रदान कर । हे विद्वन् ! तू सत्संग और मैत्रीभाव के लिये विद्वान् पुरुषों को धारण कर । अथवा ज्ञान प्रदान के लिये विद्या की कामना करने वाले शिष्यगण के प्रति विद्या-दान करने के प्रयोजन से प्रवचन द्वारा विद्या का उपदेश कर । और तू मित्र होकर अपने मित्ररूप हमको उत्तम चित्त से युक्त होकर प्राप्त हो और ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान कर ।

यं देवासुस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।

सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नुस्तनूनपाद् घृतयौर्नि विधन्तम् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् तीन सवन रूप से अग्नि में दिन में तीन बार यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार जिसको विद्वान् पुरुष प्रतिदिन तीन बार सत्संग करें वह विद्वान् अग्रणी पुरुष सर्वश्रेष्ठ, मृत्यु दुःख से बचाने वाला, सबका स्नेही, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी हो । वह प्राण के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देने हारा विद्वान्, घृत के आध्रय में स्थित, तथा नाना कार्य करने वाले हमारे इस शरीर और समाजरूप को मधुर अन्नो उत्तम सुखों और पारणामो से युक्त करे ।

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिच्छः प्रथमं यजध्वै ।

अच्छा नमोभिर्वृषभं वृन्दध्वै स देवान्यक्षदिपितो यजीयान् ॥३॥

भा०—कष्टों को अन्धकार के समान दूर करने और सबसे वरण करने योग्य दीप्ति, अन्नों और भूमियों के दान देने, सत्संग और मैत्रीभाव

की वृद्धि के लिये, सर्वश्रेष्ठ दानशील पुरुष को प्राप्त होती है। और वह सर्वश्रेष्ठ दीप्ति बलवान्, मेघ के समान वर्षणशील को भी नमस्कार आदि आदर योग्य वचनों से स्तुति करने के लिये प्राप्त हो। वह स्वयं इच्छावान् होकर सब से बड़ा दानशील, सत्संगयोग्य एवं सुहृद् होकर विद्वान् पुरुषों को दान करे, सत्संग दे और मित्रभाव से मिले।

ऊर्ध्वो वाँ गातुरध्वरे अकार्युर्ध्वा शोचीषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभान्यसादि होतो स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हे राजा प्रजाजनो ! तुम दोनों के परस्पर हिंसा से रहित कार्य में तुम दोनों के ऊपर उच्च कोटि का उपदेश करने हारा विद्वान् नियत किया जावे। जिससे सर्वश्रेष्ठ प्रकाश सबको प्राप्त हों। आकाश के बीच में सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश का देने वाला गुरु और राष्ट्र को वश करने वाला राजा उच्चासन पर विराजे। हम लोग विद्वानों का विशेष सत्कार करने वाला तथा उनके मान को बढ़ाने वाला आसन विछावें।

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभिभं यज्ञं विचरन्त पूर्वीः ॥५॥ २२।७

भा०—सात प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान देने योग्य पदार्थों को, यज्ञ के सप्त होत्र आदि कर्मों के समान, इच्छापूर्वक स्वीकार करते हुए, सत्यज्ञान, अन्न तथा ऐश्वर्य के द्वारा समस्त राष्ट्र को व्यापते हुए, अपने विपक्ष का मुकाबला करें। तुम संग्रामों में कीर्तिमान् वीर पुरुषों से बने स्वरूप को धरने वाली पूर्व से ही तैयार, सुशिक्षित सेनाएं प्राप्त करो। इस परस्पर के मैत्रीभाव से व्यवस्थित राष्ट्र को प्राप्त होओ। राष्ट्र की 'सप्तहोत्र' सात प्रकृतियां हैं। (२) अध्यात्म में—देहगत सात प्राण या सर्पणशील प्राण 'सप्तहोत्र' हैं। उनको मानस् बल से वश करते हुए सत्य के बल से 'विश्व' अर्थात् आत्मतत्त्व को प्राप्त होते हैं। 'नृ'

अर्थात् आत्मा को रूपवान् करने वाली पूर्व की वासनाएं ही प्राप्त होने योग्य देहों में प्रकट होकर इस आत्मा को विविध भोगों में प्राप्त होती हैं ।
इति द्वाविंशो वर्गः ॥

आ भन्दमाने उपसा उपाके उते स्मयेते तन्वा विरूपे ।

यथा नो मित्रो वरुणो जुजोपदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार स्वरूप में भिन्न २ प्रकार के रूपों वाले दिन और रात्रि मानों परस्पर मुस्कराते हैं, विकसित होते हैं, उसी प्रकार शरीरों में विभिन्न २ प्रकार के रूप, रुचि और कान्ति और रचना वाले स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे के सदा समीप रहते हुए, एक दूसरे का कल्याण और सुख करते हुए मुस्कराया करें, सदा प्रसन्नवदन होकर रहे । जिससे महान् गुणों और तेजों से युक्त होकर स्नेही मित्र, वरुण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और विद्वान् शिष्यों से युक्त आचार्य, प्राणों के बल से युक्त शत्रुहन्ता बलवान् भी हमें प्रेम से स्वीकार करे ।

दैव्या होतारं प्रथमा न्यूज्जे सप्त पृदासः स्वधया मदन्ति ।

ऋतं शंसन्त ऋतमिन्न आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥

भा०—दिव्य गुणों को धारण करने वाले तथा एक दूसरे को सुख देने वाले स्त्री पुरुष राष्ट्र में मुख्य हैं, उनको अच्छी प्रकार कार्य दक्ष करता हूँ, क्योंकि उनके आश्रय पर ही देश देशान्तर में भ्रमण करने वाले, प्रेम-सम्पर्क के योग्य विद्वान् जन अपनी धारणाशक्ति से स्वयं प्रसन्न होते और औरों को तृप्त करते हैं । वे व्रतों का पालन करने हारे, अपने व्रतों का ही चिन्तन करते हुए, तथा सत्य वेदज्ञान का उपदेश करते हुए, सत्य धर्म का पालन और सत्यस्वरूप परमेश्वर का ही उपदेश करते हैं ।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मानुष्यैर्भिरग्निः ।

सरस्वती सारस्वतेभिर्वाक् त्रिस्तो देवीर्विहिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सर्वप्राणिसमूह के पालक-पोषक सूर्य की दीप्ति, उसकी अन्य पालक पोषक ताप विद्युत् आदि शक्तियों के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर, इस अन्तरिक्ष और इस भूलोक को प्राप्त होती है, उसी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करने वाले मुख्य पुरुष की प्रजापालक नीति, 'भरत' अर्थात् अन्य प्रजापोषक पुरुषों की शक्तियों या सेनाओं और सभाओं से समान प्रीति से युक्त होकर, इस लोक अर्थात् प्रजाजन पर विराजे, उत्तम पद प्रतिष्ठा प्राप्त करे। 'देव' अर्थात् विद्वान् और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर पृथिवी, अर्थात् पृथिवी-निवासिनी प्रजा इस लोक पर प्रतिष्ठा से विराजे। अग्नि के समान तेजस्वी नायक मनन शील पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर विराजे। 'सरस्वती' अर्थात् वेदवाणी का अभ्यास करने वाले विद्वानों से युक्त उत्तम ज्ञानवाली विद्वत्-सभा इस लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करे। इस प्रकार तीनों देवियां हमें प्राप्त होकर इस लोक में आदरपूर्वक विराजें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद के आग्नी सूक्त।

तन्नस्तुरीपमर्धं पोषयित्नु त्वेव त्वष्टुर्वि रराणः स्यस्व ।

यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तावा जायते देवकामः ॥ ६ ॥

भा०—हे दानशील कारीगर ! तू दुखों और सकटों से पार उतारने वाला तथा पोषण करने वाला बल प्रदान करता हुआ हमें दुःख बधनों से मुक्त कर, जिससे वीर्यवान्, कर्मकुशल, उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् उपदेष्टा का संगलाभ करने और शस्त्रास्त्र में कुशल, उत्तम ज्ञानदाता जनों की कामना करने वाला पुत्र, शिष्य और प्रजाजन उत्पन्न हो सके।

वनस्पतेऽव सृजोष देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।

सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥

भा०—हे सेवन करने योग्य उत्तम भोग्य ऐश्वर्यों के पालन करने हारे, एवं महावृक्ष के समान अपने से सेवन करने वाले आश्रित जनों के

पालक ! राजन् ! विद्वन् ! तू देव अर्थात् विद्वान् वीर और कामनाशील पुरुषों को अपने अधीन कर, उनको योग्य मार्ग पर चला । और उनको अपने समीप रखकर योग्य बना । अग्नि जिस प्रकार 'हवि' अर्थात् चरु को वायु आदि तत्वों तक छिन्न भिन्न करके पहुँचाता है और लोक में रोगनाशक होकर शान्ति उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अग्रणी नायक, विद्वान् और स्वामी पुरुष, ग्रहण करने योग्य अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को भी शान्तिदायक होकर, प्रचुर मात्रा में दे । वह ही दानशील होकर अधिक सत्याचरणशील, ईमानदार और सत्य के बल से स्वयं और अन्यो को तराने वाला होकर दान करे और अन्यो से मित्रभाव से वर्त्ते । जिससे वह दिव्य पुरुषों, विद्वानों के बीच में उत्तम जन्मों को प्राप्त करे ।

आ याह्यग्रे समिधानो अर्वाङ्गिन्द्रेण देवैः सुरथै तुरेभिः ।

वर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥ २३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाशक तेजस्विन् ! सूर्य या अग्नि जिस प्रकार प्रदीप्त होकर प्रकाशयुक्त किरणों और वायु से प्रकट होता है, उसी प्रकार तू भी अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र सहित शत्रुनाशक वीर सेनापति सहित तथा अति शीघ्रगामी विजय कामना वाले वीर पुरुषों सहित और रथसैन्य सहित हमारे पास प्राप्त हो । और हमारे बीच वृद्धि तथा प्रतिष्ठायुक्त प्रजाजन पर उपविष्ट हो । इसी प्रकार उत्तम पुत्रों की पूज्य माता के समान उत्तम रीति से प्रजाओं को मानव-कर्षों से त्राण करने वाली अद्वैत शक्ति, हमारे वृद्धिशील राष्ट्र पर विराजे । दानशील और ऐश्वर्य के इच्छुक वीर और दानशील धनी और ज्ञानी पुरुष उत्तम वाणी, उत्तम दान और उत्तम स्तुति प्रार्थना से दीर्घायु होकर, स्वयं भी तृप्त हों और हमें भी खूब तृप्त, आनन्द प्रसन्न करें । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ मुरिक् पक्तिः । ३ पक्तिः ।

६ स्वराट् पक्तिः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ७, १०, निचृत् त्रिष्टुप् । ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥

अत्यग्निरुपसथ्ये कितानोऽवोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।

पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वहिरावः ॥ १ ॥

भा०—दीप्तिमान् सूर्य जिस प्रकार प्रभात वेलाओं में सब सोते हुए प्राणियों को जगाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् विद्वान् स्वयं ज्ञानवान् मेधावी, सर्व विद्याओं से पूर्ण, क्रान्तदर्शी पुरुषों के चरण चिन्हों पर चलने-हारा होकर सबको जगावे और स्वयं भी प्रत्येक ज्ञान का ज्ञाता हो । वह विस्तृत ज्ञान और बल से युक्त होकर विद्वानों के प्रिय तथा उत्तम गुणों के इच्छुक पुरुषों द्वारा प्रकाशित होकर, कायों के भार को वहन करने में समर्थ विद्वान्, अन्धकार के समान अज्ञान को दूर करके ज्ञान के द्वारा मार्गों को खोले ।

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमैभिर्गोभिः स्तोतृणां नमस्य उक्थैः ।

पूर्वाऋतस्य सन्दर्शश्चक्रानः सं द्रुतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार भौतिक अग्नि काष्ठसमूहों से बहुत बढ़ता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष विद्याओं का उपदेश करने वाले वेद के सूक्तों, उत्तम वेदवाणियों से खूब अच्छी प्रकार बढ़ता है । और उत्तम उपदेष्टाओं के बीच में उत्तम वचनों से आदर करने योग्य है । वह सत्य ज्ञान को अच्छी प्रकार दिखलाने वाली, सनातन से चली आई वेदवाणियों का अभ्यास करना चाहता हुआ, विशेष रुचि के अनुसार स्वयं सेवा किया जाकर, कामनाशील शिष्यजनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है ।

(२) परमेश्वर ज्ञानमय सर्वप्रकाशक है । वह वेदवाणियों द्वारा महान् है । वह स्तुतिकर्मों के वचनों से स्तुत्य है । वह पूज्य उपासित होकर

ज्ञानदर्शक सनातन वेदवाणियो को प्रभातो के सूर्य के समान, प्रकाशित करता है ।

अर्घाय्यग्निर्मनुषीषु विद्वत्पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।

आ ह्यृतो यजतः सात्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जलों के बीच में विद्युत् जिस प्रकार गतिशील बल से सब कार्यों को साधता हुआ स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों की इन प्रजाओं में, कर्मों और ज्ञानों और आस प्रजाओं के बीच में सुरक्षित, प्रजाओं का सुहृत्, उनको मरण से बचाने वाला, प्राणों के बीच विद्यमान आत्मा के समान, स्थापित किया जाना चाहिये । वह सत्य ज्ञान और न्याय के अनुसार सब कार्यों को साधता हुआ, कान्तियुक्त, दानशील तथा सत्सग के योग्य और पूज्य होकर, शैल-शिखर के समान उन्नत पद और सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त पद पर विराजे और वह विशेष विद्याओं से पूर्ण, विद्वानों और मननशील पुरुषों के बीच में वरण या स्वीकार करने योग्य हो । परमेश्वर सबके भीतर प्राणों का प्राण और सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं के भीतर व्यापक, ज्ञान से प्राप्त किया जाता है । वह सर्वपूज्य कान्तिमान् परमसेव्य पद पर विराजता और विशेष रूप से पूर्ण होकर मननशील विद्वानों से स्तुत्य है ।

मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो ज्ञातवेदाः ।

मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार खूब प्रदीप्त अग्नि मनुष्य के मित्र के समान सहायकारी होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष जो ज्ञानों और गुणों में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाता है वह स्नेही मित्र के समान सबका सुहृत् हो । वह सबको मरने से बचाने वाला, ज्ञान और अन्न का देनेहारा सर्वधेष्ठ और कष्टों का वारण करने वाला, सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का स्वामी हो । वही सबका स्नेही सुहृद् होकर सब किसी की भी हिंसा या

पीड़ा की कामना न करता हुआ, अहिंसा-व्रती, स्वयं दृढ़ इच्छाशक्ति से सम्पन्न और सबको प्रेरणा करने में समर्थ, तथा मन इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हो। वही नदियों के समान वेग से जाने वाली सेनाओं या प्रजाओं और पर्वतों के समान अभेद्य, दृढ़ एवं पालन शक्तियों से युक्त बड़े २ शासक जनों का भी मित्र, सहायक हो जाता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—हृदय में अतिदीप्त प्रकाशवान् परमेश्वर ही परम मित्र है। वह सब कुछ देता, सर्वश्रेष्ठ, सर्वेश्वर्य का स्वामी, अहिंसक, पालक, प्रेरक, दमनकर्त्ता, प्राणों, जलों, प्रकृति के परमाणु और पर्वतों और पालकतत्वों का मापक और पालक है।

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यद्वश्चरणं सूर्यस्य । पाति
नाभां सप्तशीर्षाणामग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥२४॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि तत्व गमनशील पृथिवी के सर्वश्रेष्ठ तथा प्रिय अन्न आदि की रक्षा करता है, वही सूर्य के गमन या कार्य की रक्षा करता है, वही सात विभागों में विभक्त वायु की रक्षा करता, वह सब दिव्य पदार्थों के स्वरूप को नाश होने से बचाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष अपने प्रिय मित्र पुत्र आदि को पाप से बचावे। वही जाने वाले मार्गगामी पुरुष के आगे रखने योग्य पद या मार्ग की रक्षा करे। वही स्वयं महान् होकर सूर्य के कर्त्तव्य अर्थात् उसके समान प्रकाशक, तेजस्वी, पालक आदि होने के उत्तम कर्त्तव्य का पालन करे। वह नाभि या केन्द्र में विराज कर शिर के समान सात मुख्य अंगों से युक्त राज्य का पालन करे। वह अग्रणी महान् दर्शनीय तथा विस्तृत सामर्थ्यवान् होकर, सब व्यवहारकुशल विद्वानों और ऐश्वर्य के इच्छुक तथा दानशीलों और विद्यादाताओं के हर्ष की और उनके सन्तोषकारक व्यवहारों की, उनके उपमा या तुल्यता देने वाले कर्त्तव्यों की रक्षा करे। अध्यात्म में—आत्मा भोक्ता पायिंव शरीर के प्रिय श्रेष्ठ प्राप्तव्य ज्ञान की रक्षा करता, बड़े प्रेरक प्राण की रक्षा करता, वह सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण को

नाभि में रखता और देवों अर्थात् प्राणों के हर्षहेतु और ज्ञान चेतना के देने वाले सामर्थ्य को रखता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ऋभुश्चक्र ईडयं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।

सुसस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदृशी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—ऋतु अर्थात् जल को उत्पन्न करने वाला मेघ या स्रोत जिस प्रकार उत्तम, सुन्दर और वेग से चलने वाले जल को उत्पन्न करता है, और जिस प्रकार खूब दीप्तिमान् अग्नि या सूर्य उत्तम स्वरूप को दिखलाता है, उसी प्रकार समस्त ज्ञानों को और जानने योग्य पदार्थों को जानता हुआ, सत्य ज्ञान से प्रकाशित एवं महान् तेजस्वी पुरुष, अपना सुन्दर नाम, कीर्ति, यश करे और उत्तम व्यापक शासन करने में समर्थ हो । घी जिस प्रकार सोने वाले या आराम से रहने वाले पुरुष के चर्म की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि सोते हुए पथिक के स्थान की जंगली प्राणियों से रक्षा करता है, उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी पुरुष, प्राप्त हुए सोते हुए, असावधान प्रजाजन के शरीरों की उनके प्राप्त करने योग्य सुखों की और उनके गृहादि स्थानों की और स्वयं अपने तेजोयुक्त पद की विना प्रमाद के रक्षा करे ।

आ योनिर्मृशिर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।

दीद्यान्ः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मतिरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार घृत से युक्त यज्ञस्थान में स्थित रहती है और जिस प्रकार विद्युत् बड़े शब्द करने वाले जल से युक्त मेघरूप आश्रयस्थान में स्थित रहती है, उसी प्रकार अग्रणी पुरुष जल और घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त घर को प्राप्त कर उसमें रहे और नायक पुरुष जल सम्पदा से युक्त राष्ट्र पर शासक बनकर रहे और स्वयं कामना-शील होकर विस्तृत उपदेश करने वाले और चाहने वाले प्रेमी विद्वान् पुरुष को प्राप्त हो । स्वयं चमकता हुआ, शुद्ध पवित्र, निश्छल आचरण से

युक्त, महान्, सबको पवित्र करता हुआ, बार २ आकाश और भूमि को या माता और पिता दोनों को अतिस्तुत्य बनावे । (२) जीव तेजस्वरूप परम आश्रय प्रभु की कामना करता हुआ उसकी ओर प्रस्थित हो, वह स्वयं प्रकाश, पवित्र होकर बार २ जन्म लेकर नये से नये मां-बाप बना लेता है ।

सद्यो ज्ञात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।

आप इव प्रवता शुभमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥

भा०—स्वयं उत्पन्न होने वाली नदियां या अन्नादि उत्पन्न करने वाली जलधाराएं जिस प्रकार नोचे की ओर बहते जल से शोभा को प्राप्त होती हैं और वे जल से बढ़ती हैं, उसी प्रकार अग्रणी विद्वान् पुरुष सभासदों से वरण करने योग्य या विराजने के उच्चआसन के योग्य और गुणों में प्रसिद्ध होकर, ताप तेज को धारण करने वाली सेनाओं से धारण किया जाता है और वह उनके सहयोग में ही रोपयुक्त होकर प्रचण्ड हो जाता और शत्रुओं पर प्रहार करता है । क्योंकि वे ही उसकी उच्च आसन पर अभिषेक करने हारी होकर और नीचे विनय से जलधाराओं के समान सुशोभित होती हुई, उसको जलाभिषेक से बढ़ाती और स्वयं भी बढ़ती हैं और वह अग्रणी नायक मां-बाप के गोद में बालक के समान माता भूमि और सैन्यबल दोनों की उपस्थिति, सन्निधि, रक्षा में स्वयं अपने को बढ़ावे और प्रजा की भी रक्षा करे ।

उदु घृतः समिधा यद्धो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।

मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी पर अग्नि काष्ठ के सग से बड़ा होकर खूब चमकता है, उसी प्रकार जलसेचनकाल अर्थात् वर्षणकाल में भी अन्तरिक्ष में वही अग्नि विद्युतरूप से अति दीप्ति से या वायु के संघर्षण-रूप उद्दीप्त कारण से उत्तम रीति से चमकता है, वह अग्नि सूर्यरूप में

भी परम आकाश के बीच में अच्छे तेज से महान् होकर वृष्टिसेचन के लिये उत्तम रीति से या सबसे ऊपर चमकता है । वही अग्नि सबका मित्र, सबको अभीष्ट, अपने उत्पादक कारण अरणि, काष्ठ, अन्तरिक्ष और परमाकाश में जीवित और स्थित और गति करता हुआ, तापवान् होकर महान् यज्ञ करने के लिये दिव्य पांचो भूतो, तेजस्वी लोको और प्रकाशमय किरणों को धारण करता है । (२) नायक पक्ष में—प्रशंसित एवं सबके समक्ष प्रस्तुत किया गया, गुणों में महान्, रूप में आकाश में सूर्य के समान पृथिवी के केन्द्र में स्थित होकर सबसे ऊपर चमके । वह सर्व-ज्ञेही, अग्रणी, पृथ्वी माता पर रहने हारा, वायु के समान बलवान्, दुष्टों का सन्तापकारी होकर, विजिगीषु वीरों के सगत होने या मिलाये रखने के लिये सब पर हुक्मत करे ।

उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्योऽग्निर्भवन्नुत्तमो रौचनानाम् ।

यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥

भा०—अन्तरिक्षगत वायु जलाने वाले काष्ठ आदि से, घर में रखे तथा अजादि देने वाले अग्नि को प्रदीप्त करता है, तो भी महान् अग्नि अर्थात् सूर्य सब प्रकाशमान चन्द्रादि पिण्डों के बीच में सबसे उत्तम होता हुआ, अपने तेज से पूर्ण आकाश को सर्वोपरि रहकर थामने में समर्थ है, उसी प्रकार इन्द्रियों को पोषण करने वाले गौण प्राणों से भी श्रेष्ठ प्रमाता आत्मा के आश्रय रहकर श्वास लेने या देह को प्राणवान् करने हारा मुख्य प्राण इस देह में रहने वाले या धुद्वितत्व में व्यापक भोग्य पदार्थों के ग्रहीता जीवात्मा को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है । तो भी परमेश्वर चमकने वाले सूर्यादि या कामनाशील आत्माओं में सबसे उत्तम होता हुआ, उत्तम तेज से, दुःखादि बाधा से रहित परम आनन्दमय स्वरूप को सर्वोपरि स्थायीरूप से बनाये रहता है ।

इळामग्ने पुरुदंसं सन्ति गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्थान्तः सनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३०। सू० १। मन्त्र २३ ॥) इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७

त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् ६, ११

भुरिक् पक्तिः । ६ स्वराट् पक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र कारवो मनना वृच्यमाना देवद्रीची नयत देवयन्तः ।

दक्षिणावाङ् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्ने घृताची ॥ १ ॥

भा०—हे क्रियाशील विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार कहे गये मननशील शिल्पी लोग, दानशील स्वामी की कामना करते हुए, दानशील स्वामिजनों को अच्छी लगने वाली शिल्पक्रिया को करते हैं और वह शिल्पक्रिया वेग से युक्त, या ऐश्वर्य से युक्त, दक्षिणा या मजदूरी पैदा करने वाली और उत्तम रूप से प्रकट होकर, अग्रणी तेजस्वी पुरुष को अन्न, सुख आदि पदार्थ पूर्ण करती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता लोग परमेश्वर की उपासना करते हुए मन्त्रों द्वारा प्रेरित होकर ईश्वरोपासनायुक्त वाणी को और यज्ञक्रिया करते हैं और दक्षिण दिशा से लाई जाकर घृत से युक्त 'जुहू' नाम सुक् पूर्व की ओर अग्नि को लक्ष्य करके आगे बढ़ती है, उसी प्रकार हे क्रियाशील पुरुषो ! आप लोग भी मननशील पुरुष से उपदेश किये जाकर, उत्तम गणों और ज्ञानदानशील विद्वानों की कामना करते हुए, उनको मन से चाहते हुए विद्वान् दानी और ज्ञानदाता गुरुजनों की पूजा सत्कार क्रिया को अच्छी प्रकार किया करो और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष के सुख के लिये तेज और पौष्टिक पदार्थ को प्राप्त करने वाली क्रिया शक्ति को धारण करने वाली, बल, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम गमन या आचरण वाली, उत्तम सत्कार रूप क्रिया, ज्ञानवान् एवं नायक पुरुष के मान आदर के लिये अन्नादि प्राप्त कराती हुई प्राप्त हो ।

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अघ नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य प्रकट होकर आकाश और पृथिवी दोनों का पूर्ण करता और पालन करता है और वह अपने महान् सामर्थ्य से आकाश और पृथिवी से भी अधिक बढ़ जाता है और सात ज्वाला वाली अग्निया भी उसी के अंश कहाती हैं, उसी प्रकार है अग्रणी नायक ! तू प्रसिद्ध होकर उत्तम उपदेश करने वाले पिता और गुरु दोनों को पूर्ण कर और पालन कर और है सर्वोत्कृष्ट दानशील ! तू अपने महान् ज्ञान और बल के सामर्थ्य से सूर्य और पृथिवी, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों से बढ़ जा । सात छन्दो वाली वाणियों के जानने वाले, एवं कार्य भार वहन करने वाले पुरुष तेरे ही अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें, तेरे ही शिष्य भृत्यादि कहों ।

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।

यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥

भा०—जब मनुष्य प्रजाएं विजयेच्छुक पुरुषों की कामना करती हुई और नाना प्रकार के अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त होकर, देह में वीर्य के समान बलकारी तथा गृह में दीप्त ज्वाला के समान प्रकाशक तुझको चाहती हैं, तो ज्ञानप्रकाश से युक्त विद्वान् जन और पृथिवी के समाप्त आश्रय वाली सामान्य प्रजा और यज्ञशील, संगठन के अंग भूत, शासक लोग भी, दुष्टों के दमन के लिये सबको वश करने वाले तुझको ही सर्वोच्च पद स्थापित करते हैं ।

महान्तस्रधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्धावा माहिने हर्यमाणः ।

आस्त्रैः सपत्नी यजरे अमृक्ते सवर्दुधे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥

भा०—महान् पुरुष कान्तिमान् होकर, चाहने वाले उभय पक्षों के बीच एक साथ बैठने के सभाभवन में स्थिर रहकर अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा

पद पर विराजे और विशाल शक्ति और वाणी वाले नायक के अधीन स्त्री और पुरुष दोनों ही उन्नति की ओर बढ़ने वाले, समान भाव से एक दूसरे को और पुत्रादि का पालन करने वाले जरा अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, कामनादि से युक्त, अथवा अति शुद्ध, समान भाव से एक दूसरे का वरण करके एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले और अज्ञाप्ति भाव से दायें बायें होकर, एक शरीर सा बनाकर एक दूसरे के पूरक होता, सन्तान को दुग्धादि पिलाने हारे हो ।

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।

त्वं दुतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥२६॥

भा०—हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन् राजन् ! परमेश्वर ! तुझ महान् के बड़े २ कर्म नियम हैं । तू अपनी क्रिया और ज्ञान सामर्थ्य से आकाश और भूमि दोनों को विस्तृत कर रहा है तू प्रसिद्ध होता हुआ दुष्टों का संतापजनक और भक्तों से उपासित होता है । हे बलवन् ! तू सब मनुष्यों का नायक हो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।

अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥

भा०—हे विद्वन् पुरुष ! केश वाले दो लाल घोड़ों को रथ की बुरा में जिस प्रकार रासों से जोड़ा जाता है, उसी प्रकार तू नाना केशों के सहने वाले, स्नेह को बढ़ाने वाले, परस्पर स्नेही, एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त स्त्री पुरुषों को योग्य वाणियों से सत्याचरण और ज्ञान के धारण करने के कार्य में लगा, नियुक्त कर, और हे मार्गों का प्रकाश करने और सुखों को देने वाले ! तू सत्फलों की कामना करने वाले सब विद्वान् पुरुषों को सत्कर्म में लगाने वाली उत्तम वाणियों से ही उत्तम उद्देश्यों तक ले जा और हे प्रज्ञावान् पुरुष ! तू स्त्री पुरुषों को उत्तम रीति से परस्पर की हिंसा से रहित, सौम्य स्वभाव वाला, यज्ञशील, परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव से युक्त बना ।

दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उपो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।

अपो यदश उशध्रग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानशील विद्वन् ! हे नायक ! सूर्य के प्रकाश के समान तेरे प्रकाश, तेरी रुचियां, कामनाएं सबको अच्छी प्रतीत हो । जिस प्रकार विशेष रूप से चमकने वाली और अपने से पूर्व प्राप्त उपाकारों के अनन्तर स्वयं प्रकाशित होता है, उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी प्राचीन काल से प्राप्त, विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, पापों का दाह करने वाली वेदवाणियों को प्राप्त करके सुशोभित हो । जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलों को चमकाती है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सत्कर्म करके प्रकाशित हो । जगलों में जिस प्रकार अग्नि कमनीय वृक्षों को भी जला देता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सेवन करने योग्य विषयों में कामना योग्य वासना का भस्म करने हारा हो । ऐसे ज्ञानप्रद, उत्तम पदार्थों के स्वीकर्ता, त्यागी, स्तुत्य, सबके हर्षजनक पुरुष के कर्म की विद्वान् लोग स्तुति करते हैं ।

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचुने सन्ति देवाः ।

ऊमा वा ये सुहवांसो यजत्रा आ येमिरे रथ्यो अग्ने अश्वः ॥ ८ ॥

भा०—हे अप्रणी ! जो विद्वान् और शक्तिमान् पुरुष, विशाल, आकाश में सूर्य या वायु के समान, अपने भीतर निवास करने वाले विशाल आत्मा में हर्ष को प्राप्त होते हैं और जो सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त ज्ञानप्रकाशक पुरुष हैं और उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे वा सुगृहीत नाम वाले और प्रजाओं की रक्षा करने हारे, सगति और नैरी से युक्त हैं, वे रथ में लगने योग्य अश्वों के समान अपने को नियम में रखें ।

एभिरशे सरथं याह्ययाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वः ।

पत्नीवतश्चिशतं त्रींशं देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! तू उन उक्त वीरों के साथ एक समान रथ वाला होकर और नाना रथों सहित आगे बढ़ । वे अश्वों और अश्व-रोहियों के समान विशेष रूप से सामर्थ्यवान्, एवं किरणों के समान व्यापने वाले हों । हे नायक ! तू उन कामनावान्, विजयशील, तेजस्वी, पालन करने वाली शक्ति से युक्त, ३३ प्रधान पुरुषों को उनके अपने देह को धारण करने योग्य अन्न और वेतन देकर धारण कर और उनको सन्तुष्ट कर । इन ३३ देवों के वर्णन का स्पष्टीकरण देखो । ऋ० १ । १३८ । ११ ॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञं यज्ञमभि वृधे गुणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्यै ॥१०॥

भ०—जिस महान् पुरुष के सूर्य और पृथिवी के समान विशाल माता या पिता और गुरु, उत्तम उपदेश करने वाले, प्रत्येक सत्संग के अवसर पर उसकी वृद्धि के लिये उपदेश करते हैं और वे दोनों अति पूज्य, सुन्दर शुभ रूप वाले, सत्यज्ञानों से पूर्ण, सत्याचरण वाले होकर, ज्ञान में उत्पन्न विद्वान् के समीप उसके अहिसनीय दृढ़ रक्षकों के समान रहते हैं, वही उत्तम ज्ञान को लेने वाला पुरुष है ।

इळामग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिभूत्वस्मे । ११। २७। २

भा०—व्याख्या देखो (३ । १ । २३) ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥
इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः ॥

इति श्रीविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीपण्डित-जयदेवशर्म-

विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

